श्री देवेन्द्र मुनि 'शास्त्री'

नौका और नाविक

नौका और नाविक

लेखक

अध्यात्मयोगी विश्वसन्त उपाध्याय

श्री पुष्कर मुनि जी महाराज

के सुशिष्य

साहित्यवाचस्पति श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री

प्रकाशक

श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय

उदयपुर ३१३ ००१

श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय का १६८ वां पुष्प

पुस्तक

नौका और नाविक

लेखक

साहित्यवाचस्पति, साहित्यशिक्षण सचिव

श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री

पृष्ठ संख्या ४२८

प्रथम प्रवेश

२२ अप्रैल १९८६

महावीर जयन्ती

मूल्य : २५/- पच्चीस रुपया सिर्फ

सर्वाधिकार लेखकाधीन

प्रकाशक

श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय

शास्त्री सर्कल, उदयपुर ३१३ ००१

उदयपुर

मुद्रक

श्रीचन्द सुराना 'सरस' के लिए

शक्ति प्रिन्टर्स, आगरा

समर्पण

- जिनका जीवन अध्यात्म साधना का
  पावन प्रतीक है।
- जो सिद्ध जपयोगी हैं
- जो विशिष्ट ध्यानयोगी हैं
- जो प्रबुद्ध ज्ञानयोगी हैं
- जिनका व्यक्तित्व अद्‌भुत है
- जिनमें चुम्बक की तरह आकर्षण है
- शेर की तरह निर्भीकता है
- गजराज की तरह आत्मिक मस्ती है
- चन्द्र की तरह सौम्यता है
- सूर्य की तरह तेजस्विता है
- जिनका कृतित्व अनूठा है
- जिन्होंने अपने पावन प्रवचनों से
  जन-जन के अन्तर्मानस में
  अध्यात्म की ज्योति प्रज्वलित की
- जिन्होंने सरस साहित्य से
  जन-जीवन में नैतिकता का संचार किया
- जिन्होंने अपने मंगल पाठ से
  महामन्त्र नमोक्कार के प्रति
  अनन्य आस्था समुत्पन्न की
- उन्हीं सद्‌गुरुवर्य, विश्वसन्त

उपाध्याय पूज्य पुष्कर मुनि जी महाराज

के

पवित्र कर कमलों में

अनन्त श्रद्धा के सदा

सर्मापत

—देवेन्द्र मुनि

प्रकाशकीय-प्रकाश

अपने चिन्तनशील प्रबुद्ध पाठकों के पवित्र कर-कमलों में 'नौका और नाविक'' नामक अद्भुत ग्रन्थ-रत्न प्रदान करते हुए अपूर्व आह्लाद है। यह एक ऐसा आध्यात्मरस से छलछलाता हुआ रूपक ग्रन्थ है जिसकी तुलना में विश्व के अन्य रूपक ग्रन्थ नहीं ठहर पाते। इस रूपक कथा के आद्य प्रणेता हैं सिद्धर्षि गणी। जो प्रताप-पूर्ण प्रतिभा के धनी थे, जिन्होंने बहुत ही विस्तार के साथ इस महाकथा को लिखकर अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया था। युग ने करवट बदली। समयाभाव का स्वर चारों ओर मुखरित है। भारी-भरकम ग्रन्थ-रत्नों को पढ़ना आधुनिक व्यस्त मानव के लिए गम्भीर समस्या है। अतः साहित्य वाचस्पति श्री देवेन्द्रमुनि जी ने उस महाकथा को संक्षिप्त कर अपनी भाषा व चित्ताकर्षक शैली में प्रस्तुत कर हमारे पर महान् उपकार किया है।

आधुनिक युग में चारों ओर भौतिकवाद की आँधी चल रही है। अर्थ और काम के पीछे मानव दीवाना बनकर भटक रहा है, मानों दो ही पुरुषार्थ उसके जीवन के लक्ष्य हों। धर्म और मोक्ष को वह भूल गया है। अनन्त-अनन्त काल से यह आत्मा इस विराट् विश्व में अर्थ और काम के कारण ही भटकता रहा है। प्रस्तुत महाकथा में वही आत्म-कथा चित्रित है। आशा ही नहीं अपितु दृढ़ विश्वास है कि प्रबुद्ध पाठकों के लिए यह कथा अभिनव प्रेरणा का संचार करेगी। उनके चिन्तन को झकझोरेगी कि हम कौन है ? और किन कारणों से भटक रहे हैं ?

श्रद्धेय सद्गुरुवर्य विश्वसन्त उपाध्याय श्री पुष्कर मुनि जी म. की व देवेन्द्र मुनि जी म. की असीम कृपा हमारे पर रही है जिसके कारण ही हम नित्य नूतन अभिनव साहित्य प्रकाशित कर पा रहे हैं। आशा ही नहीं अपितु दृढ़ विश्वास है कि पूर्व प्रकाशनों की तरह ही प्रस्तुत प्रकाशन भी जन-जन का प्रिय बनेगा और पाठकगण इसे अपनाकर जीवन को पावन बनायेंगे। जिन उदार दानी महानुभावों का हमें सहयोग प्राप्त हुआ है उनका हम आभार स्वीकार करते हैं और भविष्य में भी इसी प्रकार सहयोग प्राप्त होता रहेगा, ऐसी आशा करते हैं।

मन्त्री
श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय
उदयपुर [राज.]

लेखक की कलम से

कहानी का प्रारम्भ

संसार के गहन रहस्यों को समझने और अनबूझ पहेलियों को सुलझाने के लिए वैज्ञानिक जगत में एक प्रणाली प्रचलित है। इसे अंग्रेजी में कहा जाता है—Assumption अथवा Presumption.

एक संकेत मान लिया जाता है अथवा कल्पित कर लिया जाता है और फिर उसके आधार पर आगे बढ़ा जाता है, अध्ययन किया जाता है, परिणाम यह होता है कि रहस्य उजागर हो जाता है।

भूमंडल के समान वायुभार वाले स्थानों पर खींची गई रेखाएँ (Isobars), ध्रुवों से भूमंडल पर होती हुई जाने वाली रेखाएँ (Meridians), ये कर्क, मकर और भूमध्य रेखाएँ आदि क्या हैं? कल्पित ही तो हैं।

इसी प्रकार बीजगणित के बीज, रेखागणित, त्रिकोणमिति आदि के आधार x, y, a, b, c, α, β, π, sin, cos, आदि कल्पित संकेत ही तो हैं, किन्तु इन संकेतों पर आधारित अध्ययन करके वैज्ञानिकों ने प्रकृति के अनेक रहस्य उद्‌घाटित कर दिये हैं।

मानव जीवन भी एक पहेली है, अनबूझ रहस्य है। वह कहाँ से आया है? इस जन्म से पहले क्या था? जीवन में सुख-दुख क्यों पा रहा है? इस जीवन के बाद उसका क्या होगा? मर कर कहाँ जायेगा? यह सब मानव-जीवन के अनबूझ रहस्य ही तो हैं।

जब एक ही जीवन इतना रहस्यपूर्ण है तो इस जीव की संसार-यात्रा अथवा संसारी जीव की यात्रा तो कितनी रहस्यपूर्ण और उलझन-भरी होगी, इसके बारे में केवल कल्पना ही की जा सकती है।

लेकिन यह कल्पना, आकाश कुसुमवत् कोरी कल्पना ही नहीं है, अपितु वैज्ञानिक क्षेत्र में मान्य संकेनात्मक है, आधार सहित है ठोस धरातल पर आधारित है। जिसकी परिकल्पना (preception) भी सत्य है और परिणाम भी सत्य।

जिस प्रकार विज्ञान के क्षेत्र में वैज्ञानिक assumptio..s के आधार पर प्रकृति के रहस्यों को उद्‌घाटित करते हैं, उसी प्रकार धार्मिक क्षेत्र में भी इसी आधार पर जीवन के रहस्यों को सुलझाया जाता है, उजागर किया जाता है और सर्वजनभोग्य बनाया जाता है।

इसके लिए जो विधा अपनाई जाती है, वह है कथा।

कथा (कहानी) का आविर्भाव कब हुआ, कैसे हुआ, किसने किया ? इन सभी प्रश्नों के उत्तर में एक ही बात कही जा सकती है कि कथा का आविर्भाव भी मानव की बुद्धि एवं हृदय के साथ, उसकी कमनीय भावधारा और बुद्धि विचक्षणता के साथ हुआ।

सामान्य शब्दों में 'कथा' का निर्वचन इस प्रकार किया जा सकता है 'क' 'था' ; अर्थात् अमुक व्यक्ति था। और फिर उसका यानी कथा का विकास मानव-जीवन के साथ होता चला जाता है, दूसरे शब्दों में कथा मानव-जीवन के साथ जुड़ी हुई है।

चूंकि मानव-जीवन का आयाम बहुत ही विस्तृत है, सारे संसार में फैला हुआ है, इसी कारण कथा का canvas भी अति विस्तृत है। इसके लोक साहित्य आदि विभिन्न भेद-प्रभेद हैं।

कहानी के भेद

सुप्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान श्री अलैक्जेंडर क्राप ने अपनी पुस्तक The Science of Folk-lore में निम्न भेदों का उल्लेख किया है—

१. परीकथा (अथवा अद्भुत कथा) (Fairy tale)
२. मनोरंजक कथा (Merry tale)
३. प्राणिकथा (Animal tale)
४. गद्य कथा (Saga)
५. स्थानीय कथा (Local legend)
६. परिभ्रमण कथा (Migratory legend)
७. वीर गाथा (Legendary tale)
८. लोकभ्रम (Superstitious tale)
९. मंत्र, जारण, मारण, जादूगरी (juggler tales) आदि कथाएँ

डा० सूर्यकान्त ने अपनी पुस्तक 'संस्कृत वाङ्मय का विवेचनात्मक इतिहास (पृ० ३००)' में सम्पूर्ण कथा साहित्य को दो वर्गों में विभाजित किया है—

१. लोक कथा (Popular tales अथवा Folklore)
२. नीति कथा (Didactic tales)

लेकिन मेरी दृष्टि से सम्पूर्ण भारतीय कथा साहित्य को चार प्रमुख वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

१. नीति कथा (Didactic tales)

२. धर्म कथा (Religious tales)

३. लोककथा (Folk or Popular tales)

४. रूपक कथा (Allegorical tales)

स्थानांग सूत्र में कथा के तीन भेद बताये गये हैं—

तिविहा कहा—अत्थकहा, कामकहा, धम्मकहा। —सूत्र १८९।

इन भेदों से पश्चात् स्थानांग, सूत्र २८२ में धर्मकथा के उपभेद भी बताये गये हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि अर्थ-कथा और काम-कथा संसारविवर्द्धक होने के कारण जैन आचार्यों को उसका वर्णन अभिप्रेत ही नहीं था। उनकी प्रमुख रुचि धर्मकथा की ओर ही थी।

इसीलिए उन्होंने (१) आक्षेपिणी, (२) विक्षेपणी, (३) संवेगिनी और (४) निर्वेदिनी—धर्मकथा के ये चार भेद बताये हैं।

भगवान महावीर ने और उनके पश्चात् जैन आचार्यों ने भी गहन तात्विक एवं दार्शनिक, ग्रन्थियों को कथाओं के माध्यम से सर्वजनभोग्य बनाया है। इसके लिए उन्होंने रूपक कथाओं का अवलम्बन लिया है। किन्तु यह ध्यातव्य है कि ये सभी रूपक कथाएँ कोरी कल्पना नहीं, अपितु सत्य हैं, सत्य सिद्धान्त पर आधारित हैं।

इसी कारण जैन आगमों में अनेक रूपक कथाएँ मिलती हैं।

सूत्रकृतांग सूत्र (द्वितीय स्कंध, प्रथम अध्ययन) में पुण्डरीक कमल के रूपक द्वारा मुक्ति-प्रयास को समझाया गया है। ज्ञाताधर्मकथा के तीसरे अध्ययन में अण्डों के रूपक से संशय का फल दिखाया है। दूसरे अध्ययन में धन्ना सार्थवाह तथा विजय चोर की कथा में आत्मा और शरीर का रूपक है। चौथे अध्ययन में दो कछुओं द्वारा संवर का, दसवें अध्ययन में चन्द्रज्योत्स्ना द्वारा आत्म-ज्योति का, छठे अध्ययन में तूंबे के रूपक से कर्मलेप का, उदकजात में जलशुद्धि द्वारा आत्मशुद्धि आदि अनेक रूपक कथाओं द्वारा धर्म तत्व को सरल व सरस भाषा में साधारण जन के समझने योग्य बनाया गया है।

यह परम्परा आगमों से शुरू होकर पौराणिक काल तक चलती रही।

जैन संस्कृति के अतिरिक्त वैदिक और बौद्ध संस्कृति में भी रूपक कथाओं का बाहुल्य है। महाभारत आदि ग्रन्थों में अनेक रूपक कथाएँ प्राप्त होती हैं। पंचतंत्र और हितोपदेश नामक ग्रंथों में भी रूपक कथाओं का भण्डार भरा हुआ है, जिनमें पशुओं के रूपकों द्वारा नीति एवं सदाचार की शिक्षा दी गई है।

रूपक कथा : रचना वैशिष्ट्य और हेतु

सूक्ष्म तत्वों और अमूर्त भावों को मूर्त अथवा स्थूल रूप देकर उन्हें मूर्त एवं ग्राह्य बनाने का सर्वाधिक शक्तिशाली माध्यम रूपक कथा है। इसमें विभिन्न प्रतीकों और उपमानों का प्रयोग किया जाता है। उपमानों के कारण इसमें सहज गम्यता आ जाती है। सप्राण होकर श्रोता के मन की गहराई में पैठ जाती है। प्रतीकों और उपमानों के कारण रोचकता और उत्सुकता का तत्व विशेष रूप से समाविष्ट हो जाता है।

इसकी रचना में रचनाकार के विशिष्ट कौशल की अपेक्षा होती है। वह ऐसे प्रतीकों और उपमानों का प्रयोग करता है, जो श्रोता अथवा पाठक में दैनंदिन जीवन-व्यवहार में प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होते हों।

इस दृष्टि से सूत्रकृतांग सूत्र, उत्तराध्ययन सूत्र और समराइच्चकहा के कुछ रूपक बहुत ही महत्वपूर्ण हैं।

सूत्रकृतांग, द्वितीय श्रुतस्कंध के प्रथम अध्ययन में एक विशाल सरोवर के मध्य में अवस्थित सर्वोत्तम कमल का रूपक दिया गया है। चारों दिशाओं से चार पुरुष आते हैं, कमल प्राप्त करने के लिए ललचाते हैं, सरोवर में पैठकर उस कमल तक पहुँचना चाहते हैं, किन्तु वहाँ तक पहुँच नहीं पाते, सरोवर के कीचड़ में फँसकर रह जाते हैं।

यहाँ सरोवर संसार का प्रतीक है, इसमें भरा जल तथा कीचड़ संसार के काम-भोग हैं, कमल मोक्ष का प्रतीक है, सरागी साधक इन चार पुरुषों के प्रतीक हैं, वे संसार की मोहमाया में फँसकर मुक्ति प्राप्त नहीं कर पाते।

किन्तु एक अन्य साधक है, वह निस्पृह है, सरोवर में नहीं उतरता, अर्थात् काम-भोगों में नहीं फँसता, संसार रूपी सरोवर के किनारे पर ही खड़ा रहता है और अपनी निस्पृहतापूर्ण साधना से मुक्तिरूपी कमल प्राप्त कर लेता है।

इसी प्रकार अन्य अनेक रूपक कथाएँ भी आगमों में मिलती हैं।

यह परम्परा आगे भी चलती रही। हरदेव की अपभ्रंश भाषा में रचित 'मयणपराजयचरिउ', यशपाल (वि० १३वीं शताब्दी) रचित 'मोह-राज पराजय' नाटक, मेरुतुंग सूरि (वि० १४वीं शताब्दी) रचित 'प्रबन्ध चिंतामणि' का परिशिष्ट भाग आदि रचनाएँ उत्तम रूपक कथाएँ हैं।

किन्तु आचार्य सिद्धर्षि (वि० १०वीं शताब्दी) रचित 'उपमिति भवप्रपंच कथा' सर्वाधिक विस्तृत, लम्बी और उत्कृष्ट रूपक कथा है।

रचनाकार सिद्धर्षि

सिद्धर्षि के गृहस्थाश्रम का नाम सिद्ध था। ये गुजरात के नगर श्री मालपुर के निवासी थे। इन्हें द्यूतव्यसन था। माता की प्रतारणा से ये घर से वापिस लौटे और धर्मस्थानक में पहुँच गये। वहाँ मुनियों के शांत जीवन से प्रभावित होकर गर्गर्षि से श्रामणी दीक्षा ग्रहण कर ली। साधना में संलग्न हुए।

आप सिद्धहस्त लेखक थे। संस्कृत भाषा के प्रकाण्ड पंडित थे। आपने आचार्य सिद्धसेन दिवाकर के 'न्यायावतरण' और आचार्य धर्मकीति रचित 'उपदेशमाला' पर श्रेष्ठ टीकाएँ लिखीं। किन्तु आपकी श्रेष्ठतम मौलिक रचना 'उपमिति भवप्रपंच कथा' है।

इस ग्रंथ को लिखने की प्रेरणा उन्हें अपने गुरुभ्राता श्री उद्योतन सूरि से प्राप्त हुई। श्री उद्योतन सूरि ने एक बार आप से कहा—

"आचार्य हरिभद्र सूरि की 'समराइच्च कहा" बहुत ही भावपूर्ण रचना है। तुम भी ऐसी ही किसी कृति का निर्माण करो।"

इस पर सिद्धर्षि ने कहा—

"कहाँ सूर्य और कहां खद्योत। मेरी और आचार्य हरिभद्र की क्या तुलना। वे गम्भीर विद्वान हैं और मैं मंदमति।"

लेकिन फिर भी उद्योतन सूरि इन्हें प्रेरणा देते रहे, उत्साह बढ़ाते रहे। तब इन्होंने उत्साहित होकर रूपक शैली में एक ऐसी कथा लिखने का निश्चय किया जिसमें संसारी जीव की आदि (असंव्यवहार राशि) से लेकर अन्त (मोक्ष प्राप्ति) तक की संपूर्ण यात्रा का चित्रण हो जाय। यह कार्य रूपक शैली में ही संभव हो सकता था। अतः इन्होंने रूपक शैली ही अपनाई और इसका परिणाम आया—'उपमिति भवप्रपंच कथा' के रूप में।

इस कथा का प्रणयन राजस्थान के भीनमाल नगर में ज्येष्ठ शुक्ला ५ गुरुवार वी० नि० १४३२ में सम्पन्न हुआ।

कथा का संक्षिप्त परिचय

प्रस्तुत रचना में आठ प्रस्ताव हैं। उसमें से **प्रथम प्रस्ताव 'कथामुख'** की रचना तो भूमिका रूप में हुई है। यह कथा का मुख अथवा प्रवेश द्वार ही है। इसके अन्त में रूपक का रहस्य भी खोल दिया गया है।

द्वितीय प्रस्ताव में प्रारम्भ में कर्मपरिणाम आदि का संक्षिप्त परिचय देने के उपरान्त सदागम (केवली आचार्य) के समक्ष प्रज्ञाविशाला

(प्रवर्तिनी साध्वी महाभद्रा), अग्रहीतसंकेता (राजकुमारी सुललिता) और राजकुमार भव्यपुरुष (शंखपुरनरेश श्रीगर्भ का पुत्र) को बैठे हुए दिखाया गया है। उसी समय कुछ लोग (सरकारी कर्मचारी) एक चोर को लेकर राजमार्ग से निकलते हैं। वह चोर सदागम की शरण ले लेता है।

चोर भी वह वास्तविक चोर नहीं है। वह चक्रवर्ती अनुसुन्दर है। अग्रहीतसंकेता को प्रबुद्ध करने के लिए वह चोर का रूप बना लेता है।

सदागम के निर्देश से चोर अपनी आत्मकथा सुनाने लगता है।

बस, इसी बिन्दु से कथा का प्रारम्भ होता है। चोर की कथा वास्तव में संसारी जीव की कथा है।

इस प्रस्ताव में संसारी जीव असंव्यवहार राशि से निकल कर व्यवहार राशि में आता है। एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय के भव पूरे करके पंचेन्द्रिय पशु और फिर मनुष्य बनता है।

मनुष्य नंदीवर्धन के रूप में वह क्रोध कषाय और हिंसा के वश में होकर घोर पाप करता है, परिणामस्वरूप नरक में जाता है। स्पर्शन (काम वासना) के कारण उसकी दुर्गति भी होती है।

साथ ही मनीषी आदि की संवेगवर्द्धिनी वैराग्योत्पादक कथाएँ भी समानान्तर चलती हैं।

तृतीय प्रस्ताव में भी संसारी जीव के नंदीवर्धन रूप की ही कथा है। यहाँ भी वह हिंसा के वश में है। क्रोध का नाम वैश्वानर दिया गया है।

चतुर्थ प्रस्ताव में नंदीवर्धन का जीव रिपुदारण के रूप में जन्म लेता है और मान कषाय (शैलराज) तथा मृषावाद और कपट के साथ मैत्री कर लेता है। परिणाम फिर वही भवभ्रमण और नरकगमन।

पंचम प्रस्ताव में उसका सम्पर्क माया और स्तेय के साथ हो जाता है। इस जन्म में संसारी जीव का नाम वामदेव है।

छठे प्रस्ताव में वामदेव का भव पूरा करके वह पुनः मानव बनता है और उसका नाम धनशेखर रखा जाता है। यहाँ वह लोभ कषाय और मैथुन संज्ञा के वश में होकर पाप-कर्म करता है। अपने मित्र को भी समुद्र में धक्का दे देता है।

सातवें प्रस्ताव में संसारी जीव धनवाहन बनता है। यहाँ वह महा-मोह और परिग्रह के वश में हो जाता है। अनेक प्रकार के अनाचार करके

और जनता पर कर लगाकर अपने राजकोष को भरता है। अन्त में वह मरण प्राप्त करके भव भ्रमण करता है।

फिर वह मनुष्य बनता है। उसका नाम अमृतोदर है। वहाँ वह धर्म की ओर उन्मुख होता है, द्रव्य-श्रावकधर्म का पालन करके देवगति में देव बनता है। यहीं से उसकी उन्नति का क्रम शुरू होता है।

देव भव पूरा करके वह मनुष्य बनता है। यहाँ वह श्रमण व्रत स्वीकार कर लेता है। देव-गुरु-धर्म की निन्दा कर के फिर कुयोनियों में भटकता है।

पुनः वह विशद नाम का राजकुमार बना, यहाँ वह फिर सम्यग्दर्शन आदि के सम्पर्क में आता है और देवभव प्राप्त करता है।

आठवें प्रस्ताव में वह गुणधारण नाम का राजकुमार बनता है। यहाँ वह उन्नति की ओर गति-प्रगति करता है।

इस प्रस्ताव के चार विभाग किये जा सकते हैं।

प्रथम विभाग गुणधारण के भव में कर्म, काल, स्वभाव, भवितव्यता, पुण्योदय आदि के कार्य बताये गये हैं।

दूसरे विभाग में चोर (संसारी जीव) के रहस्य को अनावृत कर दिया गया है। दूसरे शब्दों में संपूर्ण कथा का रहस्य खुल गया है।

तीसरे विभाग में सभी प्रमुख पात्रों का सम्मिलन के साथ-साथ उनकी प्रगति को भी स्पष्ट बता दिया गया है।

चौथे विभाग में चोर—वास्तव में अनुसुन्दर चक्रवर्ती और यथार्थ में संसारी जीव की मुक्ति दिखाकर कथा का समापन कर दिया गया है। साथ ही अन्य प्रमुख पात्रों की मुक्ति का संकेत भी कर दिया है।

इस संक्षिप्त कथा सार से स्पष्ट है कि प्रस्तुत कथा में संसारी जीव की सम्पूर्ण यात्रा का बर्णन कर दिया गया है।

संसारी जीव की संसार यात्रा के साथ-साथ ही प्रबुद्ध जनों की अन्तर्कथाएँ भी गुम्फित की गई हैं।

रचना कौशल

प्रस्तुत कथा में रोचकता तथा विविधता का समावेश करने के लिए आचार्य सिद्धर्षि ने अनेक उपकथाएँ, अन्तर्कथाएँ, छोटे-छोटे रूपक, लघु कथाएँ तथा अन्य प्रेरक आख्यान भी दिये हैं।

प्रस्तुत प्रबन्ध में पुण्य और पाप की, धर्म और अधर्म की धाराएँ समानान्तर रूप से बह रही हैं। संसारी जीव को उसके प्रत्येक मानव-भव

में सत्संगति प्राप्त हुई है। आचार्यों—केवली मुनिराजों की देशना भी उसने सुनी है। उनके जीवन-चरित्र और दीक्षा के निमित्त भी उसे बताये गये हैं। किन्तु विषय-कषायों रचे-पचे रहने के कारण वह उनसे लाभ न उठा सका; और जब लाभ उठाया तो शनैः शनैः उन्नति करके अन्त में मुक्त हो गया।

आचार्य श्री के रचना कौशल की विशिष्टता यही है कि रूपक कथा होते हुए भी तथा इसकी विषय-वस्तु गहन दार्शनिक होते हुए भी इस में नीरसता नहीं आने पाई है। वर्णन-वैविध्य और विषय-परिवर्तन के कारण इस कृति में दीर्घ उपन्यास का सा रस आता है।

भव प्रपंच क्या है ?

जैन-धर्म की दृष्टि से भव-प्रपंच है—पाँचों इन्द्रियों के विषय और क्रोध आदि चारों कषाय। साथ ही इन सब का सरदार है महामोह। इसके परिवारीजन हास्य, रति, शोक, भय, काम आदि हैं।

प्रस्तुत कथा में मोह के सम्पूर्ण परिवार तथा उसके दुष्परिणामों का अंकन हुआ है। साथ ही धर्मराज के सम्पूर्ण परिवार का अंकन एवं उसके शुभ परिणामों का भी दिग्दर्शन कराया गया है।

वास्तविक स्थिति यह है कि इस द्वन्द्वात्मक जगत में एकान्त स्थिति कहीं नहीं है। सुखमिश्रित दुःख है तो दुःखमिश्रित सुख भी है। धर्म-अधर्म, पुण्य-पाप, आदि सभी कुछ है। और यही सब भवप्रपंच है। इसी का वर्णन करना इष्ट था जिसमें रचनाकार पूर्ण रूप से सफल हैं।

रचना की विशेषताएं

इसकी विशेषताएँ दो रूपों में प्रगट की जा सकती हैं—प्रथम धार्मिक रूप में और द्वितीय साहित्यिक रूप में।

धार्मिक दृष्टि से तो इसमें उन सभी बातों का वर्णन आ गया है जिनके कारण जीव संसार में भ्रमण करता है और साथ ही उन हेतुओं का भी सांगोपांग वर्णन है जिनके कारण वह संसार सागर से पार हो जाता है, मुक्ति के शाश्वत और अव्याबाध सुख को प्राप्त कर लेता है।

साहित्यिक दृष्टि से तो यह अनुपम ग्रंथ है ही। यह संसार की सबसे प्राचीन और दीर्घ रूपक कथा है। बनियन (Bunyan) की पिलग्रिम्स प्रोग्रेस (Pilgrim's Progress) और फ्रांसीसी कृति दी पिलग्रिमेज ऑफ मैन (The Pilgrimage of Man) इसकी तुलना में आकार में भी लघु हैं और प्रभाव में भी लघु।

इसी कारण डा० हरमन जेकोबी ने कहा है—

I did find something still more important. The great literary value of U. Katha and the fact that it is the first allegorical work in Indian literature.

वस्तुतः देखा जाय तो यह विश्व साहित्य का सर्वप्रथम विराटकाय रूपक ग्रंथ है। इसमें किसी व्यक्ति के एक ही जीवन-यात्रा का वर्णन नहीं है, अपितु उसके अनेक जन्मों का गतियों का वर्णन है, जो अत्यन्त रोचक शैली में हुआ है। इसमें प्रयुक्त सभी नाम, जैसे—चित्तरम उद्यान, आनन्द नगर, चित्तविक्षेप सिंहासन आदि साहित्यिक और विशेष अर्थ लिए हुए हैं। सभी भावपूर्ण हैं। कोई भी नाम निरर्थक नहीं है।

प्रस्तुत संस्करण का नाम हेतु

श्रावस्ती नगरी के तिन्दुक उद्यान में भ० पार्श्वनाथ के चौथे पट्टधर केशीकुमार श्रमण और भ० महावीर के पट्ट शिष्य गौतम गणधर के मध्य विभिन्न विषयों पर प्रश्नोत्तर चल रहे थे। उस वार्तालाप के मध्य गौतम गणधर ने कहा—

सरीरमाहु नाव त्ति जीवो वुच्चइ नाविओ।
संसारो अण्णवो वुत्तो जं तरंति महेसिणो।।

—यह शरीर नाव है और जीव नाविक, तथा यह भव (संसार) सागर है, इस भव सागर को महर्षि गण पार करते हैं।

जिस समय मैं आचार्य सिद्धर्षि की उपमिति भवप्रपंचकथा को पढ़ रहा था, उस समय उत्तराध्ययन सूत्र की उक्त गाथा मेरे चिन्तन में उभर आई। इसका कारण यह था कि उपमिति भवप्रपंच कथा भी रूपक कथा है और उक्त गाथा में भी रूपक है, शरीर को नौका, जीव को नाविक और संसार को समुद्र से उपमित किया गया है।

इसीलिए मैंने अपनी इस नवीन कृति का नाम **'नौका और नाविक'** रखा है। इसका आधार है—आचार्य सिद्धर्षि की रचना 'उपमिति भव प्रपंच कथा।' उस कथा को मैंने अपने शब्दों में ढाल दिया है। बहुत ही विस्तृत कथा को संक्षिप्त आकार दिया है।

ज्येष्ठभगिनी महासती परम विदुषी पुष्पवती जी म० की प्रबल प्रेरणा रही कि उपमिति भवप्रपंच कथा को संक्षिप्त में प्रस्तुत किया जाय तो अधिक श्रेयस्कर होगा; साथ ही परमादरणीय प्रतिभामूर्ति मातेश्वरी महासती स्वर्गीया श्री प्रभावती जी म० की भी यह इच्छा थी अतः उनकी इच्छा को मूर्त रूप देना मेरा अपना कर्त्तव्य था।

मैंने इस बात का पूर्ण प्रयास किया है कि मूल कथा का भाव ज्यों का त्यों रहे, उसमें किसी प्रकार का अन्तर न आने पाये। साथ ही रोचकता का तत्व और भी अधिक प्रभावी बने। इसी दृष्टि से इसकी भाषा सरल और सुबोध रखी है, जिससे प्रबुद्ध पाठक इस रूपक कथा में निहित भाव को सरलता से हृदयंगम करके उससे लाभ उठा सकें, अपने जीवन को धर्म की ओर मोड़ सकें।

मुझे विश्वास है, मेरी यह रचना भारती के भण्डार की श्रीवृद्धि करेगी और विद्वद् एवं सामान्य—सर्वजनोपयोगी सिद्ध होगी।

पूज्य गुरुदेव विश्वसन्त, उपाध्याय श्री पुष्कर मुनि जी म० की असीम कृपादृष्टि मुझ पर सदा ही रही है। इस ग्रंथ में जो कुछ भी है सब उन्हीं की कृपादृष्टि का फल है।

प्रस्तुत रचना को मुद्रण कला की दृष्टि से सजाने-सँवारने और साफ-सुथरी छपाई के लिए श्रीचन्द जी सुराना का अथक और अनवरत सहयोग मेरी स्मृति पटल पर अंकित है। उदार सहयोगियों को भी धन्यवाद देता हूँ जिनके कारण यह कृति पाठकों के हाथ में पहुँच रही है।

मेरे हाथ में दर्द होने के कारण पाण्डुलिपि तैयार करने में गोस्वामी सत्यप्रकाश जी का मधुर सहयोग मुझे मिला है तदर्थ वे भी साधुवाद के पात्र हैं।

ज्ञात और अज्ञात रूप में जिन किन्हीं का सहयोग मिला है उन्हें भी मैं विस्मृत नहीं हो सकता।

—देवेन्द्र मुनि शास्त्री

□□

विषय-सूची

पृष्ठ

प्रथम प्रस्ताव १—१८

कथामुख

१ निष्पुण्यक १
२ पुण्योदय की ओर ३
३ दिव्यौषधों का प्रभाव ६
४ अहित पर प्रीति की पराकाष्ठा ७
५ रोगी प्रकार : सुसाध्य, कष्टसाध्य और असाध्य १०
६ सद्बुद्धि नामक सेविका की नियुक्ति १३
७ नाम-परिवर्तन : निष्पुण्यक सपुण्यक बना १५
रूपक रहस्य : कथा-दर्शन १८

द्वितीय प्रस्ताव १९-८४

१ एक था राजा, एक थी रानी १९
२ पुत्रवती वन्ध्या २२
३ सदागम की विशेषताएँ २६
४ संसारी जीव तस्कर २८
५ चोर का परिचय ३०
६ यात्रा: डगर-डगर और नगर-नगर की ३४
७ अहो जीव संसारी : यात्रा की गति जारी ३६
८ बड़े भाग्य मानुष तनु पावा ४०
९ राजकुमार नंदिवर्धन के पाणि-ग्रहण का प्रयास ४३
१० स्पर्शन कथा ४७
११ स्पर्शन की योगशक्ति ५४
१२ मध्यमबुद्धि ५७
१३ मदनकंदली ६३
१४ बाल की दुर्दशा ६६
१५ मनीषी के प्रति राजा कर्म-विलास की अनुकूलता ७०
१६ मनुष्यों के चार प्रकार ७२
१७ बाल की भवितव्यता ७५
१८ अप्रमाद यंत्र और मनीषी ७७
१९ कर्मविलास का स्वरूप ८०

तृतीय प्रस्ताव ८५—१२४

१ नंदिवर्धन और कनकशेखर ८५
२ कनकशेखर और नंदिवर्धन का विवाह ८९
३ नंदिवर्धन का विवाह हिंसा से ९१
४ अम्बरीष डाकुओं से युद्ध ९३
५ कनकमंजरी से विवाह ९६
६ हिंसा का प्रभाव ९९
७ दयाकुमारी के साथ विवाह का प्रयास १०३
८ वैश्वानर और हिंसा का तांडव १०६
९ कनकशेखर को मारने का असफल प्रयास ११०
१० विवेक केवली की धर्म सभा ११२
११ भवप्रपंच और मनुष्यभव की दुर्लभता ११५
१२ तीन कुटुम्ब ११८
१३ संसारी जीव नन्दिवर्धन का भव-परिवर्तन : मृत्यु १२२

चतुर्थ प्रस्ताव १२५—२१४

१ रिपुदारण और शैलराज १२५
२ मृषावाद के साथ मैत्री १२८

पृष्ठ

३ शिक्षागुरु—कलाचार्य महामति और रिपुदारण १२६
४ दुर्गुणों में वृद्धि १३२
५ नरसुन्दरी से विवाह १३४
६ नरसुन्दरी से सम्बन्ध विच्छेद १३६
७ नरसुन्दरी और विमलमालती की आत्महत्या १४१
८ विचक्षण और जड़—दो भाई १४५
९ रसना और लोलता-लोलुपता १४६
१० रसना के मूल की खोज १५०
११ चित्तवृत्ति अटवी १५३
१२ रूपक कथा : बेल्लहलकुमार की १५८
१३ महामोह के परिजन : महामूढ़ता, मिथ्यादर्शन, कुदृष्टि १६३
१४ रागकेसरी और द्वेषगजेन्द्र १६५
१५ मकरध्वज १६६
१६ पाँच जन : हास, अरति, भय, शोक और जुगुप्सा १६७
१७ सोलह बालक १६८
१८ महामोह के सामन्त : विषयाभिलाष मंत्री, भोगतृष्णा तथा अन्य सेनानी १७०
१९ महामोह के मित्र राजा १७१
२० महामोह सैन्य के विजेता १७४
२१ कर्मपरिणाम और महामोह : आपसी सम्बन्ध १७७
२२ भवचक्र नगर में १७९
२३ लोलाक्ष की कामान्धता १८२
२४ रिपुकंपन १८३
२५ महेश्वर सेठ और धनगर्व १८६
२६ रमण और कुन्दकलिका १८८

पृष्ठ

२७ विवेक पर्वत पर : भवचक्री नाटकों के दृश्य १९०
२८ चार उपनगर १९५
२९ सात पिशाचिनी १९६
३० पिशाचिनों का प्रभाव और निर्वृत्ति १९९
३१ छह अवान्तर मंडल : षट्दर्शन २०१
३२ जैनदर्शनपुर की ओर २०२
३३ चतुरानन राजा—चारित्रधर्म २०५
३४ राजा नरवाहन की दीक्षा २०७
३५ रिपुदारण का गर्व और पतन २११

पंचम प्रस्ताव २१५—२५०

१ वामदेव : माया और स्तेय २१५
२ क्रीड़ानन्दन वन में २१७
३ विमल की निस्पृहता २२०
४ विमल का उत्थान २२३
५ वामदेव का पतन २२६
६ बुधाचार्य का संकेत-गुप्त संदेश २२९
७ उग्रदिव्य दर्शन २३१
८ बठर गुरु की कथा २३५
९ बुधाचार्य के चारित्र ग्रहण का कारण २३६
१० मार्गानुसारिता और विचार की बातचीत २४१
११ सत्य नामक दूत की भर्त्सना २४३
१२ वामदेव का पलायन २४६
१३ वामदेव का अन्त और भवभ्रमण २४७

षष्ठ प्रस्ताव २५१—२९२

१ धनशेखर और सागर की मैत्री २५१
२ धन की खोज और प्राप्ति २५२

पृष्ठ

३ कर्मादानों—निम्नकोटि का व्यापार २५३
४ राजपुत्र हरिकुमार से मित्रता २५५
५ हरिकुमार की ज्ञान गोष्ठी—प्रश्नोत्तर २५७
६ चित्रांकित सुन्दरी की खोज में धनशेखर का प्रस्थान २६२
७ हरिकुमार का चित्रांकित कन्या से विवाह २६४
८ धनशेखर की मैथुन और यौवन से मित्रता २६८
९ मैथुन संज्ञा और सागर में संघर्ष : दोनों से समझौता २६९
१० पुण्योदय का पलायन : धनशेखर की दुर्दशा २७०
११ धनशेखर की विफलता २७३
१२ आनन्दनगर में उत्तमसूरि का आगमन २७५
१३ सुख-दुःख का कारण : अंतरंग राज्य २७७
१४ अन्तरंग की राज्य अनेकरूपता : निकृष्ट राज्य २८०
१५ अधम का राज्य : भोगिनी दृष्टि देवी २८२
१६ विमध्यम का राज्यकाल २८४
१७ मध्यम का राज्यकाल २८५
१८ उत्तम का राज्यकाल २८५
१९ वरिष्ठ का राज्यकाल २८८
२० अप्रबुद्ध का चिन्तन : निष्कर्ष २८९
२१ मुनि उत्तमसूरि द्वारा कथा का निष्कर्ष २९०
२२ लोभ द्वारा धनशेखर की मृत्यु २९१

पृष्ठ

सप्तम प्रस्ताव २९३—३४१
१ धनवाहन और अकलंक २९३
२ ग्राम लोकोदर में अग्निकांड २९६
३ लोकोदर ग्राम के अग्निकांड का रूपक-रहस्य २९७
४ मदिरालय का रूपक २९८
५ मदिरालय का रूपक रहस्य ३००
६ रहटयंत्र का हेतु ३०१
७ कर्मभोजन की अजीर्णता ३०३
८ चार व्यापारियों की कथा ३०५
९ रत्नद्वीप की व्यापार-कथा का रहस्य ३०७
१० रत्नद्वीप की कथा का गूढार्थ ३०९
११ संसार-बाजार—प्रथम चक्र ३११
१२ बंदर के बच्चे का रक्षण ३१३
१३ संसार-बाजार —द्वितीय चक्र ३१४
१४ संसार-बाजार का सार संक्षेप ३१६
१५ सदागम का सान्निध्य : भावशून्य धर्मक्रियाएं : दीक्षा ३१८
१६ महामोह और परिग्रह ३२०
१७ कोविदाचार्य का आत्मचरित : सदागम का माहात्म्य ३२२
१८ शोक और द्रव्याचार ३२७
१९ सागर, बहुलिका (माया) और कृपणता ३२८
२० अकलंक मुनि और कोविदाचार्य का संवाद ३३०
२१ महामोह के परिजनों का आक्रमण ३३२
२२ राजच्युत धनवाहन कारागार में : भवभ्रमण ३३३
२३ भवभ्रमण की ऊर्ध्वगति ३३४

	पृष्ठ
२४ संसारी जीव : विकास के पथ पर	३३६
२५ विकास पथ पर : उतार-चढ़ाव	३३६
अष्टम प्रस्ताव ३४२—३९५	
१ संसारी जीव—राजपुत्र गुणधारण के रूप में	३४२
२ मदनमंजरी	३४३
३ मदनमंजरी और गुणधारण का मिलन	३४५
४ गुणधारण और मदनमंजरी का विवाह	३४८
५ कुलन्धर का स्वप्न दर्शन : कन्दमुनि से वार्तालाप	३५०
६ निर्मलाचार्य द्वारा स्वप्नदर्शन विचार	३५२
७ कार्य-कारण शृंखला	३५४
८ शुभाशुभ बाह्य निमित्त	३५७
९ दस कन्याओं का परिचय	३५८
१० विद्या से विवाह : अन्तरंग युद्ध	३६१
११ शेष नौ कन्याओं से विवाह : संसारी जीव का उत्थान	३६४

	पृष्ठ
१२ शिखर से गर्त में : उत्थान से पतन	३६८
१३ भवभ्रमण परम्परा : आत्मकथा का समापन	३७०
१४ अनुसुन्दर चक्रवर्ती	३७२
१५ महाभद्रा और सुललिता	३७४
१६ पुण्डरीक और समन्तभद्र	३७६
१७ अनुसुन्दर चक्रवर्ती : चोर के रूप में	३७९
१८ अन्तरंग चोर का स्वरूप : अनुसुन्दर की जवानी	३८२
प्रमुख पात्रों का उत्थान	
१९ अनुसुन्दर चक्रवर्ती का उत्थान	३८४
२० सुललिता को उद्बोधन	३८५
२१ सुललिता की शंका : अनुसुन्दर द्वारा समाधान	३८६
२२ सात दीक्षाएँ : अनुसुन्दर मुनि का स्वर्ग गमन	३८८
२३ द्वादशांगी का सार : पुण्डरीक मुनि की शंकाएँ	३९०
२४ मोक्षगमन	३९३
२५ उपसंहार : सार-संक्षेप	३९४

□

कथामुख

[१] **निष्पुण्यक**

इस कथा के पात्र हमारे जाने-पहचाने पात्र हैं। उन पात्रों के चरित तथा लीलाएँ भी हमने अनेकों बार देखी-सुनी हैं। लेकिन हम उन्हें भूल गये हैं। एक बार इस कथा को पढ़े-समझें तो हम यह जान जायेंगे कि इस कथा से हमारा क्या सम्बन्ध है और इस कथा के नायक निष्पुण्यक की 'जीवन स्थिति' से हमें कौन-सा 'जीवन-संदेश' मिल सकता है। जिस नगर की कहानी हम कहने जा रहे हैं, वह नगर पहले था, आज भी है और आगे भी रहेगा, अर्थात् आदि-अन्त से रहित इस नगर के कथा-पात्र भी शाश्वत ही हैं। तो आइए, अपने-आपके—हमारे-सबके जीवन की कथा को पढ़ें-समझें।

बहुत विशाल एक सुन्दर नगर था। उस नगर का नाम था अदृष्ट-मूलपर्यन्त। जैसे एक जन्म से दूसरा जन्म मिलने की लम्बी परम्परा है, वैसे ही इस नगर में विविध वस्तुओं के बाजार थे। अनेक सुन्दर देवालय वाले इस नगर को एक ऐसा दुर्ग घेरे हुए था, जिसे कोई नहीं लाँघ सकता था। क्योंकि इस दुर्ग के चारों ओर गहरी खाइयाँ थीं। नगर में अनेक सुन्दर सरोवर थे। नगर दुर्ग के पास कई अंधकूप भी थे। अनेक प्रवृत्ति के जीवों से भरा यह नगर बड़ा विचित्र और चमत्कारों से भरा हुआ था। इस प्रकार अदृष्टमूलपर्यन्त नगर की जो-जो विशेषताएँ थीं, वे इतनी अधिक हैं कि विस्तारभय के कारण बहुत थोड़ी कही हैं। फिर भी एक विशेष बात यह थी कि इस नगर में त्रिविध प्रकार की क्रीड़ा-कलरव करने वाले अनेक बालक भी थे। जैसे हम सब के सामने क्रोध, मान, माया, लोभ रूप कषाय कोलाहल किया करते हैं, वैसा ही कोलाहल अदृष्टमूलपर्यन्त नगर के बालक किया करते थे।

अदृष्टमूलपर्यन्त नगर में निष्पुण्यक नाम का एक दीन-हीन ब्राह्मण रहता था। चूंकि यह ब्राह्मण अत्यधिक दरिद्र था, इसीलिए अत्यधिक दुखी भी था। कहा है भी है :

नहिं दरिद्र सम दुख जगमाहीं ।

और :

सन्त मिलन सम सुख कोउ नाहीं ।।

अर्थात् दरिद्रता के समान संसार में कोई दुख नहीं है और संत समागम के समान कोई सुख नहीं है। लेकिन यह बात भी बड़ी अटपटी है कि दरिद्र की तरह संत के जीवन में भी तो धन और समृद्धि का अभाव रहता है। फिर भी दरिद्र के समान कोई दुखी नहीं है और संत-मिलन के समान दूसरा सुख नहीं है, ऐसा क्यों है? संत स्वयं भी सुखी और जो उनसे मिलता है, वह भी सुखी।

दरिद्र के जीवन में अभाव है। संत के जीवन में भी अभाव है। दोनों बाहर से अकिंचन दीखते हैं पर दोनों की बाहरी समानता में आकाश-पाताल का अन्तर है। दरिद्र का अभाव उसकी विवशता है। लेकिन संत का अभाव उसकी अनासक्ति है, स्वेच्छापूर्वक अपनाया हुआ है। संत स्वेच्छा से धन-सम्पत्ति का त्याग करके चारित्र ग्रहण करता है, जबकि दरिद्र धन चाहता है, उसके लिए छटपटाता है। दूसरी बात यह कि दरिद्र के पास इच्छाएँ होती हैं। धनाभाव के कारण वह अपनी इच्छाएं पूरी नहीं कर पाता, इसलिए दुखी रहता है; जबकि संत के पास इच्छाएँ होती ही नहीं, उसके लिए स्वर्ण-मिट्टी समान होते हैं। भीतर की बात यह कि संत के भीतर अखण्ड शान्ति का साम्राज्य रहता है और दरिद्र के हृदयाकाश में चिन्ता, शोक, भय, वियोग के काले कजराले बादल मँडराते रहते हैं।

तो अदृष्टमूलपर्यन्त नगर का निष्पुण्यक ब्राह्मण दरिद्र था। दरिद्र भी वह दीन-मलीन श्रेणी का था। कुछ व्यक्ति केवल दीन होते हैं, मलीन नहीं; कुछ मलीन होते हैं, दीन नहीं और कुछ दीन-मलीन दोनों होते हैं। एक राजा रेगिस्तान में अकेला भटक गया। वह मलीन—अभावग्रस्त नहीं है, पर अन्दर से दीन है कि मैं क्या खाऊंगा, क्या पिऊँगा? एक संत बाहर से मलीन—अभावग्रस्त है, पर अन्दर से दीन नहीं है, उसे अखण्ड शान्ति प्राप्त है। एक भिखारी बाहर से मलीन है तो अन्दर से दीन भी है। निष्पुण्यक ब्राह्मण दीन-मलोन दोनों था। उसके जीवन में न केवल धन का ही अभाव था, बल्कि भोजन, औषध, स्वास्थ्य तथा जीवन यापन के सभी साधनों का अभाव था। इस सब के साथ उसके जीवन का सबसे बड़ा दुःख यह भी था कि वह एकाकी—निपट अकेला था। न कोई उसका परिवारी था और न कोई मित्र था। अपने दुख का हाल वह किसी से कह भी नहीं सकता था।

भोजन के अभाव में निष्पुण्यक का शरीर अत्यन्त कृश व क्षीण हो गया था। वह बिना बिछोने की कठोर भूमि पर सोता था। कठोर भूमि पर सोते-सोते उसकी पसलियाँ भी घिस गई थीं। उसके कपड़े अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण चिथड़े जैसे थे। वह भिखारी बनकर घर-घर डोलता था। भोजन के लिए उसके हाथ में मिट्टी का भिक्षा पात्र रहता था।

निष्पुण्यक जब भी भिक्षा के लिए नगर में निकलता, नगर के शरारती नटखट बच्चे उसे ईंट-पत्थर मार कर परेशान करते और उसका मजाक उड़ाते। कोढ़, खुजली, ज्वर, उदरशूल, उन्माद आदि अनेक रोगों से पीड़ित निष्पुण्यक नरक की-सी यातनाएँ भोग रहा था। इस नगर में यद्यपि और भी दरिद्र थे, पर निष्पुण्यक सब में अग्रणी था। शरीर से रोगी, इन्द्रियों से शक्तिहीन, मन से चिन्ताग्रस्त, बुद्धि से भयग्रस्त और अहं के स्तर पर वह स्वजन-वियोग से अत्यन्त दुखी प्राणी था। □

[२] पुण्योदय की ओर

बड़े-से-बड़ा पापी, पुण्यशून्य जीव को भी एक-न-एक दिन धर्मपथ पर आना ही है। अन्तर केवल इतना है कि संस्कारी और भव्य आत्मा जल्दी इस रास्ते पर चलने लगता है और निष्पुण्यक-जैसा पुण्यहीन ठोकरें खा-खाकर इस रास्ते पर आता है।

निष्पुण्यक को रूखी-सूखी जो भी जूठन खाने को मिलती वह उसी को स्वर्गभोज मानकर प्रसन्न होता था। भिक्षा के लिए जाने से पूर्व वह सोचा करता था कि आज मुझे अमुक-अमुक घर से जूठन मिलेगी। वह दिन-रात जूठे भोजन की प्राप्ति का ही चिन्तन-मनन करता रहता था। निष्पुण्यक ऐसा महोदर था कि अनेक घरों के भिक्षान्न से भी कभी उसकी तृप्ति नहीं होती थी, वह सदा भूखा ही बना रहता था। वह भिक्षा में प्राप्त जूठे भोजन की इतने यत्न से सँभाल करता था कि कहीं देवराज इन्द्र मेरे इस भोजन को न चुरा लें। ज्यादा क्या कहें, वह निष्पुण्यक ब्राह्मण सज्जनों के लिए दया का पात्र, दुर्जनों के लिए मनोरंजन का साधन, बालकों के लिए खेलने का खिलौना और पापियों के लिए सोते से जागने/चेतने का उदाहरण था।

निष्पुण्यक यद्यपि पहले से भी रोगी था, पर जिस-तिस की जूठन खाते-खाते वह उदरशूल, संग्रहणी, हैजा का रोगी भी हो गया था। जूठन

के भोजन से उसे नये-नये रोग तो होते ही; पुराने दबे हुए रोग भी उभरने लग जाते थे। इतने पर भी निष्पुण्यक झूठे भिक्षान्न पर ही प्राण देता था और रूप-रस-गंध से पूर्ण रुचिकर, स्वादिष्ट, पौष्टिक और हितकर भोजन की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखता था।

इस प्रकार घर-घर, वीथी-वीथी और द्वार-द्वार भिक्षा मांगने के क्रम में निष्पुण्यक एक दिन राजमहल के द्वार पर पहुँच गया। उस राजमहल का राजा कौन था, उस राजा का मंत्री, द्वारपाल आदि कौन थे, यह सब जानने के बाद हम देखेंगे कि उस राजा की कृपा निष्पुण्यक पर बड़ी सहजता से हो गई, पर अभागा निष्पुण्यक ही राजा की कृपा का लाभ बड़ी मुश्किल से उठा पाया।

अदृष्टमूलपर्यन्त नगर के राजा का नाम था सुस्थित। सुस्थित राजा सभी प्राणियों पर बिना किसी भेद-भाव के समान रूप से प्यार करता था। सुस्थित राजा का महल रत्नों के प्रकाश से जगमगाता रहता था। वहाँ दिन-रात कभी भी अंधकार का प्रवेश नहीं था। उस महल में अनेक सुन्दर रमणियाँ नृत्य करती रहती थीं। मोती की लड़ियों वाले सुन्दर परदे वातायनों पर पड़े रहते थे। विविध रंगी पुष्पों से शोभित उस राजमहल में अनेक मंत्री, चाकर और राज्याधिकारी रहते थे। उस राजमहल में आनन्द की ऊर्मियाँ सदा तरंगायित होती रहती थीं।

राजमहल के जो राज्याधिकारी थे, वे करोड़ों नगर, असंख्य ग्राम-परिवारों का पोषण करते थे। इस महल में ऐसी वृद्ध नारियाँ भी थीं जिन्होंने विषयों को जीत लिया था और जो युवतियों को भी अंकुश में रखती थीं। इस राजमहल में ऐसी सुन्दर नारियाँ थीं, जिनके रूप से देव-लोक भी फीका पड़ जाता था। संगीत, राग-रागिनियाँ और अनेकविध कलाओं से पूर्ण इस राजमहल में कोई पुण्यात्मा ही प्रवेश पा सकता था।

जब निष्पुण्यक सुस्थित राजा के राजमहल के द्वार पर भिक्षा के लिए खड़ा हुआ तो स्वकर्मविवर नामक द्वारपाल ने निष्पुण्यक की दीन-हीन दशा देखी। उसे उस पर दया आ गई और वह द्वारपाल निष्पुण्यक को हाथ पकड़कर भीतर ले गया।

राजमहल के भीतर पहुँचकर भिखारी एकदम भौंचक्का रह गया। वह सोचने लगा—क्या मैं नरक से स्वर्ग में आ गया? यह तो बड़ी विचित्र जगह है? मैं यहाँ कहाँ आ गया? राजमहल में मन को लुभानेवाले ऐसे मनोरम चित्र थे, जिन्हें निष्पुण्यक ने पहली बार ही देखा था और उन्हें

देखकर वह विस्मय में डूब-उतर रहा था। चन्दन, अगर, कपूर आदि की ऐसी आल्हादकारी सुगंध गमक रही थी जिससे मन प्रसन्नता से झूम जाता था। यदि आध्यात्मिक दृष्टि से विचार करें तो सुस्थित राजा का महल इन्द्रियों की तृप्ति—निर्वाण का कारणभूत था। ऐसे अद्भुत राजमहालय को देखते-देखते निष्पुण्यक भिखारी चेतनाशून्य हो गया था। धीरे-धीरे जब निष्पुण्यक को चेतना प्राप्त हुई तो उसने मन-ही-मन राजमहल के स्वकर्मविवर नामक द्वारपाल को धन्यवाद दिया और सोचा कि इस द्वारपाल की कृपा से ही मैं इस राजभवन में प्रवेश पा सका हूँ। लेकिन मुझे ऐसा अवश्य याद आ रहा है कि मैं पहले कई बार भटकते-भटकते इस राजभवन के पास से निकला हूँ। जो भी हो, आज मैं इसे भीतर से पहली बार ही देख रहा हूँ। वस्तुतः मैं यथानाम तथागुण—पूर्णतः पुण्यहीन ही रहा, क्योंकि इसके पास से गुजरते हुए भी मैंने पहले इसके भीतर का हाल जानने का प्रयास नहीं किया। मैं पुण्यहीन हूँ, फिर भी स्वकर्मविवर द्वारपाल ने मुझ पर विशेष कृपा की है, जो मुझे इस महल के भीतर ले आया है।

महाराज सुस्थित महल की सातवीं मंजिल पर विराजमान थे। वे इतने समर्थ थे कि महल की सातवीं मंजिल पर बैठे-बैठे ही नगर की समस्त गतिविधियों की जानकारी रखते थे। अतः निष्पुण्यक का प्रवेश, उसका चिन्तन और उसकी दीन दशा का सम्पूर्ण हाल वे तुरन्त जान गये। जिस समय निष्पुण्यक ने महल में प्रवेश किया था, महाराज सुस्थित की दृष्टि उसी समय उस पर पड़ गई थी, और उस दृष्टिपात मात्र से ही निष्पुण्यक के अनेकों पाप धुल गये थे।

राजा सुस्थित की भोजनशाला के व्यवस्थापक धर्मबोधकर नामक एक मंत्रीविशेष ने जब दीन-हीन, रोगी-दुर्बल निष्पुण्यक को खड़े देखा तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगा कि जिस पर सुस्थित राजा की दृष्टि पड़ जाती है, वह तुरन्त ही त्रिलोकी का राजा हो जाता है और उसके रोग-शोक, भय सब समूल नष्ट हो जाते हैं। लेकिन यह बेचारा तो अभी तक रोगों का घर बना हुआ है। दूसरा आश्चर्य तो इस बात का है कि इस अभागे, रंक, दरिद्री निष्पुण्यक पर सुस्थित राजा की दृष्टि क्यों गिरी? हाँ, अब समझ में आया। वह यह कि इसे स्वकर्मविवर द्वारपाल यहाँ तक लाया है। स्वकर्मविवर द्वारपाल की परख बहुत सूक्ष्म है। वह अधिकारी जीव को ही इस महल में लाता है। थोड़ी देर में इस व्यक्ति में कुछ परिवर्तन भी होता दीख रहा है। पहले यह नेत्र-पीड़ा से छटपटा रहा था, अब इसके नेत्र महल के दृश्य देखने में समर्थ हो गये हैं। इसी हर्ष का

रोमांच भी हो गया है। निश्चय ही इसका भविष्य उज्ज्वल है। इसके सम्पूर्ण अभाव मिट जायेंगे।

ऐसा सोचते हुए धर्मबोधकर मंत्री निष्पुण्यक के पास आया और उसे आग्रहपूर्वक स्वादिष्ट और स्वास्थ्यकर भोजन लेने का आग्रह-अनुरोध करने लगा। धर्मबोधकर मंत्री को पास आया देखकर और उसकी वाणी सुनते ही, वे सब नटखट बालक तुरन्त भाग गये, जो निष्पुण्यक को परेशान करने के उद्देश्य से उसके पास ही खड़े-खड़े टुगुर-मुगुर निहार रहे थे। धर्मबोधकर मंत्री ने निष्पुण्यक को भिक्षुकों के लिए पहले से नियत स्थान पर बैठा दिया और अपने सेवकों को आज्ञा दी कि वे निष्पुण्यक को भोजन परोसें। □

[२] **दिव्यौषधों का प्रभाव**

सद्धर्माचार्य की वात्सल्य और करुणामयी दया की साकार प्रतिमा की तरह धर्मबोधकर की एक पुत्री थी और उसका नाम था तद्दया। पिता का आदेश सुनते ही वह निष्पुण्यक दरिद्री के लिए महाकल्याणक खीर ले आई। वह खीर आधि-व्याधि को नष्ट करके मन, बुद्धि और देह को स्वस्थ सुन्दर बनाने वाली थी। लेकिन अभागे निष्पुण्यक को जूठन वाले अपने भोजन पर ऐसी तुच्छ प्रीति थी कि वह शंकित होकर सोचने लगा—ऐसा सुन्दर भोजन यह बाला मुझे क्यों दे रही है? अवश्य इसमें इसका कोई स्वार्थ होगा। मेरे मिट्टी के भिक्षा पात्र में मेरा जो भोजन है, मेरे लिए तो यही हितकर है। इसे छोड़कर मैं अमृत भी लेना नहीं चाहता। अतः या तो मैं झटपट भोजन करके अपना भिक्षा पात्र खाली कर दूं। या यहाँ से भाग जाऊँ। या इन सबसे कह दूं कि मुझे आपके भोजन की आवश्यकता नहीं है, मेरे पास तो पहले ही भोजन विद्यमान है।

इस प्रकार रौद्र ध्यान करते-करते निष्पुण्यक की दोनों आँखें मुँद गईं और वह चेतनाहीन-सा हो गया। तद्दया भोजन लेने का आग्रह करते-करते थक गई, पर निष्पुण्यक ने उसकी ओर देखा तक नहीं। उसकी यह अनहोनी दशा धर्मबोधकर ने भी देखी तो उसने सोचा कि पहले इसे अपने यहाँ की तीन दिव्य औषधों से नीरोग करना चाहिए। तभी इसका मोह-भंग होगा और तभी इसकी रुचि अपने कल्याण की ओर होगी। अभी तो इसकी प्रीति

अपने अकल्याणकारी भोजन पर ही है। अज्ञान अथवा मोह से ग्रस्त मनुष्य सदा ही अपने हित की बातों से दूर भागता है और विनाशकारी वस्तुओं से चिपका रहता है।

धर्मबोधकर मंत्री के पास तीन दिव्य औषधें थीं—

(१) विमलालोक अंजन, जो नेत्रों की समस्त पीड़ा और रोगों को नष्ट कर देता था। इतना ही नहीं, उस अंजन के विधिवत् प्रयोग से सूक्ष्म और परदे के पीछे छिपी भूत-भविष्य की वस्तुएँ भी दिखाई देने लगती थीं।

(२) दूसरी दिव्य औषध तत्त्वप्रीतिकर तीर्थ जल था, जो सब दैहिक रोगों को नष्ट कर देता था और मूर्च्छा अथवा उन्माद रोग के लिए तो विशेष गुणकारी था।

(३) तीसरी दिव्य औषध महाकल्याणक खीर थी। यह तृप्तिकर भोजन तो था ही, सब रोगहर औषध भी था। यह भोजन बल-बुद्धि-वर्द्धक, पराक्रम को बढ़ाने वाला, अजर-अमर करने वाला था। 'आम के आम गुठलियों के दाम' की तरह यह भोजन विश्व में सर्वश्रेष्ठ भोजन और सर्वरोगहर औषध थी।

धर्मबोधकर ने अपना दिव्य अंजन निष्पुण्यक की आँखों में लगा दिया। उसके लगते ही निष्पुण्यक की चेतना वापस आ गई और उसके सभी नेत्ररोग नष्ट हो गये। लेकिन अपने भिक्षा पात्र के भोजन की उसकी ममता ज्यों की त्यों थी। कोई मेरा भोजन छीन न ले, यह सोचकर वह वहाँ से भाग जाना चाहता था।

नेत्रों में अपने अंजन का प्रभाव देख धर्मबोधकर ने निष्पुण्यक से तत्त्वप्रीतिकर जल पीने का अनुरोध भी किया। लेकिन शंकालु निष्पुण्यक उस दिव्य जल को पीना नहीं चाहता था, तब धर्मबोधकर ने बलपूर्वक कुछ जल उसे पिला ही दिया। ज्यों ही वह जल उसके पेट में गया, वह लगभग स्वस्थ हो गया। स्वस्थ होते ही निष्पुण्यक की विचार-शक्ति भी निर्मल हुई और वह सोचने लगा कि मैंने व्यर्थ ही परमहितकारी धर्मबोधकर को ठग समझा था। पर उसने तो मेरा बहुत ही कल्याण किया है। वस्तुतः ये महान हैं, अद्भुत हैं। □

[४] अहित पर प्रीति की पराकाष्ठा

विमलालोक अंजन और तत्त्वप्रीतिकर जल का अलभ्य-अमोघ और

चमत्कारी प्रभाव देखकर भी निष्पुण्यक तद्दया द्वारा दी जा रही महाकल्याणक खीर खाने को हरगिज तैयार नहीं था। उसकी प्रीति अब भी अपने भिक्षा पात्र में जूठे भोजन पर इतनी अधिक थी कि स्वर्ग का राज्य पाकर भी वह उस भोजन को छोड़ना नहीं चाहता था। निष्पुण्यक की अहित पर प्रीति की पराकाष्ठा को देखकर धर्मबोधकर उसे समझाने लगा—

"अरे मूढ़, तू न केवल पुण्यहीन है, बल्कि अभागा भी है। तू अमृतमय परमान्न की उपेक्षा करके विष के समान अपने भोजन को ही ग्रहण करने करने का हठ क्यों कर रहा है?

"हे भद्र! देख, इस राजभवन के बाहर अनेकों पापी, दुखी और अभागे व्यक्ति भरे पड़े हैं। हम उनसे बात भी करना नहीं चाहते। पर तुझे स्वकर्मविवर द्वारपाल यहां ले आया, महाराज सुस्थित की भी तुझ पर कृपादृष्टि हुई और तुझे भी इस भवन को देखकर आनन्द हुआ, इसीलिए मैं और मेरी पुत्री तद्दया तेरा इतना सम्मान कर रहे हैं और आग्रहपूर्वक तुझे महाकल्याणक भोजन देना चाहते हैं, क्योंकि अब तक तू बहुत भटक लिया, अब हम तेरा कल्याण चाहते हैं। यहां आकर भी तू पहले जैसा ही निष्पुण्यक बना रहे तो यह इस राजमहल की विशेषता के विपरीत होगा। यहां आने वाला निष्पुण्यक तो निश्चय ही सपुण्यक बन जाता है।"

धर्मबोधकर का उपदेश सुनकर निष्पुण्यक को कुछ-कुछ विश्वास हुआ। महाकल्याणक भोजन में उसकी रुचि हुई, पर अपने तुच्छ विष-तुल्य भोजन की प्रीति कम नहीं हुई। अतः वह द्वन्द्वात्मक स्थिति में आकर विनयपूर्वक धर्मबोधकर से इस प्रकार कहने लगा—

"आपके भोजन के बारे में मेरी कोई जानकारी नहीं है। फिर भी जैसा आप कहते हैं, उस पर मुझे विश्वास है। लेकिन मैं अपने भोजन को भी त्यागना नहीं चाहता। अपना भोजन मुझे प्राणों से भी अधिक प्यारा है। मैंने यह बड़े परिश्रम से प्राप्त किया है। इसी से मेरा निर्वाह भी होगा। अतः मैं अपने भोजन को अपने पास रखते हुए ही आपका परम भोजन ग्रहण कर सकता हूँ; अन्यथा नहीं।"

इस पर धर्मबोधकर ने निष्पुण्यक को पुनः समझाया—

"मेरा आग्रह महाकल्याणक भोजन को ग्रहण करने की अपेक्षा तेरे अपने भोजन को त्यागने पर अधिक है, क्योंकि दोनों भोजन—मेरा परमान्न और अपना विषान्न करते रहने से तू कभी पूर्णतः नीरोग नहीं होगा। जो

भोजन तेरे पास है, यह तूने बड़े परिश्रम से प्राप्त किया है, यह बात मैं मानता हूँ, लेकिन यह भी तो देख कि इसके सेवन से तेरा शरीर जो, धर्म-मन्दिर था—रोग-मन्दिर बना हुआ है। भविष्य में भी इससे तुझे नाना दुख होंगे। तेरा अपना भोजन जितना तुझे प्रिय है, उतना ही अधिक यह संताप-कारी भी है। अतः इसे त्याग देना ही उचित—सर्वथा उचित है। भविष्य में इस भोजन से तेरा निर्वाह होगा, तेरी यह धारणा नितान्त भ्रान्त है। वस्तुतः यह तेरा सब विधि भविष्य बिगाड़ देगा।

"तुझे मेरे परमान्न की जानकारी नहीं है, सो मैं बताता हूँ। मेरी दो औषधों अंजन और जल का प्रभाव तो तू देख ही चुका है। इसी तरह मेरे परमान्न का प्रभाव भी तू तभी जानेगा, जब इसे खायेगा। एक साथ पूरा भोजन तू मत कर। पर मेरा इतना आग्रह मान ले कि मैं थोड़ा-थोड़ा अपना परमान्न तुझे दिया करूंगा। धीरे-धीरे इसके सेवन से तू इसके अलभ्य गुणों को भी जान जाएगा।"

इतनी बातें सुनकर भी निष्पुण्यक पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उसने धर्मबोधकर से स्पष्ट कहा—

"कुछ भी हो, अपने भोजन को त्यागने की कल्पना मात्र से ही मैं पागल हो जाऊँगा। अतः आप मेरा भोजन मेरे पास बना रहने दें और अपना भोजन थोड़ा-थोड़ा करके मुझे देते रहें।"

धर्मबोधकर ने निष्पुण्यक की शर्त लाचार होकर इस विचार से स्वीकार करली कि मेरा परमान्न जब इसके मुँह लग जाएगा तो अपना भोजन स्वतः ही त्याग देगा। पिता की इच्छा जान पुत्री तद्दया ने निष्पुण्यक को महाकल्याणक खीर का भोजन दिया। भोजन करते ही निष्पुण्यक की भूख मिट गई और वह नीरोग भी हो गया। इस प्रकार दिव्य अंजन, दिव्य जल और दिव्य भोजन का अनुभूत प्रभाव देखकर निष्पुण्यक धर्मबोधकर से बहुत प्रेम करने लग गया। इतना ही नहीं, उसने धर्मबोधकर से यह भी कहा कि अब तक मैं अनाथ था, मेरा कोई नहीं था। अब मैं सनाथ हो गया। अब एकमात्र आप ही मेरे नाथ हैं। अब तक मैं वस्तुतः अभागा ही था, पर अब नहीं हूँ।

इस पर धर्मबोधकर कहने लगा—

"मेरे अलावा तेरा कोई नाथ नहीं है, तेरा ऐसा मानना भी ठीक नहीं है। सभी अनाथों के नाथ तो महाराज सुस्थित ही हैं। वे तेरे-मेरे सभी के नाथ हैं। राजा सुस्थित यद्यपि समस्त चराचर के नाथ हैं, फिर

भी इस राजमहल में रहने वालों पर तो वे विशेष कृपा करते हैं। अतः तू एकमात्र सुस्थित राजा को ही अपना नाथ मान।

"जो भी व्यक्ति राजा सुस्थित को अपना नाथ मान लेता है अथवा उनका दास बन जाता है वह व्यक्ति कालान्तर में इस राजमहल में रहने वाले सभी प्राणियों का नाथ बन जाता है। पापी दुरात्मा तो राजा सुस्थित नाम तक नहीं जानते। जो व्यक्ति आज तुम्हें इस राजमहल में दिखाई दे रहे हैं, तुम्हारी तरह इनका प्रवेश भी स्वकर्मविवर नामक द्वारपाल ने कराया था। इस राजमहल में प्रवेश करने वाले सभी व्यक्ति शुरू-शुरू में तुम्हारी तरह मोहग्रस्त होते हैं। लेकिन जब मैं उन्हें यथार्थ बातें समझाता हूँ तो वे अपना कल्याण करने लगते हैं। इसलिए तू भी सर्व संशयों को त्याग कर सुखपूर्वक इस राजमहालय में निवास कर। यहीं तीनों दिव्य औषधों का सेवन भी तू नित्य करता रह। मेरी पुत्री तद्दया तुझे नित्य तीनों औषधें देती रहेगी। राजा सुस्थित की सेवा करते-करते एक दिन तू स्वयं राजा बन जायगा।"

धर्मबोधकर की यथार्थ और हितकारी बातें सुनकर भी निष्पुण्यक ने अपने दुराग्रह को दुहराया—

"हे महात्मन्! आप जो भी कहेंगे, मैं करूँगा। लेकिन अपने लाये हुए भोजन का कभी भी त्याग नहीं करूँगा।"

कुछ सोचने के बाद धर्मबोधकर ने निष्पुण्यक से कहा कि तू अपना भोजन भी करता रह और यहाँ की तीनों औषधों का सेवन भी कर। पहले मैंने तुझसे तेरा अपना भोजन छोड़ने को कहा था, वह तेरे हित के लिए ही कहा था अब तू यदि नहीं छोड़ना चाहता है तो मत छोड़। लेकिन मेरी विशेष बात तो महाराज सुस्थित की सेवा करने की है। उसके बारे में तुझे अच्छी तरह समझ लेना चाहिए।

इस पर निष्पुण्यक ने कहा कि अपने भोजन पर अतिशय प्रीति होने के कारण मैं आपकी बातें सुनकर भी नहीं सुन पाया, क्योंकि मेरा मन शंकाशील था और मैं यहाँ से भाग जाना चाहता था। लेकिन जब आपने मेरा अपना कुत्सित भोजन न छोड़ने का आग्रह मान लिया तो मैं अब पुनः स्वस्थ चित्त होकर आपकी बातें सुनने-समझने के लिए तैयार हूँ। अतः आप मुझे मेरे हित की बातें पुनः समझाइए। □

[५] रोगी प्रकार : सुसाध्य, कष्टसाध्य और असाध्य

धर्मबोधकर ने निष्पुण्यक को पहले कही हुई बातें पुनः समझाई और

कहा कि इस राजमहल में वे ही रोगी आ पाते हैं, जो सरलता से या कठिनाई से नीरोग हो सकते हैं। असाध्य रोगी तो भवन में प्रवेश ही नहीं पा सकता। स्वकर्मविवर द्वारपाल अपनी सूक्ष्म पारखी दृष्टि से पहले यह देख लेता है कि इस व्यक्ति पर हमारे यहाँ की औषधों का प्रभाव हो सकता है या नहीं। जब वह जान लेता है कि प्रभाव हो सकता है, तभी वह व्यक्ति को भीतर लाता है। किसी तरह यदि अनधिकारी व्यक्ति आ भी जाता है तो पहले तो वह बलपूर्वक देने पर भी औषधें लेता ही नहीं। यदि जबरदस्ती उसके कंठ में डाल भी दी जाएँ तो उस पर अनर्थकारी प्रभाव होता है। तब महाराज सुस्थित जान जाते हैं कि इसे स्वकर्म द्वारपाल नहीं लाया और दूसरा द्वारपाल ले आया है। ऐसे दुरात्मा को बाहर निकाल दिया जाता है।

यहाँ आने वाले जिस व्यक्ति को इस राजमहल की वस्तुओं, व्यक्तियों और वातावरण से अनुराग हो जाता है, वही व्यक्ति देर-सबेर ठीक होने वाला होता है। धर्मबोधकर ने आगे बताया कि सुस्थित महाराज की आज्ञा से मैं यहाँ आने वाले व्यक्तियों को तीनों औषधों का सेवन कराता हूँ और यह भी निश्चय जान लेता हूँ कि इसे स्वकर्मविवर द्वारपाल लाया है, इसलिए यह रोगी ठीक अवश्य हो जायगा। यह बात मैं स्वयं देखता हूँ कि यह रोगी सुसाध्य रोगी है या दुस्साध्य। तुझे अपने कुत्सित भोजन पर अतिशय प्रीति है। औषधों का प्रयोग भी तूने बड़े आग्रह से किया है; फिर भी उनका प्रभाव तो तुम पर हुआ ही है। इस सबसे मैं यह जान गया हूँ कि तू कष्टसाध्य अथवा दुस्साध्य रोगी है। तुझे पूर्णतः नीरोग होने में पर्याप्त समय लगेगा। लेकिन तू ठीक हो जायगा। अतः मेरी बात को परम हितकारी जानकर तू महाराज सुस्थित की सेवा अवश्य कर। उन्हीं की सेवा से तेरा कल्याण होगा।

अब निष्पुण्यक राजभवन में रहने लगा। अपना भिक्षा पात्र उसने यत्नपूर्वक सम्हाल कर रख दिया और उसकी रक्षा करने लगा। धर्मबोधकर मंत्री की पुत्री तद्दया तीनों औषधें—विमलालोक अंजन, तत्त्वप्रीतिकर जल और महाकल्याणक खीर नित्य देने लगी। लेकिन मिथ्या आसक्ति के कारण निष्पुण्यक अपना कुभोजन अधिक खा लेता था। अतः उस पर दिव्य औषधों का जैसा प्रभाव होना चाहिए था, वैसा नहीं हो रहा था।

निष्पुण्यक महाकल्याणक खीर को थोड़ी मात्रा में खाता था और बची हुई खीर अपने भिक्षापात्र में रखे कुभोजन में मिला देता। इससे उसका

कुभोजन कभी समाप्त नहीं हो पा रहा था। और कुभोजन के मिलने पर सुभोजन भी कुभोजन ही बना रहता। यद्यपि तद्दया उसे बहुत समझाती; फिर भी निष्पुण्यक की रुचि औषधों में कम ही रहती और अपने बढ़े हुए भोजन को देखकर प्रसन्न बना रहता। औषधों के कम से कम प्रयोग पर भी निष्पुण्यक को काफी लाभ हो रहा था। यदि वह पूर्णतः अपने कुभोजन का त्याग कर औषधें लेता रहता तो जल्दी ही पूर्णतः नीरोग हो जाता। पर वह तो कष्टसाध्य और अर्द्धविश्वासी रोगी था। अतः उसके लिए असाधारण प्रयत्न आवश्यक था। इसलिए एक दिन तद्दया उसे समझाने लगी।

तद्दया ने कहा कि तेरे रोग मूलतः नष्ट नहीं हो रहे, इसका कारण तेरी कुभोजन पर आसक्ति है। तुझे बेचैनी न हो, इसलिए पिताजी ने कह दिया था कि तू अपना कुभोजन भी करता रह। पर तू तो दिन-पर-दिन अपने कुभोजन की मात्रा बढ़ा रहा है। मैं देख रही हूँ कि तू अपने रोगों के कष्ट से रो रहा है। अतः तू औषधों के सेवन में तत्परता दिखा और कुभोजन का त्याग कर। मैं सब इसलिए जोर देकर कह रही हूँ कि मैं तेरी परिचारिका (नर्स) हूँ। यदि तू नीरोग नहीं होगा तो पिता धर्मबोधकर मुझसे ही कहेंगे कि तूने अपने कर्तव्य में शिथिलता दिखाई।

तद्दया के इस उद्बोधन को सुनकर निष्पुण्यक बोला—

"आपकी बात सही है। अतिशय आसक्ति के कारण मैं स्वयं तो कुभोजन को सर्वथा छोड़ने में असमर्थ हूँ। अतः जब भी मैं कुभोजन करूँ, आप मुझे बार-बार रोकें। आपके बार-बार वर्जित और निषिद्ध करने से मेरा कुपथ्य सेवन छूट जाएगा।"

अब तद्दया निष्पुण्यक को बार-बार टोक कर कुभोजन से रोकने लगी। निष्पुण्यक धीरे-धीरे अपने कुभोजन को कम करने लगा। परिणामस्वरूप उस पर औषधों का अनुकूल प्रभाव पड़ने लगा और उसके रोग कम होने लगे। लेकिन कभी-कभी तद्दया की अनुपस्थिति में निष्पुण्यक कुपथ्य का सेवन कर लेता तो उसकी पीड़ा बढ़ जाती। सच बात तो यह है कि निष्पुण्यक की तरह आज भी ऐसे लोग अत्यधिक हैं, जिन्हें रोगी रहना और कष्ट भोगते रहना स्वीकार है, पर पथ्य का सेवन करना स्वीकार नहीं है।

धर्मबोधकर ने अपनी पुत्री तद्दया की नियुक्ति राजभवन में रह रहे अनेक प्राणियों के लिए की थी। उसके द्वारा देखभाल करने के लिए अकेला

निष्पुण्यक ही नहीं था, जो वह उसके पास ही बैठी रहती। अतः अनेक बार निष्पुण्यक को तद्दया की अनुपस्थिति में रहकर अपना कुपथ्य सेवन करना पड़ता। उसने अपनी मजबूरी धर्मबोधकर से कही कि तद्दया के रहने पर तो मैं कुपथ्य अथवा कुपथ्य का भोजन नहीं करता, लेकिन उसके पीछे रहा नहीं जाता, अतः कर लेता हूँ।

इस पर धर्मबोधकर ने कहा कि तद्दया हर समय तुम्हारे पास नहीं रह सकती और तुम्हारे लिए भी यह व्यवस्था करनी ही है कि तुम कुपथ्य का सेवन न करो। अतः मैं तुम्हारे लिए एक ऐसी सेविका की नियुक्ति कर रहा हूँ, जो हर समय तुम्हारे पास ही रहेगी और तुम्हें कुपथ्य सेवन से निश्चित रूप से रोके रहेगी। □

[६] सद्बुद्धि नामक सेविका की नियुक्ति

धर्मबोधकर ने निष्पुण्यक से कहा कि सद्बुद्धि नामक दासी बहुत समझदार और जानकार है। वह भले-बुरे का सही निर्णय कर लेती है। क्या उचित है, क्या अनुचित, क्या करना चाहिए, क्या नहीं—यह सब वह अच्छी तरह जानती है। सद्बुद्धि के पास कोई विशेष काम नहीं है, अतः वह हर क्षण-हर पल तेरे साथ ही रहेगी। लेकिन यदि तू नीरोग होकर पीड़ामुक्त होना चाहता है तो तुझे वही करना चाहिए जो सद्बुद्धि नामक दासी करने को कहे। जो व्यक्ति सद्बुद्धि की बात मानता रहता है उसका निश्चित ही कल्याण होता है और उस पर महाराज सुस्थित की अविरल कृपा बनी रहती है, उस पर मैं भी प्रसन्न रहता हूँ तथा इस भवन के सभी लोग प्रसन्न रहते हैं। इसके विपरीत यदि तू सद्बुद्धि की बात नहीं मानेगा तो महाराज सुस्थित सहित सभी तुझ पर अप्रसन्न रहेंगे। सद्बुद्धि तुझे कुपथ्य सेवन से रोकती रहेगी। कभी-कभी तद्दया भी तेरे पास आयेगी और मैं भी आता रहूँगा।

निष्पुण्यक ने धर्मबोधकर की बात अच्छी तरह समझ ली और स्वीकार किया कि आप सद्बुद्धि को मेरे पास भेज दीजिए। जैसा वह कहेगी, मैं वैसा ही करूँगा।

सद्बुद्धि के सदा-सर्वथा साथ रहने से निष्पुण्यक में परिवर्तन आने लगा। कुभोजन से उसकी प्रीति कम होने लगी। पूर्व आसक्ति के कारण

अब वह कभी-कभी ही कुभोजन, वह भी बहुत थोड़ी मात्रा में करता। इसका परिणाम यह हुआ कि उसकी पीड़ा और कष्ट कम होने लगे। रोग दूर होते गए। निष्पुण्यक अब विशेष सुख और आनंद की अनुभूति करने लगा। अब उसकी रुचि तीनों दिव्यौषधों के प्रति इतनी बढ़ गई कि प्रसन्नतापूर्वक सद्बुद्धि के आग्रह के बिना ही लेने लगा। अपने जीवन में चमत्कारी परिवर्तन देखकर एक दिन निष्पुण्यक ने सद्बुद्धि से कहा—

"हे भद्रे ! कभी-कभी मैं अपना कुभोजन अब भी ले लेता हूँ। फिर भी मेरे रोग दूर क्यों हो गये हैं ? क्या कारण है कि मैं विशेष सुख का अनुभव कर रहा हूँ ?"

सुबुद्धि बोली—

"कुभोजन लेने पर भी उसका प्रभाव तुझ पर इसलिए नहीं हो रहा कि तेरी प्रीति उस पर अब नहीं रही है। कुपथ्य पर प्रीति घट जाने के कारण उसका सेवन करने पर भी तुझे हानि नहीं हो रही और दिव्यौषधों के प्रति प्रीति बढ़ जाने के कारण ही तुझे लाभ हो रहा है।"

"फिर तो मैं अब कुभोजन का सर्वथा त्याग कर दूँगा।" निष्पुण्यक बोला—"आप मेरा भिक्षा पात्र लेकर उसका कुभोजन कहीं भी फेंक दीजिए।"

"अभी ऐसा मत करो।" सद्बुद्धि बोली—"जब तुम्हारे मन में कुभोजन के प्रति पूर्ण विराग हो जाए तभी उसका त्याग ठीक होगा। यदि तुम में किंचिन्मात्र भी कुभोजन के प्रति आसक्ति रही और तुमने उसका सर्वथा त्याग कर दिया तो कालान्तर में तुम पुनः कुभोजन के लिए व्याकुल हो उठोगे और उसे ग्रहण भी कर लोगे। अतः पहले तुम्हारी कुभोजन के प्रति इच्छा ही समाप्त हो जानी चाहिए। दूसरी बात यह कि कुभोजन का सर्वथा त्याग करने से पूर्व तुम्हें धर्मबोधकर से भी परामर्श कर लेना चाहिए।"

अब निष्पुण्यक धर्मबोधकर के पास गया और सद्बुद्धि से हुई बातचीत से अवगत कराया। धर्मबोधकर ने उससे कहा कि तुम्हारा विचार बहुत उत्तम है। जो काम मैं और तद्दया नहीं कर सके, वह सद्बुद्धि ने कर दिया। अतः तुम सद्बुद्धि का साथ कभी मत छोड़ना। कुभोजन का त्याग तभी उत्तम है, जब उसके प्रति तुम्हारी पूर्ण विरक्ति हो जाए, जिससे भविष्य में कभी उसका स्मरण तक न हो।

निष्पुण्यक ने धर्मबोधकर की बात मान ली। उसकी रुचि अब कुभोजन से हट चुकी थी। फिर भी एक दिन उसने महाकल्याणक भोजन भर पेट लेने के बाद खेल-खेल में थोड़ा अपना कुभोजन भी कर लिया। लेकिन इससे उसे ग्लानि हुई। सद्बुद्धि की उपस्थिति में उसने कुभोजन किया था, इसलिए उसका दूषित प्रभाव भी दृष्टिगोचर होने लगा। कुभोजन के दूषित प्रभाव को देखकर निष्पुण्यक को उससे एकदम विरक्ति, उपेक्षा और घृणा हो गई। उसने तुरन्त निश्चय किया कि राज्य पाने के बाद पिछले दारिद्र्य को कौन चाहता है? कोई भी नहीं। महाकल्याणक-जैसे तृप्तिकर, स्वास्थ्यकर भोजन को खाने के बाद कुभोजन खाने का मेरा भी अब मन नहीं रहा। अब मैं स्वेच्छा से ही इसका त्याग करता हूँ। विचारपूर्वक त्याग के कारण अब मुझे कभी अपने त्याग-निश्चय में परिवर्तन नहीं करना पड़ेगा।

निष्पुण्यक ने अपने शुभ संकल्प की बात सद्बुद्धि से कही। सद्बुद्धि ने उसका भिक्षापात्र लेकर उसका कुभोजन फेंक दिया और उसे शुद्ध जल से धोकर उसमें महाकल्याणक भोजन भर दिया।

धर्मबोधकर, तद्दया ने निष्पुण्यक के शुभ संकल्प की सराहना की। राजभवन के सभी प्राणी अब निष्पुण्यक को अपने साथ ही रखने लगे। सर्वथा नीरोग रहकर निष्पुण्यक अब आनंद का जीवन जीने लगा। कभी-कभार कोई रोग उभर भी आता तो वह तुरन्त ठीक हो जाता। अब निष्पुण्यक के जीवन में सुख का सागर ठाठें मार रहा था। □

[७] नाम-परिवर्तन : निष्पुण्यक सपुण्यक बना

निष्पुण्यक का जीवन-परिवर्तन देखकर राजमहल के सभी लोग अत्यधिक प्रसन्न थे। एक बार सबने मिलकर कहा—

निष्पुण्यक पहले महारोगी था। दारिद्र्य, अभाव, अतृप्ति, असंतोष, लोभ, मोह आदि से ग्रस्त था। रोगजनित पीड़ा से छटपटाता रहता था और करुण क्रन्दन करता रहता था। लेकिन इसे देखकर कौन कहेगा कि यह वही निष्पुण्यक है? इसकी देह हृष्ट-पुष्ट और कान्तिमयी है। अब रोग का लेश भी नहीं रहा। महाराज सुस्थित की इस पर कृपा है। धर्मबोधकर और तद्दया इस पर सदा प्रसन्न रहते हैं। सद्बुद्धि कभी

इसका साथ नहीं छोड़ती। अतः इसे अब निष्पुण्यक कहना विरोधाचार कहलायेगा। आज से इसका नाम अब सपुण्यक हुआ।

निष्पुण्यक अब सपुण्यक नामधारी हो गया। अब सभी उसे सपुण्यक कहने लगे। निष्पुण्यक की आगे की कहानी कहने-बताने के लिए अब हम भी उसे सपुण्यक ही कहेंगे।

एक दिन सपुण्यक ने तद्दया से पूछा कि मैं तो निष्पुण्यक—पुण्यों से हीन था। फिर मुझे तीनों दिव्यौषधों की प्राप्ति कैसे हो गई ?

इस पर तद्दया बताने लगी कि सपुण्यक ! जो जीव जन्म से दरिद्री और अभागा होता है, वह तो चक्रवर्ती हो ही नहीं सकता और जिसने पहले कभी कुछ दिया नहीं है, वह कभी कुछ पा ही नहीं सकता। लेने-देने, और आदान-प्रदान का नियम तो अटल और शाश्वत नियम है। तुमने पूर्वभव में किसी को तीनों दिव्यौषधें दी थीं। इसीलिए तुमको इस जन्म में मिली हैं।

यह सुनकर सपुण्यक बहुत प्रसन्न हुआ। उसने तद्दया से कहा कि अब मैं प्रचुर मात्रा में इन औषधों का वितरण करूँगा, जिससे ये मुझे फिर भरपूर मिल सकें।

सपुण्यक तीनों औषधों को लेकर प्रतीक्षा करता कि कोई उससे माँगे। लेकिन राजमहल के लोगों को तो तीनों औषधें सहज ही प्राप्त थीं। तब कोई उससे क्यों लेता ? अतः निराश सपुण्यक तद्दया और सद्बुद्धि के परामर्श से महल के बाहर औषधें देने गया तो किसी ने नहीं ली और उल्टे उसका मजाक उड़ाने लगे कि कल का भिखारी आज दाता बना घूमता है। बहुत निराश होकर सपुण्यक पुनः राजमहल में लौट आया।

सपुण्यक वस्तुतः अपने को पुण्यवान समझ कर औषध दान देने की इच्छा करता था। धर्मबोधकर और तद्दया द्वारा प्रशंसा होने के कारण उसे अहंकार हो गया था कि मैं अब सभी का कल्याण करने में समर्थ हूँ। एक दिन सपुण्यक ने सदा साथ रहने वाली सद्बुद्धि से ही पूछा कि क्या करूँ ? कोई भी मेरे पास औषध लेने नहीं आता। सद्बुद्धि ने परामर्श दिया कि तुम महल से बाहर जाकर घोषणा करो कि जिसे औषध की आवश्यकता हो मुझसे ले जाए। सपुण्यक ऐसा ही करने लगा। वह गली-गली, घर-घर जाकर चिल्ला-चिल्लाकर कहता कि रोगी जन मुझसे औषधें ले लें। लेकिन स्थिति ज्यों की त्यों रही। लोग उसकी उपेक्षा करते, कुछ हँसी उड़ाते और

कुछ भर्त्सना भी करते। हाँ, कोई भिखारी ही उससे औषध ले लेता। लेकिन सपुण्यक तो यह चाहता था कि सभी लोग उससे औषध लें। जब उसकी चाह पूरी नहीं हुई तो उसने पुनः सद्बुद्धि से पूछा। सद्बुद्धि भी एकाएक कुछ भी नहीं बता सकी। उसने महाध्यान में प्रवेश किया और पूरी वस्तुस्थिति जानने के बाद सपुण्यक को समझाया—

"सपुण्यक! जहाँ से अधिक लोग आते-जाते हैं, तू उस राजमार्ग पर औषधें रख दे और स्वयं अलग बैठ जा। जो लोग तेरे पहले के दारिद्र्य के कारण तेरे पास औषध लेने नहीं आते थे, उन्हीं में कुछ जरूरतमन्द अवश्य होंगे। औषधों के पास किसी को बैठा न देखकर वे औषधें लेने उनके पास अपने आप—बिना बुलाये ही आयेंगे। इनमें से कोई एक पुण्यवान तेरी औषधें ले जाए तो तेरी इच्छा पूरी हो जाएगी। यदि कोई ज्ञानी या तपस्वी तेरी औषधें ले जाएगा तो तेरा कल्याण ही हो जाएगा।"

सपुण्यक ने वही किया, जो सद्बुद्धि ने उसे बताया। जिस प्रकार सपुण्यक का कल्याण हुआ, उसी प्रकार अन्य सभी का कल्याण होगा। लेकिन शर्त यही है कि वह भी प्रीति-प्रतीति, विचार और सद्बुद्धि के परामर्श से औषधें ग्रहण करे। ऐसा व्यक्ति सुस्थित राजा का कृपा पात्र होगा और धर्मबोधकर तथा तद्दया सदा उसका कल्याण करते रहेंगे। ऐसा व्यक्ति सपुण्यक की तरह अखण्ड सुख का अधिकारी और भोक्ता हो जाएगा।

निष्पुण्यक—सपुण्यक की कथा हमारी अपनी ही कथा है। अब हम इस कथा का अप्रस्तुत रूपक-रहस्य भी समझाते हैं, जिससे आपकी भेंट स्वकर्म द्वारपाल से हो जाए। □

रूपक-रहस्य : कथा-दर्शन

[**नगर** : यह जगत अदृष्टमूलपर्यन्त नगर है। नगर के बाजार, जन्मान्तरों की शृंखला। किराणा आदि, नाना प्रकार के सुख-दुःख। किराणा आदि वस्तुओं का मूल्य, पाप-पुण्य। शरारती नटखट बालक जो निष्पुण्यक को परेशान करते थे, वे सब क्रोध, मान, माया, लोभ कषायों का कोलाहल। नगर का दुर्ग महामोह। दुर्ग के चारों ओर की खाइयाँ तृष्णाएँ, उनमें भरा जल, विषय-वासना। इस प्रकार अदृष्टमूल-पर्यन्त नगर की सब विशेषताएँ, इसी संसार की विशेषताएँ हैं।

निष्पुण्यक : सर्वज्ञशासन अथवा सद्धर्म प्राप्त होने से पूर्व जीव निष्पुण्यक रूप है। निष्पुण्यक पुण्यहीन था अतः नाम की सार्थकता। वह महोदर था, इसी प्रकार यह जीव भी विषय-वासना रूपी भोजन से कभी तृप्त नहीं होता। जैसे निष्पुण्यक की कुभोजन पर अतिशय प्रीति थी, वैसे ही संसारी जीव भी विषय-वासना को चाह कर भी छोड़ नहीं पाता। निष्पुण्यक दरिद्री—अभावग्रस्त था। इस जीव के पास भी सद्धर्म रूपी धन नहीं है, अतः दरिद्र है। निष्पुण्यक अनाथ था। सर्वज्ञ स्वामी के अभाव में जीव भी अनाथ है। इसी प्रकार निष्पुण्यक की अन्य विशेषताएँ भी जानें।

सुस्थित राजा : परमात्मा, जिनेश्वर ही सुस्थित राजा हैं।

द्वारपाल : राग, द्वेष, मोह आदि अनेक द्वारपाल हैं, जो जीव को सुस्थित राजा के राज महालय में प्रवेश नहीं करने देते। एक मात्र स्वकर्मविवर नामक द्वारपाल ही जीव को जिनेश्वर प्रणीत धर्ममहालय में ले जाता है। स्वयं के कर्मों का विच्छेदक ही स्वकर्मविवर द्वारपाल है। अतः राजभवन रूपी धर्मशासन के निकट पहुंचने पर स्वकर्मविवर द्वारपाल ही जीव को ग्रंथिभेद करवाकर सर्वज्ञ शासनमन्दिर में प्रवेश करवाता है।

राजभवन के मन्त्री : सर्वज्ञ शासन के उपाध्याय मन्त्री हैं। राजमन्दिर की वृद्धाएँ साध्वियाँ समझें। आचार्यों को धर्मबोधकर समझें।

औषधें : ज्ञान को विमलालोक अंजन जानें, दर्शन को तत्त्वप्रीतिकर जल समझें और महाकल्याणक खीर को चारित्र समझें। अपनी बुद्धि जो सद्मार्ग की ओर ले जाती है, वह सद्बुद्धि नाम की सेविका है, जो हर समय साथ रहती है। उसकी नियुक्ति धर्माचार्य ही करते हैं, वे ही सद्-असद् का विवेक जाग्रत कर सद्बुद्धि को जाग्रत कर देते हैं।

इस प्रकार यह सम्पूर्ण कथा जीव के मोक्षार्थी विकास क्रम का सांगोपांग रूपक ही है जो बड़ा अद्भुत और अनूठा है। कवि की कमनीय कल्पना का मूर्तरूप है।]

प्रथम आवर्त

मनुष्य-गति-वर्णन

[१] **एक था राजा, एक थी रानी**

बात बहुत पुरानी भी है और नई भी। बात क्या है, एक राजा-रानी की एक शाश्वत कहानी है। राजा और रानी—दोनों ही अमर हैं—कभी मरते नहीं। इन दोनों के नाटक, लीलाएँ और खेल-तमाशे निरन्तर चलते रहते हैं। इनकी लीलाएँ बड़ी अद्‌भुत और अनूठी हैं। अब आप यह जानने को भी उत्सुक होंगे कि राजा का नाम क्या है और वह कैसा है, कहाँ रहता है। राजा-रानी का परिचय देने से पहले हम आपको उनकी नगरी का परिचय देंगे, क्योंकि उनकी नगरी, जिसमें वे रहते हैं, भी बहुत अद्‌भुत और बहुत अनूठी है। कथानायक राजा-रानी की तरह उनकी नगरी भी शाश्वत-सनातन और अनादि है।

तो वह नगरी है 'मनुजगतिनगरी'। नाम कुछ लम्बा है तो उसके स्वरूप का वर्णन और भी अधिक विस्तृत है। संक्षेप में मनुजगति नगरी की विशेषताएँ हैं कि यह नगरी धर्म की उत्पत्ति भूमि है और अर्थ का मन्दिर भी है, काम भी यहीं जन्म लेता है। मोक्ष चाहने वाले इसी नगरी में बसेरा लेते हैं—यह नगरी मोक्ष का कारण है। मनुजगति नामक इस नगरी में पंचकल्याण आदि अवसरों पर महोत्सव होते रहते हैं।

भरतक्षेत्र आदि इस नगरी के बड़े-बड़े आवास क्षेत्र—मुहल्ले हैं। बड़े-बड़े पर्वत, सागर, नदियाँ, वन, मैदान इस नगरी में असंख्य हैं। इस नगरी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि मूल्य देकर आप शुभ-अशुभ वस्तुएँ खरीद सकते हैं। मुख्य रूप से इस नगरी की तीन बड़ी बस्तियाँ ये हैं—जम्बूद्वीप, धातकीखण्ड और पुष्कर-द्वीप। हजार मुख वाले शेष भी मनुजगति नगरी का वर्णन नहीं कर सकते। अतः संक्षेप में ही इस नगरी का वर्णन करने के बाद हम यहाँ के राजा-रानी के बारे में कुछ रोचक बातें बताते हैं। अन्त में इतना और बता दें कि इस नगरी में भाग्यशाली और भाग्यहीन—दो प्रकार के प्राणी रहते हैं। इस नगरी में रहते हुए भी जो मनुष्य धर्मसाधन द्वारा अपने को बंधन-मुक्त नहीं करते, वे नर भाग्यहीन

हैं। स्वर्ग, नरक और मर्त्य—इन तीन बड़े नगरों में केवल मर्त्य नगर या मनुजगति नगरी ही एक मात्र ऐसा स्थान है कि जहाँ रहकर मनुष्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—चारों पुरुषार्थों की साधना कर सकता है।

मनुजगति नगरी में कर्मपरिणाम नामक राजा राज्य करता है। इस राजा की मुख्य रानी या पटरानी है कालपरिणति।

कर्मपरिणाम राजा अमित बलशाली है। अर्थात् इसके बल की सीमा नहीं है। इसकी सामर्थ्य के सामने बड़े-बड़े शूर-वीरों ने नाक रगड़ी है। स्वर्ग-नरक, पाताल तीनों लोक इसके अधीन हैं। अपने बल के कारण राजा कर्मपरिणाम इन्द्रादि को तृणा के समान ही समझता है।

असीमित बल वाला होने के साथ-साथ राजा कर्मपरिणाम दया-रहित भी है। यह छोटे-बड़े किसी भी अपराध को क्षमा नहीं करता। नादानी, नासमझी, भूल-चूक या हँसी-मजाक में भी आप कोई अपराध कर बैठें तो यह दण्ड देने में किंचित् भी रियायत नहीं करता। दूसरी बात यह कि दण्ड देते समय यह भेद-भाव भी नहीं रखता। इसके पास दण्ड देने की अगणित विधियाँ, प्रकार और रूप हैं। रोग-शोक, भय, मृत्यु आदि इसके दण्डों के मोटे-मोटे रूप हैं। यह आपको पेड़ से गिराकर आपकी टाँग भी तोड़ सकता है, नदी में डुबाकर भी मार देता है और विशेष बात यह कि कभी बताकर दण्ड नहीं देता। जब यह आपको पेड़ से गिरायेगा तो आपसे यह नहीं कहेगा कि आपने अमुक अपराध किया था, इस कारण आपको पेड़ से गिराया है। आपको ही सोचना-समझना पड़ेगा कि हमने क्या अप-राध किया था, जो यह दण्ड मिला। तो कर्मपरिणाम ऐसा विचित्र शासक है।

राजा कर्मपरिणाम बड़ा कौतुकी है। नाटक करना, नाटक देखना, निर्देशन देना, अभिनय करना, अभिनय कराना इसे बहुत अच्छा आता है। इस कार्य में इसकी रानी कालपरिणति भी इसे बहुत सहयोग देती रहती है।

कर्मपरिणाम के प्रताप से अनेक बड़े-बड़े शूरमा नरक की पीड़ा भोगते हैं तो यह बड़ा प्रसन्न होता है, क्योंकि कौतुकी है। हँसाना-रुलाना; रुलाकर हँसाना और हँसाकर रुलाना इसके प्रिय कौतुक हैं। इसके आदेश से ही प्राणी शेर, कुत्ते, बिल्ली, गधे, कीड़े-मकोड़े आदि के रूप रखकर इसके सम्मुख खेल करते हैं। तीनों लोकों में ऐसा कोई शक्तिशाली नहीं है जो जीव की कर्मपरिणाम के कौतुक और पीड़ा देने से रक्षा कर सके। जो

नाटक राजा कर्मपरिणाम करवाते हैं, उस नाटक का नाम है संसार। संयोग-वियोग, हास्य, शृंगार सभी रस इस नाट्य में लबालब भरे रहते हैं। इस मंच के वाद्य भी लोकोत्तर हैं; जैसे राग-द्वेष नामक तबले हैं। इन्हें बजाने वाले तबलची का नाम है दुष्टाभिसंधि। इसी तरह इस नाट्य के सूत्रधार महामोह, नन्दी भोगाभिलाष, गायक मान-क्रोध आदि, विदूषक काम, मंजीरे आहार, निद्रा, भय, मैथुन आदि और रंगभूमि है लोकाकाश। और कहाँ तक कहें, कर्मपरिणाम राजा ऐसा राजा है जो परम स्वतन्त्र है इसके ऊपर अन्य कोई शासक नहीं है।

कर्मपरिणाम राजा की राजा की रानी है कालपरिणति, जो इस-जैसी ही है। इसके रूप की उपमा बड़े संकोच के साथ इस प्रकार दी जा सकती है कि जैसे ऋतुओं में शरद् ऋतु, शरद् ऋतु में कुमुदिनी, कुमुदिनी में कमलिनी, कमलिनी में कलहंसिका और कलहंसिका में राजहंसिका है, वैसे ही सब रानियों में कालपरिणति नामक रानी है, जो अपने पति को अत्यधिक प्रिय है। जैसे चन्द्र और चन्द्रिका, काया-छाया, जल और तरंग अभिन्न हैं, वैसे ही कर्मपरिणाम राजा और कालपरिणति नाम-रूप से भिन्न होते हुए भी वस्तुतः अभिन्न ही हैं।

सुषमा, दुःषमा आदि महारानी कालपरिणति की प्यारी सखियाँ हैं। इस रानी के समर्थ दास-दासियाँ हैं—समय, मुहूर्त, रात, दिन, प्रहर, पक्ष, मास, वर्ष, युग, पल, क्षण आदि। इन समर्थ सेवकों के बल पर रानी कालपरिणति डंके की चोट जो चाहती है, वही करती है। राजा रानी—दोनों समान बलशाली हैं। अब इनसे कौन पार पा सकता है?

कर्मपरिणाम राजा जब संसार नामक नाट्य का मंचन करते हैं तो पात्रों-अभिनेताओं की सज्जा रानी कालपरिणति ही करती है। वह योनिरूपी परदे की आड़ में बैठे पात्रों को मंच पर लाती है। योनिरूपी नेपथ्य या परदे से बाहर होने के बाद संसार नाट्य का पात्र सबसे पहले रोने का अभिनय करता है। फिर क्रमशः दुग्ध-पान, घुटनों के बल आँगन में चलने, फिर डगमगाकर खड़े होने आदि के खेल कालपरिणति आदेश देकर करवाती है। बालक से किशोर, किशोर से युवा, युवा से प्रौढ़ और प्रौढ़ से वृद्ध बनने के सभी कौतुक रानी कालपरिणति ही करवाती है। फिर शरीर छुड़वा कर मरने का अभिनय भी यह कराती है। उसके बाद जीव को योनिरूपी परदे में वेश बदलने भेज देती है और फिर नया जन्म देकर नये सिरे से नाटय कराती है। इसका यह क्रम निरन्तर चलता रहता है।

एक अन्य नगरी निवृत्ति नगरी भी है। राजा कर्मपरिणाम का प्रभाव तो संसार नामक नाट्य पर ही रहता है और वह भी तब, जब रानी काल परिणति आज्ञा दे। लेकिन रानी कालपरिणति का प्रभाव तो नाट्य क्षेत्र से बाहर निवृत्ति नगरी पर भी चलता है। क्योंकि निवृत्ति नगरी वालों के जीवन में यह रानी अवस्था परिवर्तन करती रहती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राजा कर्मपरिणाम और रानी काल-परिणति अनेक शक्तियों, विशेषताओं और क्षमताओं से पूर्ण होकर संसार-रूपी नाट्य का मंचन बड़े चाव से करते रहते हैं। अब हम इनके जीवन की कुछ विशेष घटनाओं का उल्लेख कर रहे हैं। □

[२] पुत्रवती बन्ध्या

एक संतान का अभाव राजा—रानी दोनों को खटकता-अखरता रहता था, पर रानी कालपरिणति को इसका दुःख अधिक था कि मैं अभी तक पुत्रवती नहीं बनी। रानी ने अपने मन की बात राजा से कही तो वह बोला—प्रिये ! जिस अभीष्ट में हम दोनों एकमत होते हैं, वह अवश्य पूर्ण होता है। मेरी भी इच्छा पिता बनने की है, अतः हम दोनों के पुत्र अवश्य होगा।

राजा कर्मपरिणाम जो चाहता है, वह तब अवश्य पूर्ण होता है, जब रानी कालपरिणति भी चाहती है। अतः पति का आश्वासन पाकर रानी आशावती हो गई। एक रात सुन्दर स्वप्न देखकर उसने गर्भ धारण किया। गर्भधारण से पूर्व रानी ने स्वप्न देखा था कि सर्वांगसुन्दर एक पुरुष ने रानी के मुख में प्रवेश किया और उदरस्थ हो गया। फिर उदर से बाहर निकला तो उसका कोई मित्र उसे ले गया।

यह स्वप्न देखकर जब रानी ने शय्या त्याग किया तो स्वप्न की बात उसने राजा को बताई। राजा ने कहा कि प्रिये, निश्चय ही तुम एक श्रेष्ठ पुत्र को जन्म दोगी। लेकिन वह अन्त तक हमारे घर नहीं रहेगा। वह किन्हीं धर्माचार्य के साथ चला जायगा और सिद्धि प्राप्त करेगा।

स्वप्न की भविष्यवाणी सुनकर रानी को किंचित् खेद भी हुआ कि मेरा पुत्र मेरे पास नहीं रहेगा। लेकिन यह जानकर उसे प्रसन्नता हुई कि जो भी हो, मैं पुत्रवती तो बनूंगी ही।

बड़े हर्षोल्लास के साथ रानी कालपरिणति अपने गर्भ का पालन करने लगी। उसे सभी प्रकार से दान देने के दोहद होते थे। राजा-रानी की सभी इच्छाओं—दोहदों को पूर्ण करते थे। इसी तरह गर्भकाल पूरा करके रानी ने एक सुन्दर पुत्र को जन्म दिया। प्रियनिवेदिका दासी ने राजा को पुत्र जन्म का संवाद दिया तो राजा ने प्रसन्नतापूर्वक उसे पुरस्कृत किया, अन्य दास-दासियों को भी पुरस्कार दिया। बड़ी धूम-धाम से राजा ने अपने पुत्र का जन्मोत्सव मनाया।

नामकरण वाले दिन राजा ने अपने पुत्र का नाम भव्य पुरुष रखा, क्योंकि गर्भ धारण से पूर्व रानी ने भव्य पुरुष के प्रवेश का स्वप्न देखा था। रानी ने विचार किया कि मेरा पुत्र जब गर्भ में था, तब मुझमें श्रेष्ठ कार्य करने की मति—सुमति उत्पन्न होती थी। अतः इसका दूसरा नाम सुमति रखना चाहिए। राजा-रानी के इस विचार से सहमत हुआ। अतः नवजात पुत्र भव्य पुरुष और सुमति दो नामों से जाना गया।

× × ×

मनुजगति नगरी में जहाँ कर्मपरिणाम राजा का शासन था, अगृहीत संकेता नाम की एक ब्राह्मणी रहती थी। उस ब्राह्मणी की एक सखी थी, प्रज्ञाविशाला। जब-तब दोनों सखियाँ मिल-बैठकर मन की बातें कर लेती थीं। अगृहीतसंकेता ब्राह्मणी ने जब राजकुमार का जन्मोत्सव देखा तो बड़े आश्चर्य में पड़ी। अपना आश्चर्य प्रकट करने के लिए वह प्रज्ञाविशाला के पास पहुँची और बोली—

"सखी, यह कैसा आश्चर्य है कि रानी कालपरिणाति बंध्या होते हुए भी पुत्रवती बन गई। यह तो तुम भी जानती हो कि राजा कर्मपरिणाम भी निर्वीर्य है। निर्वीर्य पति और बंध्या पत्नी एक पुत्र के जनक-जननी कैसे हो सकते हैं?"

"आखिर तो तुम अगृहीतसंकेता हो न।" प्रज्ञाविशाला मुस्कराई—"क्योंकि तुम छिपी हुई सचाई को नहीं जान पातीं। रहस्य की बात तो यह है कि राजा कर्मपरिणाम विपुल बीज सम्पन्नता वाला है। संतान उत्पन्न करने की उसमें अत्यधिक शक्ति है। राजा की संतानोत्पादन अनन्त शक्ति को किसी की कुदृष्टि न लगे, इसलिए उसके अज्ञान आदि मन्त्रियों ने यह बात प्रसारित प्रचलित कर रखी है कि राजा कर्मपरिणाम निर्वीर्य है—उसमें गर्भस्थापन की क्षमता नहीं है। इसी तरह महारानी कालपरिणति भी अनन्त संतानों को जन्म देने की क्षमता रखती है। दुष्टों-दुर्जनों की

नजर न लगे, इस विचार से महारानी के विषय में भी अज्ञानादि मन्त्रियों ने यह बात फैलाई है कि महारानी बंध्या है। हे सखी ! इसी प्रचार से मोहित होकर तुम इस आश्चर्य में पड़ी हो कि राजा-रानी जनक-जननी कैसे बन गये।"

अगृहीतसंकेता को प्रज्ञाविशाला की रहस्य भरी बात अब भी समझ में नहीं आई। उसने पुनः पूछा—

"तो सखी ! अपनी बात को कुछ प्रमाण देकर स्पष्ट करो।"

प्रज्ञाविशाला कहने लगी—

"इस लोक में जितने भी पुत्र-पुत्रियाँ हैं, इन सबके जन्म में हमारे राजा-रानी का ही हाथ है। ये ही सबके वास्तविक माता-पिता हैं।

"सखी ! महाराज कर्मपरिणाम और महारानी कालपरिणति जब संसार नामक नाट्य देखने बैठते हैं तो ये राजा-रानी सभी पात्रों को मनुष्य, नारकीय, तिर्यंच, देव आदि लाखों योनियों के रूप रखवाकर नाटक करवाते हैं। महारानी कालपरिणाति गर्भावस्था, बालकपन, युवावस्था, बुढ़ापा, मृत्यु, पुनः जन्म आदि परिवर्तन कराती रहती है। अब तुम्हीं सोचो हमारी महारानी बंध्या कैसे हो सकती है।"

"तुम्हारी ये बातें मैंने पहले भी सुनी हैं।" अगृहीतसंकेता बोली—"महाराज कर्मपरिणाम भिन्न-भिन्न रूप धारण कराने की अद्‌भुत शक्ति रखते हैं। महारानी कालपरिणति भी बार-बार इनकी अवस्थाएँ बदलती रहती हैं। फिर भी इनको प्राणियों का जनक-जननी कैसे कहा जा सकता है?"

"तू इतनी मोटी बात भी नहीं समझी, मुझे तो इसी का आश्चर्य है।" प्रज्ञाविशाला ने कहा—"यह संसार वस्तुतः एक नाटक ही है। अतः जो इस नाटक को बनाने वाले हैं वे ही इस नाटक के पात्रों के माता-पिता हैं।"

"जब सभी जीव राजा-रानी की संतानें हैं" अगृहीत संकेता ने कहा कहा—"तो फिर दुर्जनों की कुदृष्टि के भय से अविवेक आदि मन्त्रियों ने यह बात क्यों फैलाई है कि राजा कर्मपरिणाम निर्वीर्य और रानी कालपरिणति बंध्या है? आखिर दुर्जन भी तो इन्हीं की संतानें हैं? यदि अविवेक मन्त्री की बात को ही रखना था तो राजा-रानी अपने पुत्र भव्य-पुरुष का जन्मोत्सव इतनी धूम-धाम से क्यों मना रहे हैं? इससे तो मन्त्रियों की फैलाई बात मिथ्या हो रही है।"

"इसका रहस्य भी मैं तुझे बताती हूँ।" प्रज्ञाविशाला ने अगृहीत-संकेता से कहा—"इस मनुजगति नगरी में सदागम नाम के एक महापुरुष हैं। ये महापुरुष सब प्राणियों का हित करने वाले हैं। ये प्राणिमात्र के स्व-भाव से परिचित हैं और हमारे राजा-रानी की गुप्त-से-गुप्त बात को भी जानते-समझते हैं। महापुरुष सदागम को मैं भी अच्छी तरह जानती हूँ। प्रायः मैं उनसे मिलती रहती हूँ।

"हे सखी ! एक बार मैं सदागम जी से मिलने गई। उस समय वे बड़े प्रसन्न थे। मैंने उनकी प्रसन्नता का कारण पूछा तो वे बताने लगे कि एक बार महारानी कालपरिणति ने महाराज कर्मपरिणाम से कहा कि यद्यपि मैं बंध्या नहीं हूँ: फिर भी लोग मुझे बंध्या समझते हैं। अनन्त पुत्र-पुत्रियों वाली होकर भी लोग तुझे बंध्या समझें, मैं इस पीड़ा से मुक्त होना चाहती हूँ। इस पर राजा ने कहा कि जो दुख तुम्हें है, वह मुझे भी है। अविवेक आदि मन्त्रियों ने मुझे भी निर्वीर्य प्रसिद्ध कर दिया है; यद्यपि मैं भी अनन्त सन्तानों का पिता हूँ। मैं अब ऐसा प्रसिद्ध करूँगा कि तुमने मेरे आत्मज पुत्र को जन्म दिया है। हम अपने पुत्र का जन्मोत्सव मनायेंगे। फिर हम दोनों पर लगा मिथ्या कलंक मिट जायगा।

"हे सखी ! यह रहस्य मुझे सदागम ने बताया और कहा कि राजा-रानी के भव्यपुरुष अथवा सुमति नामक जो राजकुमार पैदा हुआ है, वह मुझे बहुत प्रिय है। इसी से मैं आज बहुत प्रसन्न हूँ।"

प्रज्ञाविशाला की ये बातें सुनकर अगृहीतसंकेता का संदेह दूर हो गया। फिर आगे बातचीत चली तो अगृहीतसंकेता ने प्रज्ञाविशाला को राजकुमार भव्यपुरुष के गुणों के बारे में बताया और कहा कि राजकुमार के गुण मैंने बाजार में लोगों द्वारा आपस की बात-चीत में सुने थे। भव्य-पुरुष बहुत ही सुन्दर, तेजरूप, धैर्य, दया, परोपकार, सत्यभाषण करने वाला होगा। धृति, स्मरण शक्ति, जिज्ञासा, श्रद्धा आदि इसकी पत्नियाँ होंगी। यह पूर्णतः धर्मप्रिय होगा। विषयादि में इसकी अरुचि रहेगी।

लोगों में यह भी चर्चा थी कि महाराज कर्म-परिणाम और महारानी क्रूर-कठोर होने के कारण प्राणियों को दुख देते रहते हैं। लेकिन यह कार्य उन्होंने अच्छा ही किया कि सदागम जैसे महापुरुष को प्रिय भव्य-पुरुष जैसे—पुत्र को जन्म दिया। इस पुत्र के जन्म से दोनों पर लगा मिथ्या कलंक भी धुल गया। बंध्या रूप में प्रसिद्ध महारानी कालपरिणति पुत्रवती बन गई और निर्वीर्य राजा कर्मपरिणाम बाप बन गया।

इतना सब कहने के बाद अगृहीतसंकेता ने प्रज्ञाविशाला से कहा कि भव्यपुरुष अथवा सुमति के बारे में पर्याप्त जानकारी मिल गई। अब मुझे सदागम का कुछ विस्तृत परिचय भी दे, क्योंकि तू उनको अच्छी तरह जानती है। □

[३] सदागम की विशेषताएं

मनुजगति नगरी में सदागम का होना इस नगरी के वासियों का परम सौभाग्य है, क्योंकि वही एक ऐसा समर्थ पुरुष है जो लोगों को कर्म-परिणाम के त्रास से बचा सकता है। सदागम त्रिकालदर्शी है। वह भूत, भविष्य और वर्तमान को हथेली पर रखे आंवले की तरह जानता है।

सदागम का ही संग-साथ पाकर चार अन्य महापुरुष भी मनुजगति नगरी में ही हुए हैं। ये चार हैं—अभिनिबोध, अवधि, मनपर्याय और केवल। यद्यपि इन चारों का स्वरूप भी सदागम जैसा ही है, पर ये चारों गूंगे हैं, भावों को प्रकट नहीं कर सकते। इन चारों के स्वरूप का वर्णन सदागम जी ही किया करते हैं।

सदागम को राजपुत्र भव्यपुरुष बहुत प्रिय है, इसका भी एक विशेष कारण है। पापी जीवों को तो कर्मपरिणाम त्रास दिया ही करते हैं। ये जीव सदागम के परोपकारी गुण से लाभ नहीं उठा सकते। पर भव्यपुरुष स्वभाव से ही धर्मानुरागी है। परोपकारी को अधिकारी का हित करके हर्ष होता ही है। भव्यपुरुष अपने कल्याण का अधिकारी है। इसीलिए सदागम प्रसन्न हैं कि वे भव्यपुरुष को सिद्धि तक ले जाएंगे।

मनुजगति नगरी के अधिकांश प्राणी अपात्र हैं। कुछ तो सदागम की बात ही नहीं सुनते। कुछ सुनते तो हैं, पर समझते नहीं। कुछ समझते हैं, पर आचरण नहीं करते। इस प्रकार लोगों की अपात्रता के कारण सदागम जी दुखी हैं। लेकिन जब भव्यपुरुष का जन्म हो गया तो उसकी पात्रता और उसके उज्ज्वल भविष्य को जानकर सदागमजी प्रसन्न हैं।

भव्यपुरुष अथवा सुमति के पिता हैं, कर्मपरिणाम। तो जिसका पिता कर्मपरिणाम होगा, उसके कर्मफल भी श्रेष्ठतम होंगे। इसी तरह जिसकी माता कालपरिणति है, उस जीव का कालयापन भी शुभ होगा। सदागमजी यह जानते हैं कि कर्म-परिणाम और कालपरिणति दम्पती का

अंगजात भव्यपुरुष बाल्यकाल व्यतीत होने पर कल्याण-परम्परा का अनुगामी होगा।

अब एक प्रश्न यह भी उठता है कि जब सदागम जीवमात्र का कल्याण करने की सामर्थ्य रखते हैं तो पापी जीव उनके कथनानुसार क्यों नहीं चलते ? आखिर पापियों को भी तो सुख की चाह है ? वे भी सदागम के सहयोग से दुःखों से मुक्ति क्यों नहीं चाहते हैं ?

यह प्रश्न बड़ा महत्त्वपूर्ण है। वस्तुस्थिति यह कि कर्मपरिणाम का कार्य अबाधित रूप से चलता है। वे संसार नाट्य का मंचन करते हुए चाहे जब राजा को रंक, रंक को इन्द्र, रूपवान को कुरूप और मनुष्य को कीट-पतंगा बनाते रहते हैं। ऐसा शक्तिशाली शासक कर्मपरिणाम भी सदागम के नाम से ही डरता रहता है। जब सदागम हुंकार भरते हैं तो कर्मपरिणाम भाग खड़ा होता है और उनके जीव उसके त्रास से युक्त हो जाते हैं। लेकिन विषयासक्त जीव तो सदागम का सहारा लेते ही नहीं हैं, क्योंकि उन्हें विषयों में ही सुख मिलता है और कर्मपरिणाम की बन आती है तो वह उन्हें दबोच लेता है।

सदागम ने कर्मपरिणाम के जाल से अनेक जीवों को मुक्त किया है तो वे जीव रहते कहाँ हैं ? हमें दीखते क्यों नहीं ? इस प्रश्न पर भी विचार करें। राजा कर्मपरिणाम के शासन से बाहर निवृत्ति नामक एक बड़ा नगर है। कर्मपरिणाम के जाल से मुक्त हुए जीव निवृत्ति नगर में ही पहुँच जाते हैं। वे वहीं अखण्ड आनन्द भोगते रहते हैं, अतः हमें मनुजगति नगरी में दिखाई नहीं देते। यदि सभी जन चाहें तो कर्मपरिणाम से बचकर निवृत्ति नगर में जा सकते हैं, पर ऐसा होता नहीं है, क्योंकि जो सदागम के वचनों की उपेक्षा करेगा, वह कदापि कर्मपरिणाम के बन्धन से मुक्त नहीं होगा। इसके विपरीत कुछ ऐसे व्यक्ति भी हैं, जिन्होंने सदागम का नाम तक नहीं सुना, अर्थात् जो सदागम को बिल्कुल नहीं जानते, पर जो स्वभाव से भद्र-भव्य होते हैं, वे भी अंधे की लाठी की तरह सदागम के अनुगामी बन जाते हैं। ऐसे लोगों को यद्यपि कर्मपरिणाम संसार नाट्य में नचाता तो है, पर उन्हें नारकी या तिर्यंच की भूमिका नहीं देता; बल्कि उन्हें चक्रवर्ती, देव आदि का अभिनय करने को देता है, क्योंकि वह जानता है कि ये लोग सदागम को प्रिय हैं।

वस्तुतः महात्मा सदागम तीनों लोकों के स्वामी हैं। ये प्राणिमात्र का कल्याण चाहने वाले, आर्यजनों के लिए शरणागतवत्सल, संसार-वन

में भटकने वालों के लिए आशादीप और भवरोगी के लिए महौषध के समान हैं। ये महापुरुष नरकगति, तिर्यंचगति, पशुत्व आदि से छुड़ाने वाले परम समर्थ पुरुष हैं। किसी से न हारने वाला कर्मपरिणाम केवल इन्हीं से हारा है। यह महापुरुष शुभाशुभ कर्मों को नष्ट करने में एक ही है। इनका प्रिय पात्र कर्मपरिणाम के शासन में रहकर भी दुखी नहीं रह सकता।

इतना सब सुनने-समझने के बाद अगृहीतसंकेता ने प्रज्ञाविशाला से कहा—

"सखी ! बुरा मत मानना। तूने सदागम की सामर्थ्य का जो वर्णन किया है, उसे सुनकर कौन विश्वास कर सकता है ? मैं तो तुझे सत्यवादिनी ही समझती थी, पर अब मालूम हुआ कि तू कितनी गप्प मारती है। फिर भी यदि तेरी बात सही है तो मुझे भी सदागम के दर्शन करा दे।"

"बहिन ! तेरी शंका स्वाभाविक है।" प्रज्ञाविशाला ने कहा—"कुछ व्यक्ति पहले मान लेते हैं और बाद में जानते हैं। कुछ पहले जानते हैं, उसके बाद मानते हैं। तू भी पहले सदागम की सामर्थ्य को जानेगी, उनसे मिलेगी, तब उनके स्वरूप को मानेगी। मैं तुझे सदागम के पास अवश्य ले चलूंगी।"

इसके बाद अगृहीतसंकेता और प्रज्ञाविशाला सदागमजी से मिलने चली गईं। □

[४] संसारी जीव तस्कर

मनुजगति नगरी में महाविदेह नाम का एक बाजार है। इस बाजार में विजय नाम से अभिहित अनेक दुकानें हैं। यहाँ लोगों की काफी भीड़ रहती है। प्रज्ञाविशाला को मालूम हुआ कि भगवान सदागम महाविदेह नामक बाजार में विराजमान हैं। वह अगृहीतसंकेता को लेकर उनसे मिलने पहुँच गई।

दोनों सखियों ने सदागम महाराज को वंदन-नमस्कार किया। सदागम के दर्शन करते ही अगृहीतसंकेता तो कृतकृत्य हो गई। उनके व्यक्तित्व से वह बहुत प्रभावित हुई और प्रज्ञाविशाला से बोली कि बहिन, मेरे सब संशय दूर हो गए। तूने मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया जो इन महापुरुष के दर्शन कराये। इनके दर्शन मात्र से मेरे कलुष धुल गये। लेकिन मैं तुझे एक उपालम्भ भी देती हूँ। वह यह कि तूने अब तक मुझे इनके दर्शन क्यों नहीं कराये।

"अब तू मेरे साथ नित्य ही इनके दर्शन करने आया करना।" प्रज्ञाविशाला ने अगृहीतसंकेता से कहा—"जब तक मनुष्य के पुण्योदय नहीं होते, तब तक कोई भी इन महापुरुष के दर्शन नहीं कर सकता। यह सब तेरे पुण्यों का प्रभाव ही है कि तू इनके दर्शन कर सकी। इसमें मेरी कोई बड़ाई नहीं है।"

इसके बाद दोनों सखियाँ नित्य ही सदागम के दर्शन करने जाने लगीं। उनका जीवन बड़े आनन्द से बीतने लगा। इसी क्रम में एक दिन सदागम जी ने प्रज्ञाविशाला से कहा—

"प्रज्ञाविशाला! तू तो जानती ही है कि राजा कर्मपरिणाम के सर्वगुणसम्पन्न भव्यपुरुष नाम का पुत्र हुआ है। अतः तू मेरे कहने से राजमहल चली जा और रानी कालपरिणति से मेल-जोल करके किसी तरह भव्यपुरुष की धाय बन जा। तू उसका लालन पालन कर। कालान्तर में जब भव्यपुरुष बड़ा होगा तो वह तेरा सहारा-सहयोग पाकर सारे सुखों को लात मारकर मेरे पास चला आयेगा।"

प्रज्ञाविशाला ने सदागम की आज्ञा शिरोधार्य की और वह भव्यपुरुष की धाय बन गई। धीरे-धीरे कालपरिणति का अंगजात भव्यपुरुष बड़ा होने लगा। अब वह किशोर वय का हो गया। प्रज्ञाविशाला उसको सदागम के बारे में बताने लगी। फिर एक दिन वह उसे सदागम के पास परिचय कराने ले गई। सदागम को देखते ही राजकुमार भव्यपुरुष पुलकित हो उठा। उसने बार-बार उनकी वंदना की और उनकी बातों को बड़ी रुचि से सुना। अपने भाग्य की सराहना करते हुए भव्य पुरुष ने चाहा कि वह सदागम का शिष्य बनकर उनसे कलाओं का ज्ञान प्राप्त करे। अपने मन की बात भव्यपुरुष ने अपने माता-पिता को बताई। इस प्रस्ताव से राजा कर्मपरिणाम और रानी कालपरिणति को भी अत्यन्त हर्ष हुआ। उन्होंने विद्यारम्भ का महोत्सव करके अपना पुत्र सुमति उर्फ भव्य पुरुष सदागम को समर्पित कर दिया। अब भव्यपुरुष मन लगाकर विद्याध्ययन करने लगा। प्रज्ञाविशाला भी विद्यायन में भव्यपुरुष को सहयोग देती रहती थी।

× × ×

एक दिन की बात है। प्रज्ञाविशाला और भव्यपुरुष सदागम के पास सानन्द बैठे थे। अन्य व्यक्ति भी उनके पास बैठे हुए थे। अगृहीतसंकेता आई और सदागम को नमस्कार कर अपनी सखी प्रज्ञाविशाला के पास बैठ गई। तभी एकाएक शोर सुनाई देने लगा। फटे ढोल की आवाज

आने लगी। पूरी सभा का ध्यान उस कोलाहल की ओर खिंच गया। कुछ लोग शोर वाली दिशा को दौड़े गए। बाद में पता चला संसारी जीव नाम का एक चोर पकड़ा गया है। उसी के कारण कोलाहल हो रहा है। सभी ने उत्सुकता और जिज्ञासा के साथ संसारी जीव नामक चोर को देखा तो पाया कि उसकी वेशभूषा बड़ी विचित्र थी।

संसारी जीव नामक चोर की देह पर राख पुती हुई थी तथा गेरु के घोल वाले हाथ के छापे लगे हुए थे। कंठ में कनेर के गंडों की माला थी। टूटे मटके का ठीकरा उसके सिर पर छतरी की तरह रखा था। इसके साथ ही चोर के गले में चुराया गया माल भी लटका हुआ था। राजा के सेवक उस चोर को घेरकर चल रहे थे और उसे गाली-गलौज दे रहे थे।

चोर की दयनीय स्थिति देखकर प्रज्ञाविशाला पिघल गई। उसने सोचा कि इसकी रक्षा मात्र सदागम महाराज ही कर सकते हैं। अतः वह समझा-बुझाकर चोर को सदागम के पास ले आई और वह प्रज्ञाविशाला की प्रेरणा से सदागम का शरणागत हो गया। 'रक्षा करो-रक्षा करो' की चोर की आर्त वाणी सुनकर सदागम ने उसे अभय कर दिया।

सबके साथ चोर भी सभा में बैठा तो अगृहीतसंकेता ने उससे पूछा कि तुम चोर कैसे बने। इस पर चोर ने कहा कि मेरे बारे में महात्मा सदागम सब कुछ जानते हैं, अतः बताने की आवश्यकता नहीं है। लेकिन जब सदागम जी ने कहा कि यद्यपि मैं सब कुछ जानता हूँ, फिर भी तुम आप-बीती स्वयं ही कहो। सदागम का आदेश पाकर संसारी जीव नामक चोर ने अपने बारे में जानकारी देने से पहले एकान्त चाहा। सदागम के कहने से जब सब उठ गए और दो-तीन व्यक्ति ही रह गये तो चोर अपने बारे में बताने लगा। □

[५] चोर का परिचय

संसारी जीव नामक चोर वक्ता बनकर आपबीती सुना रहा था—वह क्यों और कैसे चोर बना, इसके बारे में बता रहा था। इस चोर कथा को सुनने वाले मात्र चार ही श्रोता थे—(१) सदागमजी महाराज, (२) भव्य पुरुष अथवा सुमति, (३) अगृहीतसंकेता और (४) प्रज्ञाविशाला।

× × ×

बड़े-बड़े नगर, नगरों से छोटे पुर, पुरों से छोटे गांवों से परिपूर्ण इस

जगती में जैसे मनुजगति नगरी, निवृत्ति नगर आदि हैं, उसी तरह असं-व्यवहार नामक भी एक नगर है। यह नगर भी अनादिकाल से है और इसमें अनंत-अगणित प्राणी निवास करते हैं। असंव्यवहार नगर में किस-किस तरह के लोग रहते हैं, यह जान लेने के बाद आगे की कहानी समझ में आयेगी।

असंव्यवहार नगर में 'अनादि वनस्पति' नाम के कुलपुत्र रहते हैं और इसमें रहने वाले अधिकांश जन कर्मपरिणाम राजा के निकटतर सगे-सम्बन्धी तथा रिश्तेदार हैं, जैसे—अत्यन्त अबोध नामक सेनापति, तीव्रमोहोदय नामक राज्यपाल आदि। ये अधिकारी स्थायी रूप से नियुक्त हैं और कर्म-परिणाम राजा के आदेश से अस्पष्ट चेतना वाले मनुष्यों को सुलाये रहते हैं, अर्थात् जाग्रत दीखते हुए भी मनुष्य चेतनाहीन, विवेकशून्य और मूढ़ से रहते हैं। तीव्रमोहोदय तथा अत्यन्त अबोध मनुष्यों को निगोद नामक कोठरी में डाले रहते हैं। इस प्रकार के लोगों से बसे असंव्यवहार नगर में संसारी जीव नामक एक कुटुम्बी अनन्तकाल से रह रहा था।

एक दिन की बात है। राज्यपाल तीव्रमोहोदय दरबार लगाये बैठे थे। सेनापति अत्यन्त अबोध भी उनके पास बैठा था। तभी तत्परिणति नामक प्रतिहारी ने निवेदन किया कि महापराक्रमी कर्मपरिणाम राजा का दूत तन्नियोग आपके दर्शन करना चाहता है। तीव्रमोहोदय ने प्रतिहारी को आदेश दिया कि दूत को सभा में भेज दो। सभा में प्रवेश कर तन्नियोग नामक दूत ने तीव्र मोहोदय को अभिवादन किया और यथास्थान बैठकर बोला कि सदागम के प्रभाव से न केवल महाराज कर्मपरिणाम ही विवश हैं; बल्कि उनके आप-जैसे सहयोगी भी अपना कार्य नहीं कर पाते। मैं इसी सम्बन्ध में महाराज कर्मपरिणाम की ओर से व्यवस्था-परिवर्तन के सम्बन्ध में कुछ निवेदन करने आया हूँ।

महाराज कर्मपरिणाम ने अपनी बड़ी बहिन लोकस्थिति से कहा है कि सदागम जब-तब मौका देखकर कितने ही लोगों को हमारे शासन से बाहर करके अपने निवृत्ति नगर में ले जाता है। निवृत्ति नगर हमारे लिए अगम्य है। यदि यह सिलसिला चलता रहा तो हमारा अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा।

इस प्रकार अपनी बड़ी बहन लोकस्थिति को समझाकर महाराज कर्मपरिणाम ने उनसे कहा है कि वे असंव्यवहार नगर की रक्षा करें और सदागम जितने प्राणियों के मुक्त करके अपने निवृत्ति नगर में ले गया है,

उतने ही प्राणी तुम असंव्यवहार नगर से लाकर मेरे शासित क्षेत्र में बसा दो। कर्मपरिणाम की यह आज्ञा लोकस्थिति ने स्वीकार करली है और मुझे भी उनकी सेवा में नियुक्त किया है। अत: मैं तन्नियोग नामक दूत लोक-स्थिति के आदेश से कुछ प्राणी यहाँ से ले जाने के लिए आपके पास आया हूँ।

यह सब सुनने के बाद राज्यपाल तीव्रमोहोदय ने तन्नियोग से कहा कि जैसा लोकस्थिति ने कहा है, मैं वैसा करने को तैयार हूँ। लेकिन तुम मेरे साथ चलकर असंव्यवहार नगर की विशालता अपनी आँखों से देखलो और फिर महाराज कर्मपरिणाम तथा उनकी बहिन लोकस्थिति से कहो कि अपने लोगों की जनसंख्या घटने का हमारा भय निर्मूल है। समुद्र में से कुछ घड़े पानी ले लेने से समुद्र का जल कम नहीं हो जाता। असंव्यवहार नगर की जनसंख्या समुद्र की तरह है। सदागम आखिर कितने लोगों को मुक्त करेगा।

राज्यपाल तीव्रमोहोदय, सेनापति अत्यन्त अबोध और राजदूत तन्नियोग—तीनों ने असंव्यवहार नगर का अवलोकन किया। सम्पूर्ण नगर दिखाने के बाद तीव्र मोहोदय ने तन्नियोग से कहा—

"जो कुछ तुमने अपनी आँखों से देखा है, वह सब महाराज कर्म-परिणाम को बता देना। तुमने देखा है कि इस नगर में गोलक नामक बड़े-बड़े महालय हैं। प्रत्येक महालय में निगोद नामक असंख्य कक्ष हैं। इन कक्षों को 'विद्वान' और 'साधारण' शरीर भी कहते हैं। इन कमरों में असंख्य जीव रहते हैं। सदागम अनन्तकाल से प्रयास रत है; फिर भी वह हमारी जनसंख्या का करोड़वां भाग भी कम नहीं कर पाया है। अत: तुम महाराज कर्मपरिणाम से कहना कि वे अपनी प्रजा की संख्या कम होने की किंचित् भी चिन्ता न करें।"

"वह सब तो मैं कह दूंगा।" तन्नियोग ने कहा—"मैं न केवल कर्म-परिणाम राजा का दूत ही हूँ, बल्कि उनकी बड़ी बहिन लोक-स्थिति का सेवक भी हूँ। मैं महारानी लोक-स्थिति की आज्ञा को नहीं टाल सकता। अत: कुछ जीव तो मैं आपके यहाँ से ले ही जाऊँगा।"

अब तीव्रमोहोदय ने सेनापति अत्यन्त अबोध से कहा कि तुम कुछ व्यक्ति इनके साथ भेज दो। किस-किस को भेजना है, इसका निर्णय शीघ्र ही कर दीजिए।

"जो अपनी इच्छा से राजधानी जाना चाहें, उन्हें तन्नियोग के साथ भेज दीजिए।" सेनापति अज्ञान अबोध ने तीव्रमोहोदय से कहा—"आप इस आशय की डोंडी पिटवा दीजिए।"

इस पर राज्यपाल तीव्रमोहोदय ने कहा—

"सेनापति, तुम वास्तव में अबोध-अज्ञानी हो, जो ऐसी बेसिर-पैर की युक्ति बता रहे हो। अपनी इच्छा से तो एक भी प्राणी असंव्यावहारिक नगर को छोड़कर नहीं जाएगा। एक तो किसी को कर्मपरिणाम की राजधानी के स्वरूप के बारे में मालूम नहीं है, जो किसी में वहाँ जाने की ललक पैदा हो। दूसरे यहाँ के जीव यहाँ अनन्तकाल से हिल-मिलकर रह रहे हैं। अतः कोई भी संगी-साथी का वियोग लेकर और मनपसन्द जगह को छोड़कर जाना पसन्द नहीं करेगा। अतः स्वेच्छा वाली बात छोड़ो तथा अन्य कोई उपाय बताओ।"

अब तो सेनापति अज्ञान अबोध सोच में पड़ गया। फिर उसे एक सुन्दर उपाय सूझ गया तो बोला—

"हमारे नगर में संसारी जीव नाम का एक कुटुम्बी रहतहै। उसकी पत्नी भवितव्यता बड़ी सामर्थ्य वाली है। संसारी जीव तो उसका कहने भर का पति है, वस्तुतः तो वह उसका दास है। भवितव्यता अपने पति को जैसा नचाती है, वह नाचता है। भवितव्यता ऊपर से दीखने में स्त्री अवश्य है, पर स्वरूप से वह एक सुभट है।

"भवितव्यता के विरुद्ध देवगुरु बृहस्पति की बुद्धि भी काम नहीं करती। बड़े-बड़े चक्रवर्ती और इन्द्र तक भवितव्यता की अनुकूलता पाकर प्रसन्न और उसकी प्रतिकूलता से दुःखी रहते हैं। महाराज कर्मपरिणाम भी भवितव्यता का बहुत सम्मान करते हैं और वे भी भवितव्यता की बात नहीं टाल सकते। अतः आप भवितव्यता को बुलाइए और उसी से पूछिए कि तन्नियोग के साथ किसको भेजा जाए।"

तीव्रमोहोदय ने तत्काल ही भवितव्यता को बुलाया। तब तीव्रमोहोदय का संकेत पाकर अत्यन्त अबोध सेनापति ने अपनी समस्या उसके सामने रखी। सुनकर भवितव्यता हँसने लगी और हँसते-हँसते बोली—

"अत्यन्त अबोधजी, आप वास्तव में भी अबोध हैं। जिस कार्य के लिए आपने मुझे बुलाया है, वह मैं पहले ही कर चुकी हूँ। इसीलिए मुझे आपके कथन पर हँसी आ गई। अब मैंने जो निश्चय किया है, उसे आप

सुनें। मेरा पति संसारी जीव तन्नियोग के साथ जाएगा तथा उसी की जाति-बिरादरी के उस जैसे अन्य लोग जाएँगे।

"कर्म परिणाम की राजधानी तक पहुँचने के लिए मार्ग में अनेक नगर पड़ेंगे। उनमें ठहरते हुए मेरे पति संसारी जीव को आगे जाना है। हम तीनों को इनके साथ रहना होगा।"

× × ×

सदागम, भव्य पुरुष, अगृहीतसंकेता और प्रज्ञा-विशाला को अपनी आत्मकथा सुनाते हुए संसारी जीव ने अगृहीतसंकेता की ओर उन्मुख होकर कहा—

"देवी! तीव्रमोहोदय, अत्यन्त अबोध और अपनी पत्नी भवितव्यता के साथ मैं अब असंव्यवहार नगर से चल दिया। वहाँ से निकलने के बाद पहले मुझे एकाक्ष निवास नगर में ठहराया गया। उस नगर के पाँच मुहल्लों में मैं भिन्न-भिन्न रूपों में रहा। मेरी ही पत्नी भवितव्यता ने मुझसे क्या-क्या कराया, कैसी-कैसी गोलियाँ खिलाईं, यह कथा भी बड़ी रोचक है। अब आगे आप इस प्रसंग को भी सुनिये।"

[६] यात्रा : डगर-डगर और नगर-नगर की

भवितव्यता ने अपने पति संसारी जीव को पूरा इतिवृत्त सुनाने के बाद आदेश दिया कि तुम्हें हमारे साथ चलना है। संसारी जीव ने पत्नी की आज्ञा को सिर पर चढ़ाया और उसके साथ चल दिया। साथ में उस-जैसे अन्य जीव भी थे। तीव्रमोहोदय और अत्यंत अबोध भी संसारी जीव के साथ में थे।

सब मिलकर एकाक्ष नगर पहुँच गये। इस नगर के पाँच बड़े मुहल्लों में एक वनस्पति नाम का मुहल्ला था। यह मुहल्ला असंव्यवहार नगर से से मिलता-जुलता था, इसलिए संसारी जीव को पहले इसी में ठहराया गया, जिससे उसका मन न उचटे।

असंव्यवहार नगर के लोग लोक-व्यवहार से दूर रहते थे। वे केवल लोकस्थिति के आदेश पर ही कहीं जाते थे, इसीलिए असंव्यवहारी या अव्यवहारी कहे जाते थे। लेकिन वनस्पति मुहल्ले के लोग लोक व्यवहार करते हैं और बार-बार इधर से उधर आते-जाते रहते हैं। इस मुहल्ले के लोगों को संव्यवहारी या व्यवहारी कहा जाता है।

संसारी जीव को एक कमरे में ठहराया गया। संसारी जीव के साथ जो अन्य लोग आये थे, उन्हें भी एकाक्ष नगर के वनस्पति मुहल्ले में ठहराया गया। कुछों को दूसरे मुहल्ले में भेज दिया गया और कुछों को स्वतन्त्र छोड़ दिया गया। जिस कमरे में संसारी जीव को रखा गया था, उसका नाम 'साधारण शरीर' था। इस कमरे में संसारी जीव अनन्तकाल तक रहा।

उधर राजा कर्मपरिणाम ने अपनी बड़ी बहिन लोकस्थिति, पत्नी कालपरिणति, तथा नियति, स्वभाव आदि सहायकों से विचार-विमर्श करके एक प्रकार की गुटिकाएँ तैयार कीं। जिस प्रयोजन के लिए ये गुटिकाएँ बनाई गई थीं, उसके लिए कर्मपरिणाम ने भवितव्यता की आज्ञा भी ली थी। इन गुटिकाओं का नाम 'एकभवभेद्य' था और ये अपनी ही शक्ति से सब कार्य सम्पन्न कर सकती थीं। ये गोलियाँ कर्मपरिणाम ने भवितव्यता के दीं और समझाया कि तुम काफी व्यस्त रहती हो, अतः अपना पर्याप्त कार्य इन गोलियों से भी करा सकती हो यह गोली तुम व्यवहारी प्राणियों को दे दो। जब पहली गोली नष्ट हो जाये तो दूसरी दे दो। यह क्रम चलाती रहो। इस गोली को लेने वाले प्राणी जीवन-पर्यन्त तुम्हारी इच्छा से कार्य करते रहेंगे।

संसारी जीव जब असंव्यवहार नगर में था, तब भी उसे एकभवभेद्य नामक उक्त गोली दी जाती थी। जब वह एकाक्ष नगर में आया, तब भी उसे उक्त गोली दी गई। इससे उसके अनेक रूप स्वतः ही बनते-बिगड़ते थे। संसारी जीव कभी अदृश्य रूप धारण करता तो कभी दृश्य। इस क्रम में वह कन्द-मूल, छाल, स्कन्ध, शाखा-प्रशाखा, अंकुर-नवांकुर, पत्र, फल-फूल, बीज, गुल्म, लता, वृक्ष बनता रहा। इन रूपों में भवितव्यता के सामने ही उसे काटा-पीटा भी गया।

एकभवभेद्य गोली जब घिस गई तो संसारी जीव को दूसरी गोली दी गई। इस गोली के प्रभाव से संसारी जीव एकाक्ष नगर के दूसरे मुहल्ले में गया। इस मुहल्ले का नाम 'पृथ्वीकाय' मुहल्ला था। इस मुहल्ले में पार्थिव नामक जीव रहते हैं। संसारी जीव को भी पार्थिव बनना पड़ा। भवितव्यता ने बार-बार गोलियाँ देकर संसारी जीव के अनेक रूप बनाये-बिगाड़े; जैसे—रेत, पत्थर, नमक, सुरमा, शुद्ध पृथ्वी आदि। रूपों के साथ लाल-पीले, हरे, आदि अनेक रंग भी संसारी जीव के बदले गये।

पार्थिव जीवों से निकालकर संसारी जीव को एकाक्ष नगर के तीसरे

मुहल्ले अप्काय में पहुँचाया गया। भवितव्यता द्वारा दी गई गोलियों के प्रभाव से संसारी जीव यहाँ ओस, हिम, जलबिन्दु, फुआर आदि रूपों में अनन्तकाल तक रहा।

एकाक्ष नगर का पांचवां बड़ा मुहल्ला था, वायुकाय। इस मुहल्ले में आकर संसारी जीव ने तूफान, आँधी, वंटोलियां, झंझावात, संवर्तवात, घनवात के रूप धारण किये। ध्यान देने योग्य बात यह है कि हर बार मुहल्ले बदलने और नये-नये रूप धारण करने में संसारी जीव को असह्य और अवर्णनीय कष्ट सहन करने पड़े।

वायुकाय नामक पांचवें मुहल्ले में रहने से पूर्व संसारी जीव को एकाक्ष नगर के चौथे मुहल्ले तेजस्काय में रहना पड़ा था। यहाँ रहकर उसे ज्वाला, अग्नि, अंगारे, बिजली, उल्का आदि का रूप धारण करना पड़ा।

पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय और वायुकाय मुहल्लों के जीव क्रमश: पार्थिव, आप्य, तेजस्काय ब्राह्मण और वायवीय कहलाते हैं।

संसारी जीव को दी गई जब अन्तिम-पांचवें मुहल्ले में ले जाने वाली गोली भी घिस गई तो भवितव्यता उसे पहले मुहल्ले—वनस्पति में वापस ले गई। इस प्रकार भवितव्यता एकभवभेद्य गोलियों के प्रयोग से अपने पति को उक्त पांचों मुहल्लों में ही अनन्त काल तक इधर से उधर घुमाती रही। इस भवभ्रमण में संसारी जीव को जो-जो कष्ट मिले, उन्हें वही जान सकता है।

[७] अहो जीव संसारी : यात्रा की गति जारी

भवितव्यता ने एक दिन अपने पति संसारी जीव से कहा—स्वामी ! एकाक्ष निवास नगर में रहते-रहते आप ऊब गए होंगे। अत: मैं अब आपको विकलाक्ष निवास नामक दूसरे नगर में भेजती हूँ। वहाँ आपको बारी-बारी से तीन बड़े मुहल्लों में रहना होगा।"

"जब जैसा तुम चाहती हो, वैसा तुम कर लेती हो।" संसारी जीव ने अपनी पत्नी भवितव्यता से कहा—"जहाँ चाहो भेज दो। मेरा अस्तित्व तो तुम्हारे आदेश का पालन करने के लिए ही हुआ है।"

पति की विवशता पर भवितव्यता किंचित् मुस्कराई और उसे विकलाक्ष निवास नगर भेज दिया। इस नगर में द्विहृषीक, त्रिकरण और चतु-

रक्ष—तीन बड़े मुहल्ले हैं। संसारी जीव को भवभेद्य गोली देकर पहले द्विहृषीक मुहल्ले में रखा गया। इस मुहल्ले में द्वीन्द्रिय—दो इन्द्रिय वाले जीव रहते हैं। भवितव्यता ने भवभेद्य गोली के प्रयोग से संसारी जीव को एक गन्दे स्थान का कीड़ा बना दिया। फिर वह मल-मूत्र, रक्त-आंत्र का सूक्ष्म कीट बनता रहा। संसारी जीव को इन घृणित रूपों में देखकर भवितव्यता बहुत खुश होती थी। जीव के नानाविध कष्ट भवितव्यता की प्रसन्नता का कारण बनते।

विकलाक्ष निवास नामक जिस नगर में संसारी जीव रह रहा था, उस नगर का शासन कर्मपरिणाम ने उन्मार्गोपदेशक नामक राज्यपाल को सौंप रखा है। इस राज्यपाल की स्त्री का नाम माया है। इस नगर में सात लाख कुल कोटि के द्वीन्द्रिय जीव रहते हैं।

उन्मार्गोपदेशक की पत्नी माया और संसारी जीव की पत्नी भवितव्यता में बड़ा भारी मेल-जोल था। एक दिन भवितव्यता ने माया से कहा—"मायादेवी, देख मेरा पति जलोका बना हुआ है। मेरे पति के मुकाबले तेरे पति की सामर्थ्य कुछ भी नहीं है। यदि इसे दर्द वाली जगह पर छोड़ दूं तो यह चिपट कर खून चूस लेता है और अपनी भूख मिटा लेता है। जब इसे हाथ से दबा दो तो यह पूरा रक्त दान भी कर देता है।"

इस प्रकार भवितव्यता नाना प्रकार के दुख देकर अपने पति का मजाक उड़ाती थी। अब भवितव्यता ने दूसरी गोली देकर अपने पति को त्रिकरण नामक दूसरे मुहल्ले में भेज दिया। इस मुहल्ले में आठ लाख कुल-कोटि के त्रिकरण—तीन इन्द्रियों वाले असंख्य गृहपति जीव रहते हैं। इस मुहल्ले में संसारी जीव को जूं, खटमल, मकोड़ा, चींटी आदि बनना पड़ा।

विकलाक्ष निवास नगर का तीसरा प्रसिद्ध मुहल्ला था, चतुरक्ष। इस मुहल्ले में नौ लाख कुलकोटि असंख्य चतुरक्ष—चार इन्द्रियों वाले जीव रहते हैं। यहाँ आकर संसारी जीव को मक्खी, मच्छर, पतंगा, बिच्छू आदि बनना पड़ा। इस प्रकार इन्हीं तीनों बस्तियों में संसारी जीव को उलट-फेर से आना-जाना पड़ा। एक रूप से दूसरे रूप में जाने से पहले इस जीव को कटने-पिसने, मसलने आदि के असह्य कष्ट भोगने पड़े। भवितव्यता कभी पर्याप्तक और कभी अपर्याप्तक रूप से इन्हीं तीनों बस्तियों में हजारों वर्षों तक भटकाती रही।

× × ×

एक अन्य नगर है 'पंचाक्ष पशु-संस्थान'। इस नगर का उपशासक

भी उन्मार्गोपदेशक है। इस नगर में साढ़े तिरेपन लाख (५३,५०,०००) कुल-कोटि प्रमाण पंचाक्ष—पाँच इन्द्रियों वाले जीव रहते हैं। ये जीव जलचर, थलचर और नभचर—तीन श्रेणियों के होते हैं। इनमें चेतना और गति होती है। विद्वान् इन्हें गर्भज संज्ञी कहते हैं।

संसारी जीव सबसे पहले टर्र-टर्र टर्राने वाला जलचर—मैंढक बना। फिर मछली बना। जलचरों के अनेक रूप बदलने के बाद नई गोली के प्रयोग से भवितव्यता ने संसारी जीव को थलचर बनाया। थलचरों में वह खरगोश, कूकर, शूकर आदि बना। शिकारियों ने इसे प्राणान्तक कष्ट दे-देकर मारकर खाया। हिरन के रूप में तो संसारी जीव संगीत रस से पकड़ कर मारा गया। हिरन को संगीत से बहुत प्रेम होता है। एक शिकारी ने जंगल में संगीत का मधुर राग छेड़ा। सैकड़ों हिरन आँख मूंद कर खड़े हो गए, तभी शिकारी ने संसारी जीव को पकड़ा और काट-पीटकर घर वालों को खिलाया।

हिरन के बाद संसारी जीव हाथी बना। हाथी बनकर यह यूथपति—सैकड़ों हाथियों के झुण्ड का स्वामी बना। यहाँ इसे जंगल में लगी दावानल में झुलसना पड़ा। अन्धे कुएँ में गिरकर तड़प-तड़प कर मरा, क्योंकि भारी शरीर से निकलना असंभव हो गया था।

एक दिन भवितव्यता ने कहा—

''प्राणेश्वर ! आप धन्य हैं। आपने बहुत कष्ट सहे हैं। आपकी सहन शक्ति से मैं बहुत प्रसन्न हूँ। अब मैं आपको एक साथी दे रही हूँ। इस साथी का नाम पुण्योदय है। पुण्योदय गुप्त रूप से सदा तुम्हारे साथ रहेगा।''

× × ×

संसारी जीव अन्य पुरुष के रूप में अपनी आत्मकथा सदागम, प्रज्ञा-विशाला, अगृहीतसंकेता और भव्य पुरुष को सुना रहा था। कथा सुनते-सुनते भव्य पुरुष ऊबने लगा तो उसने अपनी धाय माता प्रज्ञाविशाला से कान में पूछा—

''माता ! जिस कथा को अगृहीतसंकेता सुन रही है, यह किसकी कथा है। मेरी तो कुछ समझ में नहीं आता।''

''मैं तुम्हें सब समझा दूँगी।'' प्रज्ञाविशाला बोली—''कथा कहने वाला संसारी जीव ही है। यह अपनी ही कथा कह रहा है। इसकी कथा पूरी हो जाने दो, फिर मैं तुम्हें सब समझा दूँगी।''

"थोड़ा-बहुत अभी समझा दो।" भव्य पुरुष ने आग्रह किया—"शेष बाद में बता देना।"

"संसारी जीव की आत्म-कथा न तो नई है और न पुरानी—यह अनादि, शाश्वत और सनातन कथा है। इसका रूपक रहस्य मैं तुम्हें समझाती हूँ।" प्रज्ञाविशाला बोली—"तब तक संसारी जीव भी कुछ विश्राम कर लेगा।"

प्रज्ञाविशाला कहने लगी—

"इस जगती पर जो असंव्यावहारिक जीव हैं, उन जीवों का समूह असंव्यवहार नगर कहलाता है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, अग्नि और वनस्पति जगत के एकेन्द्रिय जीवों के समूह को एकाक्ष निवास नगर कहा गया है। इसी तरह दो, तीन और चार इन्द्रियों वाले विविध रूपी जीवों के समूह को विकलाक्ष निवास नगर कहा जाता है, क्योंकि ये सभी जीव विकलेन्द्रिय कहे गए हैं। पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीवों के समूह को पंचाक्ष-पशु-संस्थान नगर कहा जाता है।

"प्रत्येक भव—जन्म में भोगने योग्य उदय में आये कर्मों को 'एक भवभेद्य गोली' कहा जाता है। इन कर्मों के उदय से ही जीव सुख-दुख भोगता रहता है। वस्तुतः तो जीवात्मा अजर-अमर, अविनाशी, सभी अवस्थाओं से परे परमात्म रूप है। इसकी कभी मृत्यु नहीं होती है। यह आत्मा अनादि है। यह संसारी जीव ही कीट-पतंगा, चींटी, मेंढक, गधा, हिरन आदि बनता है।

"भव्य पुरुष! अभी तू इतना ही जान ले। संसारी जीव की भोग कथा पूरी होने दे, फिर मैं तुझे इसका रहस्य समझाऊँगी।"

× × ×

संसारी जीव के बारे में जानने के बाद आप लोग यह भी जान लें कि संसारी जीव की भोग कथा को सुनने वाले चारों श्रोता कौन थे और कर्म-परिणाम तथा कालपरिणति का क्या परिचय है। भव्य जीव की उत्पत्ति अथवा समय-परिणति ही काल-परिणति नामक रानी है। शुभ कर्मों के परिणाम से ही भव्य पुरुष का जन्म होता है, इसलिए कर्मपरिणाम उसका पिता है।

श्रुतज्ञानी सद्गुरु को सदागम कहा गया है। संसार में संचरणशील जड़ बुद्धि को अगृहीतसंकेता कहा गया है। जो बुध यानी ज्ञानीजन हैं, वे

प्रज्ञाविशाला के प्रतीक हैं। जो विचारशील और विवेकी पुरुष हैं, वे भव्य पुरुष अथवा सुमति के प्रतीक हैं।

मनुष्य अपने कर्मों से ही अपना भविष्य बनाता है, इसलिए वह भवितव्यता का पति है। लेकिन कोई भी मनुष्य अपनी बनाई भवितव्यता को बदल नहीं सकता, उसे भवितव्यता के अनुसार जीवन बिताने के लिए बाध्य होना पड़ता है, इसलिए वह भवितव्यता का पति होकर भी उसका दास ही है, क्योंकि उसे उसी के इशारों पर नाचना पड़ता है।

संसारी जीव की कथा अभी पूरी नहीं हुई। उसने क्या-क्या और भोगा, इसे उसी की जबानी सुनकर आपको अपनी स्थिति पर विचार करना है।

[८] बड़े भाग्य मानुष तनु पावा

संसारी जीव अब इसका आदी हो गया था कि पुरानी गोली घिस जाने पर उसे नई एक भववेद्य गोली दी जाती और नया रूप—जन्म धारण करने पर वह पुराना रूप भूल जाता। अनन्तकाल के भवभ्रमण के बाद संसारी जीव मनुष्य बना। मनुष्य बनकर भी वह केवल मनुष्य ही नहीं रहा, उसने वर्ण-नाम-गोत्र, स्त्री-पुरुष, बालक, युवा आदि की अन्य उपाधियाँ भी धारण कीं। कृमि-कीट, मक्खी-मच्छर, मेढक आदि रूपों की सतत यात्रा के बाद संसारी जीव पहली बार मनुष्य बना, वह मानवपुत्र के रूप में जाना जाने लगा। मानवपुत्र के रूप में उसने पहली उपाधि पुत्र की पाई, फिर दूसरी राजकुमार की उपाधि पाई। अन्य लोगों में उसकी अलग पहचान हो, इसलिए उसे एक व्यक्तिवाची नाम भी दिया गया—उसका नाम नन्दिवर्धन रखा गया।

विराट-विशाल मनुजगति नगरी में भरतक्षेत्र नाम की एक बड़ी बस्ती—बड़ा मुहल्ला है। इस बड़ी बस्ती में भी जयस्थल नामक एक नगर था। इस नगर में पद्म नाम के एक प्रजावत्सल राजा थे। नन्दा नाम की इनकी रानी थी। नन्दा के गर्भ में नौ महीने रहने के बाद संसारी जीव ने अपने परमसखा पुण्योदय के साथ जन्म लिया। दासीपुत्र प्रमोद कुम्भ ने राजपुत्र के जन्म का शुभ संवाद राजा को दिया। राजा ने उसे पुरस्कृत किया और फिर बड़ी भारी धूम-धाम से अपने पुत्र का जन्मोत्सव मनाया।

जन्मोत्सव के क्रम में ही यथासमय राजपुत्र का नामकरण हुआ और उसे नन्दिवर्धन की संज्ञा दी गई।

संसारी जीव कभी भी अपने परिवार से अलग नही रहा। प्रारम्भ से ही इसके अन्तरंग और बहिरंग—दो परिवार थे। इसके अन्तरंग परिवार में इसकी धाय थी अविवेकता। अविवेकता ने वैश्वानर नाम के एक पुत्र को जन्म दिया था। वैश्वानर संसारी जीव (नन्दिवर्धन) का अविच्छिन्न और प्रकट साथी था। वैर और कलह वैश्वानर के दो पैर थे। ईर्ष्या तथा स्तंभ नाम की दो पिंडलियां थीं; द्वेष और अशान्ति दो जंघाएं, और पैशुन्य नाम की कमर थी। इस वैश्वानर के अन्य अंग-उपांग थे—पेट परमर्मोद्घाटन, छाती अन्तस्ताप; क्षार और मत्सर भुजाएँ, गर्दन क्रूरता; कान चण्डत्व और असहिष्णुता, नाक तामस; आँखें रौद्रत्व और नृशंसता, मस्तक अनार्य आचरण। ऐसे बदशक्ल और कुरूप अविवेकता नामक ब्राह्मणी धाय के पुत्र वैश्वानर का जन्म संसारी जीव के साथ ही तब हुआ था, जब वह नन्दिवर्धन नामक मनुष्य बना था।

नन्दिवर्धन वैश्वानर को अपना सच्चा मित्र मानता था। यह तो नन्दिवर्धन बाद में जान पाया कि वैश्वानर उसका मित्र न होकर शत्रु ही था। राजपुत्र नन्दिवर्धन मुझे अपना मित्र समझता है, यह जानने के कारण वैश्वानर सदा उसके साथ ही रहता था।

वैश्वानर के साथ नन्दिवर्धन की मित्रता देखकर पुण्योदय को बहुत दुख हुआ। पुण्योदय वस्तुतः संसारी जीव का अन्तरंग मित्र था और वह भी गुप्त रूप से उसके साथ ही जन्मा था। पुण्योदय यह सोचकर खिन्न रहता था कि राजपुत्र नंदिवर्धन मेरी ओर तो कोई ध्यान नहीं देता और अपने परम शत्रु वैश्वानर को साथ लगाये रहता है।

वैश्वानर का संग साथ पाकर नन्दिवर्धन अपने से बड़े लड़कों के साथ लड़ाई-झगडा करता और उन्हें अपनी शक्ति से दबा देता। मैं अपने अन्तरंग मित्र वैश्वानर की कृपा से सब को दबा लेता हूँ, यह जानकर नंदिवर्धन बड़ा प्रसन्न होता था। लेकिन वह मूर्ख यह नहीं समझता था कि उसकी हर विजय में सच्चे मित्र पुण्योदय का ही प्रभाव है। इस तरह क्रूर मित्र का साथ पाकर नंदिवर्धन भी क्रूर हो गया और उसने आठ बसंत देख लिये। आठ वर्ष का होने पर उसके पिता राजा पद्म ने उसे योग्य आचार्य के पास भेज कर विद्याध्ययन शुरू करा दिया।

बाल्यावस्था के कारण नंदिवर्धन का चिन्ता से परिचय नहीं हुआ

था, इसलिए पढ़ाई में उसका मन लगने लगा। इन दिनों भवितव्यता भी उसके अनुकूल थी, इस कारण से भी नंदिवर्धन शिक्षा के सोपान चढ़ने लगा। फिर भी वैश्वानर जब-तब उसे कुमार्ग पर डाल कर लड़ाई-झगड़े करा देता।

नंदिवर्धन को अपने वश में जान एक दिन वैश्वानर ने उससे कहा कि मैं तेरे प्राणों को भी अक्षय बना सकता हूँ। नंदिवर्धन ने प्रसन्न मन इसकी स्वीकृति दे दी। अब वैश्वानर ने नंदिवर्धन को क्रूर से क्रूर बनाने का अपनी योजना क्रियान्वित की। उसने क्रूरचित्त नामक बड़े बनाये और नंदिवर्धन के सामने रखकर कहा कि इन बड़ों को खाओ। इनके खाने से तुम्हारी उम्र लम्बी होगी। नंदिवर्धन ने वे बड़े बड़े चाव से खा लिये। अपनी योजना के पहले चरण में सफल होकर वैश्वानर ने नंदिवर्धन से यह वचन ले लिया कि जब-जब मैं ये बड़े तुम्हें दिया करूँ, इसी तरह खा लिया करो।

एक दिन राजा पद्म ने अपने विश्वस्त सेवक विदुर से कहा कि तुम नित्य गुरुकुल जाकर यह पता लगाया करो कि राजकुमार नंदिवर्धन एकाग्रचित्र होकर विद्याध्ययन कर रहा है या नहीं।

विदुर ने दस-बीस दिन जाने के बाद जो देखा वह सब राजा को बताया और कहा कि यद्यपि राजकुमार पढ़ता तो है, पर वह उद्दण्ड भी हो गया है। अपने साथी लड़कों से लड़ता-झगड़ता है। आचार्य तक की बात नहीं मानता। इस सूचना से राजा बहुत दुखी हुआ। उसने राजकुमार के विषय में स्वयं जाकर आचार्य से बात की तो आचार्य ने बताया कि आपका पुत्र सभी कलाओं में पारंगत हो गया है। शास्त्रों में उसकी पैठ है। यह सुनकर राजा बहुत संतुष्ट हुआ और उसने आचार्य के प्रति आभार व्यक्त किया लेकिन अपने सेवक विदुर के कथन को भी राजा गलत नहीं मान रहा था। अतः आचार्य को बार-बार कुरेदा तो उन्होंने राजा को बताया—"जब आप जानना ही चाहते हैं तो सुनिये जैसे चन्द्रमा में भी कलंक होता है और धनी में कृपणता, गुलाब में काँटे, स्त्री में निर्लज्जता, तथा पुरुष में कायरता होती है, वैसे ही राजकुमार में भी कुछ दूषण हैं। इसका वैश्वानर नामक एक दुष्ट मित्र है। जब तक राजकुमार इसका साथ नहीं छोड़ेगा, इसके दुर्गुण दूर नहीं होंगे।"

राजा ने अपने सेवक विदुर से परामर्श किया कि नन्दिवर्धन का वैश्वानर से साथ कैसे छुड़ाया जाय। इस पर विदुर ने कहा कि वैश्वानर

नंदिवर्धन का ऐसा सगा बन चुका है कि यदि आप राजकुमार से उसका साथ छोड़ने को कहेंगे तो वह आपके भी विरुद्ध हो जायगा। वह घर छोड़ सकता है, पर कुमित्र को अब नहीं छोड़ेगा। फिर राजा ने पुनः कलाचार्य से परामर्श किया तो वे भी बोले—वैश्वानर का साथ छोड़ना बहुत मुश्किल है। फिर भी आप निराश न हों। एक उपाय है। आपके नगर में त्रिकाल-दर्शी एक नैमित्तिक आया हुआ है। वह सिद्ध पुत्र है। उसका नाम है जिन-मतज्ञ। आप उसका सहयोग लेकर नंदिवर्धन को वैश्वानर जैसे पापी मित्र, वस्तुतः शत्रु से मुक्त करा सकते हैं।

राजा को आशा का सहारा मिला और उसने जिनमतज्ञ सिद्धपुत्र नैमित्तिक से मिलने का निश्चय कर लिया।

[६] राजकुमार नन्दिवर्धन के पाणिग्रहण का प्रयास

प्रातःकाल के समय पद्म राजा ने एक छोटी-सी विशेष सभा जोड़ी। इस सभा में नन्दिवर्धन के आचार्य, राजा का मन्त्री मतिधन और सेवक विदुर ही मुख्य रूप से थे। फिर राजा ने जिनमतज्ञ नैमित्तिक को भी बुला लिया। सबकी उपस्थिति में राजा ने अपने पुत्र के बारे में कहा कि मेरा पुत्र नन्दिवर्धन सर्वगुणसम्पन्न है। लेकिन वह पापी वैश्वानर की संगति के कारण बिगड़ता जा रहा है। विडम्बना यह है कि वैश्वानर है तो उसका शत्रु, पर वह उसे परम हितैषी मित्र मानता है।

राजा की चिन्ता जानने के बाद नैमित्तक ने कहा कि यदि आप क्षान्तिकुमारी के साथ अपने पुत्र का बिवाह कर दें तो वैश्वानर आपके पुत्र का साथ उसी तरह छोड़ देगा, जैसे सूर्योदय के बाद अँधेरा इस जगती का साथ छोड़ देता है।

क्षान्तिकुमारी का नाम सुनकर राजा की जिज्ञासा उसके बारे में जानने की हुई तो वह बोला--यह कन्या किस राजा की पुत्री है, कहाँ रहती है। इसका रंग-रूप, स्वभाव कैसा है। पहले मैं कन्या के बारे में जानना चाहता हूँ।

"क्षान्तिकुमारी के साथ भाग्यशालियों का ही विवाह हो पाता है।" नैमित्तिक ने कहा—"पहले मैं उसके माता-पिता का परिचय देता हूँ। फिर उसके बारे में बताऊँगा।"

नैमित्तिक कहने लगा कि यहाँ चित्तसौन्दर्य नामक एक नगर है, जो सभी दोषों से मुक्त तथा कल्याणदायक है। इस नगर का शुभपरिणाम नामक राजा है। इस नगर की प्रजा सदा सुखी रहती है। इस नगर के लोगों को अगर कभी कोई संताप होता भी है तो राजा शुभपरिणाम तुरन्त शान्त कर देता है। राग-द्वेष, क्रोध, लोभ, मोह आदि संताप यदि कभी यहाँ के लोगों को दुखी करने का प्रयास करते भी हैं तो राजा शुभपरिणाम उन्हें जड़-मूल से नष्ट कर देता है। इसके साथ ही यह प्रजावत्सल राजा अपने नगर की प्रजा के लिए ज्ञान, वैराग्य, संतोष, त्याग, संयम, सौजन्य आदि की वृद्धि करता है।

इस राजा की रानी है निष्प्रकम्पता। यह रानी रति, देव-कन्याओं और अप्सराओं को भी पराजित करने वाली है। कामदेव की पत्नी रति अपने अमित सौन्दर्य और आभूषणों से सज्जित होकर किसी वीतरागी श्रमण को आकृष्ट करने का प्रयत्न करे तो कभी भी सफल नहीं हो सकती। लेकिन रानी निष्प्रकम्पता को देखते ही ज्ञानी मुनि, सत-श्रमण उस पर रीझ जाते हैं। इसी से समझ लीजिए कि यह रानी कितनी सुन्दर हो सकती है। यह रानी पतिव्रताओं में अग्रणी है। उसकी पतिभक्ति के विषय में यह कहा जाता है कि जब कभी इसके पति राजा शुभपरिणाम पर कोई आपत्ति आती है तो यह अपने प्राण देकर भी अपने पति की रक्षा करती है।

चित्तसौन्दर्य के राजा शुभपरिणाम और रानी निष्प्रकम्पता के एक कन्या है। इस कन्या का नाम है क्षान्तिकुमारी। जिसके माता-पिता ऐसे अनुपम हैं, उसकी पुत्री क्षान्तिकुमारी कैसी होगी, इसकी कल्पना आप कर ही सकते हैं। फिर भी मैं उस राजदुलारी का कुछ परिचय देता हूँ।

क्षान्तिदेवी सुन्दर से सुन्दर युवतियों में सुन्दर—सुन्दरता की सीमा है। गुणों का वह भण्डार है और अपने रूप के कारण महामुनियों के मनों को भी मोह लेती है। कहाँ तक कहें, त्रिलोकी में कोई ऐसी युवती नहीं है, जो वीतरागियों को मोह सके, पर क्षान्तिकुमारी ज्ञानी-विरागी, संत-श्रमण इनको भी मोहित कर लेती है।

जो मनुष्य क्षान्ति की सेवा करता है, वह उसके जीवन में आनन्द भर देती है। क्षान्ति जिस पर कृपा करती है लोग उसे महात्मा कहकर आदर देते हैं। बड़े-बड़े पराक्रमी, वीर इसके सामने कायर बन जाते हैं। शुक्लध्यान, केवलज्ञान जैसी दुर्लभ उपलब्धियाँ क्षान्ति की कृपा से ही मिली हैं और मिलती हैं। अधिक क्या कहें, क्षान्तिदेवी—महादान, महातप, सर्वो-

त्तम शील, सर्वोत्तम शक्ति, अद्वितीय सौन्दर्य, अमित बल, परम धैर्य, परम सत्य और मुक्ति रूप है।

हे राजन् ! आपका पुत्र नन्दिवर्धन यदि इस कन्या के समान बनने का प्रयास करे और इसके साथ विवाह करले तो त्रिलोकी में उससे भाग्यवान पुरुष दूसरा नहीं होगा।

नैमित्तिक की बात सुनकर राजा पद्म ने अपने मन्त्री मतिधन से से कहा—

"मन्त्रिवर ! तुम स्वयं राजा शुभपरिणाम के पास जाओ या किसी दूत को भेजो और भेंटादि देकर राजा से अपने पुत्र के लिए उसकी कन्या माँग लो।"

"यह कार्य इस प्रकार नहीं हो सकता।" जिनमतज्ञ नैमित्तिक ने राजा पद्म से कहा—"चित्तसौन्दर्य अन्तरंग नगर है, राजा शुभपरिणाम, रानी निष्प्रकम्पता और राजकुमारी क्षान्ति भी अन्तरंग हैं। अतः आपके बहिरंग दूत उससे कैसे बातें कर सकते हैं। अन्तरंग पात्रों से अन्तरंग पात्र ही मिल सकते हैं।

"राजन् ! जैसे शुभपरिणाम अन्तरंग राजा है, उसी तरह कर्मपरिणाम नाम का भी एक अन्य राजा है। इन दोनों अन्तरंग राजाओं में परस्पर गहरे सम्बन्ध हैं। वस्तुस्थिति यह है कि शुभपरिणाम राजा, राजा कर्मपरिणाम के अधीन और उसका अनुगामी है।

"लेकिन कर्मपरिणाम राजा आपकी प्रार्थना नहीं सुनेगा, क्योंकि वह अपने आगे किसी का रोना-धोना, पुकारना, गिड़गिड़ाना - कुछ भी नहीं सुनता। वह केवल भवितव्यता की बात मान लेता है। जब वह कोई कार्य करना चाहता है तो अपनी बड़ी बहिन लोकस्थिति से परामर्श करता है और अपनी पत्नी कालपरिणति से भी सलाह लेता है। अपने मित्र स्वभाव से भी बात करता है। आपका जो पुत्र नन्दिवर्धन है, इसका मूल नाम संसारी जीव रहा है। इसकी पत्नी भवितव्यता अनेक जन्मों में इसके साथ रही है। वही इसके बारे में कर्मपरिणाम से सिफारिश कर सकती है।

"राजन् ! राजा कर्मपरिणाम यदि स्वयं चाहें तो अपने अन्तरंग साथियों से नन्दिवर्धन के सम्बन्ध में बात करके कुछ निर्णय ले सकते हैं। उन पर बहिरंग लोगों का किंचित् भी प्रभाव नहीं है।"

"हमारे कहने से कर्मपरिणाम मानेगा नहीं।" राजा पद्म ने कहा—

"और कर्मपरिणाम के कहे बिना राजा शुभपरिणाम अपनी कन्या क्षान्ति मेरे पुत्र को देगा नहीं। अतः यह समस्या तो ज्यों की त्यों रही। फिर मेरे पुत्र का वैश्वानर से साथ कैसे छूटेगा ?"

"जो कार्य अपनी सामर्थ्य के बाहर है, उसके लिए प्रयास करना मूर्खता है।" नैमित्तिक ने कहा—"अतः आप यही सोचकर निश्चिन्त हो जाइए कि जो कुछ होना होगा, वही होगा, उसे अन्यथा कोई नहीं कर सकता।

"राजन्! फिर भी मैं आपके मन की शान्ति के लिए एक अन्य उपाय बताता हूँ। नन्दिवर्धन का एक सुहृद मित्र और है। उसका नाम है पुण्योदय। वह गुप्त रूप से सदा नन्दिवर्धन के साथ ही रहता है। उसके रहते वैश्वानर आपके पुत्र का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। वैश्वानर जो-जो अनर्थ आपके पुत्र से कराता है, पुण्योदय उनके परिणामों को कम कर देता है। कभी-न-कभी पुण्योदय की जीत होगी और वैश्वानर मुँह की खायेगा। अतः आप समय की प्रतीक्षा करें।"

नैमित्तिक के इस आश्वासन से राजा पद्म को शान्ति मिली। तभी दुन्दुभी बजने लगी और शंख का घोष हुआ। राजा पद्म चौंका कि यह सब क्यों हुआ। तभी नैमित्तिक ने आकाश की ओर देखकर कहा कि सूर्य मध्य में आ गया, अर्थात् मध्यान्ह हो गया। मध्यान्ह का होना इस बात का संकेत है कि तेज की वृद्धि क्रोध से नहीं होती, बल्कि मध्यस्थ भाव से होती है।

"बातों ही बातों में मध्यान्ह भी हो गया।" राजा ने कहा—"अब सभा विसर्जित होनी चाहिए।"

राजा पद्म ने सभा विसर्जित कर दी। उसने नैमित्तिक और कलाचार्य को सम्मानपूर्वक विदा कर दिया। फिर पुत्र स्नेह के कारण अपने सेवक विदुर को आज्ञा दी—

"विदुर! तुम नन्दिवर्धन से बातचीत करके इस भाव की परीक्षा लिया करो कि वह वैश्वानर को छोड़ देगा या नहीं।"

"जैसी स्वामी की आज्ञा।" विदुर ने कहा—"मैं नन्दिवर्धन से बातचीत करके उसके भावों की परीक्षा अवश्य करता रहूँगा और जो निष्कर्ष निकालूंगा, वह आपको समय-समय पर बताता रहूँगा।"

[१०] **स्पर्शन कथा**

दूसरे दिन विदुर नंदिवर्धन के पास गया और प्रणाम करके बैठ गया। नंदिवर्धन ने उससे पूछा कि कल तुम मेरे पास क्यों नहीं आये थे। इस प्रश्न का उत्तर देने से पूर्व विदुर ने सोचा—कल न आने कारण बताते हुए मैं नंदिवर्धन को वह कथा सुना दूँ, जिसे सुनकर इसके उस भाव का पता चल जाए कि यह पापी वैश्वानर का साथ छोड़ेगा या नहीं।

यह सोच विदुर ने कहा—राजकुमार ! यदि तुम पूरा ध्यान देकर सुनो तो मैं तुम्हें एक कथा सुनाना चाहता हूँ।

"यह तो बहुत अच्छी बात है।" नन्दिवर्धन ने कहा—"मैं आपकी कथा पूरे ध्यान से सुनूँगा।"

× × ×

जिसे हम मनुजगति नगरी कहते आये हैं, वह वस्तुतः एक देश है और जिसे भरतक्षेत्र नामक मुहल्ला कहते हैं, वह उस देश का एक प्रदेश है। इसी भरतक्षेत्र में क्षितिप्रतिष्ठित नामक नगर है। इस नगर में कर्मविलास राजा राज्य करता है। इस राजा के दो रानियाँ हैं—शुभसुन्दरी और अकुशलमाला। कालान्तर में दोनों रानियों ने एक-एक पुत्र को जन्म दिया। बड़ी रानी शुभसुन्दरी के पुत्र का नाम मनीषी और छोटी अकुशलमाला के अंगजात का नाम बाल था। दोनों भाई बड़े प्रेम से साथ-साथ रहते थे। यद्यपि दोनों विमातापुत्र थे,—पर उनमें सगे भाइयों जैसा प्रेम था।

मनीषी और बाल दोनों भाई एक बार स्वदेह नामक उद्यान में विचरण कर रहे थे कि उन्होंने एक ऐसे पुरुष को देखा जो एक ऊँचे वल्मीक के ढेर पर चढ़ा था और मूर्च्छ नामक वृक्ष की डाल में रस्सी के फंदे से फाँसी लगाकर प्रणान्त कर रहा था। तभी दोनों भाई पहुँचे और रस्सी को काटकर उन्होंने उस पुरुष को मरने से बचा लिया। थोड़ी देर बाद जब उस पुरुष की मूर्च्छा दूर हुई तो उसने दोनों भाइयों से कहा—जो सुख मुझे मरने के बाद मिलता, वह मुझे जीवित रहकर नहीं मिल सकता। अतः मुझे बचाकर तुमने मुझे सुख नहीं, दुख ही दिया है।

उस पुरुष के दुख से द्रवित होकर बाल ने उससे कहा—"मुझे इसका तो अनुमान है कि दुखी प्राणी ही आत्महत्या करता है। लेकिन तुम किस दुख के कारण मरना चाह रहे थे, यह हमें बताओ शायद मैं तुम्हारे दुख को भी दूर कर सकूं।"

राजकुमार बाल का तसल्ली भरा आश्वासन पाकर उस पुरुष ने मनीषी और बाल को अपनी व्यथा-कथा सुनाई।

मैं जिस दुःख से मरना चाह रहा था, उसका हेतु सुनो। मेरा नाम स्पर्शन है। भवजन्तु नाम का मेरा एक मित्र था। वह मित्र जो मैं चाहता था, वही करता था, कभी भी मुझसे अलग नहीं होता था। मेरे अलावा उसका कोई दूसरा मित्र नहीं था। एक बार हमारे नगर में सदागम नाम का एक व्यक्ति आया। सदागम की संगति से मेरा मित्र भवजन्तु मुझसे उदासीन रहने लगा। वह मुझसे कभी-कभी ही मिलता था। मुझे सदागम पर बड़ा क्रोध आया कि यह दुष्ट मेरा मित्र मुझसे छीनकर ही रहेगा। फिर मैंने सोचा कि जब अपना ही दाम खोटा न हो तो परखने वाले का क्या दोष है? सारा दोष तो मेरे मित्र भवजन्तु का ही है, जो मेरी प्रीति को भूलकर कल के आये सदागम की ही बातें मानता है।

एक दिन भवजन्तु ने सदागम के साथ एकान्त में पर्यालोचन किया और मुझसे रहा-सहा सम्बन्ध भी तोड़ दिया। मेरे कहने से पहले वह रुई के कोमल गद्दे पर तकिया लगा कर सोता था। रेशमी कपड़े पहनता था। स्त्री-संग में रत रहता था। अब मेरे कहने की उपेक्षा करके सदागम की बातों में आकर उसने सब कुछ त्याग दिया। धरती पर सोने लगा। रूखा-सूखा खाना शुरू कर दिया। स्त्री की छाया से भी दूर रहने लगा। धन का स्पर्श तक नहीं करता था। इस तरह भवजन्तु ने तो मुझे छोड़ दिया, पर मैंने उसका त्याग नहीं किया। कारण यह था कि मैं भवजन्तु के बिना रह नहीं सकता था। मुझे यह भरोसा था कि जब सदागम चला जायगा तो भवजन्तु फिर मुझे अपना लेगा। लेकिन ऐसा हो नहीं पाया। बल्कि हुआ यह कि भवजन्तु ने सदागम के कहने से मुझे धक्के देकर अपनी देह से बाहर निकाल दिया और क्रुद्ध होकर कहा कि मैं अब ऐसी ऐसी जगह—निवृत्ति नगर जा रहा हूँ, जहाँ तू मुझे कभी न देख सकेगा।

"आगन्तुको! मित्र विछोह के दुख के कारण मैं फाँसी लगाकर मर रहा था। लेकिन तुमने मुझे मरने नहीं दिया। मुझे मर जाने दो, क्योंकि मैं भवजन्तु के बिना रह नहीं सकता।"

इस पर राजकुमार बाल बोला—

"एक की जगह तुम्हें दो मित्र मिल गए। मैं और मेरे बड़े भाई मनीषी मिलकर भवजन्तु की पूर्ति अवश्य करेंगे।"

स्पर्शन को बाल के आश्वासन से बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने सोचा कि यह बाल तो सचमुच ही भवजन्तु की प्रतिमूर्ति है। मुझे फिर एक मन-चाहा मित्र मिल गया।

मनीषी और बाल स्पर्शन को लेकर राजभवन आ गए। राजा कर्म-विलास ने अपने पुत्रों के साथ आये स्पर्शन का स्वागत किया और कहा कि दो से तीन हो गए। तीनों प्रेम से रहो। मनीषी, बाल और स्पर्शन में दृढ़ प्रीति स्थापित हो गई।

× × ×

यह कथा पद्मराजा का सेवक विदुर राजकुमार नन्दिवर्धन को सुना रहा था। उसने आगे कहा कि मनीषी स्पर्शन और भवजन्तु के विछोह के बारे में सोचने लगा कि यदि स्पर्शन भवजन्तु का सच्चा मित्र था तो सदागम ने भवजन्तु को स्पर्शन से क्यों विलग किया। निश्चय ही स्पर्शन मित्र के रूप में भवजन्तु का शत्रु होगा। क्योंकि सदागम तो प्राणिमात्र का सहज मित्र है। वह सभी का कल्याण चाहता है। मुझे यह जानना चाहिए कि स्पर्शन मित्र बनाने लायक है भी या नहीं। उधर स्पर्शन को देखकर मनीषी का पिता कर्मविलास सोचता था कि स्पर्शन मेरा जाना-पहचाना है। मैंने इसे पहले कभी देखा अवश्य है। जैसे अपथ्य सेवन से रोग बढ़ता है, जैसे संसार कर्मरूपी रोग को बढ़ाता है, वैसे ही यह स्पर्शन भी है। मेरे पुत्रों के साथ इसकी मित्रता हो गई, यह अच्छा नहीं हुआ। जो प्राणी स्पर्शन के अनुकूल रहता है, मैं सदा उसके प्रतिकूल रहता हूँ और जो उसके प्रतिकूल रहता है मैं उसके अनुकूल हो जाता हूँ।

स्पर्शन के बारे में सब अपने-अपने ढंग से सोच रहे थे। राजकुमार बाल की माता अकुशलमाला सोचती थी कि मेरे पुत्र बाल की स्पर्शन के साथ मित्रता हो गई है, यह बहुत ही सुन्दर हुआ है, क्योंकि जो भी स्पर्शन को प्रिय लगता है, वह मुझे भी अधिक प्रिय लगता है। मेरे पुत्र और स्पर्शन की खूब अच्छी पटेगी और मेरी सभी कामनाएँ पूर्ण होंगी। ऐसा सोचते-सोचते रानी अकुशलमाला ने अपने पुत्र बाल को बुलाकर कहा—बेटे, मेरा आशीर्वाद है कि तेरा स्पर्शन से कभी विछोह न हो। तुम दोनों की मित्रता से मैं बहुत खुश हूँ।

मनीषी, मनीषी के पिता कर्मविलास और बाल की माता अकुशल-माला—सबने स्पर्शन के आने पर अपने-अपने ढंग से विचार किया। इसी विचार-क्रम में मनीषी की माता रानी शुभसुन्दरी कुछ और ही सोच रही

थी—'मेरे पुत्र मनीषी का पापी स्पर्शन से नेह-नाता जुड़ गया है, यह अच्छा नहीं हुआ। स्पर्शन मेरा सहज शत्रु है। ऐसा दुष्ट अपनी संगति से मेरे पुत्र का पतन करेगा। लेकिन मेरा पुत्र चतुर है। वह उससे ज्यादा घुलेगा-मिलेगा नहीं, इस आशा से मुझे शान्ति है। फिर भी मैं अपने पुत्र को सावधान कर दूंगी।'

"तुम्हारी यह कहानी तो बहुत लम्बी है।" राजकुमार नन्दिवर्धन ने विदुर से कहा—"फिर भी बहुत रोचक है। अब यह बताओ कि जैसे भवजंतु स्पर्शन का त्याग कर सदागम के साथ निवृत्ति नगर चला गया था, वैसे ही मनीषी या बाल ने उसका त्याग किया या नहीं।"

"बाल और उसकी माता अकुशलमाला को तो स्पर्शन स्वभाव से ही प्रिय था।" विदुर ने कहा—"पर मनीषी और उसकी माता शुभसुन्दरी उससे दूर रहना चाहते थे। पर उससे जल्दी दूर हो जाना सम्भव नहीं था। यह सब तुम आगे की कथा में सुनोगे।"

इतना कहने के बाद विदुर नन्दिवर्धन से आगे की कथा कहने लगा।

× × ×

जब से मनीषी ने स्पर्शन का साथ पकड़ा था, उसका चित्त स्थिर नहीं रहता था। अतः उसने एक दिन विचार किया कि स्पर्शन के माता-पिता, जन्म स्थान, स्वरूप, स्वभाव आदि के बारे में जान लेना चाहिए, क्योंकि इसके संग से मेरे चित्त में अशान्ति रहती है। यदि इसका साथ बना रहा तो मेरा भविष्य उज्ज्वल नहीं है।

ऐसा निश्चय करने के बाद मनीषी ने अपने अंगरक्षक बोध को बुला कर मन की बात कही और आदेश दिया कि तुम स्पर्शन के बारे में पूरी जानकारी करके मुझे दो।

बोध स्वयं यह कार्य अकेला नहीं कर सकता था। अतः उसने अपना भार प्रभाव नामक एक अनुचर पर डालकर कहा—"प्रभाव! तुम राजदूत के रूप में देश-विदेश जाते रहते हो। अतः तुम स्पर्शन के बारे में पता लगाओ कि वह कौन है, कहाँ का रहने वाला है और कैसी नीयत का व्यक्ति है।"

अब प्रभाव स्पर्शन के बारे में जानने के लिए क्षितिप्रतिष्ठित नगर से बाहर निकलकर देश-देशान्तर घूमने लगा। अनेक देशों में घूमने के बाद प्रभाव ने स्पर्शन के बारे में कई जानकारियाँ प्राप्त कीं और बोध के पास

आकर बोला कि अब मैं इत्मीनान से आपको सब कुछ बताता हूँ कि मैं स्पर्शन के बारे में जानने के लिए कहाँ-कहाँ भटका।

प्रभाव बोध को स्पर्शन यात्रा कथा सुनाने लगा—

मैं कई बहिरंग प्रदेशों में गया, पर वहाँ स्पर्शन के बारे में कुछ भी जानकारी नहीं मिली। फिर मैंने अन्तरंग देशों की यात्रा प्रारम्भ की। इस क्रम में मैं राजसचित्त नगर पहुँच गया। इस नगर में पापी, व्यभिचारी, चोर और मिथ्याभिमानी लोग रहते थे।

राजसचित्त नगर का रागकेसरी नामक राजा है और उसके मन्त्री का नाम विषयाभिलाष है। यह राजा अपने मन्त्री की मदद से समस्त विश्व को वश में करने की क्षमता रखता है। वह प्राणियों को मोहग्रस्त करने में अकेला ही है। लेकिन राजा का मन्त्री विषयाभिलाष उससे भी दस कदम आगे है। अतः संसार को वश में करने का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व राजा रागकेसरी ने मन्त्री विषयाभिलाष पर ही डाल दिया है। मन्त्री भी बड़ी कुशलता से अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करता है।

जब मैं राजसचित्त नगर में पहुँचा था तो वहां एकाएक ही शोर होने लगा। मिथ्याभिनिवेश आदि कई रथों का काफिला निकल रहा था। उन रथों में लोलुप आदि कई राजा बैठे थे। ऐसा लगता था कोई बहुत बड़ा आयोजन होने वाला था। रथों के साथ ममत्व नामक हाथी, अज्ञान नामक घोड़े, चापल्य नामक पैदल सैनिकों की भीड़ राजमार्ग पर दौड़ने लगी। विलासरूपी ध्वजाएँ फहरा रही थीं और विब्बोकरूपी शंख और रणभेरियाँ बज रही थीं। तभी मैंने विपाक नामक एक व्यक्ति से पूछा कि यह सब क्या है तो उसने मुझे बताया—"लगता है तुम परदेसी हो। इसीलिए पूछ रहे हो। चतुरंगिणी सेना के साथ यह जो सवारी निकल रही है, इसके पीछे भी एक कहानी है। हुआ यह कि एक बार राजा रागकेसरी ने अपने मन्त्री विषयाभिलाष से कहा—इस संसार को वश में करने का अभियान चलाओ। राजा के इस कार्य को पूरा करने के लिए विषयाभिलाष मन्त्री ने स्पर्शन आदि अपने पाँच सुभटों को साथ लिया। स्पर्शन आदि बहुत ही चतुर सेनानी हैं।

प्रभाव ने बोध से कहा—

स्वामी! इस प्रकरण में जब स्पर्शन का नाम आया तो मैं चौकन्ना हो गया कि स्पर्शन यहीं का निवासी है। यहीं उसकी विश्वस्त

जानकारी मिलेगी इसके बाद विपाक ने मुझ से कहा कि रेमे आदेश से स्पर्शन आदि पांचों पुरुष विश्व में घूम-घूम कर मनुष्यों को रागकेसरी और विषयाभिलाष के वश में कर रहे हैं। लेकिन फिर भी हमारे सामने एक कठिनाई है। वह यह कि संतोष नामक एक चोर छद्म रूप से हमारे पीछे पड़ा हुआ है। जिसको स्पर्शन अपने वश में करता है, संतोष चुपचाप उसे स्पर्शन से अलग करके निवृत्ति नगर में ले जाता है। यह नगर हमारी पहुँच से बाहर है।

तो परदेसी! आज राजा रागकेसरी को यह बात बताई गई कि संतोष स्पर्शन को बहुत परेशान कर रहा है। यह सुनते ही राजा राग-केसरी क्रुद्ध हो गया और उसने चतुरंगिणी सेना सजा कर युद्ध के लिए प्रयाण किया है। आप वही युद्ध-प्रयाण देख रहे हैं। लेकिन मन्त्री विषया-भिलाष ने हमारे राजा को समझाया है कि संतोष को नष्ट करने के लिए इतने बड़े युद्ध की जरूरत नहीं है। उसे तो साम नीति से ही वश में किया जा सकता है। विषयाभिलाष मन्त्री के इस परामर्श से राजा रागकेसरी का क्रोध कुछ कम हुआ है और अब संतोष को पराजित करने के लिए प्रेम-बंध नामक कलश की स्थापना की गई है। उसमें स्नेह जल भरा गया है। केलिजल्प नामक आनन्द क्रीड़ा का जयघोष, चाटुकारिता के मंगलगीत, रतिकलह नामक बाजे बजवाने के बाद जब राजा रागकेसरी रथ पर चढ़ना ही चाहता था तो उसे याद आया कि युद्ध प्रयाण से पहले मैंने अपने पिता से तो पूछा ही नहीं।

"राजा रागकेसरी का पिता कौन है?" प्रभाव ने बीच में ही विपाक से पूछा—"जिसका पुत्र रागकेसरी इतना शक्तिशाली है, उसका पिता तो और भी अधिक होगा।"

"परदेसी! तुम ठीक कहते हो। रागकेसरी के पिता महामोह की शक्ति का वर्णन करने की सामर्थ्य किसी में नहीं है। वैदिक मतावलम्बी कहते हैं कि ब्रह्म इस सृष्टि के कण-कण में व्याप्त है वही इस सृष्टि का नियन्ता और संचालक है। लेकिन सत्य यह है कि महामोह ही इस जगत को अपनी इच्छा से नचा रहा है। चक्रवर्ती और इन्द्र तक इसके वश में रहते हैं। समस्त संसार पर महामोह की अखण्ड सत्ता है। संसार के सभी जीव मदादि महामोह में ही लिप्त रहते हैं। तत्त्वों को जानने वाले और ज्ञानी कहलाने वाले व्यक्ति भी इसी महामोह के प्रभाव से क्रोधादि कषायों के वश में हो जाते हैं।

इस महामोह ने एक दिन विचार किया कि मैं तो अब वृद्ध हो गया हूँ, अतः विश्व-विजय का कार्य भार अपने पुत्र रागकेसरी को सौंप दूँ। यह सोचकर महामोह ने अपने पुत्र रागकेसरी को राजगद्दी पर बैठा दिया।

तो रागकेसरी अपने पिता महामोह के पास गया। वह तृष्णा नामक वेदी पर विपर्यास आसन बिछाकर बैठा था। उसकी भौंहें तमस नाम वाली थीं। उसका शरीर अविद्या नामक लकड़ी से बना हुआ जीर्ण-शीर्ण दिखाई दे रहा था, क्योंकि वह काफी वृद्ध हो गया था।

रागकेसरी ने अपने पिता को प्रणाम कर संतोष को वश में करने के अपने इरादे को बताया तो महामोह बोला—"पुत्र: भले ही मैं अब राजगद्दी पर नहीं हूँ। फिर भी जब तक मैं जीवित हूँ, तुझे चिन्ता नहीं करनी चाहिए। मैं यहीं बैठे-बैठे तेरी समस्या हल कर दूँगा। तुझे किसी से युद्ध करने की जरूरत नहीं है। तू यहीं रह। इस बार मैं स्वयं जाकर तेरे शत्रुओं की खबर लेता हूँ।"

रागकेसरी ने पिता की बात मान तो ली, पर उसने साथ चलने का हठ किया। महामोह ने फिर रागकेसरी को साथ ले लिया। इस निश्चय के बाद रागकेसरी ने अन्य सहयोगी राजाओं को भी बुलवा लिया। महामोह, रागकेसरी, मन्त्री विषयाभिलाष तथा अन्य राजा संतोष को जीतने के लिए निकल पड़े।

इतना कहने के बाद विपाक ने बोध के सेवक प्रभाव से कहा—

"परदेसी ! महामोह सहित इन राजाओं के प्रस्थान से पूरे राजसचित्त नगर में कोलाहल मच गया है। इस समय तुम उसी भगदड़ को देखकर चकरा गये हो।"

राजकुमार मनीषी के अंगरक्षक बोध को आगे का वृत्तान्त बताते हुए प्रभाव ने उससे कहा—

"स्वामिन ! राजसचित्त नगर, रागकेसरी राजा, राजा के पिता महामोह, विषयाभिलाष मन्त्री और स्पर्शन आदि पाँचों सुभटों के बारे में मुझे विपाक से जो जानकारी प्राप्त हुई, उसके लिए मैंने उसका आभार व्यक्त किया। आपने जो कार्य मुझे सौंपा था कि मैं स्पर्शन के मूल का पता लगाकर दूँ, सो मैंने आपको बता दिया। विपाक ने स्पर्शन के जो-जो गुण बताये थे, वे सभी विशेषताएँ अपने उस स्पर्शन में भी हैं जो राजकुमार बाल और मनीषी का मित्र बनकर यहाँ रह रहा है।

"स्वामिन ! विपाक ने मुझे बताया था कि स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रवण ये पाँच सुभट संतोष को जीतने के लिए भेजे गए थे। उन्हीं

पाँचों में एक स्पर्शन है। लेकिन सन्तोष कौन है, यह मैं नहीं जान पाया। मेरे अनुमान से संतोष को सदागम का अनुगामी सेवक होना चाहिए।"

"मैं मनीषी का अंगरक्षक हूँ।" बोध ने प्रभाव से कहा—"मेरे स्वामी मनीषी ने मुझे स्पर्शन के बारे में जानकारी करने को कहा था, वह कार्य मैंने तुम से करा लिया। संतोष के बारे में मुझे सिर मारने की क्या जरूरत है। इसके बारे में वे स्वयं चाहेंगे तो खोज कर लेंगे।"

इसके बाद बोध और प्रभाव—दोनों राजकुमार मनीषी के पास गये और विपाक से प्राप्त स्पर्शन के मूल की जानकारी उसे दे दी। □

[११] स्पर्शन की योगशक्ति

स्पर्शन के बारे में कुछ जानकारी होने के बाद मनीषी अब संतोष के बारे में जानना चाहता था। अभी तक स्पर्शन मनीषी का भी मित्र बना हुआ था। लेकिन वह अपनी माता शुभसुन्दरी के कहे अनुसार अब उसका संग-साथ छोड़ना चाहता था। एक दिन जब मनीषी और स्पर्शन साथ बैठे बातें कर रहे थे तो मनीषी ने स्पर्शन से पूछा—

"मित्र! तुम्हारा मित्र सदागम की बातों में आकर निवृत्ति नगर चला गया और तुम्हें दुखी कर गया। याद करके यह बताओ कि सदागम के साथ कोई और भी व्यक्ति था, जो भवजन्तु को तुम्हारे खिलाफ करता था।"

"हाँ, एक व्यक्ति और भी था।" स्पर्शन ने मनीषी से कहा—"मेरा असली दुश्मन तो वही है। सदागम ने तो भवजन्तु को उपदेश ही दिया था, पर उसके साथ वाले व्यक्ति ने तो भवजन्तु को मुझसे दूर कराने में पूरा जोर लगाया था। वह व्यक्ति बहुत ही दुष्ट और पापी है।"

"तो उसका नाम क्या है?" मनीषी ने कहा—"सदागम का नामोल्लेख तो तुमने बीसियों बार किया है, पर उसके साथी अपने असली दुश्मन का नाम एक बार भी नहीं बताया।"

"नहीं-नहीं! मैं उसका नाम नहीं बता सकता।" स्पर्शन एकदम भयभीत होकर बोला—"उसका नाम सुनते ही भय से मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। मैं उसके नाम से ही अधमरा हो जाता हूँ। उसका नाम मत पूछो।"

"मेरे रहते तुम्हें किसका डर है।" मनीषी ने कहा—"तुम सदागम के सेवक का नाम बता दो। नाम लेने से वह तुम्हारा क्या बिगाड़ देगा?"

मनीषी ने बहुत आग्रह किया तो भय से काँपते हुए स्पर्शन ने पहले तो चारों ओर देखा, फिर धीरे-से कहा—"उस पापी का नाम संतोष है।"

अब मनीषी समझ गया कि यह स्पर्शन वही स्पर्शन है, जिसके बारे में विपाक ने प्रभाव को बताया था। यही मन्त्री विषयाभिलाष के आदेश से लोगों को ठगता फिरता है। हमें भी ठगने आया है। इसे हमने व्यर्थ बचाया। अच्छा-भला फाँसी लगाकर मर रहा था। अब मैं इसकी मित्रता त्याग दूंगा। लेकिन एकदम यह प्रकट नहीं करूँगा कि तुम मुझे अच्छे नहीं लगते। ऊपर से दिखावे का ही मेल-जोल रखूँगा।

यह सोच मनीषी ऊपर दिखावे की मित्रता का निर्वाह करते हुए स्पर्शन के साथ उठता-बैठता था। लेकिन बाल की मित्रता दिखावे की नहीं थी। इस प्रकार जब काफी समय बीत गया तो एक दिन मनीषी, बाल और स्पर्शन बैठे थे। बातचीत के क्रम में स्पर्शन ने दोनों राजकुमारों से पूछा कि संसार में सार तत्त्व क्या है। फिर स्वयं ही उत्तर दिया–सांसारिक सुख ही संसार में सार है। तुम लोग उसका नित्य सेवन कर सकते हो। मुझमें ऐसी योगशक्ति है कि मैं चाहे जिस व्यक्ति में अथवा चाहे जिस स्थान पर छिपकर बैठ सकता हूँ। फिर वे प्राणी मेरा ध्यान करें तो उन्हें नित्य सुख मिलता रहेगा।

स्पर्शन की यह टिप्पणी सुनकर मनीषी ने सोचा कि अब तो निश्चय ही स्पर्शन ने हमें ठगना शुरू कर दिया। लेकिन बाल ललचा उठा। उसने स्पर्शन को उपालम्भ दिया कि तुम इतने दिन से हमारे साथ हो, फिर अब तक अपनी योग-शक्ति का रहस्य हमसे क्यों छिपाये रहे। तुम्हारे रहते हम सुख का भोग नहीं कर पाये। पर अब तो तू हमें सुख देना शुरू कर दे।

बाल की बात सुनकर स्पर्शन प्रसन्न हुआ कि इस पर तो मेरा जादू काम कर गया। लेकिन मनीषी की उदासीनता देखकर संदेह में पड़ा कि इसने कोई उत्सुकता नहीं दिखाई। अतः उसने मनीषी से पूछा—तुम्हारा क्या विचार है?

'मेरे मनोभाव का पता न चल जाए' यह सोचते हुए मनीषी ने कहा—"जो बाल चाहता है, वही मैं चाहता हूँ। अपनी योग-शक्ति का कुछ चमत्कार दिखाओ।"

मनीषी को भी सहमत जान स्पर्शन पद्मासन लगाकर बैठ गया। फिर ध्यान से समाधि में आया और बाल तथा मनीषी के शरीर में प्रविष्ट हो गया। उसके प्रविष्ट होते ही दोनों भाइयों ने एक नवीन चेतना का अनुभव किया।

स्पर्शन के प्रविष्ट होते ही बाल कोमल शय्या को चाहने लगा। वह सुन्दरियों के साथ रतिक्रीड़ा में तल्लीन हो गया। स्पर्शन के प्रभाव से जो-जो वस्तुएँ भवजन्तु को अच्छी लगती थीं, वही सब बाल को भी अच्छी लगने लगीं। अब वह स्पर्शन-जनित सुख में इतना डूबा कि संतोष उससे दूर भाग गया। अब ज्यों-ज्यों वह तृप्ति चाहता, त्यों-त्यों संतोष दूर भागता रहता।

स्पर्शन यद्यपि मनीषी में भी प्रविष्ट था, पर वह कोमल शय्या तथा नाना प्रकार की भोग-सामग्री से विरत रहता। वह जानता था कि मेरे अन्दर जो-जो इच्छाएँ उठ रही हैं, वे स्पर्शन ने पैदा की हैं, अतः विकार हैं। ये इच्छाएँ मेरा स्वभाव नहीं हैं। मनीषी कोई भी कार्य स्पर्शन के अनुकूल नहीं करता था। लेकिन ऊपर से उसे मित्र मानता था अतः कभी-कभी उसकी इच्छा के अनुकूल कार्य तटस्थ भाव से कर लेता था। तटस्थ भाव से भोग करने के कारण मनीषी कर्मबंध से बचा रहता था।

एक दिन स्पर्शन ने प्रकट होकर बाल से पूछा कि अपनी योगशक्ति से तुम में लीन होकर मैं तुम्हें जो-जो भोग दे रहा हूँ, उससे तुम्हें कैसा सुख मिल रहा है। इस पर बाल गद्गद होकर बोला—तुम्हारा आभार प्रकट करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। तुम्हारा जन्म ही दूसरों को सुख देने के लिए हुआ है। बाल का यह उत्तर सुनकर स्पर्शन ने सोचा—चलो, एक तो काबू में हुआ।

एक दिन स्पर्शन ने मनीषी से भी वही बात पूछी, जो बाल से पूछी थी कि मेरे रहते तुम कैसा अनुभव कर रहे हो। उत्तर में मनीषी ने गूढ़ बात कही—स्पर्शन ! तुम्हारी शक्ति का वर्णन भला कौन कर सकता है। यह उत्तर सुनकर स्पर्शन मन-ही-मन घबरा गया और सोचने लगा कि मनीषी बड़ा चालाक है। यह मेरे उद्देश्य को समझ गया है। मैं भी चालाकी से काम करूँगा और मनीषी के साथ मर्यादा में रहूँगा।

बाल ने अपनी माता अकुशलमाला से स्पर्शन के प्रभाव और उसकी योगशक्ति की बात कही तो उसकी माता ने पुत्र के भाग्य को सराहते हुए

कहा कि पुत्र तू भाग्यशाली है, जो स्पर्शन तेरा मित्र बन गया। मैं तुम दोनों के संग-साथ से बहुत खुश हूँ।

जब मनीषी ने स्पर्शन के प्रभाव के बारे में बताकर अपना तटस्थ व्यवहार अपनी माता शुभसुन्दरी को बताया तो वह बोली—पुत्र! जितना जल्दी हो सके तू पापी स्पर्शन का साथ छोड़ दे।

मनीषी बोला—माता! आप चिन्ता न करें। मैं स्पर्शन को पूरी तरह त्याग चुका हूँ। केवल ऊपरी दिखावे के लिए ही मैं अपनी मित्रता प्रकट किये रहता हूँ।

शुभसुन्दरी बोली—

ठीक है, एकदम तोड़ना भी ठीक नहीं है। क्योंकि एक बार ग्रहण कर लेने बाद भले आदमी उसे एकदम नहीं छोड़ते। तीर्थंकर भी असमय में गृहस्थ-जीवन का त्याग नहीं करते। लेकिन समय आने पर भी जो स्पर्शन का त्याग नहीं करते, वे निश्चय ही नाश को प्राप्त होते हैं।

कुछ समय बाद राजा कर्मविलास को भी अपनी रानियों द्वारा बाल और मनीषी के विचारों का पता चल गया। वह बाल से मन-ही-मन रुष्ट हो गया और मनीषी से प्रसन्न हुआ।

समय बीतता रहा। स्पर्शन के वशीभूत होकर बाल रतिक्रीड़ा, भोग-विलास आदि में डूबने लगा। वह सभी धर्मकार्यों को भूल गया। गुरुजनों को प्रणाम करना तक भी उसने छोड़ दिया। नागरिक उसकी निन्दा करने लगे। पर वह किसी की परवाह नहीं करता था।

बाल के अधोपतन को देखकर मनीषी कभी-कभी उसे समझाता कि स्पर्शन के प्रभाव में आकर तुम विधि-निषेध को भूल गए हो। जिसे तुम अपना अन्तरंग मित्र समझ रहे हो, वह वस्तुतः तुम्हारा शत्रु ही है। लेकिन बाल को मनीषी की बातें बुरी लगतीं। अतः मनीषी ने भी उसे समझाना छोड़ दिया।

[१२] मध्यमबुद्धि

क्षितिप्रतिष्ठित नगर के राजा कर्मविलास के शुभसुन्दरी और अकुशलमाला के अतिरिक्त एक तीसरी रानी सामान्यस्वरूपा नाम की और थी। इस रानी से उसके मध्यमबुद्धि नाम का एक पुत्र था। जिन दिनों बाल और मनीषी की स्पर्शन से मित्रता हुई थी, उन दिनों मध्यमबुद्धि

बाहर गया हुआ था। जब वह बाहर से लौटकर आया तो अपने भाइयों के साथ अजनबी स्पर्शन को देख बहुत चकराया उसने बाल से स्पर्शन के बारे में पूछा तो उसने बढ़ा-चढ़ाकर उसके बारे में बताया।

स्पर्शन भी मध्यमबुद्धि को अपने प्रभाव में लेने लगा और एक दिन उसके शरीर में प्रविष्ट हो गया। अब तो मध्यमबुद्धि भी कोमल शय्याओं का सेवन करते हुए रति-रमण करने लगा। मध्यमबुद्धि को अपने वश में देख स्पर्शन भी फूला नहीं समाया कि यह दूसरा भाई भी मेरे काबू में हो गया।

मध्यमबुद्धि को स्पर्शन के प्रभाव में डूबा देख एक दिन मनीषी ने उसे समझाया कि स्पर्शन बहुत दुष्ट है। यह विषयाभिलाष का भेजा हुआ यहाँ आया है। बोध और प्रभाव से मनीषी ने जो कुछ जाना था, वह सब मध्यमबुद्धि को बताया। सब कुछ सुनने के बाद मध्यमबुद्धि असमंजस में पड़ गया। कभी उसे मनीषी की बात सही मालूम पड़ती और कभी स्पर्शन भला व्यक्ति दिखाई देता। मैं स्पर्शन को छोड़ूँ या ग्रहण किये रहूँ—इस दुविधा में मध्यमबुद्धि कुछ भी निश्चय नहीं कर सका। तब संशयग्रस्त मध्यमबुद्धि अपनी माता सामान्यस्वरूपा के पास गया और मनीषी का सिखावन तथा स्पर्शन का प्रभाव बताकर पूछा—तुम्हीं कहो मैं किसकी बात मानूँ। सामान्यस्वरूपा ने उसके उत्तर में कहा—

"पुत्र! जैसा कि तुम्हारा नाम है तुम मध्यम-मार्ग अपनाओ। मनीषी की बात भी मानो और स्पर्शन का भी तिरस्कार मत करो। कालान्तर में तुम्हें जिसका पलड़ा भारी लगे, उसी तरफ झुक जाना। मनुष्य जब दुविधा में हो तब मिथुनद्वय की कथा के अनुसार आचरण करना चाहिए।"

"मिथुनद्वय की क्या कथा है?" मध्यमबुद्धि ने अपनी माता सामान्यस्वरूपा से कहा—"मुझे वह दृष्टान्त सुना दो तो मैं मध्यममार्ग का सही आचरण करना जान जाऊँगा।"

इस पर सामान्यस्वरूपा मध्यमबुद्धि को दो जोड़ों—मिथुनद्वय की कथा सुनाने लगी।

× × ×

तथाविध नामक नगर में ऋतु नामक राजा राज्य करता है। प्रगुणा उस राजा की रानी का नाम है। राजा-रानी के पुत्र का नाम है मुग्धकुमार।

मुग्धकुमार की अकुटिला नाम की पत्नी है। एक बार मुग्ध और अकुटिला उद्यान में भ्रमण को गये। वहाँ दोनों दूर-दूर हटकर इस होड़ के साथ टोकरी में फूल चुनने लगे कि जो पहले फूलों से टोकरी भरले, वही जीता माना जायगा।

जिस समय युवराज मुग्धकुमार और युवराज्ञी अकुटिला अलग-अलग फूल चुन रहे थे, उसी समय आकाश मार्ग से एक व्यंतर दम्पती गुजर रहा था। व्यंतर का नाम कालज्ञ और व्यंतरी का नाम विचक्षणा था। कालज्ञ अकुटिला पर मोहित हो गया और विचक्षणा मुग्धकुमार पर कामासक्त हो गई। कालज्ञ ने अपनी स्त्री विचक्षणा से कहा कि तुम आगे चलो मैं इस उद्यान से फूल लेकर आ रहा हूँ। जब व्यंतरी विचक्षणा आगे बढ़ गई तो व्यंतर कालज्ञ ने मुग्धकुमार का रूप बना लिया। अपने विभंग-ज्ञान से वह यह जान चुका था कि मुग्धकुमार और अकुटिला में पहले फूल चुनकर जीतने की शर्त लग गई है। अत: व्यंतर ने सोने की बनी टोकरी फूलों से भरली और अकुटिला से बोला—प्रिये, मैं पहले फूल ले आया। तुम हार गईं; मैं जीत गया। अब चलो, सामने केलि कदली कुंज में केलि-क्रीड़ा करेंगे। अकुटिला मुग्धरूपी व्यंतर के साथ कदली कुंज में चली गई। उधर यही हाल व्यंतरी विचक्षणा ने किया। वह अकुटिला बनकर फूलों से भरी टोकरी मुग्धकुमार के पास ले गई और बोली –मैं जीत गई और आप हार गये। अब चलो सामने कदली कुंज में रतिक्रीड़ा करेंगे। मुग्धकुमार भी अकुटिला रूपी व्यंतरी के साथ कदली कुंज में चला गया।

कदली कुंज में एक-जैसे दो मिथुन-जोड़े देखकर दोनों चक्कर में पड़े। मुग्ध कुमार सोचने लगा कि दूसरा जोड़ा भी हम जैसा ही है और अकुटिला भी सोचने लगी कि यह दूसरी जोड़ी भी हमारी जैसी है। लेकिन नकली मुग्धकुमार कालज्ञ व्यंतर और नकली अकुटिला विचक्षणा व्यंतरी-एक दूसरे को धोखा देने की करतूत और अपनी-अपनी कामासक्ति का रहस्य जान गए। कालज्ञ को अपनी पत्नी विचक्षणा पर बड़ा क्रोध आया और सोचने लगा कि मुग्धकुमार को मार दूं या अपनी पत्नी विचक्षणा को ही मार दूं। फिर विचार किया कि ये दोनों तो निर्दोष हैं। मैंने जो कुटिलता मुग्धकुमार बनकर की है, वही पाप मेरी पत्नी विचक्षणा ने किया है। व्यंतरी विचक्षणा भी अपने पति कालज्ञ पर बहुत क्रुद्ध हुई, फिर उसने भी सोचा मैं भी तो अकुटिला बनकर मुग्धकुमार पर आसक्त हुई थी। फिर मेरे पति का ही क्या दोष है।

इस प्रकार अपने को दोषी मानकर दोनों बहुत दिनों तक इसी स्थिति में रहे, अर्थात् व्यंतरी अकुटिला बनकर मुग्धकुमार के साथ भोग करती रही और व्यंतर मुग्धकुमार बनकर अकुटिला के साथ भोग-विलास करता रहा।

"यह दृष्टान्त तो बहुत सुन्दर है।" मध्यमबुद्धि ने अपनी माता सामान्यस्वरूपा से पूछा—"फिर आगे क्या हुआ ?"

अब सामान्यस्वरूपा आगे की कथा सुनाने लगी।

तथाविध नगर के बाहर मोहविलय नामक उद्यान था। एक बार उस उद्यान में प्रतिबोधक नामक धर्माचार्य अनेक मुनियों के साथ पधारे। राजा प्रजा उनकी देशना सुनने गए। देशना सुनने वालों में प्रमुख थे—तथाविध नगर का राजा ऋतु, रानी प्रगुणा, असली मुग्धकुमार और असली अकुटिला तथा नकली मुग्धकुमार रूपी व्यंतर कालज्ञ एवं नकली अकुटिला रूपी व्यंतरी विचक्षणा।

कर्मबंध, संसार की निस्सारता, धर्म का स्वरूप, और मोक्ष पर आचार्य प्रतिबोधक की देशना सुनने के अनन्तर व्यंतर कालज्ञ और व्यंतरी विचक्षणा अपनी स्थिति पर पश्चाताप करने लगे। कालज्ञ सोचने लगा कि एक तो मैंने नर रूप बनाकर परस्त्रीगमन किया, दूसरे राजा ऋतु और रानी प्रगुणा को इस धोखे में रखा कि मैं तुम्हारा दूसरा पुत्र दूसरा मुग्ध कुमार हूँ। इसी तरह का पश्चात्ताप व्यंतरी विचक्षणा ने भी किया। जब ये दोनों पश्चात्ताप कर रहे थे, तभी इन दोनों के शरीर से एक स्त्री निकली जो काले-लाल परमाणुओं से बनी थी। यह स्त्री धर्मसभा से निकल कर औंधा मुँह किये दूर जा बैठी। इस स्त्री के निकलते ही कालज्ञ और विचक्षणा स्वतः ही अपने असली रूप में आ गए और आचार्य के चरणों में गिर कर अपने उद्धार की प्रार्थना करने लगे। इस पर आचार्य ने कहा—

"व्यंतरो ! स्वरूपतः तुम निर्मल हो। सारा दोष उस स्त्री का है, जो औंधा मुँह किये धर्मसभा के बाहर बैठी है। इस स्त्री का नाम भोगतृष्णा है। यह राजस और तामस अणुओं से बनी है। इसके रहते प्राणी उचित-अनुचित का विचार नहीं कर पाता। इसी के कारण तुम पर-दारा तथा पर-पुरुष भोग के पापी बने हो।

"भद्रजनो ! देवयोनि होने के कारण तुम इस जन्म में भोग तृष्णा का नाश नहीं कर पाओगे। इस धर्मसभा से जाते ही यह तुम्हारे शरीर में

पुनः प्रवेश करेगी लेकिन तुमने सम्यग्दर्शन प्राप्त किया है, अतः अब तुम इसके कहने से कार्य नहीं करोगे और धीरे-धीरे अपनी खुराक न मिलने के कारण यह क्षीण होती चली जाएगी। अगले भव में जब तुम मनुष्य बनोगे, तब तुम पूर्णतया इसका नाश कर सकोगे।"

इस उद्बोधन से कालज्ञ और विचक्षणा को बड़ी शान्ति मिली। अब राजा ऋतु और रानी प्रगुणा ने कहा कि हम दोनों पुत्र और पुत्रवधू के दुगने होने के मोह में फँसे रहे तथा अपनी आँखों के सामने ही व्यंतर और व्यंतरी को भोग में रत कराया। यह तो बड़ा अनर्थ हो गया। मुग्धकुमार ने कहा कि भगवन् ! अपनी स्त्री के रहते मैंने पर-स्त्री—व्यंतरी के साथ भोग किया, यह अनर्थ मुझसे हो गया। अकुटिला बोली—मैं भी पर-पुरुष में रत रही। मैंने पातिव्रत्य को खंडित कर दिया।

ये चारों बातें कर ही रहे थे कि इनके शरीर से एक सुन्दर सुकुमार बालक निकला, जो आचार्य को नमन कर उनके पास ही बैठ गया। फिर एक दूसरा कुरूप बालक निकला जो सभा से बाहर चला गया। इसके बाद एक तीसरा कुरूप बालक निकला जो अपना आकार बढ़ाता गया। पर तभी पहले सुन्दर सुकुमार बालक ने लात मार कर उसका बढ़ना रोक दिया। यह तीसरा बालक भी धर्मसभा से बाहर दूर बैठ गया।

राजा ऋतु, रानी प्रगुणा और मुग्धकुमार तथा अकुटिला—चारों को सम्बोधित करते हुए आचार्य ने कहा—

"भद्रजनो ! इन तीनों बालकों के बारे में पहले सुनो। सुन्दर सुकुमार जो बालक मेरे पास बैठा है, इसका नाम आर्जव है। यह सबकी रक्षा करता है। जो दो बालक धर्मसभा से दूर बैठे हैं, इनमें एक का नाम अज्ञान और दूसरे का नाम पाप है। आर्जव ने लात मार कर पाप को बढ़ने से रोका था। अज्ञान के कारण मनुष्य उचित अनुचित का विचार किये बिना कार्य करता है, जो पाप बन जाता है। सारा दोष इन्हीं दोनों का है। ये पुनः तुम्हारे शरीर में प्रविष्ट होंगे। इन्हीं से तुम्हें बचना है।"

आचार्यश्री ने आर्जव, अज्ञान और पाप का स्वरूप विस्तार समझाया तो चारों ने दीक्षा लेने का निश्चय कर लिया। राजा ऋतु ने अपने छोटे पुत्र शुभाचरण को राजगद्दी पर बैठाया और पत्नी सहित दीक्षा ले ली। मुग्धकुमार और अकुटिला ने भी दीक्षा अंगीकार कर ली।

कालज्ञ और विचक्षणा दीक्षा तो न ले सके पर सम्यक्त्व प्राप्त

करके जीवन बिताने लगे। एक दिन विचक्षणा ने पूछा कि जब मैं मुग्ध कुमार के साथ भोगरत थी, तब तुमने क्या सोचा था। इस पर कालज्ञ ने बताया—पहले तो तुम्हें और मुग्धकुमार को मारने का विचार किया था। फिर सोचा कि यह कार्य फिर कभी करेंगे। इस तरह टाल दिया।

"तुमने अपने कालज्ञ नाम को सार्थक किया है।" विचक्षणा बोली—"जो अनर्थ को टाल दे, समय देखकर कार्य करे, उसका कालज्ञ नाम सार्थक ही है।"

"तुमने भी अपना विचक्षणा नाम सार्थक किया है।" कालज्ञ बोला—"जो सोच-विचार कर कदम उठाये उसका विचक्षणा नाम भी सार्थक है।"

× × ×

यह कथा सुनाने के बाद रानी सामान्यस्वरूपा ने अपने पुत्र मध्यम-बुद्धि से कहा—

"इस मिथुन युगल के दृष्टान्त का सार यह है कि मनुष्य जब संदेह-ग्रस्त हो तो उसे तुरन्त ही कोई निर्णय नहीं लेना चाहिए बल्कि कालक्षेप करना चाहिए और जब संदेहरहित स्थिति आये, तभी कोई निर्णय लेना चाहिए।

मध्यमबुद्धि ने माता की बात अच्छी तरह समझ ली। अब वह मनीषी की बात को सत्य मान कर स्पर्शन की उपेक्षा करने लगा। लेकिन दूसरे भाई बाल का मन रखने के लिए कभी-कभी स्पर्शन पर बनावटी स्नेह भी प्रकट कर देता था। इस तरह मध्यमबुद्धि मनीषी और बाल—स्पर्शन के त्याग और स्नेह—दोनों भाइयों के साथ निर्वाह करते हुए मध्यम-मार्ग पर चल रहा था।

राजा पद्म का सेवक विदुर राजकुमार नंदिवर्धन को कथा सुना रहा था। वह चाहता था कि अज्ञान के कारण नंदिवर्धन वैश्वानर को अपना मित्र समझे हुए है, उसका त्याग कर दे, क्योंकि वस्तुतः तो वैश्वानर नंदिवर्धन का अन्तरंग शत्रु ही है। यह बात दूसरी है कि गुप्त मित्र पुण्यो-दय के कारण वैश्वानर नंदिवर्धन का अधिक अनिष्ट नहीं कर पा रहा पर उसके अभिन्न सान्निध्य से नंदिवर्धन का जीवन तो अधोगामी है ही। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए विदुर द्वारा कथित कथा की अगली कड़ी भी पढ़िए। □

[१३]

मदनकन्दली

"माता तुम भी अपनी योगशक्ति का कुछ प्रभाव दिखाओ।" बाल ने अपनी माता अकुशलमाला से कहा—"स्पर्शन के प्रभाव से तो मैं बहुत सुखी हूँ।"

पुत्र की यह इच्छा सुनकर अकुशलमाला बहुत प्रसन्न हुई। सूक्ष्म रूप धारण करके वह उसके शरीर में पैठ गई। अब बाल जाति-कुजाति, हर वर्ग, हर छोटे-बड़े स्तर की स्त्रियों के साथ भोग करने लगा। नगर में उसकी निन्दा होती कि यह दुष्ट हमारी बहू-बेटियों की इज्जत लूटता है, पर बाल उसकी तनिक भी चिन्ता नहीं करता था। वह मूढ़ बलात्कार करने में भी नहीं चूकता था। यह भोग-वृत्ति अकुशलमाला के प्रभाव से बढ़ गई थी। एक दिन अकुशलमाला ने प्रकट होकर पूछा कि पुत्र! मेरा प्रभाव कैसा है तो बाल बोला– माँ तुम तो स्पर्शन से भी आगे निकलीं। तुम्हें पाकर मैं बहुत सुखी हूँ। स्पर्शन और तुम मेरे सच्चे हितैषी हो।

बाल की राज्य भर में बदनामी फैली तो मध्यमबुद्धि ने उसे समझाया, क्योंकि मनीषी ने तो उससे बात करना ही छोड़ दिया था। मध्यमबुद्धि की शिक्षा का बाल पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा तो उसने सोचा कि मूढ़ को समझाने में अपनी शक्ति नष्ट करने से क्या लाभ। इसे जो उचित लगे सो करे। लेकिन इतने पर भी मध्यमबुद्धि बाल के साथ रहता था कि शायद कभी यह अपनी भूल पर पश्चात्ताप करे।

क्षितिप्रतिष्ठित नगर के बाहर लीलाधर नाम का एक रमणीय उद्यान था। इस उद्यान में कामदेव का मंदिर था। ब्याही-अनब्याही—सभी तरह की स्त्रियाँ अपनी-अपनी कामनाएँ लेकर कामदेव का पूजन करने आती थीं। कुमारी कन्याएँ अच्छा पति मिलने की इच्छा लेकर आतीं तो ब्याही अक्षुण्ण सुहाग की कामना लेकर आतीं।

बसंत ऋतु के आगमन पर एक बार बाल और मध्यमबुद्धि लीलाधर उद्यान में घूमने चले गए। वहाँ कामदेवमन्दिर में सुन्दर स्त्रियों की चहल-पहल देखकर बाल स्पर्शन के प्रभाव से उनके साथ भोग की इच्छा करने लगा। अकुशलमाला के प्रभाव से वह उचित-अनुचित और समय-असमय का विचार भी भूल गया। उसने मध्यमबुद्धि से कहा—भैया! तुम थोड़ी देर बाहर मेरी प्रतीक्षा करो, मैं मन्दिर के भीतर होकर आता हूँ।

यह कहकर बाल मन्दिर के भीतर कोष्ठ में पहुँचा। वहाँ कामदेव और रति के शयन के लिए एक कोमल शय्या बिछी थी। स्पर्शन के प्रभाव से बाल की इच्छा हुई कि मैं इस शय्या पर लेटकर देखूँ। अकुशलमाला के प्रभाव से वह यह भूल गया कि देव-शय्या पर लेटना पाप है।

बाल देव-शय्या पर लेट गया। उसे बड़ा सुख मिला। शय्या पर लेटने के बाद वह स्त्री संग की इच्छा करने लगा। तभी शत्रुमर्दन राजा की रानी मदनकन्दली देव पूजन करने के लिए वहाँ आई।

क्षितिप्रतिष्ठित नगर के दो भाग थे—अन्तरंग और बहिरंग। अन्तरंग भाग का राजा कर्मविलास था, जिसकी तीन रानियाँ और तीन पुत्र थे। रानियाँ थीं —शुभसुन्दरी, अकुशलमाला और सामान्यस्वरूपा। इन्हीं के अंग जात राजा के तीन पुत्र थे—मनीषी, बाल और मध्यमबुद्धि। क्षितिप्रतिष्ठित नगर के बहिरंग भाग का राजा शत्रुमर्दन था। इस राजा की रानी थी मदनकन्दली। वही मदनकन्दली पूजा करते-करते वहाँ पहुँच गई, जहाँ देव शय्या पर बाल लेटा था।

मदनकन्दली को देखकर बाल ऐसे तड़पने लगा जैसे गरम रेत में पड़ी मछली तड़पती है। मंद प्रकाश के कारण मदनकन्दली बाल को लेटी हुई कामदेव की प्रतिमा ही समझने लगी और उसने चंदन लगाने, फूल चढ़ाने के साथ बाल का स्पर्श भी कर दिया। अब तो बाल का हाल बेहाल हो गया। वह कुछ आगे हरकत करता कि उससे पहले मदनकन्दली रानी पूजा करके चली गई।

बाहर खड़े-खड़े मध्यमबुद्धि को काफी देर हो गई तो वह अकुला कर बाल को देखने भीतर पहुँचा। वहाँ उसने बाल को देव-शय्या पर लेटे देखा तो बहुत धिक्कारा—"मूढ़! इसका क्या परिणाम होगा, यह भी तूने सोचा।"

"परिणाम को देखूँ या जो सुख मुझे मिल रहा है, उसे देखूँ?" बाल ने मध्यमबुद्धि से उल्टे प्रश्न किया—"मूर्ख तू है या मैं, जो स्पर्शन जैसे मित्र द्वारा दिये गये सुख को भूल रहा है?"

मध्यमबुद्धि कुछ न बोला। तब देव प्रतिमा के अधिष्ठाता देव को बाल पर क्रोध आ गया। उसने बाल को आकाश बंधन में बाँध कर शय्या से उठाकर पटक दिया और उसके शरीर में वेदना उत्पन्न कर दी। मध्यमबुद्धि भाई की दुर्दशा देखकर हाहाकार कर उठा। शोर-गुल सुनकर मन्दिर में काफी लोग आ गए। तभी व्यन्तर देव ने बाल को मन्दिर से बाहर पटक

दिया और उसकी एक आँख भी फोड़ दी। पूरी बात जानने के बाद दर्शक भीड़ बाल को पापी-पापी कहकर धिक्कारने लगी। किसी दर्शक के शरीर में प्रवेश कर व्यन्तर देव ने कहा—मैं बाल के टुकड़े-टुकड़े कर दूँगा। मध्यमबुद्धि उसके पैरों में पड़कर गिड़गिड़ाने लगा कि मेरे भाई का अपराध क्षमा कर दो।

मध्यमबुद्धि की प्रार्थना पर देव ने बाल को क्षमा कर दिया। अब मध्यमबुद्धि बाल को लेकर राजमहल आ गया। राजा कर्मविलास ने अपने पुत्र बाल की करतूत सुनी तो वह बहुत रुष्ट हुआ। उसने सबसे कह दिया कि अब कोई भी बाल से सम्बन्ध नहीं रखेगा। इसने कुल को कलंक लगाया है। राजाज्ञा के कारण सभी ने बाल से बोलना-चालना बन्द कर दिया। पर मध्यमबुद्धि उसको पुनः समझाने गया और पूछा—अपनी नादानी के कारण तू ने कष्ट पाया। अब बता, क्या हाल है। बाल ने कहा—देह का कष्ट तो अब नहीं है। पर मन बहुत बेचैन है। जिस समय मैं देव-शय्या पर लेटा था, उस समय एक स्त्री ने मेरा स्पर्श किया था। जब तक मुझ वह स्त्री नहीं मिलेगी, मेरा मन तड़पता रहेगा।

"उस स्त्री को मैं जानता हूँ।" मध्यमबुद्धि ने बाल से कहा—"वह राजा शत्रुमर्दन की स्त्री मदनकन्दली है।"

यह कह मध्यमबुद्धि भी सोचने लगा—सचमुच मदनकन्दली अमित सुन्दरी है। उसे देखकर कोई भी बेकाबू हो सकता है। भीड़ में निकलते समय मेरा स्पर्श भी उससे हो गया था। उसका स्पर्श मुझे भी सुखद लगा था। लेकिन पराई स्त्री की चाह तो पाप है। यह सोचने के बाद मध्यमबुद्धि ने बाल को समझाया कि जो वस्तु अपनी पहुँच से बाहर हो, जिसकी चाह पाप हो, उसका चिन्तन नहीं करना चाहिए। लेकिन बाल को मध्यमबुद्धि की बात अच्छी नहीं लगी। वह यही सोचता रहा, जैसे भी हो मुझे मदनकन्दली का योग मिलना चाहिए।

अपनी बात का प्रभाव न देख मध्यमबुद्धि बाल के पास से उठ गया।

× × ×

विदुर ने नंदिवर्धन से कहा—

"राजकुमार! अपनी दुर्दशा करा कर भी बाल ने स्पर्शन का साथ नहीं छोड़ा। करेला और वह भी नीम-चढ़ा–स्पर्शन के साथ माता अकुशलमाला का भी बाल पर पूरा प्रभाव था। इन दोनों के चंगुल में फँसा होने

के कारण बाल की क्या-क्या दुर्दशा और हुई, वह भी सुनो। जैसे मछली मांस के लोभ में कोटे में फँसती है, वैसे ही बाल स्पर्शन-सुख के लालच में दुर्दशा को प्राप्त हुआ था।" □

[१४] बाल की दुर्दशा

मदनकन्दली की खोज में बाल रात्रि के दूसरे प्रहर में अपने शयन-कक्ष से बाहर निकला और शत्रुमर्दन के राज्य की ओर काफी दूर चला गया। भ्रातृस्नेह के कारण मध्यमबुद्धि भी उसके पीछे-पीछे चला।

इसी बीच एक पुरुष ने बाल को पटककर रस्सों से बांध लिया। बाल चीत्कार करने लगा, तभी मध्यमबुद्धि ने उसे आवाज दी–बाल! घबड़ाना नहीं, मैं आ रहा हूँ। जब मध्यमबुद्धि दौड़कर बाल के निकट पहुँचा, तब उक्त पुरुष बँधे हुए बाल को लेकर आकाश में उड़ गया। मध्यमबुद्धि नीचे-नीचे उसके साथ दौड़ने लगा कि जहाँ कहीं यह विद्याधर मेरे भाई को पटकेगा, वहीं मैं इसे मुक्त करा लूँगा। पर मध्यमबुद्धि कहाँ तक दौड़ता? विद्याधर बाल को लेकर आकाश में अदृश्य हो गया।

भाई के यों चले जाने से दुःखी होकर मध्यमबुद्धि फांसी लगाकर आत्म-हत्या करने लगा। जिस स्थान पर मध्यमबुद्धि आत्म-हत्या कर रहा था, वह स्थान कुशस्थलपुर नगर का बाह्य भाग था।

जिस समय मध्यमबुद्धि गले में फन्दा लगा रहा था, उस समय नन्दन नाम का एक राजपुरुष आ गया। उसने मध्यमबुद्धि को मरने से रोककर फाँसी लगाने का कारण पूछा तो मध्यमबुद्धि ने बाल के अपहरण का वृत्तान्त बताकर कहा कि मैं भाई के बिना जीवित नहीं रह सकता। इस पर नन्दन ने कहा कि तेरा भाई तुझे मैं मिलवा दूँगा। मैं जानता हूँ कि वह कहाँ है।

बाल का समाचार बताते हुए नन्दन ने मध्यमबुद्धि से कहा कि कुशस्थलपुर नगर में हरिश्चन्द्र नामक राजा राज्य करते हैं। उनका रतिकेल विद्याधर एक मित्र है। शत्रुओं को जीतने के लिए रतिकेल विद्याधर ने राजा हरिश्चन्द्र को एक क्रूर विद्या सिद्ध करने का परामर्श दिया और कहा कि यह विद्या मैं तुम्हें सिद्ध करा दूँगा। इसके बाद रतिकेल एक स्थान पर राजा हरिश्चन्द्र से शत्रुदमन विद्या की साधना कराने लगा। उसकी अन्तिम परिणति के लिए रतिकेल एक सुलक्षण पुरुष को ले आया और

उसके रक्त-मांस से हवन कराने लगा। मांस-रक्त कम हो जाने से वह पुरुष पंजरमात्र रह गया; फिर भी वह जीवित है। मेरा अनुमान है कि वह तुम्हारा भाई बाल ही होगा। उसे आज ही मुक्त किया गया है।

इसके बाद नन्दन तुरन्त चला गया और पंजरमात्र रह गये बाल को ले आया। नन्दन ने बाल से कहा कि मैं तेरे भाई को तुझे सौंपकर राज-द्रोह कर रहा हूँ। लेकिन मैंने तुझे भाई से मिलाने का वचन दिया था, अतः मुझ पर जो संकट आयेगा, देखा जाएगा। तू इसे लेकर तुरन्त यहां से चला जा।

मध्यमबुद्धि बाल को लेकर अपने नगर में आ गया। कई दिन की शुश्रूषा के बाद बाल कुछ बोलने लायक हुआ। फिर उसने मध्यमबुद्धि को अपनी राम कहानी सुनाई कि रतिकेल विद्याधर मुझे ले गया था। उसने विद्या सिद्धि के लिए मेरे रक्त-मांस का प्रयोग करके मुझे मरणासन्न करके छोड़ दिया।

जिस समय मध्यमबुद्धि बाल की आपबीती सुन रहा था, उस समय मनीषी भी वहाँ आ गया। उसने मध्यमबुद्धि से पूछ-ताछ की तो उसने मनीषी को सब वृत्तान्त बताकर कहा कि इतने पर भी बाल की बुद्धि ठिकाने नहीं है, मुझे इसका बहुत दुःख है।

मनीषी ने मध्यमबुद्धि से कहा कि बाल की जो दुर्दशा हुई है या जो आगे होगी, उसमें बाल का दोष नहीं है। सारा दोष पापी स्पर्शन का है। बाल का इतना ही दोष है कि स्पर्शन—जैसे घातक शत्रु को यह मित्र मान बैठा है। जब तक यह स्पर्शन को नहीं छोड़ेगा, इसका कल्याण नहीं होगा। अतः मध्यमबुद्धि तू क्यों व्यर्थ दुखी होता है? बाल जैसा करेगा, वैसा भरेगा। बाल के अपहरण का वृत्तान्त मुझे भी मालूम है। जब विद्याधर इसे उठाकर ले गया था, तब नगर के लोग खुशी मना रहे थे कि बाल बड़ा पापी था, जो हमारी बहू-बेटियों के साथ बलात्कार करता था।

इतना सब सुनने के बाद बाल ने मनीषी से कहा—

"तुम व्यर्थ ही मेरी आलोचना कर रहे हो। बड़े कार्यों को सम्पन्न करने से पहले बड़े-बड़े संकट आते हैं। धीर-पुरुषों को वे संकट धैर्य के साथ सहन करने चाहिए। मैं भी अपने उद्देश्य की पूर्ति में लगा हूँ। जो भी संकट आयेंगे, सहन करूँगा।"

मनीषी ने सोच लिया कि बाल का रोग असाध्य है। इसे साक्षात् बृहस्पति भी नहीं समझा सकते। इससे बातें करना बेकार है। यह सोचकर

मनीषी ने इशारे से मध्यमबुद्धि को बुलाया और उसे साथ लेकर बाल के पास से उठ गया। मनीषी ने मध्यमबुद्धि से कहा—इन दिनों पिताजी ही बाल से रुष्ट नहीं हैं, नगर का बच्चा-बच्चा इसके आतंक से दुखी है। जो कुछ इसने कामदेव के मन्दिर में कुकृत्य किया, वह सब जान गये हैं। भव-जन्तु कितना समझदार था जो स्पर्शन को छोड़कर चला गया। बाल उसे 'आ बैल मुझे मार' की तरह साथ ले आया।

मध्यमबुद्धि सोचने लगा कि मनीषी ठीक कहता है। जिस कार्य में रंचमात्र भी सुख नहीं है, बाल स्पर्शन के बहकावे में आकर उसी को सुख मानता है और दुख-पर-दुख उठाता चला जाता है। मैं भी अब मनीषी का अनुकरण करते हुए गुणसंग्रह के प्रयत्न में जुट जाऊँगा। मध्यमबुद्धि ने जब मन की बात मनीषी से कही तो वह बोला—भाई मध्यमबुद्धि ! तुझे जैसा ठीक लगे, वैसा कर। मेरा कहना तो इतना ही है कि स्पर्शन को मुँह मत लगा।

× × ×

एक दिन अकुशलमाला और स्पर्शन–दोनों बाल के शरीर से निकल कर प्रकट हुए। पहले अकुशलमाला बोली—"वत्स ! तूने मेरी कोख को सार्थक किया है। मेरे पुत्र को ऐसा ही होना चाहिए। तूने मनीषी को मुँह-तोड़ उत्तर देकर मेरा मन प्रसन्न किया है।" फिर स्पर्शन बोला—"सचमुच बाल तूने मेरे प्रति अपना प्रेम प्रदर्शित किया है। तूने मनीषी से जो यह कहा कि बड़े कार्यों को पूरा करने से पूर्व संकट आते ही हैं, यह तूने ठीक कहा। मनीषी पापी है। मध्यमबुद्धि उसकी बातों में आ गया है, पर तू कभी उसकी बातों में मत आना। अब हम तीनों ही एक दूसरे के सुख-दुख के साथी हैं।"

इतना कह स्पर्शन पुनः बाल के शरीर में प्रविष्ट हो गया। तदनन्तर अकुशलमाला भी प्रविष्ट हो गई। दोनों के प्रभाव से बाल पुनः मदनकन्दली के लिए तड़पने लगा। एक दिन वह रात्रि के प्रथम प्रहर में महल से बाहर निकला और राजा शत्रुमर्दन के महल की ओर चल दिया। मध्यमबुद्धि ने उसे घर से बाहर जाते तो देखा, पर इस बार उसका पीछा नहीं किया। वह अब मनीषी के कहे अनुसार पूर्णतः तटस्थ हो गया था।

पहरेदारों से आँखें बचाकर बाल शत्रुमर्दन के शयनकक्ष में पहुँच गया। वहाँ रानी मदनकन्दली श्रृंगार कर रही थी और उसकी शय्या खाली पड़ी थी। स्पर्शन के प्रभाव से बाल के मन में शय्यासीन होने की इच्छा हुई

और वह लेट गया। थोड़ी देर बाद राजा शत्रुमर्दन भी वहाँ अंगरक्षकों सहित आ गया। राजा को देखकर बाल कुमार्गी होने से भयभीत होकर शय्या से नीचे गिर पड़ा। उसके गिरने से धमाका हुआ। राजा शत्रुमर्दन ने उसे तुरन्त बंदी बनाया और विभीषण नामक सेवक को बुलाकर कहा कि इस पापी को दण्डित करो।

विभीषण ने बाल को तरह-तरह की यातनाएँ दीं। उसकी देह में कीलें ठोकीं। गरम तेल डाला। कोड़ों से पीटा। बाल रात भर हाय-हाय चिल्लाता रहा। सवेरे अनेक नागरिक राजमहल के सामने यह देखने खड़े हो गये कि रात भर चिल्लाने वाला कौन है।

बाल को देखकर सभी नागरिक चिल्लाये—

"अरे, यह पापी अभी तक जीवित है? इसे तो मार ही देना चाहिए।"

राजा शत्रुमर्दन ने बाल को मृत्यु दंड देने का निश्चय किया। बध-स्थल पर भेजने से पूर्व उसने सुबुद्धि मंत्री से पूछा तो मंत्री बोला—मैं पहले ही कह चुका हूँ कि हिंसा कार्य में मेरी सलाह मत लेना। अत: राजा ने सुबुद्धि के परामर्श लिये बिना ही बाल वधिकों को सौंप दिया।

वधिकों ने बाल को गधे पर चढ़ाकर काला मुँह कर दिया और दिन भर नगर में घुमाया। रात्रि को उसे फाँसी लगाकर चले गए। लेकिन भावी या भवितव्यता की कृपा से रस्सी बीच में ही टूट गई। बाल मूर्च्छित हो गया। वन की सुखद प्राणवायु के स्पर्श से बाल को होश आ गया और वह उठकर घर चला गया।

× × ×

इस कथा के श्रोता-वक्ता के दो वर्ग हैं। एक वर्ग में प्रज्ञाविशाला, सदागम, भव्य पुरुष और अगृहीतसंकेता श्रोता हैं—मुख्य श्रोता अगृहीत-संकेता ही है और संसारी जीव वक्ता है, जो तस्कर के रूप में पकड़ा जाकर अपने अनेक जन्मों की कथा सुना रहा है।

दूसरे वर्ग में संसारी जीव जब नंदिवर्धन राजपुत्र बना था; तब विदुर उसको कथा सुना रहा था।

अदुगृहीतसंकेता ने संसारी जीव से कहा—

"अनेक जन्मों में भटकने के बाद तुम नंदिवर्धन बने। तुमने अपने चर विदुर से यह कथा सुनी। आगे की बात कहने से पहले यह बताओ कि

क्षितिप्रतिष्ठित नगर तो एक था, फिर उसके कर्मविलास और शत्रुमर्दन—दो राजा कैसे हो गए। इस पर संसारी जीव ने कहा—

"अगृहीतसंकेता ! कर्मविलास नगर के अन्तरंग भाग का राजा है और शत्रुमर्दन उसके बाह्य भाग का। बहिरंग राजा अपराधियों को बाह्य शारीरिक दंड देते हैं। लेकिन अन्तरंग राजा भीतर ही भीतर गुप्त रूप से अच्छे-बुरे कर्मों (अपराधों) का परिणाम (दण्ड) निश्चित कर देता है। बाल को जो-जो दुख भोगने पड़े, वे अन्तरंग राजा उसके पिता कर्मविलास की प्रेरणा से ही भोगने पड़े।

"अगृहीतसंकेता ! विदुर ने नंदिवर्धन के रूप में मुझे जो आगे कथा सुनाई, उसे भी ध्यान देकर सुन।"

उधर विदुर नंदिवर्धन से आगे कह रहा था कि मध्यमबुद्धि ने बाल पर जो बीती, वह सब जान लिया। वह उसके पास तो नहीं गया, पर थोड़ा स्नेह होने के कारण बाल की दुर्दशा सुनकर उसे दुख अवश्य हुआ। जब पुनः विचार किया तो उसका दुख दूर हो गया और उसने सोचा कि मनीषी सर्वत्र प्रशंसा पाता है। मैं भी यदि बाल का साथ पकड़े रहता तो मेरी भी निन्दा होती। मैं जब से मनीषी के कहे अनुसार चल रहा हूँ, तब से कितना सुखी हूँ। मेरी भी कहीं निन्दा नहीं होती।

इस प्रकार विचार करने से मध्यमबुद्धि के हृदय में बाल के प्रति जो थोड़ा स्नेह था, वह भी समाप्त हो गया।

मनीषी और मध्यमबुद्धि बड़े सुख से जीवन व्यतीत कर रहे थे और बाल महल के बाहर ही नहीं निकलता था। वह भयभीत होकर जी रहा था।

[१५] मनीषी के प्रति राजा कर्मविलास की अनुकूलता

एक दिन राजा कर्मविलास ने बड़ी रानी शुभसुन्दरी से कहा—

"प्रिये, जो मनुष्य स्पर्शन को अपना मित्र बनाता है, मैं उससे रुष्ट रहता हूँ और उसे रानी अकुशलमाला के जरिये दंडित करता हूँ। यही कारण है कि मैं बाल से रुष्ट हूँ और अकुशलमाला उसके अनुकूल है। लेकिन अब मैं मनीषी को अपनी अनुकूलता का पुरस्कार देना चाहता हूँ, क्योंकि वह स्पर्शन से दूर है। इस काम में तुम मेरी मदद करो।"

पति की आज्ञा शिरोधार्य कर रानी शुभसुन्दरी सूक्ष्म रूप बनाकर मनीषी में प्रविष्ट हो गई। उसके प्रविष्ट होते ही मनीषी की प्रफुल्लता और धर्मोत्साह द्विगुणित हो गया। राजा कर्मविलास के कहने से यही काम रानी सामान्यस्वरूपा ने किया, वह भी अपनी योगशक्ति से मध्यमबुद्धि में प्रविष्ट हो गई। अपने इन दोनों पुत्रों को राजा कर्मविलास उन्नति के शिखर पर चढ़ाना चाहता था।

एक बार क्षितिप्रतिष्ठित नगर के बाहर निजविलसित उद्यान में प्रबोधनरति आचार्य शिष्यमुनियों के साथ पधारे। शुभसुन्दरी और सामान्यस्वरूपा के योग प्रभाव से मनीषी और मध्यमबुद्धि आचार्य की वंदना करने निजविलसित उद्यान में पहुँचे। न चाहते हुए भी, 'इसका भी कल्याण हो' यह सोचकर मध्यमबुद्धि बाल को भी मुनि-वंदन को ले गया। बहिरंग भाग का राजा शत्रुमर्दन भी मुनि की वंदना करने पहुँचा। मनीषी, मध्यमबुद्धि, शत्रुमर्दन आदि ने प्रबोधनरति की बहुमानपूर्वक वंदना की। लेकिन बाल उपेक्षित भाव लिये बैठा रहा। शत्रुमर्दन के मंत्री सुबुद्धि ने भी मुनि की वंदना की। फिर सब आचार्य की देशना सुनने बैठ गए।

राजा शत्रुमर्दन ने आचार्य प्रबोधनरति से अनेक प्रश्न पूछे। आचार्य ने जो उत्तर दिया, उसका सार संक्षेप यह था कि सब क्लेशों की जड़ कर्म हैं। कर्म ही हमें सुख-दुख के झूले में झुलाते हैं। संसार के हर सुख के पीछे दुख छिपा रहता है। जब संयोग होगा तो वियोग भी निश्चित होगा। इसलिए संयोग को न चाहकर योग को चाहो, क्योंकि योग अखण्ड होता है, उसमें वियोग नहीं होता।

संसार में एक मात्र धर्म ही सार है। मनुष्य का सबसे बड़ा स्वार्थ मन-कर्म-वचन से धर्म में प्रेम होना चाहिए। धर्म का सहारा ही सच्चा सहारा है। इस रहस्य को बहुत लोग जानते हैं कि धर्म मनुष्य के लिए कल्पवृक्ष है; फिर भी सभी जीव धर्म को नहीं पकड़ते। इसका कारण यह है कि मनुष्य तत्काल सुख प्राप्त करना चाहता है और धर्म-साधन में समय लगता है। अतः मनुष्य इन्द्रियों का दास बनकर तात्कालिक सुख में डूबा रहकर धर्म से दूर रहता है।

स्पर्श, जीभ, नाक, आँख और कान—ये पाँच इन्द्रियाँ मनुष्य को उलझाये रहती हैं। मनुष्य सुखद-कोमल स्पर्श पाकर सुख की भ्रान्ति में उलझ जाता है। उसे कठोर स्पर्श बुरा लगता है। इसी तरह वह सुगंध को पसंद और दुर्गन्ध को नापसंद करता है। सुन्दर रूप का लोभी मनुष्य

कुरूपता से दूर रहता है और कानों से प्रशंसा-तारीफ सुनना पसंद करता है, बुराई सुनना नापसंद करता है। उसे कोयल की बोली अच्छी लगती है तथा कौए की कांव-कांव बुरी लगती है। जीभ से मीठा खाना पसंद करता है, कड़ुवे को थूक देता है। सभी इन्द्रियाँ दुर्जेय हैं। बड़े-बड़े वीर इनके वश में रहते हैं।

मनुष्य को नचाने वाली, पहले सुख का आभास कराकर बाद में दुख देने वाली पाँचों इन्द्रियों में स्पर्शेन्द्रिय सबसे अधिक बलवान है। यह अकेली ही मनुष्य को नरक की ओर ले जाने में समर्थ है।

जब राजा शत्रुमर्दन ने पूछा कि स्पर्शेन्द्रिय को कोई वश में कर सकता है या नहीं तो आचार्य प्रबोधनरति बोले कि स्पर्शेन्द्रिय से प्रभावित चार प्रकार के मनुष्य होते हैं। मैं संक्षेप में उन चारों का स्वरूप समझाता हूँ, फिर तुम इस शत्रुरूपा इन्द्रिय के धोखे से बचना जान जाओगे।

[१६] मनुष्यों के चार प्रकार

आचार्य प्रबोधनरति ने बताया कि स्पर्शेन्द्रिय के साथ सम्बन्ध बनाने-बिगाड़ने वाले चार प्रकार के मनुष्य होते हैं—(१) उत्कृष्टतम, (२) उत्कृष्ट, (३) मध्यम और (४) जघन्य या अधम। इनमें पहले उत्कृष्टतम के माता-पिता नहीं होते, ये स्वतः ही जन्मते हैं। इन्हें भवजन्तु कोटि का प्राणी कहते हैं। शेष तीनों उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य की माताएँ तीन तथा पिता एक—कर्मविलास होता है। उत्कृष्ट की माता शुभसुन्दरी, मध्यम की सामान्यस्वरूपा और जघन्य की माता अशुभमाला होती है। संक्षेप में चारों का स्वरूप इस प्रकार है।

प्रत्येक जीव का इन्द्रियों के साथ सम्बन्ध अनादि काल से चला आ रहा है। लेकिन जब मनुष्यों को यह समझाया जाता है कि स्पर्शेन्द्रिय शत्रु-रूपा है, इसके धोखे में मत आना तो उत्कृष्टतम प्राणी तुरन्त इसका त्याग करके संतोष को अपना लेता है। वह सभी कार्य इसके विरुद्ध करके संतुष्ट रहता है। जैसे कठोर धरती पर सोना, सुखद स्पर्श से दूर रहना और केश लुंचन करना आदि। उत्कृष्टतम प्राणी दीक्षा लेकर इन्द्रियों की दासता से मुक्त होकर अन्त में संसार से ही मुक्त हो जाता है।

उत्कृष्ट प्राणी और उत्कृष्टतम प्राणी में थोड़ा ही अन्तर है। उत्कृष्ट

प्राणी बाहरी रूप से स्पर्शेन्द्रिय से मित्रता करते हैं, पर ये बोध अर्थात् ज्ञान और प्रभाव अर्थात् धर्मोपदेश के द्वारा स्पर्शेन्द्रिय के स्वभाव, मूल आदि की खोज करते हैं, और सब कुछ जान लेने के बाद ये भी स्पर्शेन्द्रिय से विरक्त हो जाते हैं।

मध्यम प्राणी संशय के झूले में झूलते हुए समय व्यतीत करते रहते हैं। कभी उन्हें उत्कृष्ट प्राणियों की बात अच्छी लगती है तो कभी जघन्य प्राणियों की बात सुहाती है। ये पूरी तरह से स्पर्शेन्द्रिय का साथ तो नहीं छोड़ते, पर मर्यादा का ध्यान अवश्य रखते हैं। कालान्तर में जब ये स्पर्शेन्द्रिय द्वारा जघन्य प्राणियों की दुर्दशा देखते हैं तो फिर इनका संदेह समाप्त हो जाता है और ये भी उत्कृष्ट मनुष्य बनकर स्पर्शेन्द्रिय से नाता तोड़ लेते हैं।

जघन्य प्राणी तो पूरी तरह स्पर्शेन्द्रिय के दास होकर जीते हैं। ये अपनी दुर्दशा देखकर भी यह नहीं जानते कि यह इन्द्रिय हमारी शत्रु है।

इसके बाद राजा शत्रुमर्दन के मन्त्री सुबुद्धि ने आचार्य प्रबोधनरति से पूछा कि चारों प्रकार के मनुष्य कैसे बनते हैं तो आचार्य बोले कि चार प्रकार के मनुष्यों का स्वरूप स्वाभाविक नहीं है। इसके पीछे कुछ कारण हैं।

उत्कृष्टतम प्राणियों ने अपना कार्य सिद्ध कर लिया है और उत्कृष्ट प्राणी अपना कार्य सिद्ध करना चाहते हैं। ये प्राणी कर्मानुसार बनते हैं। शुभ, अशुभ और सामान्य (शुभाशुभ) तीन प्रकार के कर्म होते हैं। इन्हीं से कर्मों की पद्धति बनती है—शुभ पद्धति, अशुभ पद्धति और सामान्य पद्धति। इस क्रम से कर्मविलास तो तीन प्रकार के मनुष्यों का पिता बनता है और तीनों पद्धतियाँ माता बनती हैं।

इनमें उत्कृष्टतम प्राणियों का स्वरूप स्थिर है। ये कभी दूसरी स्थिति को प्राप्त नहीं होते। अन्य प्राणियों का स्वरूप बदलता रहता है, क्योंकि ये अपने पिता कर्मविलास के अधीन रहते हैं। कर्मविलास राजा उत्कृष्ट प्राणियों को मध्यम, मध्यम को उत्कृष्ट और मध्यम को जघन्य बना देता है। अतः जो प्राणी कर्मविलास राजा के चंगुल से छूट चुके हैं, उनकी स्थिति एक-सी—कभी न बदलने वाली रहती है।

उत्कृष्टतम प्राणी अपने स्वभाव से स्वतः ही बनते हैं। इस प्रकार के प्राणी बनने का उपाय जिनेश्वरप्रणीत धर्म की भावदीक्षा लेना और उसका निर्वाह करना है।

इस देशना के बाद मनीषी ने विचार किया कि आचार्य ने जो कुछ कहा है, वह सब हम भाइयों पर घटित होता है। हमारे साथ जो स्पर्शन रह रहा है, उसका स्वभाव भी वही है, जो स्पर्शेन्द्रिय का कहा गया है।

स्पर्शन को हम भाइयों ने आत्म-हत्या करने से बचाया था तो उसने भवजन्तु के द्वारा उसे त्यागने की बात कही थी। भवजन्तु उत्कृष्टतम श्रेणी का जीव था। मेरा भाई मध्यमबुद्धि मध्यम कोटि का है। मेरे विचार उत्कृष्ट प्राणियों जैसे ही लग रहे हैं। हमारा छोटा भाई बाल वास्तव में जघन्य कोटि का प्राणी है।

मध्यमबुद्धि ने मनीषी से पूछा कि भाई तुम क्या सोच रहे हो तो मनीषी ने उसे अपने मन की बात बताई। इस पर मध्यमबुद्धि ने कहा कि मेरा रहा-सहा संशय भी अब तुम्हारे विचारों और आचार्य की देशना से नष्ट हो गया। केवल शरीर-निर्वाह के लिए ही हमें इन्द्रियों का उपयोग करना नष्ट चाहिए, क्योंकि धर्म की साधना शरीर से ही होगी। मैं भी अब तुम्हारी तरह स्पर्शन से मुँह मोड़ लूँगा।

बाल ने जो कुछ सुना, वह न सुनने जैसा ही था। उसका पूरा ध्यान मदनकन्दली की ओर था। मदनकन्दली अपने पति राजा शत्रुमर्दन के पास बैठी थी। बाल उसके अंग-प्रत्यंगों को देख-देखकर नाना प्रकार के उपमानों को इकट्ठा कर रहा था। कमल से चरण, कदली-सी जंघाएँ आदि के साथ वह उरोज, नेत्र, नासिका के लिए कलश, दाड़िम, खंजन, मीन, शुक की उपमा जुटा रहा था। वह उसके स्पर्श के लिए मतवाला हो रहा था और यह भूल गया था कि इसके स्पर्श की चाह के कारण ही राजा शत्रुमर्दन ने मेरी पिटाई करवाई थी तथा मुझे फाँसी पर लटका दिया था।

सब अपने-अपने विचारों में डूबे थे। मनीषी ने उत्कृष्टतम प्राणी बनने का निश्चय किया और मन-ही-मन दीक्षा लेने का भाव दृढ़ किया। सुबुद्धि मन्त्री और आचार्य प्रबोधनरति की बात सुनकर मध्यमबुद्धि ने भी दीक्षा लेने का निश्चय किया, लेकिन वह यह भी सोचने लगा कि मैं चारित्र का पालन सही ढंग कर भी पाऊँगा या नहीं।

उधर सुबुद्धि के एक प्रश्न का उत्तर देते हुए आचार्य प्रबोधनरति बोले कि गृहस्थधर्म धर्मपालन की शक्ति तो उत्पन्न कर सकता है, पर वह प्रत्यक्ष शक्ति उत्पन्न नहीं कर सकता। गृहस्थ-धर्म मध्यम कोटि के जीवों के लिए है। गृहस्थाश्रम में रहते-रहते मध्यमकोटि का प्राणी एक दिन

उत्कृष्ट कोटि का प्राणी बन जाता है। प्रत्यक्ष रूप से तो श्रामणी दीक्षा ही सब दु:खों को नष्ट करने में पूर्ण समर्थ है। यह सुनने के बाद मध्यमबुद्धि ने सोचा कि मुझे तो अभी गृहस्थ-जीवन में रहकर ही जिनेश्वरप्रणीत धर्म का चिन्तन-मनन करते रहना चाहिए। □

[१७] बाल की भवितव्यता

बाल अपलक दृष्टि से मदनकन्दली को देखे जा रहा था। उसके स्पर्श-सुख की कल्पना में उसे एक-एक क्षण भारी पड़ रहा था। उसे लगा कि रानी मदनकंदली भी मुझ पर अनुरक्त है। यह सोचते ही वह उठकर रानी मदनकंदली को आलिंगन में भरने के लिए दौड़ा, तभी धर्मसभा में बैठे लोग चिल्लाये—पकड़ो-पकड़ो, यह कौन लम्पट है। राजा शत्रुमर्दन चिल्लाया—अरे यह तो वही पापी है, जिसे मैंने फाँसी दी थी। यह बच कैसे गया?

बाल राजा शत्रुमर्दन का तेज नहीं सह पाया। वह भयभीत होकर भागा और दुर्बल होने के कारण गिर पड़ा। तभी उसके शरीर से स्पर्शन और अकुशलमाला निकले और धर्मसभा की सीमा से दूर जा बैठे। 'मरे को क्या मारूं" यह सोच, दीन जानकर राजा शत्रुमर्दन ने बाल का पीछा छोड़ दिया और अपनी जगह आ बैठा। फिर उसने आचार्य प्रबोधनरति से पूछा—

"भन्ते! यह बाल इतना अधम प्राणी क्यों है, जिसने धर्मसभा की मर्यादा का भी उल्लंघन किया?"

आचार्य बोले—

"राजन्! बाल का दोष नहीं है। दोषी तो वे दोनों प्राणी हैं जो दूर बैठे हैं। इनमें एक बाल की माता अकुशलमाला है और दूसरा स्पर्शन है। ये दोनों ही इससे अनर्थ कराते रहते हैं। जब बाल उठकर बाहर जायेगा, ये दोनों पुनः इसके शरीर में प्रविष्ट हो जायेंगे।"

राजा ने दूसरा प्रश्न किया—

"फिर बाल इन दोनों दुष्टों को अपने शरीर में क्यों रहने देता है?"

आचार्य बोले—

"राजन्! बाल यह जानता ही नहीं है कि स्पर्शन अधम और पापी है। वह यह भी नहीं जानता कि यह प्राणिमात्र का शत्रु है। वह तो उसे परम मित्र मानता है। इसीलिए उससे प्रीति रखता है।"

"बाल की इस भ्रान्ति का क्या कारण है?" राजा ने पूछा—"यह बाल शत्रु को मित्र क्यों समझता है?"

"अपनी माता अकुशलमाला के कारण बाल स्पर्शन जैसे शत्रु को भी मित्र समझता है। अकुशलमाला अपनी योगशक्ति से बाल की देह में रहती है और वही बाल को बताती रहती है कि स्पर्शन तेरा मीत है। जिसकी माता अकुशलमाला—अशुभ कर्मों की शृंखला होगी, वह तो स्पर्शन शत्रु से प्रीति करेगा ही।"

राजा ने पुनः पूछा—

"आप जैसे आचार्य के सामने बाल के मन में नीच विचार क्यों उत्पन्न हुए?"

आचार्य बोले—

"राजन्! कर्म दो प्रकार के होते हैं—(१) सोपक्रम और (२) निरुपक्रम। सोपक्रम कर्मों का क्षय महापुरुषों के संयोग से होता है। लेकिन निरुपक्रम कर्मों का क्षय महापुरुषों के संयोग से भी नहीं होता। अतः निरुपक्रम कर्मों में बँधा प्राणी महापुरुषों के सामने भी नहीं चूकता। ऐसे प्राणी तीर्थंकर के समक्ष भी बुरा आचरण करते हैं। इसीलिए बाल भी बुरा कृत्य करने को उद्यत हुआ था।

"राजन्! बाल के शरीर में अकुशलमाला निरुपक्रम कर्म के रूप में रहती है और वह उसकी माता होने के कारण निकट भी है। अपनी माता की प्रेरणा से ही यह बाल पापी स्पर्शन से प्रेम करता है।"

"भगवन्! बाल की भवितव्यता के बारे में भी बताने की कृपा कीजिए।" राजा शत्रुमर्दन ने कहा—"इसका अन्त किस प्रकार होगा?"

आचार्य प्रबोधनरति बताने लगे—

"राजन्! इस समय बाल तुम से भयभीत है। जब तुम यहाँ से चले जाओगे तो यह पुनः अकुशलमाला और स्पर्शन के अधीन हो जाएगा। तुम्हारे भय से यह क्षितिप्रतिष्ठित नगर छोड़ देगा और घूमते-घूमते यह नाना कष्ट सहता हुआ कोल्लाक सन्निवेश के कूर्मपूरक गाँव में पहुँचेगा।

गाँव के पास दोपहरी में प्यास से व्याकुल यह जंगल में एक तालाब के निकट पहुँच जाएगा।

"राजन् ! उसी समय दोपहर को एक चाण्डाल अपनी चाण्डालिनी के साथ तालाब पर आयेगा। धनुष-बाण लेकर चाण्डाल पेड़ पर चढ़कर पक्षियों का वध करने बैठेगा। निपट एकान्त देखकर चाण्डालिनी निर्वस्त्र होकर तालाब में स्नान करने घुसेगी। तभी बाल तालाब में घुसेगा। बाल को देखकर चाण्डालिनी पानी में डुबकी लगाकर कमल के पत्तों में छिप जाएगी। बाल उसके निकट पहुँचेगा और उसका स्पर्श पाकर कामातुर हो उठेगा। बाल चाण्डालिनी से बलात्कार करेगा। चाण्डालिनी चिल्लायेगी। तभी चाण्डाल बाण चलाकर उसका वध कर देगा और मरकर बाल सीधा नरक को जाएगा। फिर वह अनेक कुयोनियों में भटकता रहेगा।

[१८] **अप्रमाद यंत्र और मनीषी**

बाल का भविष्य जानने के बाद राजा शत्रुमर्दन को स्पर्शन और अकुशलमाला पर बहुत क्रोध आया। उसने अपने मंत्री सुबुद्धि को आदेश दिया—

"मंत्री ! यदि मैं स्पर्शन और अकुशलमाला जैसे शत्रुओं का नाश न करूँ तो मेरा शत्रुमर्दन नाम व्यर्थ ही है। अतः मैं तुम्हें आदेश देता हूँ कि इन दोनों को बन्दी बनाकर या तो कोल्हू में पेल दो या फाँसी दे दो।"

राजाज्ञा सुनने के बाद मंत्री सुबुद्धि सोचने लगा कि जब मैं इनका मंत्री नियुक्त हुआ था, तभी यह तय हो गया था कि राजा कभी भी हिंसक कार्यों में मुझसे सहयोग नहीं लेगा। फिर भी राजा मुझे वध का आदेश दे रहे हैं। बुझे मन से मंत्री सुबुद्धि ने राजा को स्वीकृति दे दी और आचार्य की ओर देखने लगा। मन की बात जानने वाले आचार्य ने राजा शत्रुमर्दन से कहा—

"राजन् ! तुम बहिरंग जगत के राजा हो और बाहरी शत्रुओं को ही नष्ट कर सकते हो। तुम्हारी फाँसी और कोल्हू में पेलना अन्तरंग शत्रुओं का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। अन्तरंग शत्रुओं को अन्तरंग शस्त्रों से ही नष्ट किया जाता है। स्पर्शन और अकुशलमाला अन्तरंग शत्रु हैं। इन्हें अप्रमाद यंत्र से ही मारा जा सकता है।"

यह कह आचार्य प्रबोधनरति अप्रमाद यंत्र का स्वरूप समझाने लगे। उन्होंने कहा कि मैं तथा मेरे साथ जो श्रमण हैं, वे सब अप्रमाद यंत्र के प्रयोग से ही अपने अन्तरंग शत्रुओं को नष्ट करते रहते हैं। अप्रमाद यंत्र के साथ अन्य उपकरण भी हम लोग प्रयोग में लाते रहते हैं। कभी किसी को किंचिन्मात्र दुख न देना, सदा सत्य ही बोलना—असत्य भाषण से बचना, बिना दिये तृण तक न लेना, नवगुप्ति युक्त ब्रह्मचर्य का पालन, परिग्रह का सर्वथा त्याग, अनेक प्रकार के अभिग्रह धारण करना, गुरुजनों का मान, बाह्य आपत्ति में धैर्य, योग सिद्धि का प्रयत्न, आत्मा, शरीर और इन्द्रियों को भिन्न-भिन्न देखना आदि ऐसे अनेक उपकरण हैं, जिनका प्रयोग हम श्रमण जन अप्रमाद यंत्र के साथ प्रयोग करके अपने अन्तरंग शत्रुओं को नष्ट करते रहते हैं।

'शत्रुओं को नष्ट करते रहते हैं' का अभिप्राय यह है कि थोड़ा-सा प्रमाद होने से ये शत्रु सिर उठाने लगते हैं। पूर्णतया नष्ट तो ये सिद्धावस्था में ही होते हैं। साधनावस्था में तो ये कभी नष्ट होते हैं और कभी पुनः जीवित हो जाते हैं।

राजन्! अन्तरंग शत्रुओं की एक विशेषता और है। वह यह कि किसी एक द्वारा नष्ट किये जाने पर ये सबके लिए नष्ट नहीं होते। यदि तुम स्पर्शन और अकुशलमाला को अप्रमाद शस्त्र से नष्ट कर दो तो ये तुम्हारे लिए ही नष्ट होंगे, पर दूसरे प्रमादी को सताने लगेंगे।

जब आचार्य प्रबोधनरति का वक्तव्य समाप्त हुआ तो मनीषी के मन में दीक्षा लेने का भाव जाग्रत हुआ। वह श्रमण बनकर अपने अन्तरंग शत्रुओं को मिटा देना चाहता था। दीक्षा लेने से पहले वह अपनी शंका का समाधान करना चाहता था। अतः उसने आचार्य प्रबोधनरति से जिज्ञासा प्रस्तुत की—

"भन्ते! आपने कहा था कि भागवती दीक्षा लेकर मनुष्य उत्कृष्ट-तम पुरुष बन सकता है और यह भी कहा कि अपनी सामर्थ्य वाले अप्रमाद यंत्र के प्रयोग से भी वह कल्याण कर सकता है। मेरी शंका यह है कि भागवती दीक्षा और अप्रमाद यंत्र के प्रयोग में क्या अन्तर है?"

"केवल नाम का अन्तर है।" आचार्य ने कहा—"दोनों एक दूसरे के पर्याय हैं। अप्रमाद यंत्र ही भागवती दीक्षा है और भागवती दीक्षा ही अप्रमाद यंत्र है।"

"फिर तो मुझे भागवती दीक्षा दीजिए।" मनीषी ने कहा—"मैं अपना कल्याण चाहता हूँ।"

"तेरा मनीषी नामक आज सार्थक हो गया।" आचार्य ने कहा—"तू हर तरह से भागवती दीक्षा के योग्य है।"

मनीषी को भागवती दीक्षा की अनुमति मिल गई। राजा शत्रुमर्दन को मनीषी के बारे में जानने की जिज्ञासा हुई कि यह कौन भाग्यशाली है, जो घर-बार—सबका त्याग करके साधु बनना चाहता है। उसने आचार्य से ही पूछा—

"भगवन्! भागवती 'दीक्षा है तो सुन्दर, पर इसकी कठिनता की कल्पना से ही मुझे बुखार चढ़ने लगता है। चाहकर भी मेरा साहस भागवती दीक्षा लेने का नहीं होता। लेकिन यह मनीषी कौन है जो बड़े सहज ढंग से दीक्षा लेने को तत्पर हो गया?"

आचार्य प्रबोधनरति ने राजा शत्रुमर्दन को मनीषी का परिचय दिया तो राजा सोचने लगा कि मैंने इसी के भाई पापी बाल को मारने की आज्ञा दी थी, तब मैंने लोगों को इसकी प्रशंसा करते सुना था कि एक ही पिता का एक पुत्र मनीषी है, जो कितना गुणवान है और दूसरा यह पापी बाल है, जिसने अपने दुराचरण से सबको दुःखी किया है।

मनीषी का परिचय देते समय जब आचार्य ने यह कहा कि क्षितिप्रतिष्ठित नगर के राजा कर्मविलास के तीन पुत्रों में एक यह मनीषी है तो शत्रुमर्दन को अपने सत्त्व के बारे में शंका हुई। उसने पूछा—"भगवन! इस नगर का राजा तो मैं भी हूँ।"

"राजा तो तुम भी हो।" आचार्य बोले—"लेकिन क्षितिप्रतिष्ठित नगर के असली स्वामी राजा कर्मविलास ही हैं। कर्मविलास राजा की आज्ञा का उल्लंघन करने का साहस किसी में नहीं है। तुम भी कर्मविलास के अधीनस्थ राजा हो। राजा कर्मविलास जब चाहें तुम्हारा राज्य तुमसे लेकर किसी और को दे सकते हैं। जिसकी आज्ञा उल्लंघ्य न हो, वही असली राजा होता है।"

"ऐसा शक्तिशाली राजा मैंने आज तक नहीं देखा।" शत्रुमर्दन बोला—"कर्मविलास जब इतना शक्तिशाली है तो वह किसी को दिखाई क्यों नहीं देता?

"चूँकि वह अन्तरंग राज्य का राजा है, इसलिए तुम-जैसे व्यक्तियों को दिखाई नहीं दे सकता।" आचार्य बोले—"अन्तरंगलोक के व्यक्ति गुप्त

रहकर ही कार्य करते हैं। धैर्यवान और साधक प्रवृत्ति के लोग उन्हें बुद्धि-दृष्टि से ही देख पाते हैं।"

"लेकिन मैं उस राजा को पहचानता हूँ।" मन्त्री सुबुद्धि ने राजा शत्रुमर्दन से कहा—"जिस राजा कर्मविलास के बारे में आचार्य कह रहे हैं, उसे मैं जानता हूँ। मैं उसके बारे में आपको सब कुछ विस्तार से बता दूँगा।"

जब सब अपनी-अपनी कह चुके तो सबसे अन्त में मध्यमबुद्धि ने कहा—

"भगवन्! मेरे भाई मनीषी ने तो भागवती दीक्षा लेने का निश्चय कर लिया है। लेकिन मेरी सामर्थ्य श्रमण बनने की नहीं है। आपने कहा था कि गृहस्थधर्म का पालन करके भी कल्याण किया जा सकता है। अतः आप मुझे गृहस्थ-धर्म के बारे में ही बताइए, ताकि मैं मध्यमबुद्धि कालान्तर में उत्कृष्ट और अति उत्कृष्ट पुरुष बनकर अपना कल्याण कर सकूँ।"

आचार्य प्रवोधनरति बोले कि गृहस्थ जीवन में मर्यादित व्रतों का पालन किया जाता है, जिन्हें अणुव्रत कहते हैं। इस प्रकार श्रावक (गृहस्थ) के बारहों व्रत समझा कर आचार्य ने मध्यमबुद्धि को गृहस्थधर्म धारण कराया।

जिसे आत्म-कल्याण के लिए धारण किया जाता है, उसी को धर्म कहते हैं। उत्कृष्ट अभिलाषी श्रमणधर्म—महाव्रतों को धारण करता है और दीर्घ-सूत्री श्रावकव्रतों—अणुव्रतों अथवा गृहस्थधर्म को धारण करता है। व्रतों को धारण कर वह भी अपना जीवन धीरे-धीरे पावन बनाता है। □

[१६] कर्मविलास का स्वरूप

राजा शत्रुमर्दन मनीषी का दीक्षा महोत्सव करना चाहता था। लेकिन आचार्य ने इसके विषय में उससे कुछ नहीं कहा। राजा द्वारा पूछने पर वे मौन रहे। तब मन्त्री सुबुद्धि ने राजा को समझाया कि मुनिजन द्रव्यस्तव के लिए आदेश नहीं देते, वे केवल त्याग का ही उपदेश देते हैं। अतः आपको जैसा ठीक लगे, वैसा करें।

राजा ने मनीषी का विधिपूर्वक दीक्षा महोत्सव कराया। मनीषी

अणगार बन गए। राजा सहित सबने मुनि मनीषी की वंदना की। तदनन्तर राजा ने सबसे कहा—

"प्रजाजनो! भागवती दीक्षा लेना लोहे के चने चबाना, दहकते अंगारों पर चलना अथवा अति दुस्साध्य कार्य है। चाहकर भी मैं भागवती दीक्षा का निश्चय नहीं कर पाया। लेकिन महात्मा मनीषी ने इसी कार्य को बच्चों के खेल की तरह कर डाला। अतः मानना पड़ेगा कि इनमें विशेष, उत्कट आत्मबल है। ये मुनि मनीषी हमारा उपकार करने के विचार से जब-तक हमारे नगर में रहें, हमारे लिए ये माता-पिता, गुरु, भाई—सब कुछ हैं। हम सदा इनके दास हैं। हम सदा इनकी विनय करें, क्योंकि उत्तम व्यक्ति, साधु, श्रमण-संत की विनय से आत्मा के पाप धुल जाते हैं।"

प्रजाजनों ने राजा के आदेश का अनुमोदन करते हुए बार-बार मुनि मनीषी की वंदना की। जब मनीषी मुनि बन गए तो उसकी माता शुभसुन्दरी ने अपनी योगशक्ति का अधिक प्रभाव दिखाया, इससे मनीषी मुनि आह्लादित हुए। यथासमय मध्यमबुद्धि ने भी मनीषी श्रमण की वंदना की। राजा ने मध्यमबुद्धि से अपनी तुलना करके कहा कि मैं भी तुम्हारी तरह मध्यम श्रेणी का साधक हूँ। समान प्रवृत्ति के कारण तुम मेरे मित्र हुए। मन्त्री सुबुद्धि ने राजा से कहा—

"पृथ्वीनाथ! सुश्रावक मध्यमबुद्धि भी हमारे उपकारी हैं। धर्म प्रवृत्ति में यदि कोई किंचिन्मात्र भी निमित्त बनता है तो वह सबसे बड़ा उपकारी माना जाता है।"

सुबुद्धि मंत्री की बात सुनकर राजा बोला—"मंत्रिवर! मेरे लिए तो तुम भी उपकारी हो। क्योंकि सुबुद्धि के बिना कोई भी धर्म की ओर अग्रसर नहीं हो पाता। तुम सदा मुझे हितकारी सलाह देते हो, मेरी शंकाओं का समाधान करते हो। अतः अब भी मेरे मन में एक प्रश्न उठ रहा है। उसका समाधान करो।

"मंत्रिवर! जब मैं निजविलसित उद्यान में आया था तो मेरे समस्त द्वन्द्व दूर हो गये थे। मोह के जाले टूट गये थे। चिन्ता पिशाचिनी जाने कहाँ चली गई थी। लेकिन उसी उद्यान में आचार्य की उपस्थिति में बाल अधमाचरण करने को कैसे सक्रिय हो गया? यदि उद्यान के प्रभाव से मेरे कुभाव दूर हो गए तो बाल के उद्दीप्त क्यों हुए?"

मंत्री सुबुद्धि ने बताया—

"राजन् ! दोनों बातें अपनी जगह ठीक हैं। बाल ने जो कुछ किया अपने नाम के अनुसार ही किया। बाल प्रकृति स्थानविशेष और व्यक्ति-विशेष से अप्रभावित रहती है। बच्चा बिस्तर पर मल-मूत्र का त्याग कर देता है। वह स्थानक में भी मूत्र त्याग कर देगा। पिता की गोद में भी मल-मूत्र का त्याग करेगा। अतः बाल ने निजविलसित उद्यान और आचार्य की उपस्थिति में अधमाचरण किया तो इसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए। इसके विपरीत बड़े, समझदार व्यक्ति पर तो स्थानविशेष और व्यक्ति विशेष का प्रभाव पड़ेगा ही।

"राजन् ! द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव—की अपेक्षा से शुभाशुभ परिणामों का आविर्भाव होता है। बाल को जो अध्यवसाय हुए वे क्षेत्र के कारण हुए, ऐसा मेरा अनुमान है।

"राजन् ! भिन्न-भिन्न प्राणियों की अपेक्षा से भिन्न-भिन्न विचार पैदा करने वाला होने के कारण उस उद्यान का नाम निजविलसित उद्यान है। भिन्न-भिन्न सहकारी कारणों के योग से जो भिन्न-भिन्न प्राणियों में, भिन्न-भिन्न प्रकार के विलास की इच्छा जाग्रत करें, वह निजविलसित है। बाल के साथ उसका मित्र स्पर्शन और माता अकुशलमाला थी। अतः उनके सहयोग से उसके मन में रानी मदनकन्दली के साथ भोग की इच्छा हुई।

"मनीषी, आप और मध्यमबुद्धि में भागवती दीक्षा और गृहस्थधर्म ग्रहण करने की जो भावना उद्‌बुद्ध हुई, उसका कारण आप तीनों द्वारा आचार्य का चरण स्पर्श था।"

"यह सब तो मैं समझ गया।" राजा बोला—"अब तुम मुझे राजा कर्मविलास का स्वरूप समझाओ। तुमने कहा था कि मैं एकान्त में बताऊँगा।"

मंत्री सुबुद्धि राजा शत्रुमर्दन को राजा कर्मविलास का स्वरूप समझाने लगा।

× × ×

उत्कृष्टतम, उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य—इन चार प्रकार के पुरुषों में तीन को अपने-अपने कर्म का उदय समझें। उत्कृष्टतम तो कर्म प्रपंच से रहित सिद्ध पुरुष हैं। शेष तीन कर्मोदय के कारण विभाजित अथवा नामी हैं। अतः कर्म ही इनका पिता हुआ। कर्म की शक्ति अचिन्त्य और अवर्ण-नीय है। राजा कर्मविलास के रूप में हमारा अपना कर्म ही है। कर्म की

परिणति शुभ, अशुभ और सामान्य—तीन प्रकार की होती है। ये तीनों प्रवृत्तियाँ हैं—शुभसुन्दरी अकुशलमाला और सामान्य, रूपा। इन्हीं प्रवृत्तियों के अनुसार मनीषी, बाल और मध्यमबुद्धि प्रवृत्ति वाले लोग बनते हैं, इसलिए ये इनकी माताएँ हैं। स्पर्शेन्द्रिय इन सभी जीवों का मित्र है।

शत्रुमर्दन की शंका का समाधान हो गया तो उसने सुबुद्धि मंत्री से पुनः कहा कि यह जो मनीषी है, यह मुझे बहुत प्रिय है। मैं इसका वियोग नहीं सह सकता। अतः तुम इसे प्रेरणा दो कि यह कुछ दिन संसार के भोगों में लिप्त रहे, उसके बाद में भी इसी के साथ दीक्षा लूँगा।

सुबुद्धि ने राजा को बताया कि जागने के बाद मनुष्य को स्वप्न का सुख कभी भी आकर्षित नहीं कर सकता। मनीषी जाग चुका है। संसार के सभी भोग उसके लिए नीरस हो चुके हैं। अतः उसे भोगों की प्रेरणा देना पत्थर पर सिर पटकने के समान होगा।

कालान्तर में जब राजा शत्रुमर्दन ने मनीषी मुनि की देशना सुनी तो वह स्वयं प्रतिबुद्ध हो गया। दीक्षा लेकर वह भी मुनि बन गया। मुनि शत्रुमर्दन ने मुनि प्रबोधनरति से अनेक प्रश्न पूछे, उन सब का जो उत्तर मुनि ने दिया उसका सार संक्षेप इस प्रकार है। जब शत्रुमर्दन मुनि बने थे, तब उन्होंने अपने पुत्र सुलोचन को राजा बनाया था। यह सब कर्म की ही शक्ति थी कि उसने शत्रुमर्दन से राज्य लेकर उसके पुत्र सुलोचन को दे दिया।

रानी शुभसुन्दरी के एकमात्र पुत्र मनीषी ही नहीं है, बल्कि अनेकों पुत्र हैं। जिनका स्वभाव, गुण मनीषी के समान है, वे सब शुभसुन्दरी के पुत्र हैं। इसी तरह अकुशलमाला और सामान्यरूपा के भी अगणित पुत्र हैं। संसार में मनीषी जैसे उत्कृष्ट और बाल जैसे जघन्य पुरुष कम हैं, लेकिन मध्यमबुद्धि जैसे पुरुष अधिक हैं। ऐसे व्यक्तियों की कुछ प्रवृत्ति बाल की ओर झुकी रहती है और कुछ मनीषी की ओर। संग-कुसंग के प्रभाव से कालान्तर में ये लोग किसी एक निश्चय पर पहुँच पाते हैं। उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य—सभी योनियों में होते हैं, पर इनकी पहचान मनुष्य योनि में ही स्पष्ट होती है।

अब हमें, अर्थात् मध्यमबुद्धि वालों को यह जान लेना चाहिए कि बाल का चरित्र त्यागने योग्य है तथा मनीषी का चरित्र ही अनुकरणीय है। मध्यमबुद्धि व्यक्ति, जिनकी संख्या अधिक होती है, यदि विचारपूर्वक मनीषी का अनुकरण करें तो उनके जीवन में सुख ही सुख है। फिर वे स्पर्शन-

जैसे घातक शत्रु—मीठे जहर से बच जायेंगे।

× × ×

राजा पद्म के सेवक विदुर ने राजकुमार नन्दिवर्धन को स्पर्शन की कथा विस्तार से सुनाई। जब यह कथा समाप्त हो गई तो विदुर एक दिन छोड़कर नन्दिवर्धन (संसारी जीव) के पास पहुँचा और बोला कि मैं कल नहीं आ सका, इसका कारण भी यह है कि कल भी मैंने एक बहुत ही सुन्दर कथा सुनी थी। यह सुनकर नन्दिवर्धन बोला—

"विदुर! तुम्हारी स्पर्शन की कथा मुझे बहुत अच्छी लगी। स्पर्शन-जैसे पापी दुरात्मा मित्र से सदा बचना ही चाहिए क्योंकि वह मित्र रूप में शत्रु है।"

राजकुमार की यह टिप्पणी उसके मित्र वैश्वानर को बहुत बुरी लगी। वह राजकुमार के पास ही खड़ा था। वह सोचने लगा कि जैसा स्वरूप स्पर्शन का था, वैसा ही मेरा भी है। एक-न-एक दिन विदुर नंदिवर्धन को मेरा स्वरूप समझा देगा तो यह मुझे छोड़ देगा। उस संभावना मात्र से वैश्वानर विचलित हो गया। पर कर भी क्या सकता था, अतः चुप-चाप खड़ा रहा।

संसारी जीव ने अगृहीतसंकेता, प्रज्ञाविशाला, सदागम और भव्यपुरुष के बीच आगे कहा—

तो मैं नंदिवर्धन राजकुमार था। मेरी टिप्पणी सुनकर विदुर ने मुझ से कहा कि जैसे स्पर्शन बाल का दुष्ट मित्र था, वैसे ही यदि आपका कोई पापी मित्र हो तो आप भी उसे छोड़ दें। मैं बोला—मेरे पास तो पापी मित्र की गंध तक नहीं है।

वैश्वानर सुन न ले, इस अभिप्राय से विदुर ने मेरे कान में कहा कि यह जो वैश्वानर है, यह भी स्पर्शन की तरह पापी और दुरात्मा है। यह भी मीठा जहर है। जैसे स्पर्शन के कारण बाल की दुर्गति हुई थी, वैसे ही वैश्वानर के कारण आपका भी अनर्थ होगा।

यह बात वैश्वानर ने थोड़ी बहुत सुन ली थी। उसे विदुर पर बहुत क्रोध आया, पर वह उसका क्या बिगाड़ सकता था। मुझे काबू में करने के लिए वैश्वानर ने तुरन्त मुझे क्रूरचित्त नामक बड़ा खाने को दिया, जो मैंने तुरन्त खा लिया। बड़ा खाते ही मैं वैश्वानर के वश में हो गया। मेरे क्रोध का पार न रहा। मैंने विदुर से दुर्वचन कहे और बोला—पापी तो तू

है। मुझे बाल जैसा समझता है। आज मैं तेरा सिर फोड़ दूंगा। यह कह मैंने विदुर के एक डंडा मारा। भागकर वह मेरे पिता राजा पद्म के पास पहुँचा। सब कुछ सुनने के बाद मेरे पिता ने कहा—नंदिवर्धन दुष्ट वैश्वानर का साथ अब नहीं छोड़ेगा।

भद्रे अगृहीतसंकेता! मैं संसारी जीव बड़े-बड़े घटना चक्र भोगे बैठा हूँ। राजपुत्र नंदिवर्धन के रूप में आगे मैंने क्या-क्या भोगा, देखा-सुना, वह तुम आगे की कथा अन्यपुरुष के रूप में सुनो। □

[१] नन्दिवर्धन और कनकशेखर

शिक्षा समाप्त करते-करते नन्दिवर्धन युवा हो गया। उसके पिता राजा पद्म उसे गुरुकुल से राजमहल ले आये और अपनी राजधानी जयस्थल नगर में शिक्षा समापन का महोत्सव कराया। इस महोत्सव में राजा पद्म ने राजकुमार नंदिवर्धन के कलाचार्य का भी अभिनंदन किया। राजा ने अपने पुत्र को अलग महल रहने को दिया। अंगरक्षक, सुरक्षा सैनिक और दास-दासियों से सेवित नंदिवर्धन अलग अपने महल में रहता था। वह नित्य प्रातः उठकर माता महारानी नंदा और पिता पद्म की चरण वंदना करता था। वैश्वानर मित्र के सहयोग और प्रेरणा से नंदिवर्धन कभी-कभी क्रूर, हिंसक, लड़ाकू और उद्दण्ड हो जाता था, पर माता-पिता और गुरुजनों के लिए वह विनयी और आज्ञानुवर्ती था।

नंदिवर्धन को युवा जानकर वैश्वानर अधिक प्रसन्न था, क्योंकि युवावस्था में ही मनुष्य अधिक खुराफातें कर सकता है। वस्तुतः यौवन सभी को अभीष्ट होता है, क्योंकि वह अमृत के समान मधुर और इन्द्रधनुष के समान आकर्षक होता है। युवावस्था प्राप्त नंदिवर्धन प्रजाजनों की आशा का केन्द्र था, क्योंकि भविष्य में उसे ही राजा बनना था।

एक दिन प्रातःकाल माता-पिता की चरणवंदना करके नंदिवर्धन अपने महल में पहुँचा। थोड़ी देर बाद धवल नाम का सेनापति नंदिवर्धन के पास पहुँचा और बोला—

"युवराज! कुशावर्त नगर के राजा कनकचूड़ आपकी माता नंदा के सगे भाई, अर्थात् आपके मामा हैं। उनका पुत्र कनकशेखर, अर्थात् आपका

ममेरा भाई अपने पिता से रूठकर यहाँ आया हुआ है। इस समय वह उद्यान में ठहरा हुआ है। आपके पिता उसे लेने उद्यान जा रहे हैं। उन्होंने आपको भी बुलाया है।"

नंदिवर्धन धवल सेनापति के साथ तुरन्त चल दिया और फिर पिता के साथ जाकर अपने ममेरे भाई कनकशेखर को ले आया। राजा पद्म ने कनकशेखर को नंदिवर्धन के महल के पास ही अलग एक महल रहने को दे दिया। कनकशेखर नंदिवर्धन का समवयस्क था, रिश्तेदार—ममेरा भाई भी था और साथ रहने से मित्र भी हो गया। दोनों का अधिकांश समय उठने-बैठने, खाने-पीने, घूमने-फिरने में—साथ-साथ ही बीतता था। एक दिन नंदिवर्धन ने कनकशेखर से पूछा कि अपने पिता से तुम किस बात पर रूठ गए? उनसे किस बात पर झगड़ा हुआ था?

"झगड़े की कहानी कुछ लम्बी है।" कनकशेखर ने नंदिवर्धन से कहा—"ध्यान देकर सुनो। उसे सुनाने से मेरा दुःख भी कुछ कम हो जायगा। क्योंकि कहने से दुख कुछ तो घट ही जाता है।"

यह कह कनकशेखर अपनी बुआ के लड़के नंदिवर्धन को आपबीती सुनाने लगा।

× × ×

कुशावर्त के राजा कनकचूड़ की रानी थी, आम्रमंजरी। कनकशेखर आम्रमंजरी से जन्मा राजा कनकचूड़ का पुत्र था। माता-पिता दोनों अपने पुत्र पर अत्यधिक प्रेम करते थे। उसके बिना वे एक क्षण भी नहीं रह सकते थे। कनकशेखर भी माता-पिता का भक्त और आज्ञानुवर्ती पुत्र था। नगर की प्रजा भी कनकशेखर को बहुत चाहती थी।

कुशावर्त नगर में शमावह नाम का एक रम्य उद्यान था। एक बार वहाँ दत्त नाम के कोई मुनि पधारे। कनकशेखर अपने मित्रों के साथ उद्यान में घूमने गया था। मुनि को देख वह वंदना कर उनकी देशना सुनने बैठ गया। देशना के अंत में कनकशेखर ने मुनि दत्त से धर्म का सार पूछा तो उन्होंने बताया कि अहिंसा, ध्यानयोग, रागादि शत्रुओं पर अंकुश और स्वधर्मी बंधुओं पर प्रेम धर्म का सार है।

जैन धर्म का सार सुनकर कनकशेखर अपने घर आया और विचार करने लगा कि पूर्णतः अहिंसा का पालन, ध्यानयोग और रागादि शत्रुओं पर अंकुश तो मेरे लिए कठिन है। हाँ, स्वधर्मी पर स्नेह करना सरल है।

अतः इस एक धर्म कार्य को तो मैं अवश्य करूँगा।

कनकशेखर ने अपने मन की बात अपने पिता कनकचूड़ से कही कि हमारे राज्य में जो-जो जैन धर्म को मानने वाले गृहस्थ—श्रावक हैं, मैं उन्हें कर मुक्त करना चाहता हूँ। आप मुझे अनुमति दीजिए।

राजा कनकचूड़ अपने पुत्र पर बहुत स्नेह करते थे। अतः पुत्र के धर्म-प्रेम को वे कैसे टाल देते ? उन्होंने कनकशेखर को सहर्ष अनुमति दी—"पुत्र ! अन्ततः तुम्हीं इस राज्य के स्वामी हो। अतः प्रजाहित और धर्महित में तुम्हें जो रुचे सो करो।"

कनकशेखर ने अपने नगर में स्वधर्मियों को करमुक्त होने की घोषणा करा दी और कह दिया कि जो भी नवकार मंत्र जपेगा, सामायिक-प्रतिक्रमण करेगा, वह करमुक्त रहेगा।

इस घोषणा से राज्य का दुर्मुख नाम का मंत्री जल उठा। उसने राजा के कान भरे—

"पृथ्वीनाथ ! युवराज ने जो करमुक्ति की घोषणा कराई है, वह अनुचित है। इससे खजाना खाली हो जाएगा। करमुक्त होने से प्रजा उच्छृंखल हो गई है। वह मनमानी करती है। इससे राजा का प्रताप भी क्षीण हो रहा है। जब राजा श्रीहीन, प्रतापहीन और दुर्बल हो जायगा तो फिर किस बात का राजा। दूसरी बात यह है कि करमुक्ति की घोषणा से अनेकों नकली श्रावक—स्वधर्मी भी बन गये हैं। वे युवराज के स्वधर्म-प्रेम का अनुचित लाभ उठा रहे है।"

दुर्मुख की ऐसी बात सुनकर राजा कनकचूड़ ने उससे कहा—

"दुर्मुख ! तुम राज्य के विशिष्ट मंत्रियों में से एक हो। राज्य की भलाई सोचना तुम्हारा कर्तव्य है। तुम जो कुछ मुझसे कह रहे हो, वही सब कनकशेखर को समझाओ। वह यदि मान जाए तो ठीक यदि न माने तो जैसी उसकी इच्छा। मैं उससे कुछ नहीं कह सकता।"

राजा कनकचूड़ के कान भरने के बाद दुर्मुख कनकशेखर के पास पहुँचा और उसे भी उसी तरह समझाया, जैसे राजा कनकचूड़ को समझाया था। सब कुछ सुनने के बाद कनकशेखर ने कहा—

"दुर्मुख ! धर्म सबसे ऊपर है। धर्म के लिए यदि राज्य जाए तो जाता रहे। राज्य तो धर्म से सुदृढ़ बनता है। अतः मैं स्वधर्मियों को कर-मुक्ति से वंचित नहीं कर सकता।"

कनकशेखर का दो टूक स्पष्ट उत्तर सुनकर दुर्मुख ने तुरन्त बात बदली—

"राजकुमार ! मैं तो आपकी परीक्षा ले रहा था। वस्तुत: आपका स्वधर्म प्रेम प्रशंसनीय है। स्वधर्मियों को करमुक्त करके आपने बहुत सुन्दर काम किया है।"

दुर्मुख को पासा पलटते देख कनकशेखर सोचने लगा कि यह दुर्मुख तो धूर्त और शठ है। स्वधर्मियों को करमुक्त मत करो, यह बात इसने पहले सोच समझकर धीरे-धीरे समझा-समझा कर कही थी और मुझे अनुकूल न देख चापलूसी करने लगा और करमुक्ति का समर्थन करने लग गया, धूर्त-लोग ऐसे ही होते हैं।

कनकशेखर के पास से जाने के बाद दुर्मुख उसे मंत्रिमण्डल और राज्याधिकारियों में बदनाम करने लगा कि कनकशेखर स्वधर्म-प्रेम के नाम पर धन नष्ट कर रहा है। उसने सबको करमुक्त कर दिया है। उसने प्रजाजनों से यह भी कहा कि तुम लोग मुझे कर दे दिया करो और यह बात भूलकर भी कनकशेखर से मत कहना कि हम दुर्मुख को कर देते हैं, वरना मैं तुम्हारे प्राण ले लूंगा।

कनकशेखर ने चतुर नामक अपने निजी सेवक को दुर्मुख के पीछे लगा दिया कि चुपचाप उसकी गतिविधि देखो और मुझे बताओ। खोज-बीन के बाद चतुर ने कनकशेखर को बताया कि दुर्मुख प्रजाजनों से कर वसूल करता है और प्राण भय दिखाकर उनकी जीभ पर ताला डाल दिया है। चतुर ने कनकशेखर को यह भी बताया कि दुर्मुख की हर-कतों की जानकारी आपके पिता महाराज कनकचूड़ को भी है, पर वे तटस्थ हैं; किसी से कुछ नहीं कहते।

चतुर से पूरी जानकारी प्राप्त करने के बाद कनकशेखर ने सोचा कि मैंने पिताजी की अनुमति लेकर ही श्रावकों को करमुक्त किया था। फिर भी पिताजी दुर्मुख को रोक नहीं रहे। इसका मतलब यह है कि दुर्मुख के कार्य में पिताजी की मौन स्वीकृति है।

कनकशेखर ने नंदिवर्धन से कहा—

"भाई ! पिताजी की मौन समाति से मैं क्षुब्ध हो गया और किसी को बताये बिना यहाँ चला आया। श्रावकों पर पुन: लगाये गए कर को मैं सहन नहीं कर सकता था।"

"तुम्हारा स्वधर्म-प्रेम धन्य है।" नंदिवर्धन ने कहा—"यहीं रहो। यह भी तुम्हारा अपना घर है। तुम्हारे यहाँ आने से मेरा मन भी लग गया है।" □

[२] कनकशेखर और नंदिवर्धन का विवाह

एकाएक कनकशेखर के गायब हो जाने से उसके माता-पिता—रानी आम्रमंजरी और राजा कनकचूड़ बहुत दुखी हुए। पुत्रशोक से वे मूर्च्छित हो गए और होश में आने पर विलाप करने लगे। मन्त्रियों ने उन्हें बहुत धीरज बँधाया। कनकशेखर के सेवक चतुर ने राजा-रानी से कहा—

"आप चिन्ता न करें। मेरा अनुमान है कि वे अपनी बुआ के यहाँ जलस्थल नगर गए होंगे।"

राजा कनकचूड़ को चतुर का अनुमान सही लगा। उन्होंने सुमति, वरांग और केसरी अपने तीन मंत्रियों को आदेश दिया कि तुम लोग जयस्थल नगर जाकर मेरे जीजा राजा पद्म और बहिन रानी नंदा को मेरा प्रणाम कहना। भानजे नंदिवर्धन को मेरा स्नेह देना। फिर पुत्र कनकशेखर को बताना कि उसके वियोग में हम बहुत दुखी हैं। सब कुछ समझाकर तुम कनकशेखर और नंदिवर्धन को यहाँ ले आना। दोनों के लिए दो राजकन्याएँ यहाँ प्रतीक्षा कर रही हैं।"

कनकचूड़ के तीनों दूत सुमति, वरांग और केसरी यथासमय जयस्थल नगर पहुँच गये। उन्होंने कनकशेखर को सब कुछ बताकर साथ चलने का आग्रह किया।

उत्सुक होकर राजा पद्म ने राजा कनकचूड़ के दूतों से पूछा कि नंदिवर्धन और कनकशेखर के साथ विवाह करने के लिए जो दो राजकन्याएँ प्रतीक्षा कर रही हैं, वे कौन हैं, कहाँ से आई हैं। इसके उत्तर में दूतों ने राजकन्याओं का आद्योपान्त परिचय राजा पद्म को विस्तार से दिया।

× × ×

विशाला नगरी में नंदन नाम के राजा राज्य करते हैं। राजा नंदन के दो रानियाँ हैं—प्रभावती और पद्मावती। दोनों रानियों ने एक-एक

पुत्री को जन्म दिया। बड़ी रानी प्रभावती की पुत्री का नाम विमलानना और छोटी रानी पद्मावती की पुत्री का नाम रत्नवती है।

विमलानना और रत्नवती—दोनों राजकुमारियाँ यद्यपि सौतेली बहनें हैं, पर दोनों में सगी बहनों से भी अधिक प्रीति है—इतनी कि दोनों एक-दूसरी के बिना रह नहीं सकतीं।

रानी प्रभावती के भाई प्रभाकर कनकपुर के राजा हैं। बन्धुसुन्दरी उनकी रानी है और राजा-रानी के विभाकर नाम का एक पुत्र है। संयोग से रानी प्रभावती और उसकी भाभी रानी बन्धुसुन्दरी एक साथ गर्भवती थीं। तब राजा प्रभाकर ने अपनी बहिन रानी प्रभावती से कहा कि बहिन ! यदि तुम्हारे पुत्र और मेरे पुत्री हो अथवा मेरे पुत्र और तुम्हारे पुत्री हो तो हम दोनों का विवाह कर देंगे। यह बात प्रभावती ने भी मान ली। कालान्तर में रानी प्रभावती ने विमलानना को जन्म दिया और प्रभाकर की रानी ने पुत्र विभाकर को जन्म दिया। वचनानुसार विमलानना विभाकर की वाग्दत्ता हो गई।

विवाह योग्य होने पर राजकुमारी विमलानना को जब यह पता चला कि मेरा विवाह मामा के पुत्र विभाकर के साथ होगा तो वह बहुत दुखी हुई, क्योंकि वह अपना मन कनकशेखर को दे चुकी थी। उसने कनकशेखर के गुणों के बारे में सुना तो निश्चय कर बैठी कि मैं या तो कनकशेखर के साथ विवाह करूँगी या कुमारी रहूँगी। लेकिन संकोचवश विमलानना मन की बात माता-पिता से नहीं कह सकती थी। पर उसने अपनी बहिन रत्नवती को सब कुछ बता दिया। रत्नवती ने पिता राजा नन्दन को सब कुछ बता दिया तो राजा नंदन बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा कि हम अपनी पुत्री का विवाह उसी के साथ करेंगे, जिसे वह चाहती है। यह कह राजा नंदन ने कुछ मन्त्रियों के साथ विमलानना को कुशावर्त नगर भेजने की व्यवस्था कर दी और कहा कि विमलानना का विवाह कुशावर्त के राजा कनकचूड़ के पुत्र कनकशेखर के साथ कर देना। दूसरी राजकुमारी रत्नवती ने पिता से कहा कि पिताजी ! मैं भी बहिन के साथ कुशावर्त नगर जाऊँगी, क्योंकि मैं बहन के बिना रह नहीं सकती। मैं किसी भी हालत में बहन की सौत नहीं बनूँगी। बहिन विमलानना का विवाह कनकशेखर के साथ हो जाएगा और मेरा विवाह कनकशेखर के किसी मित्र के साथ हो जायगा।

यथासमय विमलानना और रत्नवती कुशावर्त नगर के उद्यान में पहुँच गईं। उनका सन्देश लेकर दूत राजा कनकचूड़ के पास पहुँचे। यह शुभ-

संवाद सुनकर राजा कनकचूड़ बहुत प्रसन्न हुए, पर दुःखी भी बहुत हुए। कनकशेखर के रूठकर चले जाने का उन्हें दुःख था और राजकुमारियों के आने की खुशी थी।

सुमति, वरांग और केसरी ने जयस्थल के राजा पद्म से कहा—

"राजन् ! आप दोनों कुमारों को हमारे साथ भेज दीजिए। कनकशेखर का विवाह राजकुमारी विमलानना के साथ होगा और रत्नवती का नन्दिवर्धन के साथ होगा। महाराज कनकचूड़ की भी यही इच्छा है।"

संसारी जीव ने अगृहीतसंकेता से कहा—

"नन्दिवर्धन नामधारी मैं संसारी जीव कनकशेखर के साथ कुशावर्त नगर के लिए चल दिया। साथ में सेना भी थी। मेरा पापी मित्र वैश्वानर तो मेरे साथ था ही; मेरा परम हितैषी पुण्योदय भी गुप्त रूप से मेरे साथ था। कुशावर्त नगर पहुँचने से पूर्व ही मेरा विवाह बीच में ही हिंसा नामक युवती से हो गया। यह प्रसंग भी तुम सुनो कि यह सब कैसे हुआ।" □

[३] नन्दिवर्धन का विवाह हिंसा से

जयस्थल नगर से प्रस्थान करने के बाद मार्ग में रौद्रचित्त नामक एक नगर पड़ा। नंदिवर्धन और कनकशेखर ने यहीं पड़ाव डाल दिया। यह नगर अनर्थों का मूल, नरक का हेतु और कुचक्र का केन्द्र था। इसमें अधिकतर दुष्ट लोग ही रहते थे। कलह, वैर, लूट, चोरी, वध, आदि अनर्थकारी कार्य इस नगर में होते रहते हैं। जिन लोगों को नरक में जाना होता है, उनको रौद्रचित्त नगर में अवश्य निवास करना पड़ता है।

रौद्रचित्त नगर का राजा है, दुष्टाभिसंधि। इस राजा की भी कुछ विशेषताएँ हैं। मान, क्रोध, अहंकार, दुष्टता, लम्पटता जितने भी अन्तरंग राज्य के नामी चोर हैं, वे सब दुष्टाभिसंधि राजा के सेवक हैं।

सत्य, भीतर-बाहर की पवित्रता, तप, ज्ञान, इन्द्रिय-संयम आदि जितने भी सदाचारी जन हैं उन सबको जड़-मूल से नष्ट करने के लिए रौद्रचित्त नगर का राजा दुष्टाभिसंधि सदा तत्पर रहता है। यह राजा शुभ परिणामों को बहुत जल्दी नष्ट कर देता है।

रौद्रचित्त नगर के राजा दुष्टाभिसंधि की रानी है निष्करुणा। इसकी भी कुछ विशेषताएँ हैं। यह सदा अपने पति के अनुकूल रहती है और पूतना—जैसी निर्दय है। राजा जब भले लोगों को कष्ट देता है तो निष्करुणा रानी बहुत प्रसन्न होती है।

दुष्टाभिसंधि राजा और निष्करुणा रानी के हिंसा नाम के एक पुत्री है। यह हिंसा हर बात में माता-पिता से दस कदम आगे है। रौद्रचित्त नगर के निवासी इसे बहुत चाहते हैं। ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, अशांति जितने भी खास-खास नागरिक रौद्रचित्त नगर में रहते हैं, राजकुमारी हिंसा इनको बड़ा सुख देती है। राजकुमारी हिंसा का रूप इतना भयंकर है कि भले लोग इसका नाम सुनते ही कांपने लगते हैं।

रौद्रचित्त नगर की तरह एक दूसरा तामसचित्त नाम का अन्तरंग नगर है। यहाँ का राजा द्वेषगजेन्द्र है। यह द्वेषगजेन्द्र राजा महामोह का पुत्र है। अविवेकता द्वेषगजेन्द्र की पत्नी है। वैश्वानर नाम का जो पापी नंदिवर्धन का मित्र बनकर सदा उसके साथ रहता है, वह अविवेकता ब्राह्मणी का ही अंगजात—पुत्र और द्वेषगजेन्द्र का आत्मज है।

राजकुमार कनकशेखर और राजकुमार नंदिवर्धन जब जयस्थल नगर से कुशावर्त नगर को जा रहे थे तो मार्ग में पहले रौद्रचित्त नगर में पड़ाव डाला था। पास में ही तामसचित्त नगर था। उचित अवसर देख तामसचित्त नगर के राजकुमार वैश्वानर ने नंदिवर्धन से कहा कि मित्र! तुम पहले हिंसा से विवाह कर लो। तुम्हें ऐसी पत्नी नहीं मिलेगी। मेरी सिफारिश से राजा दुष्टाभिसंधि तुम्हारे साथ अपनी पुत्री हिंसा का विवाह कर देगा। इस पर नंदिवर्धन ने सहर्ष स्वीकृति देते हुए वैश्वानर से कहा—"जो तुम कहोगे, मेरे भले के लिए ही कहोगे। अतः मैं तुम्हारी बात मानकर हिंसा से विवाह अवश्य करूँगा।"

अन्ततोगत्वा हिंसा के साथ नन्दिवर्धन का विवाह हो गया। पत्नी को साथ लेकर नंदिवर्धन कनकशेखर के साथ आगे चल दिया। मार्ग में वैश्वानर ने नंदिवर्धन से कहा—

"मित्र! हिंसा से विवाह करके तुमने बहुत अच्छा किया। अब मेरी दूसरी बात भी मानो। वह यह कि तुम हिंसा को हर तरह से प्रसन्न रखो। कोई प्राणी किंचित्—नाम मात्र को भी अपराध करे, तुम उसका वध कर दो। इससे हिंसा देवी तुमसे बहुत प्रेम करेगी।

"नंदिवर्धन ! मैं जब तुममें प्रवेश करता हूँ तो तुम बहुत तेजस्वी बन जाते हो। लेकिन जब हिंसा किसी पर आसक्त हो जाती है तो उस व्यक्ति के दर्शन मात्र से विपक्षी नष्ट हो जाता है। अतः तुम यह उपाय सदा करते रहना, जिससे हिंसा देवी तुम पर सदा आसक्त रहे।"

नंदिवर्धन ने वैश्वानर की बात पूरी तरह हृदयंगम करली। रास्ते में जो भी वन-बीहड़ पड़ते उनमें रहने वाले हिरन, खरगोश आदि जीवों का नंदिवर्धन वध करते हुए चलने लगा। इससे हिंसा देवी बहुत प्रसन्न हुई।

'करेला, वह भी नीम चढ़ा' वाली कहावत नंदिवर्धन ने चरितार्थ कर दी। रास्ता चलते वह निरीह और निरपराध वन्य जीवों का वध करके स्वयं भी बड़ा प्रसन्न होता। अब तक तो वैश्वानर ही उसका सहायक था, अब हिंसा का बल-सहयोग भी उसे मिल गया।

चलते-चलते नंदिवर्धन और कनकशेखर कुशावर्त नगर की सीमा में पहुँच गए। नगर में पहुँचने से पहले विषमकूट नामक पर्वत से गुजरना होता था। इस पर्वत पर अम्बरीष जाति के डाकू रहते थे। इन डाकुओं ने पहले राजा कनकचूड़ की प्रजा को बहुत सताया था। अब ये पर्वत पर रहने लगे थे और जो भी कुशावर्त नगर में आता था, उसे रोककर मार देते थे। इन डाकुओं को जब यह पता चला कि नंदिवर्धन और कनकशेखर आ रहे हैं तो वे मार्ग रोककर बैठ गए। आगे क्या हुआ यह प्रसंग भी जानने योग्य है। □

[४] अम्बरीष डाकुओं से युद्ध

विषमकूट पर्वत पर रहने वाले अम्बरीष जाति के डाकू रास्ता रोके बैठे थे। वे निकट आते नंदिवर्धन और कनकशेखर की सेना पर टूट पड़े। दोनों पक्ष लड़ने लगे। युद्धस्थल शवों से पट गया। डाकुओं की सेना अधिक थी। दूसरे ये लोग आक्रामक थे। अतः नंदिवर्धन और कनकशेखर की सेना के पैर उखड़ गए। अब वैश्वानर ने नंदिवर्धन को तुरन्त एक क्रूरचित्त बड़ा खिला दिया। अब नंदिवर्धन में क्रोध का आवेग बढ़ गया। वह डाकुओं के सरदार प्रवरसेन पर टूट पड़ा। प्रवरसेन ने नंदिवर्धन पर जो-जो वार किये, वे सब इसलिए नाकाम हो गए कि गुप्तरूप से पुण्योदय नंदिवर्धन की सहायता कर रहा था। लेकिन नंदिवर्धन ने प्रवरसेन

का धनुष तोड़ दिया। तभी नंदिवर्धन की पत्नी हिंसा आ गई। उसका सहारा पाकर नंदिवर्धन ने प्रवरसेन का सिर तलवार के एक ही वार से अलग कर दिया। डाकूदल पराजित हो गया। अपनी विजय का श्रेय नंदिवर्धन ने अपनी पत्नी हिंसा देवी को दिया और सोचा कि हिंसा की शक्ति तो अवर्णनीय है।

इस विजय के बाद दोनों राजकुमार कुशावर्त नगर पहुँच गए। राजा कनकचूड़ ने अपने पुत्र कनकशेखर को वक्ष से लगा लिया। फिर बड़ी धूम-धाम से कनकशेखर का विवाह विमलानना और नंदिवर्धन का रत्नवती के साथ कर दिया। नंदिवर्धन अपनी दोनों पत्नियों—हिंसा और रत्नवती के साथ कुशावर्त नगर में रहने लगा।

एक दिन विमलानना और रत्नवती दोनों बहनें कुशावर्त नगर देखने चली गईं। साथ में दासियाँ भी थीं। कनकशेखर और नंदिवर्धन राजसभा में ही रह गए थे। दोनों बहनें चूतचूचक (आम्र कुंज) नामक उद्यान में भ्रमण कर रही थीं कि कोई दुष्ट उनका अपहरण करके ले गया। आम्र-कुंज के दासों ने राजसभा में खबर दी कि कोई दुष्ट राजा सेना के साथ दोनों राजकुमारियों का हरण करके ले गया है। यह सुनते ही राजा कनकचूड़, राजपुत्र कनकशेखर और नंदिवर्धन—तीनों सेना लेकर अपहरणकर्ता का पीछा करने लगे। दूर-दूर तक भ्रमण करते रहने के कारण अपहरणकर्ता की सेना थक चुकी थी, अतः इन तीनों ने अपहरणकर्ता की सेना को पकड़ लिया। विपक्षी सेना भी तीन हिस्सों में बँटकर कनकचूड़ की सेना का सामना करने को तैयार हो गई। विपक्ष में भी तीन सेनापति थे।

विमलानना के नगर से साथ आया विकट नाम का दूत भी कनकचूड़ के साथ था। नंदिवर्धन ने विकट से पूछा कि विपक्षी सेना के तीन सेनापति कौन हैं, यदि जानते हो तो बताओ। तब विकट नंदिवर्धन को बताने लगा—

"एक तो कनकपुर के राजा प्रभाकर और रानी बन्धुसुन्दरी का पुत्र विभाकर है। रानी प्रभावती ने गर्भकाल में ही विमलानना का वाग्दान विभाकर के साथ कर दिया था। अतः विमलानना का अपहरण इसी ने किया है। दूसरा सेनापति कलिंग देश का राजा समरसेन है और तीसरा विभाकर का मामा बंगदेश का राजा द्रुम है।

इस परिचय के बाद दोनों पक्षों में घमासान लड़ाई होने लगी। वैश्वानर ने नंदिवर्धन को तुरन्त ही क्रूरचित्त वड़ा खाने को कहा। उसको

खाते ही नंदिवर्धन प्रचण्ड हो गया। फिर उसकी पत्नी हिंसा भी साथ देने आ गई। अब तो नंदिवर्धन योद्धाओं के सिर काटने लगा। उस पर जो भी वार होते उन्हें पुण्योदय बचा देता। नंदिवर्धन ने समरसेन को मार दिया। उसके मरते ही उसकी सेना पीछे हट गई। द्रुम राजा कनकचूड़ के साथ युद्ध कर रहा था। हिंसा देवी के एक दृष्टिपात से ही नंदिवर्धन पुनः क्रूर हो गया और उसने दूसरे सेनापति द्रुम को भी मार गिराया। तीसरे मोर्चे पर विभाकर और कनकशेखर की लड़ाई हो रही थी। दो सेनापतियों को मारकर नंदिवर्धन उधर पहुँच गया। वहाँ कनकशेखर ने तलवार के वार से विभाकर का कंधा काट दिया। विभाकर मूर्च्छित हो गया। इस प्रकार नंदिवर्धन के पक्ष की विजय हुई। कनकशेखर ने विभाकर का शीत-लोपचार करके अपनी उदारता दिखाई और शीतल वचन कहकर उसका सम्मान भी किया। विभाकर को होश आया तो वह कनकशेखर के व्यवहार से बहुत संतुष्ट हुआ। विभाकर ने कनकशेखर से कहा—राज कुमार! तुमने मुझे अपने व्यवहार से भी पराजित कर दिया। तुम्हारी उदारता स्तुत्य है। कनकशेखर घायल विभाकर को साथ लेकर नगर को लौटा। नंदिवर्धन विमलानना और रत्नवती को लेकर लौटा। कनक-चूड़ भी लौटे। युद्ध का यह प्रसंग मेल-मिलाप के वातावरण में समाप्त हो गया।

कुशावर्त नगर में सर्वत्र यह चर्चा थी कि समरसेन और द्रुम जैसे बलशालियों को मारने वाला अभी तक कोई नहीं जन्मा था। लेकिन नंदिवर्धन ने तो कमाल ही कर दिया कि इन दोनों को मिट्टी चटा दी। अपनी इस वीरता का श्रेय नंदिवर्धन वैश्वानर और हिंसा देवी को दे रहा था।

ससारी जीव (नंदिवर्धन) ने अगृहीतसंकेता से कहा—"भद्रे! वस्तुतः मेरी जीत का कारण मेरा मित्र पुण्योदय ही था। उसी के कारण मैं दुर्जय सेनापतियों को मार सका। लेकिन मैं अज्ञानवश अपनी जीत का श्रेय वैश्वानर और हिंसा को ही दे रहा था।

"भद्रे! नंदिवर्धन के रूप में मैंने आगे क्या किया यह भी तुम ध्यान देकर सुनो।" □

[५] कनकमंजरी से विवाह

कुशावर्त के राजा कनकचूड़ की पहली रानी आम्रमंजरी का पुत्र तो कनकशेखर था। इस राजा के मलयमंजरी नाम की एक दूसरी रानी भी थी। इस रानी से उत्पन्न राजा कनकचूड़ के दो पुत्रियाँ थीं—मणिमंजरी और कनकमंजरी। यद्यपि मणिमंजरी भी बहुत सुन्दर थी, पर छोटी राजकुमारी कनकमंजरी साक्षात् रतिरूपा ही थी।

द्रुम और समरसेन को मारने के बाद कनकशेखर और कनकचूड़ का रथ नगर में कुछ आगे चला गया। नन्दिवर्धन का रथ पीछे था। उसके रथ में रत्नवती भी बैठी थी। नन्दिवर्धन का सारथि तेतलि रथ हाँक रहा था।

जिस समय नन्दिवर्धन का रथ राजभवन के नीचे से गुजर रहा था, तब नन्दिवर्धन ने झरोखे में से झाँकते हुए कनकमंजरी को देखा। दोनों एक दूसरे पर आसक्त हो गए। दोनों को कामदेव ने अपने पंचशरों से बींध दिया। चतुर सारथि तेतलि ने सोचा कि मेरे स्वामी के इस तरह कनकमंजरी को देखने से इनकी तुच्छता जाहिर होगी, इन्हें अपयश मिलेगा। यह सोचकर उसने तुरन्त रथ आगे बढ़ा दिया।

रथ से उतर कर नन्दिवर्धन अपने महल में अकेला ही पहुँचा। रत्नवती को उसने राजमहल के अन्तःपुर में भेज दिया। नन्दिवर्धन ने अपने द्वारपाल को आदेश दिया कि मेरे पास कोई न आये। अब नन्दिवर्धन अकेला रहकर बार-बार कनकमंजरी के बारे में सोचने लगा और उसके विरह में पागल-सा होकर करवटें बदलने लगा। पूरी रात उसकी तड़पते हुए बीती। रात बीतने के बाद भी वह अपरान्ह तक उद्विग्न ही पड़ा रहा।

अपने स्वामी का हाल जानने वाला—सारथि तेतलि नन्दिवर्धन के पास पहुँच गया। उसे द्वारपाल नहीं रोक पाये। नन्दिवर्धन को प्रणाम कर तेतलि ने सब कुछ जानते हुए अनजान बनकर पूछा कि आप कल से बहुत उदास हैं। इसका कारण बताइए। नन्दिवर्धन ने घुमा-फिराकर कहा कि अपने शोक का कारण मैं भी नहीं जानता। बस इतना जानता हूँ कि कल जब मेरा रथ राजभवन के नीचे से गुजरा था, तभी से मेरी दशा खराब है।

तेतलि बोला—"स्वामी! आपके रोग का कारण मैं जानता हूँ और उसकी औषध भी जानता हूँ; बल्कि मैं आपके रोग की औषध लेकर ही आया हूँ।

"स्वामी ! कल से मैं आपका दुःख दूर करने के प्रयास में ही लगा रहा हूँ। मैंने क्या-क्या किया, क्या-क्या जाना—यह सब आपको विस्तार से बताऊँगा। फिलहाल इतना ही समझ लें कि दूसरी तरफ भी आप-जैसी ही हालत है।"

इसके बाद सारथि तेतलि नन्दिवर्धन को कनकमंजरी का हाल सुनाने लगा।

महारानी मलयमंजरी की एक विशेष दासी कपिंजला है, जो वृद्धा है और कनकमंजरी की धाय भी रही है। कपिंजला सारथि तेतलि को जानती थी। कपिंजला ने तेतलि से कहा कि कनकमंजरी मेरा दूध पीकर बड़ी हुई है। मैं उसे पुत्री ही मानती हूँ। अब वह कामज्वर से पीड़ित है। तुम उसे बचाने का उपाय करो, क्योंकि वह तुम्हारे स्वामी नन्दिवर्धन पर आसक्त है। उसके दुःख से उसकी माँ मलयमंजरी भी बहुत दुःखी है। कनकमंजरी की माता मलयमंजरी और मैं बैठकर विचार कर रही थीं कि क्या करना चाहिए, तभी हमने राजमार्ग से आती यह आवाज सुनी कि यह काम सिद्ध हो गया। चिन्ता मत करो। इस वाणी को हमने देववाणी ही समझा और विश्वास किया कि कनकमंजरी की समस्या हल होगी।

कपिंजला ने तेतलि से आगे कहा—

"तेतलि ! थोड़ी ही देर बाद कनकमंजरी की बड़ी बहिन मणिमंजरी आई। वह बहुत खुश दिखाई दे रही थी। तब उसकी माता मलयमंजरी ने कहा कि मणि ! हम तो तेरी छोटी बहन कनकमंजरी के दाहज्वर से शोकाकुल हैं और तू खुश हो रही है, इसका क्या कारण है ?

"तेतलि ! इस पर मणिमंजरी ने अपनी माता से कहा कि माता आज मैं राजसभा में पिता महाराज कनकचूड़ की गोद में बैठी थी। उन्होंने भाई कनकशेखर से कहा कि मणिमंजरी का विवाह हम नन्दिवर्धन के बड़े भाई शीलवर्धन के साथ करेंगे, ऐसा निश्चय पहले ही कर चुके हैं। अब दूसरा निश्चय यह है कि छोटी पुत्री कनकमंजरी का विवाह हम नन्दिवर्धन के साथ करेंगे, क्योंकि नन्दिवर्धन अद्वितीय पराक्रमी है। उसने समरसेन और द्रुम जैसे सेनापतियों को धराशायी किया है। हे माता ! हम दोनों बहनें साथ-साथ रहेंगी, इसकी मुझे खुशी है।

"तेतलि ! महाराज कनकचूड़ के इस निश्चय से महारानी मलयमंजरी भी प्रसन्न हुई है। अब मैं तुमसे यह कहने आई हूँ कि विवाह से पहले कनकमंजरी और नन्दिवर्धन की मुलाकात होनी चाहिए। मैं कनक-

मंजरी को लेकर रति-मन्मथ उद्यान पहुँच रही हूँ। तुम भी अपने स्वामी नन्दिवर्धन को लेकर पहुँचो।"

तेतलि ने नन्दिवर्धन से कहा—

"स्वामी ! अब संताप दूर करो। कपिंजला से जो कुछ मैंने जाना वह आपको बता दिया। आपके रोग की औषध तो मैं ढूंढ़ लाया। अब आप तैयार होकर मेरे साथ रति-मन्मथ उद्यान चलिए।"

नन्दिवर्धन रति-मन्मथ उद्यान पहुँचा। तेतलि एक स्थान पर बैठकर बोला कि स्वामी ! अब आप अपनी प्रियतमा को ढूँढ़ लीजिए। नन्दिवर्धन उस विशाल उद्यान में कनकमंजरी को ढूँढ़ने लगा। उसने चम्पक वीथी, कदलीकुंज, माधवीलतामण्डप, केतकी खण्ड, द्राक्षा मण्डप, अशोक वन आदि स्थानों में कनकमंजरी को देखा, पर वह उसे नहीं मिली। तब वह मन में सोचने लगा कि तेतलि ने मुझे धोखा दिया है।

उधर कनकमंजरी भी उद्यान में नन्दिवर्धन को ढूँढ़ रही थी। उसे भी नन्दिवर्धन नहीं मिला तो उसने सोचा कि कपिंजला ने मुझे धोखा दिया है। यह सोच कनकमंजरी ने प्राण त्यागने का निश्चय किया और बोली कि हे वनदेवता ! यदि मेरा प्रेम सच्चा है तो अगले जन्म में मुझे नन्दिवर्धन पति रूप में मिलें। यह कह वह तमाल वृक्ष पर चढ़ गई और गले में फन्दा लगाकर फाँसी खाने लगी। तभी नन्दिवर्धन ने देख लिया और उसने खड्ग से फन्दा काट दिया। कनकमंजरी नीचे गिरकर मूर्च्छित हो गई।

तब तक कपिंजला और तेतलि भी वहाँ आ गए। कनकमंजरी को होश आया तो वह उचट कर दूर हट गई और नन्दिवर्धन से बोली—अरे निष्ठुर ! मुझे मत छूना। नन्दिवर्धन ने उसे समझाया कि मैं तुम्हें बहुत देर से ढूँढ़ रहा था। फिर कपिंजला ने भी उसे समझाया। तब उसका क्रोध दूर हुआ। चारों बैठकर बातें करने लगे। तेतलि ने कपिंजला से कहा कि इस उद्यान का रति-मन्मथ नाम अब तक निरर्थक था। आज इन दोनों के मिलने से इसका रति-मन्मथ नाम सार्थक हो गया।

ये बातें हो ही रही थीं कि तभी मलयमंजरी के अन्तःपुर का कंचुकी योगन्धर आ गया। कपिंजला ने उससे पूछा—योगन्धर ! तुम कैसे आ गए ? योगन्धर ने कहा कि राजकुमारी कनकमंजरी को महल में न पाकर महाराज कनकचूड़ बहुत घबरा गये हैं। उन्होंने मुझसे कहा कि कहीं से भी ढूँढ़कर कनकमंजरी को ले आओ।

कनकमंजरी कपिंजला और योगन्धर के साथ राजभवन चली गई। नन्दिवर्धन तेतलि के साथ अपने भवन में चला गया। फिर ज्योतिषी ने विवाह का मुहूर्त छाँटा। उसी मुहूर्त में मणिमंजरी का विवाह शीलवर्धन के साथ और कनकमंजरी का विवाह नन्दिवर्धन के साथ बड़ी धूम-धाम से सम्पन्न हो गया।

संसारी जीव ने अगृहीतसंकेता से कहा—

"बहिन! कनकमंजरी को पाकर मैं बहुत प्रसन्न था। मैं उसके साथ आनन्द से रहने लगा। मुझे जितने भी भौतिक सुख मिले, यश मिला, विजय मिली, उस सबका कारण मेरा अनन्य मित्र पुण्योदय ही था। पर मैं मूढ़ तो वैश्वानर जैसे शत्रु को ही इसका श्रेय देता था। इसके साथ ही मुझ पर हिंसादेवी का प्रभाव भी बढ़ता जाता था। अब आगे क्या हुआ, वह सुनो।"

□

[६] हिंसा का प्रभाव

युद्ध में घायल विभाकर अब स्वस्थ हो चुका था। नंदिवर्धन की उससे भी मित्रता हो गई थी। जब विभाकर ने अपने देश जाने की इच्छा प्रकट की तो राजा कनकचूड़ ने उसे विदा कर दिया।

नंदिवर्धन हर तरफ से निश्चिन्त था। अम्बरीष डाकुओं के सरदार प्रवरसेन को उसने पहले ही मार दिया था। वीरसेन आदि अन्य डाकू उसके दास बन गए थे। नंदिवर्धन ने डाकुओं को भी उनके देश भेज दिया। अब वह रत्नवती और कनकमंजरी—दोनों पत्नियों के साथ निश्चिन्त होकर कुशावर्त नगर में रह रहा था। एक दिन उसने सोचा कि इन दोनों रमणियों की प्राप्ति मुझे वैश्वानर और हिंसा के सहयोग से ही हुई है। द्रुम और समरसेन को मैंने इन्हीं दोनों के सहयोग से मारा था और इनको मारने के कारण मेरे शौर्य से प्रसन्न होकर राजा कनकचूड़ ने अपनी पुत्री कनकमंजरी का विवाह मेरे साथ किया है। अतः मुझे हिंसा को प्रसन्न रखना चाहिए। यह सोच नंदिवर्धन ने दो-चार क्रूरचित्त नामक बड़े खा लिये और नित्य शिकार को जाने लगा। नंदिवर्धन सबेरे जंगल को जाता और निरीह प्राणियों—वन्य जीवों का वध करके लौटता था।

नंदिवर्धन की अब यह हालत हो गई थी कि अब उसे क्रूरचित्त बड़े खाने की आवश्यकता ही नहीं रही थी। बिना बड़ों के ही वह हर समय क्रोध से तमतमाया रहता था।

कनकशेखर जैन धर्मी श्रावक था। नंदिवर्धन का आखेट व्यसन उसे अच्छा नहीं लगा। उसने सोचा कि नंदिवर्धन मेरा फुफेरा भाई है, साढू भी है और मित्र भी है। इसलिए मुझे यह प्रयत्न करना चाहिए कि यह पापी वैश्वानर और अन्तरंग पत्नी दुष्टा-हिंसा का त्याग करके धर्ममय जीवन बिताये। लेकिन मैं नंदिवर्धन को पिता के सामने ही समझाऊँगा, क्योंकि अकेले में तो वह मेरी शिक्षा की उपेक्षा भी कर देगा। मेरे पिताजी उसके मामा हैं। अतः मामा के लिहाज से उनकी बात मान भी लेगा।

एक दिन नंदिवर्धन राजसभा में बैठा हुआ था। राजा कनकचूड़ उसकी प्रशंसा करने लगे कि नंदिवर्धन बुद्धिमान और यशस्वी है।

"सभी बातें ठीक हैं पिताजी!" अवसर देख कनकशेखर ने पिता कनकचूड़ से कहा—"नंदिवर्धन पढ़ा-लिखा, सुन्दर-स्वस्थ, ऊँचे कुल में जन्मा है, पर इसकी संगति बहुत बुरी है। सभी अनर्थों का कारण वैश्वानर इसका अनन्य मित्र है और नरक का द्वार हिंसा इसकी पत्नी है। इन दोनों के कुसंग से नंदिवर्धन अधोमुख होता जा रहा है।"

"फिर तो नंदिवर्धन को दोनों पापियों का साथ छोड़ देना चाहिए।" राजा कनकचूड़ ने कहा—"जो व्यक्ति अपना हित चाहते हैं उन्हें ऐसे मित्र बनाने चाहिए जो लोक-परलोक दोनों बनायें।"

यह सुनते ही नंदिवर्धन क्रोध से तमतमा उठा। उसने राजा के बड़प्पन और सम्बन्ध का तनिक भी लिहाज नहीं किया और यों बोला—

"अरे मुर्दे! तू मेरे सामने ही मेरे प्राणप्रिय वैश्वानर और प्राणप्रिया हिंसा की निंदा करता है। पापी तो तुम दोनों पिता-पुत्र हो। मेरे इन मित्रों के कारण ही तुम्हें यह राज्य मिला है, वरना समरसेन और द्रुम तुम्हें नष्ट कर डालते। तुम दोनों में कौन इतना समर्थ है, जो उन्हें मारता?"

नंदिवर्धन ने पुनः कनकशेखर से कहा—

"रे नीच! तू ऐसा पण्डित कब से हो गया, जो मुझे शिक्षा देने लगा?"

ये बातें सुनकर भी कनकशेखर मूर्तिवत् बैठा रहा। कनकचूड़ भी

चकरा गए। फिर नंदिवर्धन खड्ग को म्यान बाहर निकाल कर चीखा—

"पापियो! मैं अभी तुम्हारा वध करता हूँ। उठकर मेरा सामना करो।"

नंदिवर्धन की यह ललकार सुनते ही राजसभा के सुभट भाग गए। कनकचूड़ और कनकशेखर पर उनके मित्र पुण्योदय ने कृपा की और भवितव्यता ने भी रोक लगाई, जिससे नंदिवर्धन कनकचूड़ और कनकशेखर का वध नहीं कर सका और सभा से बाहर चला गया।

अब वह कनकचूड़ और कनकशेखर से पूर्णतः शत्रुता मानने लगा और बोल-चाल तक बन्द कर दी। अब वह कुशावर्त नगर में रहना नहीं चाहता था। वह अपने देश जाने की सोच ही रहा था कि दो दिन बाद राजा पद्म का दूत दारुणक जयस्थल से नंदिवर्धन को लिवाने आ गया। नंदिवर्धन ने अपने पिता के कुशल-समाचार पूछे तो दारुणक ने बताया—

"वैसे तो ठीक हैं, लेकिन नगर पर एक भारी संकट आया हुआ है। वह यह कि बंग देश के राजा भवन ने हमारे नगर जयस्थल को चारों ओर से घेर लिया है। उसने किले के बाहर के क्षेत्र को जीत लिया है। अन्न भण्डार और पशुओं के चारा भण्डार पर भी काबू कर लिया है। आपके पिताजी महाराज पद्म राजा भवन को हटाने में असमर्थ हैं। सब ने एक स्वर से यही तय किया है कि कुमार नंदिवर्धन ही बंगदेश के शक्तिशाली राजा को जीत सकते है।

"कुमार नंदिवर्धन! मंत्रिमण्डल के विशिष्ट मंत्रियों में से मतिधन, बुद्धिविशाल और प्रज्ञाकर आदि मंत्रियों ने विचार-विमर्श करके मुझे आपको बुलाने आपके पास भेजा है।"

दारुणक के मुँह से यह संवाद सुनते ही नंदिवर्धन के मित्र वैश्वानर ने उसे उकसाया और वह क्रोध से उत्तेजित हो उठा। युद्ध का अवसर आया देख हिंसा देवी भी प्रसन्न हो गई। नंदिवर्धन ने सेना लेकर कुशावर्त से जयस्थल नगर को कूच कर ही दिया। जिस समय नंदिवर्धन चला उसे विदा देने कनकचूड और कनकशेखर कोई नहीं आया। केवल मणिमंजरी कनकमंजरी से मिलकर विदा देने आई।

मार्ग में चलते-चलते नंदिवर्धन ने वैश्वानर से कहा—"मित्र वैश्वानर! आजकल मुझे तुम्हारे बताये हुए क्रूरचित्त नामक बड़े खाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। बिना बड़ों को खाये ही मैं हर समय प्रचण्ड, उत्तेजित और क्रुद्ध बना रहता हूँ। इसका क्या कारण है?"

इस पर वैश्वानर ने कहा—

"इसका कारण तुम्हारी भक्ति है। जो मनुष्य मेरी सच्ची भक्ति करता है, मेरे वीर्य से बने क्रूरचित्त बड़े उसके चित्त और रग-रग में प्रविष्ट हो जाते हैं। मेरे बनाये हुए बड़े अब तुममें पूरी तरह घुल-मिल गए हैं। मेरे वीर्य से बने बड़ों के एकत्व के कारण तुम मेरा ही प्रतिरूप हो गए हो। फिर मेरे कहने से ही तुमने हिंसा देवी का वरण किया है। अतः अब तेरी आत्मा हिंसामय और तेरा शरीर वैश्वानरमय हो गया है। मेरे इस कथन में तुझे संदेह नहीं होना चाहिए।"

"लेकिन मुझे एक सन्देह है।" नंदिनवर्धन ने कहा—"मेरे सन्देह का निवारण करो।"

उत्तर में वैश्वानर कुछ कहता कि शत्रु सेना दिखाई देने लगी। शत्रु सेना ने भी नंदिवर्धन की सेना को देख लिया था। अतः उसने तुरन्त व्यूह रचना की और धावा बोल दिया। नंदिवर्धन की सेना भी डट गई। दोनों सेनाएं प्राणों का मोह त्यागकर लड़ने लगीं। काफी देर तक युद्ध चला और बंगपति भवन ने नंदिवर्धन की सेना को पीछे खदेड़ दिया। अपनी सेना की पराजय देख नंदिवर्धन भवन राजा के सामने डट गया। दोनों एक दूसरे को मारने का दाँव देख-देख कर लड़ने लगे। अवसर देख नंदिवर्धन ने अपने रथ से छलांग लगाई और भवन के रथ में कूद गया। फिर विद्युतगति से भवन राजा का सिर धड़ से अलग कर दिया।

अब तो चारों ओर नंदिवर्धन की विजय का नगाड़ा बज गया। नगर के लोग, राजा, मंत्री—सब बाहर आकर नंदिवर्धन से मिले और उसका उल्लासपूर्वक स्वागत किया। रथ से उतरकर नंदिवर्धन ने पिता के चरण छुए। पिता उसे वक्ष से लगाकर हर्ष के आँसू बहाने लगे। फिर राजभवन पहुँचकर नंदिवर्धन माता महारानी नंदा से मिला। माता-पुत्र के स्नेह का वर्णन कौन कर सकता है?

संसारी जीव ने अपनी आत्मकथा सुनाते हुए अगृहीतसंकेता से कहा—"भद्रे! अब भी मैं नंदिवर्धन के रूप में अपनी विजय का सारा श्रेय वैश्वानर और हिंसा को ही दे रहा था। अब तक मैं यह नहीं जान पाया कि मेरी विजय और यश का श्रेय मेरे परम हितैषी और सामर्थ्यवान मित्र पुण्योदय को ही है।

"जो भी हो, मैं रत्नवती और कनकमंजरी के साथ दाम्पत्य जीवन का सुख भोगते हुए जयस्थल नगर में रहने लगा।" □

[७] दयाकुमारी के साथ विवाह का प्रयास

जयस्थल नगर में आनन्दपूर्वक रहते हुए एक दिन नन्दिवर्धन की अन्तरंग पत्नी हिंसा ने उसकी ओर दृष्टिपात किया तो उसे एक फुरफुरी आई और जैसे-तैसे रात काटने के बाद नन्दिवर्धन सुबह उठा। नित्य की तरह उसने माता-पिता की चरण-वंदना नहीं की, उनसे मिला भी नहीं और सीधा जंगल पहुँच गया। नन्दिवर्धन ने सवेरे से शाम तक अनेक निरीह पशुओं का वध किया। जब से उसने हिंसा से विवाह किया था, आखेट उसे बहुत प्रिय हो गया था।

नन्दिवर्धन को दिनभर अनुपस्थित देख महाराज पद्म ने अपने सेवक विदुर से पूछा कि आज नन्दिवर्धन दिखाई नहीं दिया, दिनभर कहाँ रहा। विदुर को सब कुछ मालूम था। उसने राजा पद्म को बताया—

"मैं आज सबेरे कुमार नन्दिवर्धन से मिलने गया था। मैंने उनके सेवकों से पूछा तो उन्होंने बताया कि वे सबेरे से ही शिकार खेलने जंगल चले गए हैं। सेवकों ने यह भी बताया कि जब से नन्दिवर्धन ने हिंसादेवी से विवाह किया है, तब से शिकार में उनके प्राण रहते हैं।"

"यह तो बहुत बुरा व्यसन है।" राजा पद्म ने विदुर से कहा—"हमारे राजवंश में किसी ने आखेट नहीं किया। जैसे भी हो, नन्दिवर्धन को हिंसा से छुड़ाना चाहिए।"

"इसका तो एक ही उपाय है।" विदुर ने राजा पद्म से कहा—"आप जिनमतज्ञ नैमित्तिक से परामर्श कीजिए। वे इन दिनों हमारे नगर में आये हुए हैं।"

"एक बार हमने पहले भी जिनमतज्ञ नैमित्तिक से परामर्श किया था" राजा पद्म ने कहा—"अब तक तो वैश्वानर की ही समस्या थी, अब हिंसा भी कुमार के गले पड़ गई है। जिनमतज्ञ से पुनः विचार करना उचित ही रहेगा।"

अगले दिन सबेरे राजा पद्म ने जिनमतज्ञ नैमित्तिक को बुलवाया। ससम्मान आसन देने के बाद राजा ने पूछा कि मेरा पुत्र नन्दिवर्धन अब तक तो पापी वैश्वानर के वश में था। अब तो उसने हिंसा के साथ भी

पाणिग्रहण कर लिया है। हिंसा को अपनाने के कारण वह आखेट-प्रिय हो गया है। आप तो जानते ही हैं कि हिंसा नरक का द्वार है। बताइए मैं क्या करूँ"।

जिनतमज्ञ नैमित्तिक कहने लगे—

"राजन् ! बहुत पहले जो बात मैंने आपको बताई थी, उसे ही पुनः कहता हूँ। सभी गुणों का केन्द्र, कल्याण-परम्परा का कारण चित्तसौन्दर्य नामक एक अन्तरंग नगर है। भले लोगों का पालन करने वाला शुभ-परिणाम नामक इस नगर का राजा है। निष्प्रकम्पता नामक इस राजा के रानी है, जिसने क्षान्ति (क्षमा) नामक पुत्री को जन्म दिया है। राजपुत्री क्षान्ति मुनियों का मन मोहने वाली सुन्दरी है।

"राजन् ! इतना सब मैं आपको पहले बता चुका हूँ। अब नई बात यह बताया हूँ कि चित्तसौन्दर्य नगर के राजा शुभपरिणाम के चारुता नामक एक और रानी भी है। इस दूसरी रानी ने दयाकुमारी नामक कन्या को जन्म दिया है। दया नाम की यह राजकुमारी सदा मुनियों के हृदय में रहती है। दयादेवी का वरण करने से पूर्व चारुता रानी की भक्ति करनी चाहिए। जो लोग चारुता की उपासना करते हैं, उन्हें काम-क्रोध, भय, द्रोह आदि पामर कभी परेशान नहीं कर सकते और फिर ये व्यक्ति दया के साथ विवाह करने योग्य बन जाते हैं।

"राजन् ! यदि नन्दिवर्धन का विवाह चारुता की पुत्री दया के साथ हो जाए तो हिंसादेवी स्वतः ही भाग जाएगी। दया ऐसी नारी है जो चिल्ला-चिल्लाकर अपने पति को यह भरोसा देती रहती है—'भय मत करो, भय मत करो।'

"राजन् ! दया के रूप-सौन्दर्य और उसके गुणों का बर्णन कोई नहीं कर सकता, क्योंकि वे निस्सीम हैं। फिर भी कुछ कहता हूँ, वह यह कि दया संसार में—तीनों लोकों में सच्ची हितकारिणी, समस्त पाप-तापों को नष्ट करने वाली और धर्म का सर्वस्व है। हिंसा तो इसके नाम से ही भय-भीत हो जाती है। हिंसा यदि अग्नि है तो दया जल की शीतल धारा है। स्त्रियों से सदा दूर रहने वाले ऋषि-मुनि भी दया को अपना लेते हैं तो उस दया का क्या कहना।"

"मैं तो चाहता हूँ कि नन्दिवर्धन का विवाह दया के साथ हो जाय।"

राजा से कहा—"आप कोई उपाय बताइए, जिससे दयाकुमारी मेरी पुत्र-वधू बन सके।"

नैमित्तिक ने कहा—

"राजन्! दयाकुमारी के साथ नन्दिवर्धन का विवाह करना आपके हाथ की बात नहीं है। जब राजा शुभपरिणाम अपनी पुत्री का विवाह आपके पुत्र के साथ करना चाहेगा तभी हो सकेगा। वह तभी चाहेगा, जब वह आपके पुत्र के अनुकूल होगा। शुभपरिणाम राजा आपके पुत्र के अनुकूल हो जाए, इसका भी कोई उपाय आप नहीं कर सकते, क्योंकि शुभ-परिणाम स्वतन्त्र राजा नहीं है। वह कर्मपरिणाम राजा के अधीन है। जब राजा कर्मपरिणाम नन्दिवर्धन पर कृपा करेगा, तब शुभपरिणाम स्वतः ही अपनी पुत्री दयाकुमारी का विवाह आपके पुत्र के साथ कर देगा।

"राजन्! ज्योतिष के हिसाब से मैं इतनी भविष्यवाणी अवश्य करता हूँ कि एक-न-एक दिन कर्मपरिणाम राजा की कृपा नन्दिवर्धन (संसारी जीव) पर अवश्य होगी। जब वह दिन आयेगा, तब राजा कर्मपरिणाम अपनी बड़ी बहिन लोकस्थिति और पत्नी कालपरिणति से विचार-विमर्श करेगा। अपने सचिव स्वभाव से भी पूछेगा और नन्दिवर्धन की अन्तरंग पत्नी भवि-तव्यता को भी सूचित करेगा। फिर नियति और यदृच्छा नन्दिवर्धन के वीर्य के बारे में जानकारी देंगी। फिर कर्मपरिणाम शुभ परिणाम से कहकर दयाकुमारी का विवाह नन्दिवर्धन के साथ करवायेगा।

"राजन्! चूंकि आपके हाथ में कुछ नहीं है, इसलिए आप तो मौन होकर रहिए। मैं जानता हूँ कि पिता के नाते आप उद्योगहीन रहना नहीं चाहते। लेकिन जब आप कुछ कर ही नहीं सकते तो व्यर्थ हाथ-पैर चलाने और चिन्ता करने से लाभ ही क्या है।"

इसके बाद सदागम, भव्य पुरुष, प्रज्ञाविशाला और अगृहीतसंकेता के बीच बैठा संसारी जीव अगृहीतसंकेता से बोला—

"भद्रे! जिनमतज्ञ नैमित्तिक को मेरे पिताजी ने सम्मान के साथ विदा किया। मेरा आखेट-व्यसन ज्यों-का-त्यों बना रहा। दयाकुमारी के साथ मेरा विवाह होने का संयोग नहीं आया; बल्कि हुआ यह कि अपने पापी मित्र वैश्वानर और भार्या हिंसा के वश में होकर मैंने भारी अनर्थ किये। मैंने माता का वध किया, जयस्थल नगर को जलाया। जो-जो मेरी भलाई चाहते थे, उन-उनको मैंने मार डाला। मैं न केवल हिंसक ही बना, बल्कि कृतघ्न और विश्वासघाती भी बना। तो मुझ संसारी जीव ने अनेक योनियों में भटकने के बाद राजपुत्र नन्दिवर्धन के रूप में मनुष्यभव तो

पाया, पर उसका सदुपयोग नहीं किया । अब मैंने नन्दिवर्धन के रूप में आगे क्या अनर्थ किया, उसे सुनो ।" □

[८] वैश्वानर और हिंसा का ताण्डव

महराज पद्म ने नंदिवर्धन को युवराज पद देने का विचार किया और नंदिवर्धन को राजसभा में बुलाकर समस्त राज परिषद् के समक्ष अपना निर्णय बताया कि मैं नंदिवर्धन को युवराज पद देना चाहता हूँ। सभी ने एक स्वर से इस प्रस्ताव का समर्थन किया। उसी समय राजसभा में अरिदमन राजा का मंत्री स्फुटवचन आया। उसने राजा पद्म से कहा—"राजन् ! मैं शार्दूलपुर के राजा अरिदमन का मंत्री स्फुटवचन हूँ। राजा अरिदमन की रानी रतिचूला हैं, उनके मदनमंजूषा नाम की राजकन्या है। राजा अरिदमन अपनी पुत्री मदनमंजूषा का विवाह आपके पुत्र नंदिवर्धन के साथ करना चाहते हैं। आप अपनी स्वीकृति देकर हमें कृतार्थ कीजिए।"

"राजा अरिदमन को अपना सम्बन्धी बनाकर मुझे प्रसन्नता होगी।" राजा पद्म ने स्फुटवचन से कहा—"मदनमंजूषा मेरी पुत्रवधू बने, मैं इसकी स्वीकृति देता हूँ।

इस बात चीत के मध्य नंदिवर्धन ने स्फुटवचन से पूछा—

"आर्य ! आपका शार्दूलपुर नगर हमारे नगर जयस्थल से कितनी दूर है ?

स्फुटवचन—यहाँ से डेढ सौ योजन दूर है।

नंदिवर्धन—तुम गलत कहते हो।

स्फुटवचन—फिर आप ही बताइए, कितनी दूर है।

नंदिवर्धन—डेढ़ सौ योजन से दो कोस कम है।

स्फुटवचन—इसका क्या प्रमाण है ?

नंदिवर्धन—बचपन में मैंने यही सुना था।

"आप केवल सुनी हुई बात को प्रमाण मान रहे हैं।" स्फुटवचन मंत्री ने नंदिवर्धन से कहा—"मैंने तो अपने कदमों से नापकर आपको प्रामाणिक दूरी बताई है कि शार्दूलपुर नगर यहाँ से डेढ सौ योजन दूर है।"

"मैंने विश्वस्त लोगों से सुना है।" नंदिवर्धन बोला—"इसलिए मेरा कथन सच्चा और प्रामाणिक है। तुम झूठे हो।"

"ऐसा नहीं है कुमार !" स्फुटवचन बोला—"आपको किसी ने गलत बताया है। मैंने जो दूरी बताई है, वह स्वयं नापकर बताई है। उसमें तिलभर का भी अन्तर नहीं है।"

इसके बाद नंदिवर्धन बहुत क्रुद्ध हुआ। उसने सोचा कि यह स्फुट-वचन भरी सभा में मुझे गलत बता रहा है। ऐसे दुष्ट का वध कर देना चाहिए। नंदिवर्धन ने स्फुटवचन को मारने के लिए म्यान से तलवार खींची और मारने झपटा। तभी राजा पद्म चिल्लाने लगे—

"अरे बेटा ! यह क्या अनर्थ करता है ? स्फुटवचन तो हमारे अतिथि हैं।"

यों पिता को रोकते देख नंदिवर्धन अपने पिता को ही शत्रु समझने लगा—मेरा पिता भी मेरा शत्रु हो गया है, जो पापी स्फुटवचन की रक्षा करना चाहता है। अब मैं पहले पिता का ही वध करूँगा।

नंदिवर्धन जब अपने पिता को मारने झपटा तो उसकी माता नंदादेवी चिल्लाई—"अरे पुत्र ! यह क्या अनहोनी कर रहा है ! अरे लोगो, इसे रोको।"

इतनी देर में नंदिवर्धन ने अपने पिता-माता और स्फुटवचन का वध कर दिया। राजसभा में रक्त की नदी बहने लगी। सभी लोग भयभीत और स्तंभित हो गए। फिर भी नंदिवर्धन के बड़े भाई शीलवर्धन, उसकी पत्नी मणिमंजरी और स्वयं उसकी भी पत्नी रत्नवती कहने लगी—"यह तुमने अच्छा नहीं किया।"

मेरे निर्णय को गलत बताने वाले ये लोग भी मेरे शत्रु हैं। यह सोच, नंदिवर्धन ने इन स्वजनों का भी वध कर दिया। नंदिवर्धन की दूसरी पत्नी कनकमंजरी भी विलाप करने लगी तो नंदिवर्धन ने उसे भी मार दिया। नंदिवर्धन का परमहितैषी अन्तरंग साथी पुण्योदय, यह कहते हुए भाग गया कि मुझे अब यहाँ नहीं रहना चाहिए। मेरा समय पूरा हो गया। मैंने इस नराधम की अनेक बार रक्षा की। अब मैं जाता हूँ।

पुण्योदय के चले जाने से वैश्वानर को भारी प्रसन्नता हुई।

राजसभा में भारी हाहाकार होने लगा। नंदिवर्धन ने अपने हितैषी माता-पिता आदि स्वजनों का वध करके वैश्वानर और हिंसा को अत्यधिक प्रसन्न किया।

मार-धाड़ और धमा चौकड़ी में नंदिवर्धन का अधोवस्त्र—धोती खुल गई और उत्तरीय भी नीचे गिर गया। नंदिवर्धन नंग-धड़ंग—बिखरे बालों

वाला वैताल-सा लग रहा था। यह और भी अनर्थ करेगा, यह सोच राज-कर्मचारियों ने उसे पकड़कर बंदीगृह में डाल दिया। अब तो नंदिवर्धन को भूखा-प्यासा रखा जाने लगा। उसके बंधन भी ढीले नहीं किये गये। लोग उसे गालियाँ देकर अपमानित करने लगे। पितृहन्ता, मातृहंता और पत्नियों-भाइयों का हत्यारा कह-कहकर लोग उसका तिरस्कार करते।

नंदिवर्धन एक महीने तक भूखा-प्यासा रहा। उसका शरीर काफी दुबला हो गया।

एक रात भवितव्यता की प्रेरणा से एक मूषक ने नंदिवर्धन ने बंधन काट दिये। वह चुपचाप उठा और सोचा कि यह पूरा नगर ही मेरा शत्रु हो गया है। यह सोच नंदिवर्धन ने रात को जब चौकीदार सो रहे थे, पूरे नगर में जहाँ-तहाँ आग लगा दी। नगर को धू-धू करके जलता छोड़ वह नगर से बाहर भाग गया।

भागते-भागते नंदिवर्धन जंगल में पहुँच गया। इस बीच वह कई बार ठोकरें खाकर गिरा। काँटों से विंध गया। औंधे मुँह गिरा। जब भागने की शक्ति न रही तो विवश होकर एक जगह पड़ा रहा।

कुछ चोरों ने नंदिवर्धन को पड़े देखा तो आपस में बातें करने लगे कि इसे उठाकर ले चलो। इसे अपने स्वामी पल्लीपति को सौंप देंगे। वह इसे बेचकर धन कमायेगा और हमें भी हिस्सा देगा। ये बातें नंदिवर्धन ने सुनीं तो वैश्वानर और हिंसा के वश होकर चोरों से निपटने को सन्नद्ध हो गया। चोर भी उसकी बदली हुई आँखें पहचान गए। उन्होंने उसे पहले तो खूब पीटा, फिर बाँधकर अपनी चोर पल्ली में ले जाकर पल्लीपति को सौंप दिया।

चोरों ने जब नंदिवर्धन के मुँह पर बंधी पट्टी खोली तो हाथ-पैरों से निर्बल होने के कारण वह गालियाँ बकने लगा। जिस पल्ली में नंदिवर्धन को रखा गया था, वह भीमनिकेतन नामक पल्ली थी, जो कनकपुर नामक नगर के निकट थी। कनकपुर नगर का राजा विभाकर था। गालियों के कारण खिसियाकर चोर नंदिवर्धन को भूख-प्यास और मार-पीट का त्रास देने लगे। नंदिवर्धन को बहुत बुरा भोजन दिया जाता था। उसे नंदिवर्धन खाता नहीं था, पर कब तक भूखा रहता। अतः थोड़ा-बहुत कुत्सित भोजन खा लेता।

चोरों के सरदार का नाम रणवीर था। एक दिन रणवीर ने चोरों से

पूछा कि अब नंदिवर्धन का क्या हाल है। कुछ मोटा हुआ है या नहीं। चोरों ने कहा—हम लोग उसे मोटा करने की कोशिश कर रहे हैं।

फिर एक रात कनकपुर की सेना ने चोर-पल्ली भीमनिकेतन पर धावा बोल दिया। इससे कुछ चोर भाग गये और कुछ मारे गये। कमजोर होने के कारण नंदिवर्धन भाग नहीं पाया। अतः सैनिक उसे पकड़कर राजा विभाकर के पास ले गये। सैनिकों ने कहा—पृथ्वीनाथ! जिस पल्ली के चोर हमारे नगर में चोरी करते थे, वह सब भाग गये या मारे गये। यह एक चोर हम पकड़ पाये हैं।

विभाकर ने नीचे से ऊपर तक नंदिवर्धन को देखा तो सोचने लगा कि यह तो नन्दिवर्धन सा लगता है। लेकिन यह चोर कैसे बन गया? संभव है नन्दिवर्धन जैसा कोई चोर ही हो। फिर बहुत ध्यान से देखने पर उसे निश्चय हो गया कि यह तो नन्दिवर्धन ही है। इस निश्चय के बाद विभाकर ने सेवकों से कहा—

"इसे बंधनमुक्त करो। यह तो मेरा सखा, मेरा प्यारा मित्र नन्दिवर्धन है।"

यह कह विभाकर सिंहासन से नीचे उतरा। नन्दिवर्धन को वक्ष से लगाकर मिला और अपने पास बिठाकर हाल-चाल पूछे कि तुम इस दशा को कैसे प्राप्त हुए? नन्दिवर्धन ने संक्षेप में पूरा वृत्तान्त सुना दिया। सब कुछ सुनने के बाद विभाकर ने कहा—

"मित्र! यह तो तुमने ठीक नहीं किया। माता-पिता और भाई-भार्या की हत्या तो घोर पाप है। यह तुम्हें क्या सूझी?"

विभाकर राजा की यह हितकारी बात सुनते ही नन्दिवर्धन के तन-बदन में आग लग गई। उसके पापी मित्ररूप शत्रु वैश्वानर ने उसे बहुत उत्तेजित किया। हिंसा ने भी भड़काया। लेकिन अपने को विवश देख नन्दिवर्धन क्रोध को पी गया। विभाकर ने भी देखा कि नन्दिवर्धन का चेहरा विकृत हो गया है। इसे मेरी नसीहत बुरी लगी है तो उसने भी प्रसंग बदल दिया और अपने सामन्तों से बोला—

"सामन्तो! यह नन्दिवर्धन मेरा जीवनाधार, मेरा भाई, मेरा शरीर, मेरा आत्मीय और मेरा सब कुछ है। इसको स्नान कराकर नये वस्त्र दो और भोजन कराओ।"

विभाकर ने नन्दिवर्धन की बहुत बड़ी सेवा की। अपने पिता जैसा सम्मान दिया और कहा कि मुझे राज्य देकर मेरे पिता प्रभाकर स्वर्ग

सिधार गए। अब तुम्हीं मेरे पिता हो। मेरे संरक्षक बनकर रहो। लेकिन नन्दिवर्धन तो कुछ और ही सोच रहा था। उसने सोचा—पापी विभाकर ने मेरे वध-कार्य को अनुचित बताकर मेरा अपमान किया है। यह भी मेरा शत्रु ही है। मैं इसे भी मारूँगा।

विभाकर ने अपनी रानियों से कह दिया कि आज रात मेरे कक्ष में कोई नहीं आयेगी, क्योंकि आज मेरा मित्र नन्दिवर्धन मेरे पास सोयेगा। नन्दिवर्धन और विभाकर एक ही कक्ष में सोये। रात को जब सब सो गए, विभाकर भी सो गया तो नन्दिवर्धन ने उठकर विभाकर को खड्ग के एक ही वार से समाप्त कर दिया और रातों-रात कनकपुर से दूर भाग गया।

संसारी जीव बोला—

"बहिन अगृहीतसंकेता! पापी वैश्वानर के प्रभाव और हिंसा की पकड़ से मैं नराधम, चाण्डाल और राक्षस बन गया था। जो मेरा भला चाहते थे, मैं उन्हीं को मारता था। विभाकर ने मेरे साथ कितनी भलाई की, पर मैंने उसका भी वध कर दिया। माता-पिता, भाई, पत्नी, मित्र—इतने लोगों की निर्मम हत्या मेरे द्वारा पापी वैश्वानर और हिंसा ने कराई थी। फिर भी मैंने इनका साथ नहीं छोड़ा। इतना ही नहीं, आगे चलकर मैंने अपने ममेरे भाई कनकशेखर को भी नहीं छोड़ा। यह प्रसंग भी तुम सुनो।" ☐

[६] कनकशेखर को मारने का असफल प्रयास

कनकपुर नगर से रातों-रात भागने के बाद नन्दिवर्धन कई दिनों तक भूखा-प्यासा जंगलों में भटकता रहा। इस तरह भटकते-भटकते वह कुशावर्त नगर के बाहर राजोद्यान में पहुँच गया। राजा कनकचूड़ के सेवकों ने उसे पहचान लिया और राजा को खबर कर दी। राजा कनकचूड़ और कनकशेखर मंत्रियों को साथ लेकर नन्दिवर्धन को स्वागत के साथ राज-भवन ले गए। वहाँ उसकी सब तरह से सेवा की और अपना प्रेम प्रदर्शित किया।

कनकशेखर बार-बार मन में सोचता था कि नन्दिवर्धन अकेला और विपन्न अवस्था में आया है, इसका कुछ विशेष कारण अवश्य होगा। मन का सन्देह मिटाने के लिए कनकशेखर ने एक दिन एकान्त में नन्दिवर्धन से

अकेले आने का कारण पूछा तो नन्दिवर्धन ने सोचा कि इसे सब बातें बताऊँगा तो यह भी निन्दा करेगा। अतः उसने टालते हुए कहा—

"यह प्रसंग रहने दो। कुछ मत पूछो। जो भी घटित हुआ है, वह बताने लायक नहीं है।"

"मुझसे क्या छिपाना?" कनकशेखर ने आग्रह किया—"मैं तो तुम्हारा भाई हूँ—ममेरा भाई। मुझसे कुछ मत छिपाओ।"

नन्दिवर्धन ने फिर इन्कार किया कि रहने दो कुछ मत पूछो। इस पर कनकशेखर ने पुनः आग्रह किया तो नन्दिवर्धन वैश्वानर और हिंसा के वश में हो गया। उसने कनकशेखर की ही तलवार खींच ली और मारने दौड़ा—

"दुष्ट! जब मैं कोई बात बताना नहीं चाहता तो बार-बार हठ क्यों कर रहा है? अब मैं तुझे जीवित नहीं छोड़ूँगा।"

यह दृश्य देख राजा कनकचूड़ चिल्लाये—

"अरे, अरे, यह क्या अनर्थ करते हो?"

कनकशेखर धर्मव्रती सुश्रावक था। धर्मप्रेमियों की रक्षा देवता जन किया करते हैं। कनकशेखर की सेवा में कुछ देव अदृश्य होकर सदा साथ रहते थे। तो जब नंदिवर्धन तलवार लेकर कनकशेखर की ओर लपका और कनकचूड़ राजा ने शोर मचाया, तभी एक रक्षक देव ने नंदिवर्धन को बाँधकर आकाश में उछाल दिया और फिर अम्बरीष डाकुओं के अड्डे पर फेंक दिया।

अम्बरीष डाकू उसे पहचान गये। वे नंदिवर्धन को अपना स्वामी मानते थे। उसके अधीन रह चुके थे। अतः उन्होंने नंदिवर्धन की दशा देखी तो बड़ी दया भी आई। उसको बैठने को आसन दिया। लेकिन देव बंधन होने के कारण बैठ नहीं पाया। तब देव ने उसके बंधन ढीले किये तो वह बैठ गया। फिर डाकुओं ने नंदिवर्धन की हर तरह से आवभगत की। डाकुओं ने नंदिवर्धन से पूछा कि स्वामी आपकी यह दशा कैसे हुई? यह सुनते ही नंदिवर्धन पुनः वैश्वानर और हिंसा के वशीभूत हो गया। उसने सोचा, जहाँ भी जाओ लोग मेरा इतिहास पूछते हैं। अब मैं इन डाकुओं को भी मारूँगा। क्रोध के वशीभूत नंदिवर्धन ने कई डाकुओं को मार गिराया। लेकिन डाकू अधिक थे। उन्होंने नंदिवर्धन को बाँधकर डाल दिया। डाकुओं का सरदार वीरसेन बोला—

"यह नंदिवर्धन हमारा शत्रु है। इसने पहले हमारे नायक प्रवरसेन को मार दिया था। इसे यशस्वी और बलवान समझ हमने इसे अपना स्वामी स्वीकार किया था। हमने हर देश में यह बात फैला दी कि नंदिवर्धन हमारा स्वामी है। अतः अब हम यदि इसका वध करेंगे तो हमारी बदनामी होगी। इसे कहीं दूसरे देश में पटक देना चाहिए।"

इस विचार-विमर्श के बाद डाकुओं ने बंधे हुए नंदिवर्धन को एक बैलगाड़ी में पटका और रातोंरात बारह योजन का रास्ता तय कर लिया। फिर कुछ देर और चलने के बाद शार्दूलपुर नगर के निकट छोड़कर डाकू वापस चले गए।

शार्दूलपुर का राजा अरिदमन जिनभक्त श्रावक और श्रमणोपासक था। उसकी रानी रतिचूला भी जिनभक्त थी। धर्मप्रेमियों के भाग्य से शार्दूलपुर के मलयविजय नामक विशाल उद्यान में विवेक केवली संत-मुनियों के साथ पधारे। इसी उद्यान में नंदिवर्धन भी बँधा पड़ा था। केवली मुनि के पदार्पण से उस क्षेत्र में स्वाभाविक-सहज हिंसा रखने वाले जीव भी अहिंसामय हो गए थे। कुत्ता-बिल्ली, सिंह-हिरन, मोर-सर्प आदि अपना प्रकृत वैर भुलाकर स्नेह से पास-पास बैठे थे।

यथासमय राजा अरिदमन केवली विवेक की वंदना करने आया। उसके साथ राज परिषद के लोग भी थे। रानी रतिचूला और पुत्री मदनमंजूषा भी थीं। सभी ने मुनि की वंदना की और उनको देशना सुनने बैठ गए। उसी स्थान पर एक कोने में नंदिवर्धन बँधा हुआ पड़ा था। केवली विवेक की उपस्थिति में वैश्वानर और हिंसा नंदिवर्धन के शरीर में टिक नहीं पाये। वे दोनों काले रंग की आकृति के रूप में नंदिवर्धन की देह से निकल धर्मसभा से दूर जा बैठे और प्रतीक्षा करने लगे कि नंदिवर्धन धर्मसभा से उठकर बाहर आए तो हम इसके शरीर में पुनः बैठ जाएँ।

[१०] विवेक केवली की धर्मसभा

विवेक केवली ने देशना दी कि भव्य जीवों! यह संसार अनन्त अनादि है। यह जीव भी अनादि है। नाना योनियों में भटकता हुआ जीव मनुष्य भव पाता है। यह भव उसे अपना सहज स्वरूप प्राप्त करने के लिए

मिलता है। पर मनुष्य जिनेश्वरप्रणीत सद्धर्म को भूलकर कर्मबंधों को बांधता रहता है।

केवली ने काफी लम्बी देशना दी। राजा अरिदमन सोचने लगा कि केवली भगवान तो सर्वज्ञ हैं—वे अन्तर्यामी हैं। ये यदि मेरे मन की शंका का समाधान कर दें तो कितना अच्छा हो। अरिदमन राजा यह बात मन में सोच ही रहा था कि अन्तर्यामी केवली बोले—

"राजन् ! तुम जो कुछ जानना चाहते हो, सबके समक्ष पूछो।"

राजा ने कहा—

"भगवन् ! अपनी पुत्री मदनमंजूषा का विवाह नंदिवर्धन के साथ करने के विचार से मैंने अपने मंत्री स्फुटवचन को जयस्थल नगर भेजा था। काफी दिन बाद भी जब वह नहीं लौटा तो मैंने अपने अन्य आदमी भेजे। उन व्यक्तियों ने लौटकर बताया कि जयस्थल नगर तो जलकर भस्म हो चुका है। वहाँ एक भी मनुष्य नहीं मिला, जिससे कुछ पूछा जाता। नगर के आस-पास के गाँव भी जल चुके हैं। प्रभो ! ऐसा क्यों हुआ ? कैसे हुआ ?

केवली भगवान ने बँधे हुए नंदिवर्धन की ओर संकेत करते हुए कहा—

"राजन् ! यह जो व्यक्ति बँधा बैठा है। इसी ने जयस्थल को मरघट बनाया है। जानते हो, यह कौन है ? यह वही नंदिवर्धन है, जिसे तुम अपना जामाता बनाना चाहते थे। इसने तनिक से वाद-विवाद में तुम्हारे मंत्री स्फुटवचन को मार दिया। इसने जो-जो कुकृत्य किये, वह मैं तुम्हें बताता हूँ।"

विवेक केवली ने नंदिवर्धन की अब तक की कहानी सुना दी। सब कुछ सुनने के बाद राजा अरिदमन ने सोचा कि धर्मसभा का विसर्जन हो जाने के बाद मैं नंदिवर्धन को बंधनमुक्त करके उचित कार्यवाही करूँगा। इसने तो पापकर्म की सीमा ही तोड़ दी। फिर राजा ने केवली विवेक से पूछा—

"प्रभो ! नंदिवर्धन ऐसा अनर्थ कर सकता है, ऐसी तो मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था। मैंने तो सुना था कि नंदिवर्धन एक महान योद्धा, दक्ष, स्थिर, बुद्धिमान् रूपवान, शास्त्रवेत्ता, गुणवान, राजनीति का ज्ञाता और परम यशस्वी है। क्या ये बातें इसमें नहीं थीं ?"

विवेक केवली बोले—

"राजन् ! जैसा तुमने सुना था, नंदिवर्धन ऐसा ही था। वस्तुतः यह निर्दोष है। वह देखो उद्यान से बाहर काले रंग की जो कायाएँ दीख रही हैं, इनमें एक पुरुषरूप वैश्वानर है और दूसरी काया स्त्रीरूप हिंसा है। इन्हीं दोनों ने नंदिवर्धन से अनर्थ कराये हैं।

"राजन् ! यह वैश्वानर महामोह राजा का पौत्र और द्वेषगजेन्द्र का पुत्र है। अविवेकता इसकी माता है। पहले इसका नाम क्रोध था। जब इसके क्रोधात्मक गुण बढ़ गए तो इसका नाम वैश्वानर रख दिया गया। यह जन्म से ही नंदिवर्धन के साथ अन्तरंग मित्र के रूप में रहा है।

"द्वेषगजेन्द्र राजा का रिश्तेदार दुष्टाभिसंधि नामक एक राजा है और निष्करुणा उसकी रानी है। इन्हीं राजा-रानी की पुत्री हिंसा देवी है, जो वैश्वानर के पास बैठी दिखाई दे रही है। वैश्वानर के कहने से नंदिवर्धन ने हिंसा को अपनी पत्नी बना लिया है। इन्हीं दोनों के कारण स्वरूपतः निर्दोष नंदिवर्धन ने महा पाप किये हैं।

"राजन् ! नंदिवर्धन ने अपना हृदय वैश्वानर और हिंसा को सौंप दिया है। इन दोनों के प्रभाव के कारण नंदिवर्धन ने पाप-पुण्य और धर्म-अधर्म, भक्ष्य-अभक्ष्य का कभी विचार नहीं किया। वैश्वानर और हिंसा देवी का प्रभाव तो देखो कि नंदिवर्धन ने सगे-सम्बन्धियों का अकारण वध कर दिया। इन दोनों दुष्टों के कारण नंदिवर्धन अनर्थ-परम्परा का भोक्ता बन गया है।"

अरिदमन बोला—

"भगवन् ! मैंने सुना था कि नन्दिवर्धन के जन्म पर राजा पद्म ने बहुत खुशी मनाई थी। समस्त प्रजा आनंद में डूब गई थी। इसके गुणों की महिमा चारों ओर फैल गई थी। इसने हर बार युद्ध में विजय पाई थी। यह सब इसने कैसे किया, जबकि वैश्वानर और हिंसा इसके साथ रहते थे ?"

विवेक केवली ने स्पष्टीकरण करते हुए कहा—

"राजन् ! नंदिवर्धन की प्रसिद्धि और उसकी कल्याण-परम्परा का कारण नंदिवर्धन का अन्तरंग मित्र पुण्योदय था। पुण्योदय के कारण नंदिवर्धन में गुणों का विकास हुआ और इसे प्रसिद्धि मिली। लेकिन इसने सारा श्रेय वैश्वानर और हिंसा को ही दिया। जिस समय नन्दिवर्धन ने स्फुटवचन नामक तुम्हारे मंत्री का वध किया, उसी समय पुण्योदय इसे छोड़कर किनारा कर गया।

"राजन ! वैश्वानर और हिंसा अनादिकाल से नन्दिवर्धन के साथ हैं। लेकिन जब यह पद्म राजा के यहाँ नन्दिवर्धन के रूप में जन्मा तब से ये दोनों विशेष रूप से प्रकट हुए हैं। यह नन्दिवर्धन आत्मदृष्टि से अनादि-काल से ऐसा ही है। यह पद्मराजा के पुत्र रूप में अपने मिथ्याभिमान के कारण प्रसिद्ध हुआ। नंदिवर्धन का ऐसा सोचना कि मैं पद्म राजा का पुत्र हूँ और मेरा नाम नन्दिवर्धन है, वस्तुत: मिथ्याभिमान है। वास्तव में इसका मूल, असली और मौलिक नाम संसारी जीव है।

"राजन् ! नन्दिवर्धन का मूल परिचय यह है कि यह असंव्यवहार नगर का रहने वाला है और असंव्यवहारी परिवार का गिना जाता है। इसका नाम संसारी जीव है और सदा साथ रहने वाली भवितव्यता नामक इसकी अन्तरंग पत्नी है।

"राजन् ! कर्मपरिणाम राजा के आदेश पर लोकस्थिति और तन्नियोग के अनुसार इसे पत्नी भवितव्यता के साथ असंव्यवहार नगर से बाहर निकाला गया है। तब से यह एक से दूसरे, दूसरे से तीसरे-चौथे भिन्न-भिन्न स्थानों में भटकता रहा है।"

संसारी जीव (नन्दिवर्धन) का भवप्रपंच सुनने के बाद राजा अरि-दमन ने सोचा—'मुझे लगता है कि अब इसका कल्याण होने वाला है। तभी तो यह संयोग बना कि इसे केवली भगवान की देशना सुनने को मिली और अपना सहज स्वरूप भी सुनने को मिला।'

यह सोचने के बाद राजा अरिदमन ने पूछा—

"भन्ते ! मैंने जो सोचा है, क्या वह ठीक है ?"

"तुमने बिल्कुल ठीक सोचा है।" विवेक केवली ने कहा—"राजन् ! तुम्हारी बुद्धि सम्यग् मार्गानुसारिणी है, अत: तुम्हारी धारणा में मिथ्या-भाव आ ही नहीं सकते।" □

[११] भवप्रपंच और मनुष्यभव की दुर्लभता

'मेरी बुद्धि सम्यग्मार्गानुसारिणी है' अपने बारे में विवेक केवली के ऐसे विचार सुनकर राजा अरिदमन को अत्यधिक आत्मसंतोष हुआ। उसने पुन: आचार्य विवेक से पूछा—

"भन्ते ! आपने जो इतिवृत्त नन्दिवर्धन का सुनाया वह सब अन्य प्राणियों से भी सम्बद्ध है या नहीं ? यदि है तो वह भी बताने की कृपा कीजिए।"

"संसार-हित के लिए तुमने बहुत उत्तम प्रश्न पूछा है।" विवेकाचार्य बोले—"अपनी जिज्ञासा का उत्तर विस्तार से सुनो।

"संसार के अधिकांश प्राणी, बल्कि प्रायः समस्त प्राणी असंव्यावहारिक राशि में रहते हैं। इस राशि में समस्त जीव क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कर्मबंध के कारण—आस्रव द्वार—कुटुम्बियों से घिरे रहते हैं। इनमें से कुछ असंव्यवहार राशि से निकल कर व्यवहार राशि में आकर जिनधर्म का अनुसरण कर मुक्त हो जाते हैं।

"असंव्यवहार राशि से निकलने के बाद जीव एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय आदि योनियों में रहकर असह्य-अवर्णनीय कष्टों को भोगते रहते हैं। भवितव्यता के भोग से बार-बार जन्म लेने और मरने का क्रम अगणित संख्या वाले वर्षों तक चलता रहता है।

"उसके बाद जैसे महासागर में डूबते हुए को रत्नद्वीप की प्राप्ति हो, महारोगी को महौषध मिले और दरिद्री को जैसे चिन्तामणि की प्राप्ति हो, वैसे ही जीव को बड़ी कठिनाई से दुर्लभ मनुष्यभव प्राप्त होता है। लेकिन इस दुर्लभ मनुष्यभव के कितने ही शत्रु हैं, जो इस पर अपना काबू कर लेते हैं। ये शत्रु हैं—मुख्यतः क्रोध और हिंसा। क्रोध का ही अपर नाम वैश्वानर है। अधिकांश प्राणी नन्दिवर्धन की तरह मोहरूपी अँधेरे में भटकते हुए क्रोध-हिंसा के हाथों पड़कर अपना मनुष्यभव ही हार जाते हैं। लेकिन कुछ प्राणी मनुष्यभव की दुर्लभता को समझकर उसे सार्थक करते हैं।"

इस प्रकार विवेकाचार्य ने भवप्रपंच का बड़े विस्तार से वर्णन किया, मनुष्यभव की दुर्लभता बताई और विश्व के सभी धर्मों से उत्तम जिनेश्वर प्रणीत धर्म की विवेचना की तो अरिदमन राजा ने दूसरा प्रश्न किया—

"भगवन् ! आपने जो कुछ सुनाया-समझाया, वह सब नन्दिवर्धन ने भी सुना है। इसने यह सब भी जान लिया कि यह किस तरह असंव्यवहार राशि से निकाला गया। भवितव्यता ने भवगुटिका दे-देकर इसे कई योनियों में भटकाया। अपना मूल नाम संसारी जीव से इसने राजपुत्र नन्दिवर्धन की संज्ञा पाई। क्रोध और हिंसा से इसने दुस्सह कर्मों का बंध किया। इतना सब सब जानने के बाद इसे बोध प्राप्त हुआ या नहीं ?"

"इसे किंचित् भी प्रतिबोध प्राप्त नहीं हुआ है।" विवेकाचार्य बोले– "बल्कि इसे तो मेरी बातें बुरी लगी हैं।

"राजन् ! यद्यपि नन्दिवर्धन अभव्य नहीं है, यह भव्य है। लेकिन अपने मित्र वैश्वानर के वशीभूत होने के कारण यह न तो मेरी बातों को प्रेमपूर्वक सुन सकता है और न उन पर आचरण ही कर सकता है। वैश्वानर का इसके साथ अनन्तकाल का सम्बन्ध अनुबंध है—अत: इसे अनन्तानुबंधी भी कहा गया है। यह अनन्तानुबंधी क्रोध इसमें जाग्रत है और उस पर इसकी प्रीति भी है, इसलिए मेरी वाणी से इसे तनिक भी शान्ति नहीं मिली। वैश्वानर पर प्रीति के कारण अभी यह और भी वैर-परम्परा बाँधेगा।

"राजन् ! यह वैश्वानर सचमुच में ही नन्दिवर्धन का शत्रु है। इसने इसका इतना भारी अहित किया है कि कोई प्रत्यक्ष शत्रु भी नहीं करेगा।"

राजा अरिदमन ने अगला प्रश्न किया—

"भगवन् ! वैश्वानर नन्दिवर्धन का मित्र बनकर जैसे इसके साथ रहा है, वैसे ही यह किसी अन्य के साथ भी रहा है ?"

"सभी के साथ यह मित्र बनकर ही रहता है।" विवेकाचार्य बोले— "शत्रु होकर भी यह मित्र कैसे बन जाता है ? कुछ लोग इसकी शत्रुता को कैसे पहचान लेते हैं ? वैश्वानर के अन्य साथी कौन-कौन हैं ? ये सभी प्रश्न विचारणीय हैं। अत: मैं तुम्हारे प्रश्न का उत्तर कुछ विस्तार से देना चाहता हूँ।"

विवेकाचार्य की विस्तृत विवेचना सुनने के लिए उनके समक्ष बैठी धर्मसभा उत्सुक हो उठी। धर्मसभा में काफी लोग थे। सभी जानना चाहते थे कि वैश्वानर सबका शत्रु होकर भी मित्र कैसे बन जाता है। नन्दिवर्धन की दुर्दशा देखकर सभी वैश्वानर से बचकर अपना मनुष्यभव सार्थक करना चाहते थे। राजा अरिदमन तो बहुत ही उत्सुक था।

जन्म लेते ही मनुष्य तीन प्रकार के कुटुम्बों से जुड़ जाता है। इन तीनों कुटुम्बों के कुटुम्बीजन—परिवारीजन मनुष्य को अपना बनाना चाहते हैं। लेकिन इनमें एक कुटुम्ब ही अपना—मनुष्य का हितैषी होता है, शेष दो गर्त में गिराने वाले होते हैं। यही सब विवेकाचार्य विस्तार से बता—समझा रहे थे। □

[१२] **तीन कुटुम्ब**

प्रत्येक मनुष्य के तीन कुटुम्ब होते हैं—प्रथम कुटुम्ब, द्वितीय कुटुम्ब और तृतीय कुटुम्ब। इनको उद्धारक कुटुम्ब, अधम कुटुम्ब और बाह्य कुटुम्ब भी कहते हैं। प्रथम दो कुटुम्ब अन्तरंग होते हैं और तीसरा बाह्य कुटुम्ब होता है।

प्रथम अन्तरंग कुटुम्ब के कुटुम्बीजन क्षान्ति (क्षमा), आर्जव, मार्दव, निर्लोभता, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सुख, सत्य, शौच, तप, संतोष आदि होते हैं। दूसरे अधम कुटुम्ब के घर वाले—कुटुम्बीजन क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, मोह, अज्ञान, भय आदि होते हैं और तीसरे कुटुम्ब के कुटुम्बी शरीर के नाते माता-पिता, भाई, पत्नी आदि होते हैं।

मनुष्य का पहला कुटुम्ब उसका स्वाभाविक कुटुम्ब है। यह कुटुम्ब अनादि काल से मनुष्य के साथ रहता आया है और यह सदा-सर्वदा मनुष्य का हित करता है। इसका एक विशेष गुण यह है कि यह कभी गुप्त रहता है और कभी प्रकट होता है। इसमें इतनी सामर्थ्य है कि यह मनुष्य को मोक्ष तक दिला सकता है।

इसके बाद दूसरा अन्तरंग कुटुम्ब है। इसके कुटुम्बीजन क्रोध, मान, माया, लोभ आदि हैं। यह कुटुम्ब मनुष्य का अस्वाभाविक कुटुम्ब है। लेकिन मूढ़तावश प्राणी इसी को अपना सगा—स्वाभाविक कुटुम्ब मानकर इससे अतिशय प्रीति करता है। यह अभव्य जीवों के साथ अनादि काल से रहता आया है। भव्य जीवों के साथ भी इसका सम्बन्ध अनादि काल से होता अवश्य है, किन्तु ये इससे सम्बन्ध तोड़ देते हैं, बल्कि इसका अन्त ही कर देते हैं। यह कुटुम्ब संसार को बढ़ाने वाला, जीव को नीचे गिराने वाला और सब प्रकार से अहितकारी है।

तीसरा बाह्य कुटुम्ब तो स्पष्ट रूप से और स्वरूपतः अस्वाभाविक है। इसका सम्बन्ध एक अवधि विशेष के लिए होता है—यह अन्य दोनों कुटुम्बों की तरह न तो अनादि है और न अनन्त। भव्य प्राणियों को माता-पिता, भाई, पत्नी, पुत्र वाला तीसरा बाह्य कुटुम्ब कभी हितकारी और कभी अहितकारी होता है। भव्य प्राणी के लिए यह संसार और मोक्ष—दोनों का कारणभूत होता है। बाह्य कुटुम्ब क्रोध, मान, माया, मोह—

द्वितीय कुटुम्ब को पुष्ट करने वाला होने के कारण संसार की वृद्धि का हेतु है।

यदि कोई प्राणी प्रथम कुटुम्ब का अनुसरण करता है तो तृतीय कुटुम्ब भी उसके पोषण में सहायक होता है। इस प्रकार कभी-कभी तृतीय कुटुम्ब भी मोक्ष में सहायक होता है। लेकिन दूसरे कुटुम्ब का कुटुम्बी वैश्वानर और हिंसा मनुष्य के मित्र बनकर रहते हैं किन्तु वास्तव में अहित ही करते हैं। इनमें हिंसा संसारी जीव की स्त्री बनकर रहती है।

अरिदमन ने पूछा—

"क्षान्ति, मार्दव, संतोष आदि घरवालों वाला प्रथम कुटुम्ब मनुष्य का स्वाभाविक और हितकारी कुटुम्ब है। यह मोक्ष का हेतु भी है। फिर भी मनुष्य स्वाभाविक और हितकारी कुटुम्ब से प्रेम क्यों नहीं करता? इसे क्यों भूला रहता है? इसके विपरीत क्रोध, मान, माया, लोभ वाला द्वितीय कुटुम्ब अस्वाभाविक भी है और नीचे गिराने वाला भी है; फिर भी मनुष्य इसी से अतिशय प्रीति रखता है। इस विपरीत आचरण का क्या कारण है?"

आचार्य विवेक बोले—

"राजन्! मनुष्य हितकारी प्रथम कुटुम्ब को भुलाकर दूसरे अहितकारी कुटुम्ब से प्रेम करते हैं, इसका कारण यह है कि क्षमा, आर्जव आदि प्रथम कुटुम्ब और क्रोध, मान, माया आदि द्वितीय कुटुम्ब में अनादि काल से वैर चला आ रहा है। ये दोनों कुटुम्ब अन्तरंग राज्य में रहते हैं, लेकिन वैर भाव की आपसी लड़ाई में प्रथम कुटुम्ब दूसरे कुटुम्ब से हारता रहता है और इसीलिए इस संसार में दूसरे कुटुम्ब का वर्चस्व छाया रहता है और प्रथम कुटुम्ब दबा रहता है।

"राजन्! प्रथम कुटुम्ब दूसरे कुटुम्ब से दबकर इतना भयभीत रहता है कि वह मनुष्य को अपना दर्शन भी नहीं करा सकता। अतः प्रथम कुटुम्ब के स्पष्ट दर्शन न होने के कारण मनुष्य इसके गुण और हितकारी विशेषता के बारे में नहीं जान पाता। यद्यपि यह कुटुम्ब प्राणी के भीतर रहता है, पर प्राणी को इसका आभास ही नहीं होता कि मेरे भीतर प्रथम कुटुम्ब भी है। द्वितीय कुटुम्ब का वर्चस्व—प्रभाव इतना भारी होता है कि हम-जैसे प्रथम कुटुम्ब के रागी जीव जब उसके गुणों का वर्णन करते हैं तो भी प्रायः लोग उसके सगेपन और अपनत्व से परिचित नहीं हो पाते। प्रति-

दिन साथ रहने से मनुष्य द्वितीय कुटुम्ब के प्रति अत्यधिक रागी हो जाता है। मनुष्य दूसरे कुटुम्ब को ही अपना सगा-स्वाभाविक कुटुम्ब समझकर अपना पतन करता रहता है और शत्रु को मित्र मानने की भूल करता रहता है।"

राजा अरिदमन ने पूछा—

"भगवन् ! यदि तपस्वी—साधक प्राणी दोनों कुटुम्बों के गुण-दोषों को समझ जाए तो बड़ा ही अच्छा हो।"

"इससे अधिक अच्छा और क्या होगा ?" विवेकाचार्य बोले—"जो प्राणी अपना हित करने का इच्छुक है, उस तपस्वी-साधक को दोनों कुटुम्बों के गुण-दोषों को जान लेना चाहिए।

"राजन ! पहले प्राणी को योग्यता धारण करनी चाहिए। अयोग्य प्राणी दोनों कुटुम्बों के अन्तर को नहीं समझ सकता। अतः हम लोग—श्रमण लोग अयोग्य अर्थात् अगृहणशील व्यक्तियों को उपदेश नहीं देते। गृहणशील व्यक्ति ही हमारी बात सुनता-समझता है।

"राजन् ! अकेला ज्ञान कार्य की सिद्धि नहीं कर सकता। ज्ञान के बाद सच्ची श्रद्धा, फिर अनुष्ठान अर्थात् क्रियात्मक आचरण भी जरूरी है। ऐसा करने से ही सिद्धि मिलती है।

"राजन् ! ज्ञान, श्रद्धा और क्रियात्मक आचरण—अनुष्ठान का एकीकरण है, चारित्र धारण करना। चारित्र को धारण करने के बाद द्वितीय कुटुम्ब का विनाश करने को निर्दय आचरण करना पड़ेगा। विना निर्दय आचरण के द्वितीय कुटुम्ब का विनाश संभव नहीं है।"

"भगवन ? निर्दय कर्म से क्या प्रयोजन है ?" राजा ने पूछा—"द्वितीय कुटुम्ब का विनाश करने के लिए कौन से निर्दय कर्म करने पड़ते हैं, यह भी बताइए।"

विवेकाचार्य बोले—

"राजन् ! हम श्रमण-सन्त ऐसे निर्दय कर्म करते ही रहते हैं। उन्हें किस प्रकार करते हैं, यह तुम भी सुनो।

"राजन् ! श्रमण-संतों के साथ भी द्वितीय कुटुम्ब का अनादिकालीन सम्बन्ध है। लेकिन जब ये साधु द्वितीय कुटुम्ब की अधमता और अस्वाभाविकता समझ जाते हैं तो वे नृशंस होकर द्वितीय कुटुम्ब के कुटुम्बीजनों का विनाश करने पर तुल जाते हैं। ये साधु लोग दोनों कुटुम्बों में रात-

दिन संघर्ष कराते हैं और उस संघर्ष में प्रथम कुटुम्ब की विजय तथा द्वितीय कुटुम्ब के विनाश का परिणाम प्राप्त कर लेते हैं।

"राजन् ! अब सुनो यह सब कैसे होता है, अर्थात् किसको कौन मारता है। द्वितीय कुटुम्ब के पितामह महामोह को साधुजन ज्ञान से नष्ट करते हैं। इस कुटुम्ब के राग नामक सरदार को साधुजन वैराग्य से नष्ट कर डालते हैं। इसी प्रकार द्वेष को मैत्री से, क्रोध को क्षमा से, द्वेष के पुत्र और वैश्वानर के भाई मान को मार्दव-मृदुता से, माया को आर्जव-सरलता से, और लोभ को निर्लोभता से निर्दय होकर मार देते हैं। ये साधु ध्यान रूपी अग्नि से शोक को भस्म कर देते हैं।

"अधिक क्या कहें, साधु जन द्वितीय कुटुम्ब के कुटुम्बियों का बीन-बीन कर संहार करते हैं और फिर अपने सहज स्नेही प्रथम कुटुम्ब से प्रीति रखते हैं।

"राजन् ! एक विशेष बात ध्यान देने योग्य है। वह यह कि द्वितीय कुटुम्ब को मारने और प्रथम कुटुम्ब को अपनाने से पूर्व माता-पिता, भाई-बहिन वाले तीसरे बाह्य कुटुम्ब का त्याग पहले करना पड़ता है। तीसरे बाह्य कुटुम्ब को त्यागे बिना न तो द्वितीय कुटुम्ब को मारा जा सकता है और न पहले कुटुम्ब को पुष्ट ही किया जा सकता है।

"राजन् ! यदि तुम्हारी इच्छा बाहरी कुटुम्ब–संसार को त्यागने की हो तो ही तुम दूसरे कुटुम्ब पर निर्दय प्रहार करने का संकल्प करना, क्योंकि बाह्य कुटुम्ब – संसार के बीच रहकर प्राणी प्रायः दूसरे कुटुम्ब में ही डूबे रहते हैं। अतः तुम तीसरे बाह्य कुटुम्ब के त्याग, दूसरे अधम कुटुम्ब के विनाश और पहले हितकारी कुटुम्ब के पोषण के मेरे उपदेश को ध्यान में रखकर अपना कल्याण करो।"

"मेरी समझ में सब बातें आ गई हैं।" राजा अरिदमन ने कहा— "प्रथम-द्वितीय—दोनों कुटुम्ब अनादि और अविच्छिन्न हैं। तो फिर तीसरा कुटुम्ब तो बदलने वाला हर भव में नया होता होगा ?"

विवेकाचार्य बोले—

"राजन् ! तुमने ठीक समझा है। बाह्य कुटुम्ब—माता-पिता, भाई, मित्र, पुत्र, पत्नी, बहन—प्रत्येक भव—जन्म में नया होता है। इस तरह इस संसारी जीव ने अनेक बाह्य कुटुम्बों को अपनाया और छोड़ा है। इस संसार में सभी मनुष्य यात्री के समान हैं। यात्री जैसे नये-नये पड़ावों पर ठहरता और छोड़ता चलता है, वैसे ही संसारी जीव नये-नये शरीर धारण

करके नये-नये बाह्य कुटुम्बों को अपनाता-छोड़ता है। महामोह के कारण सर्वथा मिथ्या और पराये इस बाह्य कुटुम्ब को मनुष्य सच्चा और अपना समझता है।

"राजन्! एक विशेष बात और है। वह यह कि जिस प्राणी में द्वितीय अधम कुटुम्ब को नष्ट करने की शक्ति नहीं है, वह यदि बाह्य कुटुम्ब का त्याग करे तो यह एक विडम्बना मात्र होगी। शक्तिहीन प्राणी को बाह्य कुटुम्ब का त्याग करने से कोई लाभ नहीं है। अतः समर्थ-सक्षम प्राणी को ही बाह्य कुटुम्ब का त्याग कर द्वितीय कुटुम्ब का विनाश करना चाहिए।"

विवेकाचार्य की विवेचना समाप्त होने के बाद शार्दूलपुर के राजा अरिदमन को विशेष धर्मोत्साह हुआ। उसने चारित्र धारण करने—भागवती दीक्षा लेने का निश्चय कर लिया। उसने विवेकाचार्य से दीक्षा की अनुमति प्राप्त करली और फिर अपने मंत्री विमलमति से कहा—

"मंत्रिवर! मैंने द्वितीय कुटुम्ब के घात और प्रथम कुटुम्ब के पोषण का निश्चय किया है। अतः मेरा सहयोग करो।"

इसके बाद राजा ने सभी बाह्य कुटुम्बीजनों-अन्तःपुर की रानियों, परिजनों को अपने मन का निश्चय बताया-समझाया। अपने पुत्र को राज्य देकर राजा अरिदमन ने विधिपूर्वक भागवती दीक्षा अथवा चारित्र धारण कर अपने मनुष्य भव को सार्थक किया। □

[१३] संसारी जीव नन्दिवर्धन का भव परिवर्तन : मृत्यु

नन्दिवर्धन के सामने बड़ा शुभ संयोग आया था। उसने विवेकाचार्य की देशना सुनी, अपना स्वरूप भी सुना, अपनी भव यात्रा भी सुनी, राजा अरिदमन का प्रतिबोध भी सुना, लेकिन सब व्यर्थ गया। क्योंकि सभा विजर्सन के बाद वैश्वानर और हिंसा, जो दूर बैठे प्रतीक्षा कर रहे थे, पुनः नन्दिवर्धन के शरीर में प्रविष्ट हो गए।

राजा अरिदमन ने अपने दीक्षा समारोह पर कैदियों को मुक्त किया, तभी नंदिवर्धन को भी बंधन-मुक्त कर दिया। बंधन-मुक्ति के बाद वैश्वानर और हिंसा के प्रभाव के कारण नंदिवर्धन ने बड़ा कुत्सित विचार किया कि

इस विवेकाचार्य ने मुझे हजारों व्यक्तियों के बीच बदनाम किया है। यह बड़ा ही दुष्ट है—मेरा शत्रु है।

नंदिवर्धन विवेकाचार्य के प्रति क्रुद्ध हो उठा। लेकिन वह उनका बिगाड़ क्या सकता था? अतः सभास्थल से उठकर चुपचाप चल दिया। उसने सोचा जिस नगर में मेरी बदनामी हुई है, वहाँ मैं एक क्षण भी नहीं रुकूँगा।

शार्दूलपुर छोड़ने के बाद नंदिवर्धन विजयपुर नामक नगर के निकट पहुँच गया। विजयपुर का राजा शिखरी था। उसके धराधर नाम का पुत्र था। नंदिवर्धन की तरह धराधर भी वैश्वानर से अधिक प्रेम करता था। विजयपुर के निकट जो जंगल था, उसमें नंदिवर्धन की भेंट धराधर से हो गई। नंदिवर्धन ने धराधर से विजयपुर का रास्ता पूछा। लेकिन धराधर अपने किसी अन्य विचार में डूबा था। अतः उसने नंदिवर्धन की बात सुनी-अनसुनी कर दी। नंदिवर्धन ने इसे अपना तिरस्कार समझा और क्रुद्ध होकर धराधर को ललकारा। धराधर भी वैश्वानर के वश हुआ और वह भी क्रुद्ध हो गया। दोनों एक-दूसरे से भिड़ गये। दोनों ने एक-दूसरे पर शस्त्र-प्रहार किया और दोनों ही मर गए। दोनों की भवभेद्य गुटिका जीर्ण हो गई थी। भवितव्यता ने दोनों को नई भवभेद्य गुटिकाएँ दे दीं। गुटिकाओं के प्रभाव से दोनों पापिष्ठनिवासा नगरी की तमःप्रभा नामक छठे पाटक (नरक) में गए।

पापिष्ठनिवासा नगरी (नरक) में लगातार सात पाटक—बस्तियाँ हैं। इन बस्तियों में पापी जीव ही रहते हैं। इन्हीं बस्तियों की छठी बस्ती में नंदिवर्धन और धराधर में वैरानुबंध अत्यधिक बढ़ गया था। दोनों एक-दूसरे पर घात-प्रतिघात करते हुए नाना प्रकार की नारकीय यातनाओं को भोगते हुए बाईस सागरोपम समय तक वहाँ रहे।

नरकवास की बाईस सागरोपम की अवधि पूरी होने पर भवितव्यता ने दोनों को एक-एक भवभेद्य गुटिका दे दी और उन्हें पंचाक्ष-निवास नगर को ले गई। वहाँ वे दोनों गर्भज सर्प बने। पूर्वभव के वैर बंध के कारण दोनों आपस में लड़ मरे और इसी समय इनकी भवभेद्य गोली भी घिस गई। यहाँ से मरकर दोनों के जीव पापिष्ठनिवास नगर के धूमप्रभा नामक बस्ती (नरक) में गए। यहाँ इन्होंने सत्तरह सागरोपम की उम्र प्राप्त की। जन्म-मरण के क्रम में नंदिवर्धन और धराधर के जीव पंकप्रभा आदि सभी नरकों में वास कर चुके थे। यहाँ इन्होंने जैसी-जैसी असह्य यातनायें भोगीं,

वे अवर्णनीय हैं। मर्त्यलोक में अनेक प्रकार की निम्न योनियाँ प्राप्त कीं। हर योनि में पूर्व वैर ने पीछा नहीं छोड़ा।

× × × ×

यहाँ तक की भव यात्रा कथा सुनाने के बाद संसारी जीव ने अगृहीत-संकेता से कहा—

"अगृहीतसंकेता ! नंदिवर्धन के रूप में मैंने मनुष्य जन्म भी पाया और उत्तम कुल भी पाया लेकिन मैंने अपना यह जन्म जीवन नष्ट करने में ही लगा दिया। हिंसा और वैश्वानर ने मुझे कहीं का नहीं छोड़ा। इन दोनों ने मेरे माता-पिता, कुटुम्बी, शुभचिन्तक मुझसे मरवा दिये। धराधर की हत्या करके मैं स्वयं भी उसके हाथों मरा और वैर बंध की अक्षुण्ण परम्परा चलती रही।

"भद्रे ! इस प्रकार मैं काफी भटका। फिर भवितव्यता ने मुझे श्वेत-पुर नगर में अहीर का रूप दिया। अहीर के रूप में मेरा शत्रु वैश्वानर कहीं छिप गया था। अब वह मेरे पास नहीं था। अतः अब मैं शान्त प्रकृति का हो गया था। लड़ाई-झगड़े से दूर रहने लगा। मुझमें दान देने की भावना भी जाग्रत हो गई थी। इस जन्म में मैं मध्यमबुद्धि का मनुष्य हो गया था। भवितव्यता अब मुझ पर प्रसन्न थी। मेरा अभिन्न मित्र पुण्योदय, जो मुझे छोड़कर चला गया था, अब भवितव्यता ने वह मेरे साथ कर दिया और मुझसे कहा—आर्यपुत्र ! अब तुम सिद्धार्थपुर नगर में जाकर आनन्द से रहो। यह पुण्योदय तुम्हारा मित्र और सेवक बनकर तुम्हारे साथ रहेगा।"

"यह कह भवितव्यता ने मुझे भवभेद्य वाली एक नई गोली दे दी जिसके प्रभाव से मैंने सिद्धार्थपुर में नया भव प्राप्त किया।"

× × × ×

हम सभी संसारी जीव हैं। क्रोध, हिंसा, घृणा, द्वेष आदि हमें भी नरक को ले जायेंगे। संसारी जीव जैसी हमारी दुर्दशा करेंगे। इसमें किंचित भी संदेह नहीं है। अतः हमें शीघ्र ही ऐसा प्रयास करना चाहिए कि हम क्षान्ति, संतोष, दया, सत्य, शील आदि कुटुम्बियों से हिल-मिलकर अपना कल्याण कर सकें। संसारी जीव की कथा—नंदिवर्धन की कथा, हमारी ही कथा हो सकती है। इसे अच्छी तरह से परख लें।

नंदिवर्धन के बाद संसारी जीव पुनः एक राजकुमार बना। अब पुनः इसे वैश्वानर जैसे ही एक दुष्ट ने अपने अधिकार में कर लिया। □

चतुर्थ प्रस्ताव

[१] रिपुदारण और शैलराज

मनुजगति नगरी में कर्मपरिणाम राजा का राज्य था, जिसकी रानी कालपरिणति थी। कालपरिणति ने जिस पुत्र को जन्म दिया, उसका नाम भव्यपुरुष रखा गया। महात्मा सदागम के कहने से प्रज्ञाविशाला भव्यपुरुष की धाय बनी। वह उसे सदागम के पास चलने को प्रेरित करती रहती थी। एक समय आया, जब भव्यपुरुष बड़ा होकर सदागम के पास पहुँचा। प्रज्ञाविशाला भी पहुँच गई और प्रज्ञाविशाला की सखी अगृहीतसंकेता भी पहुँची। इन चारों के समक्ष एक चोर पकड़कर लाया गया। यह चोर संसारी पुरुष था। संसारी पुरुष ने अपनी कई जन्मों की आत्मकथा सुनाई। इसमें वह नन्दिवर्धन और अन्त में अहीर बना था। यहां से फिर वह सिद्धार्थ नगर के राजा नरवाहन और रानी विमलमालती का पुत्र रिपुदारण बना। नन्दिवर्धन के रूप में जैसे वैश्वानर उसके पीछे लग गया था, यहाँ शैलराज नामक ऐसा ही दुष्ट उसके पीछे लग गया। शैलराज भी अविवेकता ब्राह्मणी का पुत्र था। तो संसारी जीव सदागम, भव्यपुरुष, प्रज्ञाविशाला और अगृहीतसंकेता को आगे की कथा सुना रहा है।

× × ×

सिद्धार्थपुर नामक नगर एक ऐसा नगर था, जिसमें पुण्यात्मा मनुष्य अधिक रहते थे। महाप्रतापी, सूर्य-सा तेजस्वी और प्रजावत्सल नरवाहन राजा यहाँ का शासक था। परम सुन्दरी विमलमालती उस राजा की रानी थी। नन्दिवर्धन और अहीर रूपधारी संसारी जीव अपने अभिन्न साथी पुण्योदय के साथ रानी विमलमालती की कोख में आया। गर्भकाल पूरा करके संसारी जीव ने नरवाहन के पुत्र-रूप में जन्म लिया। समस्त नगर में खुशी की लहर व्याप्त हो गई। राजा नरवाहन ने बड़ी धूम-धाम से अपने नये जन्मे पुत्र का जन्मोत्सव मनाया और राजपुत्र का नाम रिपुदारण रखा गया।

संसारी जीव जब नन्दिवर्धन बना था, तब अविवेकता नामक एक

ब्राह्मणी उसकी धाय थी। वही धाय रिपुदारण का लालन-पालन करने यहाँ भी आई। संयोग की बात है कि अविवेकता ने अपने पति द्वेषगजेन्द्र के संयोग से उसी समय गर्भ धारण किया, जिस समय रानी विमलमालती ने किया था और जिस दिन रानी विमलमालती ने पुत्र को जन्म दिया, उसी समय अविवेकता ब्राह्मणी ने भी एक पुत्र को जन्म दिया।

अविवेकता ने जिस पुत्र को जन्म दिया, उसका रूप कुछ देखने लायक था। उसकी छाती बाहर को निकली हुई थी। विचित्र बात यह थी कि उसके आठ मुँह थे। श्रेष्ठ पर्वत शृंगों के समान उठे हुए आठ मुँह होने के कारण अविवेकता ने अपने पुत्र का नाम शैलराज रखा।

अविवेकता और शैलराज संसारी जीव के अन्तःकरण में अनादिकाल से रहते आ रहे थे। गुप्त रूप में रहने के कारण संसारी जीव उन्हें जान नहीं पाता था। अवसर देखकर ही ये प्रकट हुआ करते थे। जैसे-जैसे रिपु-दारण का लालन-पालन होता था—वह बड़ा हो रहा था, वैसे-वैसे—उसके साथ-साथ शैलराज भी बड़ा हो रहा था। अविवेकता दोनों का पालन-पोषण करती थी, क्योंकि एक की वह धाय थी तो दूसरे की जननी थी।

पाँच-छह वर्ष की उम्र होते-होते एक दिन रिपुदारण ने शैलराज को ध्यान से देखा तो पुराने प्रेम के प्रभाव के कारण रिपुदारण को शैलराज के प्रति प्रेमाकर्षण बढ़ा—वह उसे अपना सगा-सम्बन्धी-सा लगा। उधर शैल-राज भी दुष्ट-बुद्धि से सोचने लगा कि राजकुमार रिपुदारण मेरी ओर बड़े स्नेह से देख रहा है। लगता है, यह मेरे वश में हो गया। अब मैं क्यों देर करूँ? इसे अपनाकर अपना मनोरथ पूर्ण करूँ। यह सोचकर शैलराज आगे बढ़ा और उसने राजकुमार को बाँहों भरकर गले लगा लिया। दोनों ने एक दूसरे को अपना नाम बताया—परिचय दिया और पहली ही मुलाकात में दोनों मित्र बन गए।

आठ मुँह वाला मित्र पाकर राजकुमार रिपुदारण बहुत प्रसन्न था। अब वह जहाँ भी जाता शैलराज को साथ रखता। धीरे-धीरे शैलराज के आचरण की छाप रिपुदारण पर पड़ने लगी। उसी के प्रभाव से रिपुदारण सोचने लगा—'मेरी क्षत्रिय जाति सबसे उत्तम है। मेरा बल-पराक्रम भी सबसे अधिक है। अतः मैं किसी के सामने नमन नहीं करूँगा। पिता को भी सिर नहीं झुकाऊँगा, क्योंकि बल में वे भी मुझसे बहुत कम है। सभी का यह परम कर्तव्य है कि वे मेरे सामने झुकें।'

इस तरह शैलराज के प्रभाव से रिपुदारण गर्वीला, घमण्डी और अतिशय अभिमानी हो गया। **'मो सम जग में और नहिं'** की उसकी धारणा अत्यधिक पुष्ट हो गई। वह कभी नीचे देखकर नहीं चलता था। उसका सिर हमेशा ऊँचा उठा रहता था। माता-पिता को भी रिपुदारण प्रणाम नहीं करता था।

रिपुदारण रात-दिन यही सोचता था—मैं ईश्वर के समान एकमात्र पूजनीय और सर्वेश्वर हूँ। मनुष्यों की बात तो दूर रही, देवों में भी मेरे समान गुणी कोई नहीं है, जिसे मैं नमस्कार करूँ। सभी का कर्तव्य है कि वे मुझे नमन करें। पाँच-छह वर्ष की छोटी-सी उम्र में ही रिपुदारण के गर्व का यह हाल था।

अपने पुत्र की मनोदशा राजा नरवाहन जान गये थे। वे जानते थे कि मेरा पुत्र शैलराज के चंगुल में फँस कर गर्वोन्मत्त और उद्धत हो गया है। लेकिन वे अपने पुत्र से अत्यधिक प्यार भी करते थे, इसलिए पुत्र की मनोतुष्टि के लिए उन्होंने अपने अधीनस्थ सभी मुकुटधर नरेशों और सामंतों के पास सन्देश भेज दिया कि सभी आ-आकर मेरे पुत्र को वन्दन-नमन करें। इसके बाद सभी राजा रिपुदारण को आकर ऐसे नमन करने लगे मानों वे उसके सेवक ही हों। शूर-वीर, बली, प्रतापी नरेश भी बालक रिपुदारण के सामने 'देव! क्षमा करें; हमसे अनजान में भूल हुई हो तो क्षमा करें'—ऐसे विनम्र वचन बोलते थे।

जब रिपुदारण का ऐसा मान-सम्मान होने लगा तो उसने एक दिन अपने अन्तरंग मित्र (वस्तुतः शत्रु) शैलराज से कहा—"मित्र! मैं तुम्हारे प्रताप से ही पूजा जा रहा हूँ। मेरा जो भी मान-सम्मान हो रहा है, वह तुम्हारे ही कारण है।"

रिपुदारण को अपने वश में जानकर शैलराज ने भी प्रत्युत्तर में कहा—"आप तो मुझे व्यर्थ ही बड़ाई दे रहे हैं। मैं तो आपका सेवक हूँ। सेवक स्वामी की सेवा करे, यह तो उसका धर्म ही है। मेरी प्रसिद्धि भी तुम्हारे ही प्रताप से हुई है।"

इस पर रिपुदारण पुनः बोला—

"गुणी लोग अपनी प्रशंसा स्वयं नहीं करते। इसी आधार पर मैं कहता हूँ कि तुम्हारी शक्ति अद्वितीय है।"

शैलराज बोला—

"जब आप मुझ पर इतने प्रसन्न हैं तो मैं आपको एक विशेष रहस्य बताता हूँ। मैंने अपने वीर्य से एक शक्तिवर्धक 'स्तब्धचित्त' नामक लेप बनाया है। इसे आप बार-बार लगायें—लेप करें तो आपकी शक्ति अगणित गुनी बढ़ जाएगी। स्तब्धचित्त लेप का प्रभाव अमोघ होता है।"

यह कहकर शैलराज ने अपने ही वीर्य से बनाया स्वनिर्मित 'स्तब्ध-चित्त' नामक लेप राजपुत्र रिपुदारण को दे दिया। अब रिपुदारण जब-तब स्तब्धचित्त लेप का प्रयोग करने लगा। □

[२] मृषावाद के साथ मैत्री

क्लिष्टमानस नामक एक अन्तरंग नगर है। इस नगर में धर्मद्वेषी लोग रहते हैं। इस नगर के राजा का नाम दुष्टाशय है। यह राजा सद्-विवेक नामक राजा का कट्टर शत्रु है और स्वयं दोषों का पुंज है। क्लिष्टमानस नगर के राजा दुष्टाशय के जघन्यता नाम की रानी है। इस रानी के मृषावाद नामक एक पुत्र है। राजकुमार मृषावाद की खास विशे-षता यह है कि वह मनुष्यों के आपसी विश्वास को भंग करने में एक ही है।

क्लिष्टमानस नगर में मृषावाद की सेवा में रहने वाले दास-दासियों में शाठ्य (दुष्टता), पैशुन्य (चुगली), दौर्जन्य (दुर्जनता) और परद्रोह दूसरों का बुरा चाहने वाले आदि हैं। ये दास-दासी चोरवृत्ति के हैं। राजकुमार मृषावाद स्नेह, विश्वास, मित्रता आदि भले लोगों को फूटी आंख भी नहीं देख सकता।

सिद्धार्थपुर नगर का राजकुमार रिपुदारण एक बार क्लिष्टमानस नगर में पहुँच गया। वहाँ वह नगर के राजा दुष्टाशय और रानी जघन्यता से मिला और पितृभक्त मृषावाद से भी मुलाकात की। मृषावाद में जो दोष थे, वह तो रिपुदारण को बहुत बाद में मालूम हुए थे। यह बात भी वह बाद में जान पाया था कि शैलराज और मृषावाद उसके घोर शत्रु हैं। उस समय तो वह मृषावाद को मोहवश अपना शुभचिन्तक और शक्तिशाली मित्र मानता था, इसलिए उसने मृषावाद से मित्रता कर ली और लौटते समय वह उसे अपने साथ ही ले आया। रिपुदारण यह बात जान गया था कि जो काम शैलराज भी नहीं कर सकता, कोई भी नहीं कर सकता, वह

मृषावाद द्वारा निश्चय ही सिद्ध हो जायगा। रिपुदारण अब शैलराज और मृषावाद दुष्टों के चंगुल में फँस चुका था। □

[३] शिक्षागुरु—कलाचार्य महामति और रिपुदारण

मृषावाद से मैत्री करने के बाद रिपुदारण ने पुण्योदय की पूर्णतः उपेक्षा कर दी थी। उसे अब पुण्योदय की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि बुरे से बुरा परस्त्रीगमन तक का कार्य किये जाने पर मृषावाद उस पर परदा डालकर रिपुदारण को बचाने की सामर्थ्य रखता था।

धीरे-धीरे रिपुदारण आठ वर्ष का हो गया। यह उम्र विद्यारंभ की उम्र थी। राजा नरवाहन ने अपने पुत्र का विद्यारंभ करने के लिए उत्सव का आयोजन किया और कलाचार्य महामति को बुलाकर अपना पुत्र उन्हें सौंपते हुए कहा—"देव ! इसे विद्यादान देकर योग्य बनाइए।" फिर अपने पुत्र से बोले—

"वत्स ! ये तुम्हारे गुरु हैं। ये तुम्हें शास्त्रों का ज्ञान करायेंगे। तुम इनके चरणों का स्पर्श करो।"

इस पर रिपुदारण बोला—

"पिताजी ! ये गुरु होंगे तो अपने होंगे। मैं किसी को अपने से अधिक ज्ञानी नहीं समझता। मैं इन्हें नमन क्यों करूँ ? आपके कहने से मैं केवल इतना कर सकता हूँ कि इनके पास गुरुकुल में रहकर विद्याभ्यास करूँ।"

पुत्रमोह के वशीभूत राजा नरवाहन ने अपने पुत्र के इस अविनय की भर्त्सना नहीं की और आचार्य को ही एकान्त में समझाया—

"आचार्य ! मेरा मस्तक तो सदा आपके चरणों पर झुका ही है। मेरी विनय का ख्याल करके आप रिपुदारण को विद्यादान दीजिए। इसकी अविनय का बुरा मत मानिये, यह अभिमानी हो गया है। अभिमानी होने पर भी मैं चाहता हूँ कि यह विद्याभ्यास करे। पढ़-लिखकर इसे अपने अहं-कार का बोध हो जायगा।"

कलाचार्य राजा नरवाहन की विनम्रता के बहुत कायल थे। अतः वे रिपुदारण को गुरुकुल ले गए। अन्य राजकुमारों, श्रेष्ठि-पुत्रों और सामंत-पुत्रों के साथ महामति रिपुदारण को विद्याभ्यास कराने लगे। वे

उसकी अभद्रता और अविनय का किंचित् भी बुरा नहीं मानते थे और बड़े प्यार से पढ़ाते थे।

रिपुदारण को पढ़ते-पढ़ते काफी समय बीत गया। आचार्य ज्यों-ज्यों उसके प्रति कृपालु-दयालु और विनम्र बनते, वह त्यों-त्यों उद्धत होता चला गया। राजकुमार के इस व्यवहार से क्षुब्ध होकर आचार्य सोचने लगे—''यो हि दद्यादपात्राय संज्ञानममृतोपमम्। स हास्यः स्यात् सतां मध्ये भवेच्चानर्थ भाजनम्।'' अर्थात् जो अमृतोपम ज्ञान के योग्य न हो, ऐसे कुपात्र को ज्ञान देने वाला अपने कर्तव्य का पालन नहीं करता, वह सज्जनों की दृष्टि में हंसी का पात्र बनता है और अनर्थों का भाजन बनता है।

आचार्य ने सोचा—शास्त्रादेशानुसार रिपुदारण कुपात्र है। यह कुत्ते की पूँछ के समान है, जो बारह साल तक नलकी में रहने पर भी सीधी नहीं होती—टेढ़ी ही रहती है। यह सोचकर आचार्य अब रिपुदारण के प्रति उदासीन रहने लगे। लेकिन पुण्योदय का साथ होने के कारण आचार्य रिपुदारण को एक बार भी तिरस्कृत करके पढ़ाने से इन्कार नहीं कर सके।

जब पुण्योदय का स्नेह क्षीण हो गया तो आचार्य के मन में भी रिपुदारण का अपमान करने का विचार आ गया। होनहार से ऐसा संयोग भी बन गया।

एक बार आचार्य किसी कार्य से गुरुकुल से बाहर चले गए। उनके पीछे राजपुत्र रिपुदारण उनके वेत्रासन (बेंत के बने आसन) पर बैठ गया। अन्य छात्रों ने उससे कहा—''गुरु के आसन पर बैठना गुरु का अपमान है। यह तुम अनुचित कर रहे हो।''

इस पर रिपुदारण बिगड़ गया और बोला—

''मूर्खो! तुम कौन होते हो मुझे रोकने वाले? गुरु होगा तो तुम्हारा होगा। मेरा कोई गुरु नहीं है। फिर तुम्हारा गुरु क्या मुझसे श्रेष्ठ है, जो मैं उसके आसन पर नहीं बैठ सकता।''

सभी छात्र चुप हो गए। जब आचार्य आए तो उन्होंने आचार्य से शिकायत कर दी। इस पर आचार्य ने रिपुदारण से स्पष्टीकरण माँगा कि तुम मेरे आसन पर क्यों बैठे थे?

रिपुदारण ने तुरन्त अपने मित्र मृषावाद का सहारा लिया और बोला—

"आचार्यदेव ! मैं स्वप्न में भी ऐसा नहीं कर सकता कि आपके वेत्रासन पर बैठूं ? मैं आपके आसन पर नहीं बैठा। ये सभी छात्र झूठ बोल रहे हैं। इनके पास क्या प्रमाण है, जो ये कहते हैं कि मैं आपके वेत्रासन पर बैठा था ? आप भी कैसे आचार्य हैं, जो बिना प्रमाण के मुझसे स्पष्टीकरण माँग रहे हैं ?"

आचार्य चुप हो गए। वह मन में सोचने लगे कि रिपुदारण झूठा है। मेरे छात्र विनयी और सत्यभाषी हैं। ये कदापि झूठ नहीं बोलेंगे। अब मैं रिपुदारण को रंगे हाथों पकड़कर स्पष्टीकरण मागूँगा।

यह सोच आचार्य दूसरे दिन गुरुकुल में ही छिप गये और रिपुदारण की गतिविधि को देखते रहे। उनको गुरुकुल से गया जान रिपुदारण उनके आसन पर बैठ गया। गुरुदेव तुरन्त उसके सामने आ गए और उसे रंगे हाथों पकड़ लिया। गुरुदेव उससे बोले—

"राजकुमार ! बोलो, अब तुम क्या कहते हो ?"

"क्या कहूँ ?" रिपुदारण बोला—"जो आप कहें, वही कहूँ।"

गुरुदेव बोले—

"मैंने तुम्हें अपने आसन पर बैठे हुए रंगे हाथों पकड़ा है। इससे बड़ा प्रमाण क्या होगा ? अब मुझे अपना स्पष्टीकरण दो कि तुमने ऐसा क्यों किया ?"

रिपुदारण तुरन्त आसन से उतर गया और बड़ी ढीठता से बोला—

"अरे, अरे ! यह आप क्या कहने लगे ? मैं आपके आसन पर बैठा था ? हा पाप ! शान्त हो, हा पाप ! शान्त हो।"

रिपुदारण ने अपने दोनों कानों पर हाथ रखकर पुनः कहा—

"मुझे क्या सुनने को मिल रहा है ? इस आचार्य का नाटक तो देखो कि स्वयं अकार्य करके मुझ पर आरोप लगा रहा है।"

रिपुदारण की ऐसी धृष्टता देख आचार्य सोचने लगे कि अब इसे सुधारना असंभव है। दूसरे छात्रों ने भी आचार्य से कहा—गुरुदेव ! इस पापी को हमारे साथ मत रखिये। इसकी संगति हमारा भी अनिष्ट करेगी।

काफी सोच-विचार के बाद आचार्य बड़े प्यार से रिपुदारण से बोले—

"राजकुमार ! शैलराज और मृषावाद के सहोदर साथी तुम जैसों के लिए हैं। मेरे गुरुकुल में इनका कोई स्थान नहीं है। अतः या तो तुम शैल-राज और मृषावाद का साथ छोड़ या दो फिर मेरा गुरुकुल छोड़ दो।"

यह सुनकर रिपुदारण क्रोध में भड़क उठा और बोला—

"इस गुरुकुल में अपने बाप को रखना। मुझे तेरे गुरुकुल में नहीं रहना। मैं तो तेरे गुरुकुल के बिना भी शास्त्राभ्यास कर लूंगा।"

यह कहकर पैर पटकते हुए रिपुदारण महामति आचार्य के गुरुकुल से निकल गया। रिपुदारण के जाने के बाद आचार्य ने अपने छात्रों से कहा—देखो राजा नरवाहन अपने पुत्र पर अत्यधिक प्रेम करता है। अतः वह अपने पुत्र का पक्ष लेकर कुछ कहने आ सकता है। जब आयेगा तो मैं भी उचित उत्तर दूंगा।

उधर स्तब्धचित्त का लेप लगाकर मृषावाद का सहारा लेकर रिपुदारण गुरुकुल से निकलकर अपने पिता के पास पहुँच गया। □

[४] दुर्गुणों में वृद्धि

रिपुदारण को गुरुकुल से आया देख राजा नरवाहन ने पूछा कि कैसे चले आये तो रिपुदारण ने कहा कि मेरा शास्त्राभ्यास पूरा हो चुका है। अतः अब गुरुकुल में रहने की क्या आवश्यकता है।

इस पर राजा बोले—

"फिर भी शास्त्रों को बार-बार फेरना चाहिए। क्योंकि शास्त्रा-भ्यास छोड़ देने से स्मृति से उतर जाते हैं।"

यद्यपि रिपुदारण कुछ भी नहीं जानता था, पर उसने अपने पिता पर अपने ज्ञान की झूठी धाक जमा दी और पिता के आदेशानुसार शास्त्राभ्यास का आश्वासन दिया। पिता नरवाहन ने अपने कोषाध्यक्ष को आदेश दिया कि मेरा पुत्र जितना भी धन माँगे, उसे देना। इसका विद्याव्यसन अबाधित रूप से चलते रहना चाहिए।

अब तो गंजे को नाखून भी मिल गए। अब वह पिता से प्राप्त धन को द्यूतक्रीड़ा और वेश्यागमन में व्यय करने लगा और पिता को यह विश्वास जमा दिया कि मैं आचार्य के पास रहकर कलाओं के ज्ञान की पुन-

रावृत्ति कर रहा हूँ। पिता जानते थे कि पुत्र आचार्य के पास है और पुत्र वेश्यालय में पड़ा रहता था। यह सब मृषावाद की कृपा से हो गया था।

एक दिन रिपुदारण ने मृषावाद से कहा—

"मित्र ! तेरी शक्ति का मैं क्या वर्णन करूँ ? तूने पिता पर भी मेरा रंग जमा दिया और आचार्य को भी मुँह की खिला दी।"

इस पर मृषावाद बोला—

"मित्र ! मैं तो कुछ भी नहीं हूँ। मैं तेरा सम्पर्क माया और माया के कुटुम्ब से करा दूँगा। फिर तो तेरी हर दाँव पर जीत ही जीत है।"

यह कहकर मृषावाद माया और उसके कुटुम्ब का परिचय रिपुदारण को देने लगा—

"राजकुमार ! राजसचित्त नामक एक अन्तरंग नगर है। उसमें रागकेसरी नामक राजा राज्य करता है। मूढ़ता उसकी रानी है। उसके माया नाम की एक बेटी है। मैं मायादेवी को अपनी बड़ी बहन ही मानता हूँ। मेरी जो भी शक्ति और योग्यता है, वह अपनी बड़ी बहिन माया के उपदेश को मानने के कारण ही है। मैं जहाँ भी जाता हूँ, स्नेहवश मेरी बड़ी बहन माया भी छिपकर मेरे साथ हमेशा रहती है।"

"फिर तो मैं भी उससे मिलूँगा।" रिपुदारण ने मृषावाद से कहा— "माया की कृपा मुझे भी प्राप्त करा दो।"

अब रिपुदारण पर माया का भी हाथ हो गया। अब तक शैलराज और मृषावाद ही थे—अब माया भी हो गई। इन तीनों के प्रभाव से रिपु-दारण दुर्गुणों—दोषों का भण्डार हो गया। कोई भी कुकृत्य उससे न बचा। यद्यपि वह द्यूतक्रीड़ा और वेश्यागमन में व्यस्त रहता था, पर मृषावाद और माया के प्रताप से दूर-दूर तक देश-देशान्तरों में यह प्रसिद्धि फैली हुई थी कि रिपुदारण लेखन, चित्रकला, धनुर्वेद, सामुद्रिक शास्त्र, व्याकरण आदि में विशेष योग्यता प्राप्त कर रहा है। मृषावाद के कारण रिपुदारण का राजा नरवाहन पर इतना प्रभाव हो गया कि उन्होंने उससे कह दिया—पुत्र ! तुम विद्याभ्यास में समय दो। मुझसे मिलने की भी जरूरत नहीं है, क्योंकि इससे तुम्हारे विद्यानुराग में रुकावट आयेगी।

संसारी जीव ने अगृहीतसंकेता से कहा—"भद्रे ! मैं रिपुदारण के रूप में इसी तरह व्यसनों में लिप्त रहकर युवा हो गया।" ☐

[५] नरसुन्दरी से विवाह

शेखपुर नामक नगर में नरकेसरी नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम था वसुन्धरा और दोनों की एकमात्र संतान थी पुत्री नरसुन्दरी। राजकुमारी नरसुन्दरी रूप में साक्षात् रति जैसी थी। उसका लावण्य धीर मुनियों के मन में भी हलचल पैदा करने की सामर्थ्य रखता था। इसके साथ ही नरसुन्दरी सभी विद्याओं में पंडिता थी। उसने एक प्रतिज्ञा की थी कि जो पुरुष मुझसे अधिक विद्वान, शास्त्रज्ञ और कलामर्मज्ञ होगा, मैं उसी के साथ अपना विवाह करूँगी।

पुत्री की प्रतिज्ञा से राजा-रानी चिंतित रहते थे कि हमारी पुत्री से अधिक विद्वान कौन होगा। उधर मृषावाद ने रिपुदारण की प्रसिद्धि फैला रखी थी कि वह उद्भट विद्याव्यसनी है। राजा नरकेसरी ने भी रिपुदारण के बारे में सुना तो अपनी पत्नी रानी वसुन्धरा से परामर्श किया—

"प्रिये! राजा नरवाहन बहुत बड़े राजा हैं। हमारी पुत्री उनकी पुत्रवधू बने यह हमारा सौभाग्य है। उनका पुत्र रिपुदारण इतना यशस्वी है कि उसके ज्ञान का यश दिग्दिगन्त में फैला हुआ है।"

रानी वसुन्धरा ने अपनी सहमति देते हुए कहा—"फिर भी पुत्री की प्रतिज्ञा-पूर्ति के लिए दोनों का शास्त्रार्थ तो होना ही चाहिए। यदि रिपुदारण शास्त्रों का ज्ञाता है तो वह हमारी पुत्री के प्रश्नों का उत्तर देकर उसे अवश्य संतुष्ट करेगा।"

अन्ततः राजा नरकेसरी राजपरिवार और पुत्री नरसुन्दरी को लेकर सिद्धार्थपुर पहुँच गए। राजा नरवाहन ने स्वागतपूर्वक उन्हें अतिथि भवनों में ठहराया। उन्हें यह जानकर भारी खुशी हुई कि राजा नरकेसरी शेखपुर से यहाँ मेरे पुत्र के साथ अपनी पुत्री का विवाह करने आये हैं। विवाह की शर्त के अनुसार राजा नरवाहन ने अपने राज्य में डोंडी पिटवा दी कि कल अमुक समय सार्वजनिक सभा में राजकुमार रिपुदारण और राजकुमारी नरसुन्दरी के बीच पांडित्य प्रदर्शन को लेकर वाद-विवाद होगा।

यथासमय सभा जुड़ी। राजा नरवाहन, रानी विमलमालती यथा-स्थान बैठे। आचार्य महामति और राजपुत्र रिपुदारण भी बैठे। दूसरी ओर राजा नरकेसरी, रानी वसुन्धरा और राजकुमारी नरसुन्दरी यथास्थान

बैठे। अन्य विशिष्ट जनों, राज परिवार के सदस्यों के अलावा अनेक प्रजाजन उपस्थित थे। अन्त में राजा नरकेसरी ने अपनी पुत्री नरसुन्दरी से कहा—

"पुत्री ! राजकुमार रिपुदारण के विद्याव्यसन की प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैली हुई है। उसी को सुनकर मैं तेरा विवाह इनके साथ करने के विचार से यहाँ आया हूँ। अतः कलाओं के सम्बन्ध में तू जो कुछ पूछना चाहे, रिपुदारण से पूछ सकती है।"

यह सुनते ही रिपुदारण की तो हवाइयां उड़ने लगीं। उसका मित्र शैलराज (अभिमान) खिसकने लगा और मृषावाद (झूठ) भी दुम दबाकर भाग गया। फिर भी वह शान्त रहा। इसी बीच राजकुमारी नरसुन्दरी अपने आसन से उठकर बोली—

"पिताजी ! गुरुजनों के बीच मैं कला सम्बन्धी कोई प्रश्न करूँ, यह उचित नहीं लगता। अतः कुँवर रिपुदारण ही समस्त कलाओं की विशेषताओं का वर्णन करें। उस वर्णन में जो विशिष्ट स्थल होंगे, उन पर मैं प्रश्न पूछूँगी।"

सब ने राजकुमारी के कथन को साधु-साधु कहकर सराहा। अब राजा नरवाहन ने अपने पुत्र रिपुदारण से कहा—पुत्र ! तुम कलाओं का वर्णन शुरू करो। राजकुमारी का प्रस्ताव बहुत सुन्दर है।

अब तो किसी तरह नहीं बचा जा सकता, यह स्थिति देख रिपुदारण के होश उड़ गए। उसका मुँह पीला पड़ गया। देह से पसीना छूटने लगा। भयातिरेक से वह निर्जीव और मरा-मरा-सा हो गया। रिपुदारण की यह दशा देखकर राजा नरवाहन आचार्य महामति के पास खिसक आये, कोई दूसरा न सुने, इस प्रकार धीरे-धीरे बातें करने लगे। राजा नरवाहन ने पूछा—

"आचार्य ! रिपुदारण की इस घबराहट का क्या कारण हो सकता है ?"

"घबराहट का कारण है कुमार का अज्ञान।" आचार्य बोले—"मृषावाद की माया आखिर कब तक चल सकती है? आज पोल खुलती देख राजकुमार का मुँह पीला पड़ गया है।

"राजन् ! आपका पुत्र रिपुदारण अपढ़ है। वह तो कलाओं का नाम तक नहीं जानता। हाँ, यह शैलराज (अभिमान) और मृषावाद (झूठ) की

कलाओं में बहुत प्रवीण है। किसी का भी अपमान करना और फिर झूठ द्वारा उन्हें गलत सिद्ध करना—ये दोनों कलाएँ इसे इसके अन्तरंग मित्र शैलराज और मृषावाद ने अच्छी तरह सिखा दी हैं।"

यह रहस्योद्घाटन सुनते ही राजा नरवाहन बहुत दुखी हुए। उन्होंने आचार्य से पुनः पूछा—

"यदि ऐसी ही बात थी तो आप इसे लेकर सभामण्डप में क्यों आये? फिर मुझे पहले क्यों नहीं बताया कि कुमार कोरा है?"

"राजन्! मैं इसे सभामण्डप में लेकर नहीं आया।" आचार्य बोले—"आपका पुत्र तो बारह वर्ष पूर्व ही मेरा गुरुकुल छोड़कर चला आया था। आपकी मेरे पास सूचना गई तो मैं चला आया। मैं यह नहीं जानता कि आपका पुत्र कहाँ से आया है। मैंने अब तक आपको नहीं बताया, वह इसलिए कि आपको दुःख होगा।"

इसके साथ ही आचार्य ने नरवाहन को गुरुकुल में घटी वेत्रासन पर बैठने आदि की सब घटनाएँ सुना दीं। उधर रिपुदारण की दशा खराब थी। वह बीमार-सा मुर्झाया हुआ आसन पर पड़ा था। उसकी मां विमलमालती पुत्र की दशा देख रोने लगी। राजा नरवाहन ने दुखी मन से घोषणा की—

"राजकुमार का स्वास्थ्य ठीक नहीं है। अतः अब किसी और दिन शास्त्रार्थ होगा।"

सब उठ-उठकर जाने लगे। अब यह बात किसी से छिपी न रही कि रिपुदारण के स्वास्थ्य ठीक न होने का क्या रहस्य था। गली-चौराहे और नुक्कड़ों पर लोग खड़े होकर आपस में यही चर्चा करने लगे कि रिपुदारण तो निरा मूर्ख निकला। उसकी तो बोलती ही बन्द हो गई। राजकुमारी के सामने एक शब्द भी न बोल सका।

उधर राजा नरकेसरी भी दुखी थे। वे सोचते थे—"व्यर्थ ही शेखपुर से यहाँ आये। अच्छा हुआ पहले ही पता चल गया कि राजकुमार मूर्ख है, वरना जिन्दगी भर का रोना रहता। ऐसे मूर्ख को मैं कभी भी अपनी पंडिता पुत्री नहीं दे सकता।'

रात को राजा नरवाहन करवटें बदलते रहे—'इस कुलांगार ने तो मेरी नाक कटा दी। मुझे कितना बड़ा धोखा दिया। यह मूर्ख मुझसे यह कहता रहा कि मैं सभी कलाओं में पारंगत हूँ। मेरे समान कोई दूसरा नहीं है। आज इसने मेरी प्रतिष्ठा धूल में मिला दी। अब इसका विवाह कोई दूसरा राजा भी नहीं करेगा।'

दुखी राजा नरवाहन को आधी रात के काफी देर बाद हल्की-सी झपकी आई। उधर रिपुदारण का अन्तरंग मित्र पुण्योदय, जो उसके दुर्व्यवहार से काफी दुर्बल हो गया था, उसने सोचा—मुझे रिपुदारण की बिगड़ी बात बनानी है। मैं सुदीर्घकाल से इसके साथ रहा हूँ तो अब इसकी कुछ भलाई कर दूं। यह सोच पुण्योदय ने एक तेजस्वी धवलपुरुष का रूप बनाया और राजा नरवाहन को स्वप्न दिया कि राजन्! तुम चिन्ता मत करो। मैं नरकेसरी की पुत्री नरसुन्दरी से आपके पुत्र का विवाह कराऊँगा।

राजा नरवाहन को यह स्वप्न देकर पुण्योदय ने उधर राजा नरकेसरी को प्रेरणा दी, जिसके प्रभाव से राजा नरकेसरी सोचने लगा—'अब बेटी को बिना ब्याह के लौटाकर ले जाऊँगा तो मेरी बड़ी हँसी होगी। सभी जान चुके हैं कि मैं नरसुन्दरी को यहाँ रिपुदारण के साथ विवाह करने लाया था। अब विवाह किये बिना लौट जाना तो बड़ी भारी विडम्बना है। रिपुदारण विद्यानिधान न सही, पर वैसे तो सब बातों में ठीक ही है। सुन्दर है, सुगठित देह का है। एक बड़े राज्य का उत्तराधिकारी है।'

राजा नरकेसरी ने अपने मन की बात अपनी पुत्री नरसुन्दरी से कही तो पुण्योदय की प्रेरणा से उसने भी स्वीकृति दी—पिताजी, आप जो कुछ करेंगे, मेरी भलाई के लिए ही करेंगे। अतः मुझे यह प्रस्ताव स्वीकार है।

उधर प्रातः काल जागरण के वाद्य बजे तो राजा नरवाहन ने शय्या का त्याग किया। उसी समय प्रातःकाल होने की सूचना देने वाला समय निवेदक कह रहा था—

यदा येनेह यल्लभ्यं शुभं वा यदि वाऽशुभम्।
तदाऽवाप्नोति तत्सर्वं, तत्र तोषेतरौ वृथा॥

अर्थात् इस संसार में प्राणी को शुभाशुभ अच्छी-बुरी वस्तु प्राप्त होनी होती है, वह उसे अवश्य ही प्राप्त होती है। अतः इस सम्बन्ध में संतोष या असंतोष धारण करना व्यर्थ ही है।

उधर स्वप्न में प्राप्त आश्वासन और इधर समयसूचक की सूक्ति—दोनों को सुनकर राजा नरवाहन बहुत संतुष्ट हुए। नित्यकर्मों से निवृत्त होकर राजसभा में गए। उधर राजा नरकेसरी भी नित्य क्रियाओं से निबट कर राजा नरवाहन के पास आकर बोले—

"राजन्! आपने कल घोषणा की थी कि कुमार का स्वास्थ्य ठीक नहीं है, अतः अब वाद-विवाद किसी अन्य दिन होगा। इस विषय में मेरा

निवेदन है कि रिपुदारण और नरसुन्दरी एक दूसरे के अनुकूल हैं। दोनों का विवाह होना ही है तो शास्त्रार्थ करने के लिए बार-बार भीड़ इकट्ठी करने से क्या लाभ ? अत: आप पुन: शास्त्रार्थ कराने का विचार त्याग कर दोनों का विवाह करें।"

राजा नरवाहन तो यही चाहते थे। पुण्योदय ने नरकेसरी की बुद्धि बदल दी थी। अत: अब दोनों पक्षों की सहर्ष सहमति से रिपुदारण का विवाह नरसुन्दरी के साथ सोल्लास सम्पन्न हो गया। नरसुन्दरी रिपुदारण के साथ सिद्धार्थपुर में ही रह गई और उसके पिता राजा नरकेसरी अपनी पत्नी वसुन्धरा को लेकर स्वदेश – शेखपुर लौट गए।

× × ×

संसारी जीव ने कहा—

"भद्रे अगृहीतसंकेता ! मैं अलग एक महल में रहकर नरसुन्दरी के साथ दाम्पत्य सुख भोगने लगा। उसे पाकर मैं फिर अभिमान से फूल गया और सोचने लगा—देवों को भी दुर्लभ परम रूपवती नरसुन्दरी मुझे प्राप्त हुई है। मेरे समान त्रैलोक्य में भी कोई नहीं है। मुझे जो भी सफलता मिलती, वह सब पुण्योदय की कृपा से ही मिलती थी, पर मैं उसका तनिक भी सम्मान नहीं करता था। ये बातें तो मैं बहुत बाद में जान पाया कि पुण्योदय ही मेरी कल्याण परम्परा का हेतु है। मैं तो परम शत्रु शैलराज (अभिमान) और मृषावाद (झूठ) को ही अपना मित्र समझता था।

"अगृहीतसंकेता ! जैसे सूर्य धूप को नहीं छोड़ता और चन्द्रमा चांदनी का त्याग नहीं करता, वैसे ही मैं और नरसुन्दरी दो देह एक प्राण होकर रह रहे थे।

"हमारे इस प्रेम को देखकर शैलराज और मृषावाद ईर्ष्या से जल-भुन उठे। वे सोचने लगे कि रिपुदारण अब हमारी तो याद भी नहीं करता, यह तो पूरी तरह नरसुन्दरी का होकर ही रह गया है। सोच-विचार कर शैलराज ने मृषावाद से कहा कि भाई तू नरसुन्दरी के भीतर पैठकर उसके मन में रिपुदारण के प्रति विरक्ति पैदा कर दे। फिर मैं मौका देखकर बीच में कूद पड़ूंगा और दोनों का प्रेम भंग कर दूंगा। अभिमान (शैलराज) और प्रेम एक साथ नहीं रह सकते।

"तो अगृहीतसंकेता ! मेरा और नरसुन्दरी का शैलराज (अभिमान) ने विछोह करा दिया। मृषावाद ने भी उसका साथ दिया। मेरी इस लम्बी

कथा को भी तुम ध्यान देकर सुनो। मैं संसारी जीव कैसे-कैसे अपने ही बनाये जाल में फँसता रहा।" □

[६] नरसुन्दरी से सम्बन्ध-विच्छेद

नरसुन्दरी का सान्निध्य पाकर रिपुदारण ने शैलराज (अभिमान) का स्तब्धचित्त लेप चढ़ाया और गर्वोन्मत्त होकर ऐसा सोचने लगा कि मेरे समान भाग्यशाली त्रैलोक्य में कोई दूसरा नहीं है, क्योंकि सर्वांग सुन्दरी, काव्यपटु, कलामर्मज्ञ और पूर्णतः समर्पित पत्नी नरसुन्दरी मुझे मिली है। यह सोचकर रिपुदारण अपने माता-पिता, मित्रों, सम्बन्धियों–सबसे विमुख रहने लगा। रिपुदारण की ऐसी दुष्ट प्रवृत्ति देखकर उसका शुभ-चिन्तक पुण्योदय बहुत दुखी हुआ और वह अत्यन्त क्षीण-दुर्बल हो गया।

रिपुदारण के सगे सम्बन्धी मिल-बैठकर उसका मजाक उड़ाते थे कि देखो रिपुदारण को जो नरसुन्दरी प्राप्त हुई है, वह उसी तरह है जैसे कौए को मोतियों की माला मिल जाए। कहाँ मूढ़ और दुर्व्यसनी रिपुदारण और कहाँ पण्डिता और अनुपम सुन्दरी नरसुन्दरी।

लोग कहा करते थे कि रिपुदारण पत्नी के प्रेम में गर्वोन्मत्त होकर अन्धा होकर वह कहावत चरितार्थ कर रहा है कि एक तो बन्दर और फिर उसके गुप्तस्थान पर बिच्छू काटले तो उसकी उछल-कूद का क्या ठिकाना!

रिपुदारण की यह दशा मृषावाद और शैलराज से नहीं देखी गई। वे अपनी साँठ-गाँठ करते रहते थे। उन्हीं की प्रेरणा से नरसुन्दरी के मन में एक दिन विचार आया कि मुझे यह परीक्षा करनी चाहिए कि मेरे पति का मुझ पर सच्चा प्रेम है या बनावटी। यदि वे सच्ची-सच्ची बात बता देंगे तो असली प्रेम माना जायगा, वरना तो नकली है।

यह सोचकर एक दिन नरसुन्दरी ने बड़े प्यार से पूछा—

"आर्यपुत्र! ज्ञान-परीक्षण वाले दिन सभा भवन में आपको जो व्याधि हुई थी, उसका क्या कारण था?"

रिपुदारण ने कोई उत्तर न देकर नरसुन्दरी से प्रतिप्रश्न किया—

"तुम्हारे प्रश्न का उत्तर मैं बाद में दूँगा। पहले तुम बताओ कि तुमने मेरी व्याधि का क्या कारण समझा था।"

नरसुन्दरी बताने लगी—

"आर्यपुत्र ! मैं उस समय ठीक से आपकी दशा नहीं देख पाई थी। पर मुझे यह शंका हुई थी कि या तो आपकी देह में कोई रोग हो गया है या आप अपने ज्ञान की कमी को छिपाने के लिए बहाना कर रहे हैं।"

इस पर रिपुदारण ने मृषावाद का सहारा लिया। वह यह भूल गया कि झूठरूपी खटाई प्रेमरूपी दूध को फाड़ देती है। वह बोला—

"प्रिये ! ऐसी कोई बात तुम्हें नहीं सोचनी चाहिए, क्योंकि समस्त कलायें मेरे हृदय में समाई हुई हैं। दूसरे, मुझे कोई रोग भी उत्पन्न नहीं हुआ था। वस्तुत: बात यह थी कि मेरे माता-पिता ने अन्ध-प्रेम के कारण भारी धूम-धाम कर दी थी। व्यर्थ की उस धूम-धाम और धाँधली के कारण मैं स्थिरचित्त होकर मौन हो गया था। इसके अलावा कोई कारण नहीं था।"

यह सुनकर नरसुन्दरी दृढ़ निश्चय से सोचने लगी कि मेरा पति रिपुदारण वास्तविकता को छिपा गया है। यह तो बहुत ही निर्लज्ज और अभिमानी है। ऐसा सोचकर नरसुन्दरी बोली—

"प्राणेश्वर ! यदि ऐसी बात है कि समस्त कलाएँ आपके हृदय में समाई हुई हैं और आप उस दिन धूम-धाम से ही मौन हुए थे तो मैं अब आपके मुँह से कला सम्बन्धी चर्चा सुनने को उत्सुक हूँ। कुछ जानकारी दीजिए।"

यह सुनकर रिपुदारण लज्जित नहीं हुआ—झेंपा नहीं। बल्कि उसने सोचा कि मेरी पत्नी को अपने पाण्डित्य का बहुत अभिमान है। यह मुझे अपने सामने छोटा समझती है।

रिपुदारण यह सोच ही रहा था कि उचित अवसर देख शैलराज ने उसे भड़का दिया। बस रिपुदारण गर्जना के साथ बोला—

"अरी पापिनी ! तू मेरी दृष्टि से इसी समय दूर हो जा। अब तू मेरे साथ एक क्षण भी नहीं रह सकती। तुझ जैसी पण्डिता को मुझ जैसे मूर्ख के साथ रहना भी नहीं चाहिए।"

यह दुर्वचन सुनकर नरसुन्दरी घबरा गई। फिर उसने सोचा—इनके हृदय में मेरे प्रति अब तनिक भी सद्भाव नहीं है। यह सोचती हुई बहुत दुखी होकर नरसुन्दरी रिपुदारण के भवन से बाहर चली गई।

"हे अगृहीतसंकेता ! इस प्रकार मैंने मृषावाद और शैलराज के वश

होकर अपनी प्राणप्रिया नरसुन्दरी को अपमानित करके घर से निकाल दिया। मेरे महल से निकलकर वह मेरे पिता राजा नरवाहन, यानी अपने श्वसुर के महल को चली गई।

"मेरे हृदय पर शैलराज वाला स्तब्धचित्त लेप चढ़ा था, जो अभी सूखा नहीं था, अतः मैं प्रस्तर स्तम्भ की तरह अकड़ कर खड़ा रहा। जब लेप कुछ सूखा तो मुझे थोड़ा पश्चात्ताप हुआ। मैं नरसुन्दरी के प्रेम और समर्पण को याद करके दुखी रहने लगा। वह वस्तुतः मुझसे बहुत प्रेम करती थी। पत्नी के वियोग में मैं काम-पीड़ित भी रहने लगा और काम-ज्वर से दग्ध रहने लगा।

"अगृहीतसंकेता! मेरी माता मुझे समझाने आई। उसने नरसुन्दरी के दुःख का वर्णन किया, पर मैं पापी अपनी माता का भी अपमान कर गया। अपने चरण प्रहार से मैंने माता को अपमानित किया। शैलराज के वशीभूत जब मैंने माता को भी अपने भवन से निकाल दिया तो उसने नरसुन्दरी से कह दिया कि अब पति की आशा छोड़। वह नहीं बदल सकता। इससे दुखी होकर नरसुन्दरी ने आत्महत्या करली। मेरी माता ने भी आत्महत्या करली। इतना कुकृत्य देखने के बाद मुझे एक धर्माचार्य का उपदेश सुनने को मिला। पर जैसे नन्दिवर्धन के रूप में मुझ पर धर्माचार्य के उपदेश का प्रभाव नहीं पड़ा था, वैसे ही रिपुदारण के रूप में भी मुझ पर धर्माचार्य के सदुपदेश का कोई प्रभाव नहीं हुआ।

"अगृहीतसंकेता! मेरी पत्नी नरसुन्दरी और मेरी माता विमल-मालती ने कैसे आत्महत्या की—यह प्रसंग तुम ध्यान से सुनो।" □

[७] नरसुन्दरी और विमलमालती की आत्महत्या

रिपुदारण की माता विमलमालती उसके भवन में आई और पुत्र के कहे बिना स्वतः ही भद्रासन पर बैठकर बोली—

"वत्स! नरसुन्दरी को तूने बिना कारण ही दुःख पहुँचाया है। वह तेरे बिना जीवित नहीं रह सकती। उसने तो विनोद में ही तुझसे कला-कौशल की चर्चा की थी। उसका उद्देश्य तेरा अपमान करना कदापि नहीं था।

"पुत्र ! वह मेरे पास गई और दाहज्वर से पीड़ित होकर छटपटाने लगी। उसकी तड़पन और दुःख को देखकर ऐसा लग रहा है मानो कोई गाय सिंह को देखकर भयभीत हो अथवा अग्नि में जल रही हो अथवा कोई पत्थर टूटकर उस पर गिर पड़ा हो। वत्स ! मेरे बार-बार पूछने पर उसने बताया कि तुमने उसको घर से निकाल दिया है। मैं तुमसे प्रार्थना करती हूँ कि उसको क्षमा कर दो।"

रिपुदारण का हृदय पसीजा। वह माता से कहना ही चाहता था कि नरसुन्दरी को भेज दो। तभी शैलराज ने अपना लेप उसके हृदय पर लगा दिया। इससे वह दर्प से अकड़ गया और बोला—"उस पापिनी का मेरे सामने मत नाम भी लो।"

तब माता विमलमालती पुत्र के पैरों में गिर गई और पुत्रवधू के लिए खुशामद करने लगी। लेकिन अभिमानी रिपुदारण ने चरणों में पड़ी माता के जोर से लात मारी और बोला—

"कुवस्तु को ग्रहण करने की सिफारिश करने वाली तू मेरी माता न होकर मेरी शत्रु है। तू भी मेरे भवन से चली जा।"

पुत्र की लात का आघात सहकर रानी विमलमालती लौटकर पुनः नरसुन्दरी के पास आई और बोली—

"बहू ! मेरा पुत्र बहुत अभिमानी हो गया है। मेरे कहने से उसने तुझे क्षमा नहीं किया। अब तू स्वयं जाकर उसकी खुशामद कर।"

नरसुन्दरी रिपुदारण के महल में गई। पीछे-पीछे उसकी सास विमल-मालती भी थी। वह छिपकर रिपुदारण और नरसुन्दरी की बातें सुनने लगी। नरसुन्दरी सौ-सौ आँसुओं से रोती हुई रिपुदारण के चरण पकड़कर अनुनय-विनय करने लगी कि हे प्राणेश्वर ! मेरा अपराध क्षमा करो। मैं आपके बिना जीवित नहीं रह सकती। आप मेरे प्राणों के आधार हैं।

रिपुदारण पत्थर से भी कठोर निकला, क्योंकि नरसुन्दरी का करुण-क्रन्दन पत्थरों को भी पिघला सकता था। अन्त में रिपुदारण ने स्पष्ट कह दिया कि तू पापिनी है। अहंकारिणी है। मैं तेरी सूरत भी देखना नहीं चाहता।

जब नरसुन्दरी को रिपुदारण से कोई आशा नहीं रही तो उसने मरने का निश्चय कर लिया। उसने सोचा कि पतिविहीन नारी प्राणहीन देह के समान है। अब मैं जीकर क्या करूँगी। यह सोच नरसुन्दरी मरने के

लिए नगर से बाहर एक खण्डहर में पहुँची। उसके पीछे-पीछे उसकी सास रिपुदारण की माता रानी विमलमालती भी यह देखने के लिए चली कि देखें, बहू कहाँ जा रही है। इन दोनों के पीछे रिपुदारण भी चला। वह भी जानना चहता था कि नरसुन्दरी क्या करेगी।

खण्डहर में पहुँचकर नरसुन्दरी ने अपनी साड़ी से फाँसी का फन्दा बनाया और इस प्रकार बोली—

"हे लोकपालो! आप ध्यानपूर्वक सुनें। हे पूज्यो! आप अपने दिव्य ज्ञान से सब कुछ देख रहे हैं। आर्यपुत्र से बातचीत करने के बाद ऐसा प्रसंग आ गया कि मैंने उनसे कलाओं पर विवेचन करने का अनुरोध किया था। इस वार्तालाप में मेरा उद्देश्य उनका अपमान करने का कदापि नहीं था। लेकिन इस प्रसंग को लेकर वे अभिमान के पर्वत (शैलराज) पर चढ़ गए और मुझ मन्दभागिनी अबला का सर्वथा त्याग कर दिया है। अतः अब मैं जीवित रहना नहीं चाहती।"

नरसुन्दरी की ऐसी वाणी सुनकर रिपुदारण ने सोचा कि वस्तुतः नर-सुन्दरी निर्दोष है। उसका इरादा मेरा अपमान करने का कदापि नहीं था। प्रेम-वार्ता करते-करते मुझे ही क्रोध आ गया। अतः यह केवल प्रेम का अपराध है। मैंने इसका त्याग करके ठीक नहीं किया। अब मुझे इसे मरने से बचाना चाहिए।

यह सोचकर रिपुदारण नरसुन्दरी का फाँसी का फंदा काटने के लिए आगे बढ़ा ही था कि नरसुन्दरी पुनः कहने लगी—

"अतः हे लोकपालो! आप मेरे प्राणों को ग्रहण करें। आगामी जन्मों में फिर ऐसी घटना न घटे, बस मेरी यही प्रार्थना है।"

उसी समय शैलराज ने रिपुदारण से कहा—

"मूर्ख! तू उसे बचाने जा रहा है। देख, यह अगले जन्म में भी तेरा साथ नहीं चाहती है।"

रिपुदारण शैलराज की चालबाजी को नहीं समझ पाया। वह बाद में समझा था। अतः रिपुदारण का विचार बदल गया और निश्चय किया कि नरसुन्दरी मर रही है तो मरने दो। मैं ऐसी पापिनी का साथ नहीं चाहता, जो अगले जन्म में भी मेरा साथ नहीं चाहती। अन्ततः नरसुन्दरी ने फांसी का फन्दा लगाकर आत्महत्या करली।

× × × × ×

संसारी जीव ने अगृहीतसंकेता से कहा—

"हे बहिन ! उसी समय शैलराज ने अपना लेप मुझ पर चढ़ा दिया, उससे मैं जड़ बनकर अपने कर्तव्य को भूल गया।

"भद्रे अगृहीतसंकेता ! मेरी माता कुछ दूर खड़ी यह समझ रही थी कि मेरा पुत्र बहू को मनाने जा रहा है। जब मैं अपने स्थान से लौटकर अलग जा बैठा तो मेरी माता नरसुन्दरी को देखने खण्डहर में पहुँची। उसे मरा देख वह विलाप करने लगी और स्वयं भी फंदा लगाकर मरने को उद्यत हुई। शैलराज का लेप चढ़ा होने के कारण मैंने माता की भी उपेक्षा की कि पापिनी नरसुन्दरी का पक्ष लेने वाली माता को भी मरने दो।

"हे अगृहीतसंकेता ! मेरी माता विमलमालती ने भी आत्महत्या करली। शैलराज का लेप थोड़ा सूख गया था। अत माता और पत्नी की मृत्यु से मैं स्तब्ध रह गया। मैं करुण विलाप करने लग गया। लेकिन तभी शैलराज ने अपना लेप चढ़ा दिया तो मैं अपने को धिक्कारने लगा कि मैं भी कितना मूर्ख हूँ, जो स्त्री के मरने पर रोता हूँ।

"अगृहीतसंकेता ! मेरी माता की दासी कन्दलिका ने सोचा कि रानी बहुत देर से गई हैं, अभी क्यों नहीं लौटीं। वह रात में ही चल दी और मेरी माता को ढूंढ़ते-ढूंढ़ते खण्डहर में पहुँच गई। उसने अपनी स्वमिनी विमलमालती और मेरी पत्नी नरसुन्दरी को मृत देखा तो घबराकर लौट गई और मेरे पिता राजा नरवाहन को आँखों देखा हाल बता दिया। मेरे पिताजी राजसेवकों को लेकर रात में ही आये। मुझे वहाँ बैठा देखकर उन्होंने दोनों की मृत्यु का कारण मुझे ही जाना, जो ठीक भी था।

"शांत चित्त से मेरे पिताजी ने दोनों का दाह-संस्कार किया और मेरे बारे में सोचने लगे कि कुलकलंक रिपुदारण को घर से निकाल ही देना चाहिए। मुझे नगर के लोगों ने बहुत धिक्कारा, गालियाँ दीं और पिता ने तो राजभवन से निकाल ही दिया।

"अगृहीतसंकेता ! मेरा सदा हित करने वाला मेरा तीसरा मित्र पुण्योदय मेरी कुछ भी मदद नहीं कर पा रहा था, क्योंकि वह मेरे व्यवहार से अत्यन्त क्षीण हो गया था। मुझ पर तो शैलराज और मृषावाद—यही दोनों दुष्ट मित्र हावी थे। मैं नगर में इधर-उधर भटकता फिरता था। कोई मेरी बात नहीं पूछता था।

"अगृहीतसंकेता ! हमारे नगर सिद्धार्थपुर के बाहर ललितोद्यान नामक एक उद्यान है। एक दिन मेरे पिताजी राजा नरवाहन अश्वक्रीड़ा

करने गए। उन्होंने विभिन्न जातियों के घोड़ों पर सवारी करके अश्वक्रीड़ा के कौतुक दिखाये। थककर जब वे उद्यान में घूमने लगे तो एक रक्त अशोक वृक्ष के नीचे एक मुनि धर्म-देशना दे रहे थे। काफी लोग उनकी देशना सुन रहे थे। मेरे पिताजी मुनि की वंदना करके देशना सुनने बैठ गए। इन मुनि का नाम विचक्षणाचार्य था। बिना श्रद्धा और बिना भाव के श्रोताओं की संख्या बढ़ाने के लिए मैं भी श्रोताओं में बैठ गया। मैंने आचार्य की वंदना नहीं की। क्योंकि मैं तो अभिमानियों में अग्रणी था।

"हे बहिन अगृहीतसंकेता! आगे क्या-क्या हुआ! आचार्य ने बड़े रहस्य की बातें बताई, वह सब तुम सुनो। वे आचार्य यथानाम तथागुण ही थे। वे वस्तुतः विचक्षणाचार्य ही थे।" □

[८] विचक्षण और जड़—दो भाई

ललितोद्यान में विराजमान विचक्षणाचार्य धर्मदेशना दे रहे थे। उन्होंने संसार की असारता, मनुष्य जीवन की उपयोगिता और धर्म की सार्थकता पर बड़ी अच्छी प्रभावपूर्ण देशना दी, जिसे रिपुदारण, नरवाहन आदि सबने सुना, श्रोताओं में कई प्रतिबोधित हुए। कुछ सरल स्वभावी बन गए और कितनों के विकार-दोष दुर्बल हुए।

देशना की समाप्ति के बाद राजा नरवाहन ने विचक्षणाचार्य से पूछा कि भन्ते! आपने युवावस्था में ही चारित्र क्यों ग्रहण कर लिया? इस पर विचक्षणाचार्य बोले—

राजन्! साधुओं को (१) आत्मस्तुति, (२) परनिन्दा और (३) पूर्व में की गई आनन्द-क्रीड़ा—इन तीन बातों का वर्णन निषिद्ध है, अर्थात् नहीं करना चाहिए। कहा भी है—

आत्मस्तुतिः परनिन्दा पूर्वक्रीड़ितकीर्त्तनम्।
विरुद्धमेतद्राजेन्द्र! साधूनां त्रयमप्यलम्॥

इसके बावजूद भी राजा नरवाहन ने पुनः-पुनः आग्रह-अनुरोध किया तो मुनि ने सोचा कि मेरे आत्मवर्णन से लोगों का वैराग्य भाव जाग्रत होगा। अतः वे आत्मचरित सुनाने लगे।

× × × ×

इस लोक में 'भूतल' नामक एक नगर है। उस नगर में 'मलसंचय'

नाम के राजा राज्य करते हैं। उस राजा के तत्पक्ति नामक रानी है। उस उस रानी ने दो पुत्रों को जन्म दिया। इनमें एक पुत्र का नाम शुभोदय और एक का अशुभोदय है। शुभोदय और अशुभोदय यद्यपि सगे भाई थे, एक ही माता-पिता की सन्तान थे, फिर भी दोनों के गुण-स्वभाव और कर्म एक दूसरे के सर्वथा विपरीत थे।

शुभोदय का विवाह निजचारुता नामक सुन्दरी से हुआ और अशुभोदय की पत्नी का नाम स्वयोग्यता है।

शुभोदय की पत्नी निजचारुता ने विचक्षण नामक पुत्र को जन्म दिया और अशुभोदय की पत्नी स्वयोग्यता ने जड़ नामक पुत्र को जन्म दिया। विचक्षण और जड़ दोनों चचेरे भाई भी एक-दूसरे के विपरीत स्वभाव वाले थे। दोनों अपने-अपने माता-पिता के गुण-कर्म-स्वभाव से प्रभावित और संस्कारित थे।

यथासमय दोनों भाई युवा हुए तो इनके पिताओं ने इनका विवाह भी कर दिया। विचक्षण जैसा था, उसकी पत्नी भी वैसी ही—सर्वथा अनुकूल मिली। विचक्षण मार्गानुसारी गुणों का ज्ञाता, गुरुभक्त, सदाचारी, सत्यवक्ता और संतोषी था। जड़ बिलकुल विचक्षण का उल्टा था, अर्थात् वह परनिन्दक, चुगलखोर, असंतोषी, झूठा और दुष्टाचारी था। तो युवा होने पर विचक्षण का विवाह बुद्धि नामक कन्या से सम्पन्न हो गया।

विचक्षण की पत्नी बुद्धि मलक्षय नामक राजा की पुत्री थी। निर्मलचित्त नामक नगर में मलक्षय नामक राजा राज्य करता है, उसके सुन्दरता नामक रानी है। उस रानी ने दो संतानों—एक पुत्री और एक पुत्र को जन्म दिया। पुत्री का नाम बुद्धि और पुत्र का नाम विमर्श था। उसी बुद्धि से विचक्षण का विवाह हुआ था।

विचक्षण अपनी पत्नी बुद्धि के साथ सुखपूर्वक रह रहा था। कालान्तर में उसकी पत्नी ने एक पुत्र को जन्म दिया। जिसका नाम प्रकर्ष रखा गया। प्रकर्ष अपने पिता विचक्षण का दुलारा, माता बुद्धि का प्यारा और मामा विमर्श का लाड़ला था। □

[२] **रसना और लोलता=लोलुपता**

एक दिन विचक्षणकुमार और कुमार जड़—दोनों भाई घूमते हुए वदनकोटर नामक उद्यान में पहुँच गए। वहाँ उन्होंने सफेद रंग के आड़े-

तिरछे वृक्षों (दाँतों) की पंक्तियों से घिरी एक गुफा देखी और वे दोनों उसमें घुस गए। उस गुफा में उन्होंने लाल रंग की एक स्त्री को देखा। उस स्त्री के साथ उसकी दासी भी थी। उस स्त्री को देखकर जड़ तो बहुत ही प्रसन्न हो गया। वह उसे अपनाने की इच्छा से आतुर हो गया। लेकिन विचक्षण कुमार ने यह सोचकर नीची दृष्टि करली कि कोई भी हो, कैसी भी हो, पर-स्त्री को नहीं देखना चाहिए। अतः वह गुफा से बाहर निकल आया। जड़ भी उसके साथ चल दिया। ये दोनों थोड़ी ही दूर गए थे कि एक स्त्री दोनों के पीछे दौड़कर गई और बोली— "बचाओ-बचाओ, मैं मरी जा रही हूँ।" यह सुनकर दोनों कुमार ठिठक गए और जड़ ने पूछा—"तू कौन है? तुझे क्या कष्ट है?"

उत्तर में स्त्री ने कहा—

"प्रातःस्मरणीय मेरी स्वामिनी का नाम रसना अथवा जिह्वा है। लोलता नाम की मैं उसकी दासी हूँ। आपका मेरा चिरकाल से सम्बन्ध रहा है, पर दुर्भाग्य से आप मुझे भूल गए हैं। मेरी स्वामिनी रसना आपके वियोग में मूर्च्छित पड़ी है। मेरे साथ चलकर पहले आप रसना की मूर्छा दूर कीजिए। फिर मैं आपको पूरा इतिवृत्त समझा दूंगी।"

"अपना और अपनी स्वामिनी रसना का थोड़ा-सा परिचय इसी समय दो।" जड़ के यह कहने पर लोलता बताने लगी—

"मेरी स्वामिनी रसना परम योगिनी है। यह भूत-भविष्य के सब भावों को जानती है। मुझ पर मेरी स्वामिनी की बड़ी कृपा है, इसलिए मैं इसके समान ही हो गई हूँ। आपका और इसका चिरकाल से कैसे सम्बन्ध है, यह सुनिये।

"कर्मपरिणाम राजा के राज्य में असंव्यवहार नामक एक नगर है। आप दोनों उस नगर में बहुत दिनों तक रहे थे। फिर कर्मपरिणाम राजा की आज्ञा से आप दोनों एकाक्ष निवासनगर और विकलाक्षनिवास नगर में आये। यह आपको याद ही होगा कि विकलाक्ष निवास नगर में तीन मुहल्ले हैं। प्रथम मुहल्ले में द्विरिन्द्रिय नामक कुलपुत्र रहते हैं। जब आप इन कुलपुत्रों में निवास कर रहे थे, तब कर्मपरिणाम राजा की आज्ञा से आपको वदनकोटर उद्यान उपहार में मिला। तभी से आप इसके स्वामी हैं। यह मेरी उत्पत्ति की बात है। इसके बाद विधि ने इस गुफा में रसना की रचना की और मुझे उसकी दासी बनाया। वदनकोटर उद्यान के स्वामी होने के कारण आप इसमें बनी गुफा में रहने वाली स्त्री मेरी स्वामिनी रसना के भी चिरकाल से स्वामी रहे हैं।

"तो कुमारो ! अपनी स्वामिनी रसना के साथ मैंने अनेक पदार्थों का भोग किया। उसके बाद पंचाक्षनिवास के मनुजगति नगर में तथा ऐसे ही अन्य स्थानों में मैं आपके साथ रही हूँ। आपके साथ चिरकाल से रहने के कारण रसना देवी एक क्षण के लिए भी आपका विरह नहीं सह सकती। वह आप दोनों के वियोग में मृतप्राय पड़ी है। मेरे साथ चलकर उसकी मूर्च्छा दूर कीजिए।"

जड़ तो रसना को पाने के लिए आतुर ही था। अतः वह उसकी दासी लोलुपता की बातें सुनकर तुरन्त तैयार हो गया। उसने कहा कि लोलुपता ! मैं तुम्हारी स्वामिनी को अपने महलों में रखूंगा। इस पर लोलुपता ने उसे समझाया कि ऐसा नहीं हो सकता। मरी स्वामिनी ने कभी भी वदनकोटर उद्यान में स्थित गुफा का त्याग नहीं किया है। अतः आपको वहीं उसके साथ रहना पड़ेगा।

इसके बाद जड़ वदनकोटर (मुख) में रहने वाली रसना नामक स्त्री का मनोयोग से लालन-पालन करने लगा। वह उसे खट्टे-मीठे, चरपरे, मिठाइयां, मांस-मद्य—अनेक तरह के भक्ष्याभक्ष्य पदार्थ खिलाने-पिलाने लगा। जब कभी जड़ उदासीन होता तो लोलता (लोलुपता) उसे याद दिलाती कि मेरी स्वामिनी को अमुक-अमुक वस्तुएँ खिलाइए।

रसनादेवी में अत्यधिक आसक्त रहने के कारण जड़ अनेक क्लेशों—दुखों में फँस गया। वह रोगी भी रहने लगा। पर मोहवश वह यही सोचता था कि पुण्योदय से मुझे रसना जैसी सुख देने वाली स्त्री मिली है। स्वाद के वश अथवा झूठे सुख के वश मोहग्रस्त प्राणी पाप-पुण्य-कर्म-अकर्म का विचार किये बिना कार्य करता है। यही सब जड़ भी करता था। रसनासक्ति के कारण जड़कुमार सबकी मजाक का पात्र बन गया था।

जड़कुमार का जैसा व्यवहार रसना और उसकी दासी लोलता के प्रति था, इसके ठीक विपरीत विचक्षण का व्यवहार था। जब लोलता (लोलुपता) अपनी स्वामिनी रसना का परिचय दे रही थी तो विचक्षण कुमार ने मध्यस्थ भाव से सोचा कि रसना मेरी स्त्री चिरकाल से है, यह बात तो सही है, क्योंकि यह मेरे वदनकोटर में रहती है। अतः स्त्री के नाते इसका पोषण अवश्य करना चाहिए लेकिन लोलता की बातों में आकर इसे भक्ष्य-अभक्ष्य नहीं देना चाहिए। पोषणभर के लिए पर्याप्त आहार जो सात्त्विक हो, वही इसे देना चाहिए। पोषण के नाम पर लोलता और रसना की दासता कदापि उचित नहीं। यह सोच विचक्षण, साधारण

भोजन रसना को देता। लोलता को तो उसने पास ही नहीं आने दिया। इससे विद्वानों में उसका आदर होने लगा। इस प्रकार विचक्षण और जड़—दोनों भाइयों का रसना के प्रति अलग-अलग व्यवहार रहा।

जड़ के पिता अशुभोदय और माता स्वयोग्यता ने रसना-जैसी पुत्रवधू को पाकर परम प्रसन्नता प्रकट की और उन्होंने अपने पुत्र जड़ का समर्थन किया कि वह रसना और लोलता की इच्छा पूर्ति के लिए जो कुछ कर रहा है, उचित ही कर रहा है।

विचक्षण ने भी अपने पिता शुभोदय और माता निजचारुता को रसना की प्राप्ति की बताई तो शुभोदय बोला—पुत्र! वैसे तो तू स्वयं उचित-अनुचित को जानता है, क्योंकि तेरा नाम ही विचक्षण है। फिर भी मैं कहता हूँ कि नारी पवन के समान चंचल होती है। वह मोक्ष प्राप्ति के साधक की एक बाधा है। रसना को तुमने अपना तो लिया, पर इसकी उत्पत्ति के विषय में स्वयं खोज करो। खोज करने से ही वास्तविकता, एवं इसके कुल-शील का पता चलेगा।

विचक्षण की पत्नी बुद्धि ने भी परामर्श दिया—

"आर्यपुत्र! बड़ों की आज्ञा मानकर कार्य करने में सदा भलाई है। अतः आप रसना के कुल-शील की जाँच अवश्य कीजिए।"

विचक्षण के पुत्र प्रकर्ष ने अपनी माता के कथन का समर्थन किया और साले विमर्श ने भी समर्थन किया कि रसना की जाँच करो।

विचक्षण ने विचार किया कि मेरी माता, पिता, पत्नी, पुत्र और साला—सभी एक बात कहते हैं कि अज्ञात स्त्री का कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। इस दिशा में विचार करने पर एक बात तो निश्चित है कि रसना को अच्छा खाना-पीना पसंद है। लोलता ने जो कुछ कहा था, उसे इसमें संदेह नहीं है कि रसना कुलवधू नहीं हो सकती। अब इसकी पूरी तरह जाँच भी कर लेनी चाहिए। यह सोच विचक्षण ने अपने साले विमर्श को रसना के मूल का पता लगाने के लिए नियुक्त कर दिया।

विमर्श ने रसना की उत्पत्ति की खोज के लिए समय माँगा तो विचक्षण ने उसे एक वर्ष का समय दिया। जब वह जाने लगा तो प्रकर्ष ने शुभोदय, विचक्षण और बुद्धि—पितामह, पिता और माता आदि से कहा—कि मैं जन्म से ही मामा विमर्श के साथ रहा हूँ। अतः मैं भी रसना के मूल का पता करने मामा विमर्श के साथ जाऊँगा। सबने प्रकर्ष को विमर्श के साथ जाने की आज्ञा दे दी और विदा करते समय शुभोदय ने कहा—

"पुत्र विचक्षण ! 'तर्कपूर्ण विचार' की सार्थकता को सार्थक करने वाला विमर्श तेरे साले का नाम है। जिस समस्या का हल तेरी पत्नी (बुद्धि) नहीं कर सकती, उसका हल तेरा साला विमर्श ही कर सकता है। तेरा पुत्र प्रकर्ष यद्यपि अभी छोटा है, पर वह विमर्श का पूरा सहयोग करेगा । तेरी पत्नी बुद्धि, पुत्र प्रकर्ष और साला विमर्श सभी तेरे अनुकूल हैं।

"पुत्र ! मेरी दृष्टि में रसना अच्छी स्त्री नहीं है। यह बुद्धि की सौत बनकर सौत के पुत्र प्रकर्ष का नाश भी कर सकती है। अतः अब समय बिताना ठीक नहीं। रसना के मूल का पता लगना ही चाहिए।"

इसके बाद विमर्श और प्रकर्ष—मामा-भानजे रसना के मूल की खोज में चल दिये। □

[१०] रसना के मूल की खोज

रसना की उत्पत्ति की खोज में विमर्श और प्रकर्ष बाह्य प्रदेश के अनेक नगरों में घूमे। शरद, हेमन्त आदि ऋतुओं की बहार देखी, पर रसना के बारे में उन्हें कहीं कोई जानकारी नहीं मिली। अन्त में दोनों मामा-भानजे अन्तरंग प्रदेश नगर राजसचित्त में पहुँच गए। वह नगर उन्हें सुनसान-सा दिखाई दिया, वहाँ बहुत कम व्यक्ति थे। घूमते-घूमते दोनों राजभवन की ओर निकल गए, जहाँ मिथ्याभिमान अपने सरदारों के साथ बैठा था। विमर्श और प्रकर्ष ने मिथ्याभिमान को प्रणाम करके बातचीत शुरू की और पूछा—

"महोदय ! इस राजसचित्त नगर में बहुत थोड़े लोग दिखाई दे रहे हैं, इसका क्या कारण है ?"

मिथ्याभिमान बोला—

"परदेसियो ! इस नगर का राजा रागकेसरी है, जो महामोह का पुत्र है। विषयाभिलाष आदि इस राजा के अधिकारी हैं। इन दिनों राजा रागकेसरी विषयाभिलाष आदि के साथ युद्ध करने गए हैं, इसलिए यह नगर खाली-खाली-सा दिखाई दे रहा है।"

विमर्श ने पूछा—

"किसके साथ युद्ध करने गए हैं आपके राजा रागकेसरी और मन्त्री विषयाभिलाष ? फिर आप क्यों नहीं गए युद्ध करने ? कृपया हमें पूरी जानकारी दीजिए ।"

अब मिथ्याभिमानी विस्तार से सब बातें बताने लग गया—

"परदेसियो ! दुरात्मा, पापी और बहुत शक्तिशाली संतोष के साथ हमारे राजा युद्ध करने गए हैं । जगत के लोगों को वश में करने के लिए स्पर्शन, रसना आदि हमारे पाँच सुभट चारों ओर फैले हुए हैं । ये सहज ही सबको वश में कर लेते हैं । लेकिन पापी संतोष किसी-किसी पर अपना जादू चला देता है और स्पर्शन, रसना आदि विफल हो जाते हैं । तब संतोष ऐसे लोगों को निवृत्तिनगर पहुँचा देता है । इसलिए संतोष को पराजित करने के उद्देश्य से अब विषयाभिलाष और रागकेसरी उससे युद्ध करने गए हैं ।

"परदेसियो ! मैं भी युद्ध करने राजा के साथ जाने को तैयार हुआ था । पर राजा रागकेसरी ने मुझसे कहा कि तुम इस नगर को छोड़कर कहीं मत जाना । तुम्हारे रहने से हमारी अनुपस्थिति प्रभावहीन रहेगी । सब कुछ यथावत् चलता रहेगा । इसलिए मैं नहीं गया ।"

अब विमर्श ने पूछा—

"युद्ध के समाचार तो तुम्हें मिलते रहते होंगे ? क्या बता सकते हो कि इन दिनों तुम्हारे राजा कहाँ होंगे ?"

विमर्श का यह प्रश्न सुनकर मिथ्याभिमान कुछ चौंका । उसने सोचा कि ये परदेशी कहीं संतोष के जासूस न हों । अतः सीधा उत्तर न देकर उसने टालमटोल उत्तर दिया—

'यहाँ से तो यह कहकर गए थे कि तामसचित्त नगर जायेंगे । अब कह नहीं सकता कि कहाँ होंगे ।"

यह उत्तर सुनकर विमर्श और प्रकर्ष तुरन्त तामसचित्त नगर को चल दिये । मार्ग में विमर्श ने सोचा कि रसना के बारे में इतना तो पता चला कि वह विषयाभिलाष की पुत्री है । रागकेसरी के कहने से विषयाभिलाष ने जिन पाँच सुभटों को संसार को जीतने के लिए भेजा है, उनमें से एक रसना है । यह सोचते हुए दोनों तामसचित्त नगर पहुँच गए ।

ललितोद्यान में विराजमान विचक्षणाचार्य राजा नरवाहन को अपना आत्मचरित सुना रहे थे और संसारी जीव भी रिपुदारण के रूप में बैठा वह कथा सुन रहा था । विचक्षणाचार्य ने आगे कहा कि विमर्श और प्रकर्ष

तामसचित्त नगर पहुँचे। इस नगर के सब अच्छे मार्ग नष्ट हो गए थे, अतः शत्रु इसमें नहीं पहुँच सकते थे। यहाँ अँधेरा रहता था। नगर में शोक अपने साथी दैन्य, आक्रन्दन, विलाप आदि के साथ बैठा था। विमर्श ने उसी से पूछा कि हे भद्र! इस तामसचित्त नगर का राजा कौन है। इस पर शोक ने आश्चर्यचकित होकर कहा—

"जिसे सारा जगत जानता है, उसके बारे में तुम नहीं जानते? तुम्हारी बात यद्यपि अटपटी है, फिर भी मैं सब कुछ बताता हूँ।

"महामोह के दो पुत्र हैं एक रागकेसरी और दूसरा द्वेषगजेन्द्र। बड़ा भाई रागकेसरी राजसचित्त नगर का राजा है और छोटा भाई द्वेषगजेन्द्र इस तामसचित्त नगर का राजा है। इस समय द्वेषगजेन्द्र अपनी सेना लेकर रागकेसरी के साथ संताष को पराजित करने गए हुए हैं।

"परदेसियो! इस नगर के राजा द्वेषगजेन्द्र की रानी अविवेकता भी परम शक्तिमती है। यह अपनी जेठानी रागकेसरी की पत्नी महामूढ़ता और श्वसुर महामोह की आज्ञा मानने को सदा तत्पर रहती है। देवी अविवेकता इस समय न तो इस नगर तामसचित्त में है और न अपने पति, जेठ तथा श्वसुर के साथ युद्धक्षेत्र में गई। वह गर्भवती थी, इसलिए उसके पति उसको युद्ध में साथ नहीं ले गए। वह पति की आज्ञा से रौद्रचित्तपुर नगर में गई है। वहाँ दुष्टाभिसंधि राजा उसकी देखभाल करता है। रौद्रचित्त नगर से निकलकर कारणविशेष से अविवेकता बाह्य प्रदेशों में घूम रही है। वहाँ उसने वैश्वानर नामक एक पुत्र को जन्म दिया। फिर अब दूसरे पुत्र शैलराज को जन्म दिया। अब मैं तुम्हें यह भी बताता हूँ कि मैं शोक यहाँ क्यों आया हूँ।"

× × ×

सदागम के समक्ष जब संसारी जीव इतनी कथा सुनाकर चुप हुआ तो प्रज्ञाविशाला ने अगृहीतसंकेता से पूछा—

"अगृहीतसंकेता! अब तो तू सब कुछ समझ गई होगी? जो बात तेरी समझ में न आई हो, वह तू मुझसे पूछले।" फिर प्रज्ञाविशाला ने संसारी जीव से कहा—

"संसारी जीव! जब विचक्षणाचार्य नरवाहन राजा को विमर्श और प्रकर्ष के तामसचित्त नगर में पहुँचने की कथा सुना रहे थे, उस समय तुम नरवाहन के पुत्र रिपुदारण के रूप में सुन रहे थे। तब क्या तुम यह रहस्य

जानते थे कि अविवेकता ने पहले वैश्वानर को और फिर शैलराज को जन्म देकर तुम्हारे साथ बाँध दिया ?"

संसारी जीव बोला—

"बहन प्रज्ञाविशाला ! उस समय मैं कुछ भी नहीं जानता-समझता था। अविवेकता के पुत्र वैश्वानर ने ही जब मैं नन्दिवर्धन था, तब मेरा विवाह हिंसा से कराया और मुझे अनर्थ परम्परा में डाल दिया। फिर उसी के दूसरे पुत्र शैलराज ने भी मुझे अनर्थ परम्परा में आगे बढ़ाया। रिपुदारण के रूप में मैं तो यही समझ रहा था कि विचक्षणाचार्य मेरे पिता को कोई ललित मनोरंजन करने वाली कहानी सुना रहे हैं। इस समय अगृहीतसंकेता भी मेरे कथन को कहानी मात्र ही समझ रही है, इसका रहस्य—गूढ़ार्थ नहीं जानती।"

"तो फिर !" अगृहीतसंकेता बोली—"संसारी जीव इसका गूढ़ार्थ भी समझा दीजिए।"

अब संसारी जीव कथा को आगे बढ़ाते हुए बोला—

"मेरे चरित का एक भी अंश गूढ़ार्थ से रहित नहीं है। मुझसे तो तुम आगे की कथा सुनो। इसका गूढ़ार्थ तो तुम्हें प्रज्ञाविशाला भी समझा देगी, क्योंकि यह मेरे चरित के रहस्य को जानती है।"

× × ×

शोक ने विमर्श और प्रकर्ष को बताया कि मैं यहाँ तामसचित्त नगर क्यों आया हूँ। वह बोला कि परदेसियो ! इस नगर में मतिमोह नामक व्यक्ति यहाँ का अधिकारी है। वह मेरा अंतरंग मित्र है। मैं महाराज की सेना को संसाररूपी बीहड़ वन में छोड़कर उससे मिलने यहाँ आया हूँ। मतिमोह स्वामी के साथ युद्ध में जाना चाहता था, पर वे उसे आदेश दे गए हैं, कि उसे इस नगर से बाहर नहीं जाना है, क्योंकि राजा की अनुपस्थिति में यहाँ की रक्षा करने में मतिमोह ही समर्थ है। अतः मैं मतिमोह से मिलने तामसचित्त नगर में प्रवेश कर रहा हूँ।

इतनी बात कहकर शोक तो नगर में प्रविष्ट हो गया। अब विमर्श ने प्रकर्ष से कहा कि हमारा काम यहाँ नहीं बनेगा। हमें रागकेसरी और विषयाभिलाष से मिलकर रसना के बारे में जानकारी करनी है। अतः चलो, अब हम संसाररूपी वन में चलकर रागकेसरी और विषयाभिलाष आदि से मिलें।

इसके बाद विमर्श और प्रकर्ष बड़ी शीघ्रता से चित्तवृत्ति नामक अटवी में पहुँच गए। □

[११] चित्तवृत्ति अटवी

विमर्श और प्रकर्ष चित्तवृत्ति अटवी में पहुँच गए। दोनों ने दूर से देखा कि अटवी में एक महानदी के निकट एक मंच अथवा वेदिका के ऊपर सिंहासन बना है। उस सिंहासन पर महामोह, उसके दोनों पुत्र—राग-केसरी एवं द्वेषगजेन्द्र बैठे हैं और उनके चारों ओर तीनों की चतुरंगिणी सेना है। यह देख विमर्श ने प्रकर्ष से कहा—

"प्रकर्ष ! इनके निकट नहीं जाना है। ये हमें शत्रुपक्ष का समझकर परेशान करेंगे।"

"तो फिर मामा ! इनके बारे में हमें जानकारी कैसे होगी ?" प्रकर्ष ने विमर्श से कहा—"निकट पहुँचे विना हम न तो इन्हें अच्छी तरह देख सकते हैं और न कुछ जान सकते हैं।"

विमर्श बोला—

"इसकी तुम चिन्ता मत करो। मैं अपनी विचार-शक्ति से तुम्हें सब कुछ समझा दूँगा और एक-एक का परिचय दूँगा।"

यह कह विमर्श कुछ देर आँखें बन्द किये ध्यानावस्था में बैठ गया। बैठे-बैठे उसे हँसी आ गई। प्रकर्ष ने पूछा—मामा ! तुम्हें हँसी क्यों आ गई ?

विमर्श बोला—

"भानजे ! मैंने सबका स्वरूप समझ लिया है। इनके स्वरूप की विचित्रता पर हँसी आई थी। अब तू जो चाहे पूछ; मैं तेरे सब प्रश्नों के उत्तर दूँगा।"

प्रकर्ष ने एक साथ कई प्रश्न पूछे। विमर्श प्रत्येक का क्रमिक उत्तर देते हुए बोला कि प्रकर्ष ! यह जो चित्तवृत्ति नामक अटवी है, यह श्रेष्ठ रत्नों की उत्पत्ति का स्थान है और यही उपद्रवकारी अनर्थ पिशाचों की भी उत्पत्ति-भूमि भी है। इस अटवी, महावन अथवा जंगल में अन्तरंग नागरिकों के नगर, ग्राम, पुर बसे हुए हैं। अन्तरंगवासी अच्छे-बुरे—सभी लोग इसी अटवी में रहते हैं। इस अटवी का सेवन यदि मिथ्यात्व भाव से किया जाए तो यह अटवी प्राणी से महापाप भी करवा सकती है और यदि इसका सेवन सम्यक्त्व भाव से किया जाए तो यह मोक्ष का हेतु भी बन सकती है।

इस महावन के पास जो यह नदी बह रही है, इसे प्रमत्तता महानदी कहते हैं। इसके दोनों किनारे निद्रा कहलाते हैं और इसमें कषाय नाम का पानी बहता रहता है। इस पानी का स्वाद मद्य-जैसा है। इस पानी में राजकथा, देशकथा, स्त्रीकथा, भक्तकथा, (भोजन कथा) आदि विकथाओं के पानी का मिश्रण भी है। इसमें विषय-वासनाओं की तरंगें उठा करती हैं। इसमें गिरने वाला प्राणी जागरूक नहीं रहता। यह नदी राजसचित्त तथा तामसचित नगरों से निकलकर इस चित्तवृत्ति अटवी में आती है।

प्रकर्ष ! नदी के मध्य में तुम्हें जो द्वीप दिखाई दे रहा है, इसे तद्-विलसित द्वीप कहते हैं। इस पर हास्य और बिब्बोक (गर्व से अनादर) का रेत फैला हुआ है। यहाँ विलास, नृत्य और संगीत रूपी जलचर रहते हैं। यह जो सफेद-सफेद तुम्हें दिखाई दे रहा है, इसका कारण यह है कि यह स्नेहपाश रूपी आकाश से घिरा हुआ है। मूर्ख प्राणी इस तद्विलसित द्वीप में क्रीड़ा करते हैं तथा जागरूक व्यक्ति इसे दूर से ही प्रणाम करते हैं।

अब चित्तविक्षेप मण्डप का हाल सुनो। इस द्वीप के मध्य जो सभा मण्डप बना हुआ है, यह सभी प्रकार के दोषों का केन्द्र है। इस मण्डप में जाने वाला प्राणी अपने गुणों को सर्वथा भूल जाता है। इस मण्डप में महा-मोह, रागकेसरी आदि जो राजा बैठे हैं, यह मण्डप ऐसे ही राजाओं के लिए उपयुक्त है। लेकिन महामोह के वशीभूत होकर कुछ बाह्य प्रदेश के लोग भी यहाँ आ गए हैं।

मण्डप में एक मंच अथवा वेदिका बनी है। इसका नाम तृष्णा वेदिका है। महामोह के पूरे परिवार को इस वेदिका पर प्रवेश मिला हुआ है। अन्य लोग मण्डप में इधर-उधर बैठे हैं, किन्तु महामोह राजा का पूरा परिवार तृष्णा वेदिका पर ही विराजमान है। यदि अन्य लोग इस मंच पर बैठ जाएँ तो उनका जीवन नष्ट हो जाता है। अब तू उस सिंहासन के बारे में भी जान ले, जिस पर मोहराजा आदि बैठे हुए हैं।

इस सिंहासन का नाम विपर्यास सिंहासन है। विधाता ने इस सिंहा-सन का निर्माण महामोह राजा के लिए ही किया है। इस सिंहासन की शक्ति के कारण ही महामोह की शक्ति जगत् विख्यात है। महामोह राजा यदि इस सिंहासन से हट जाए तो उसे निर्बल व्यक्ति भी जीत सकता है। महामोह के सभी शत्रु अकेले महामोह को इस सिंहासन के कारण ही परा-जित नहीं कर सकते।

प्रकर्ष ! तेरे सब प्रश्नों का उत्तर लगभग पूर्ण हुआ। अन्त में अब महामोह राजा के बारे में भी जान ले। इस महामोह राजा का शरीर अविद्या से बना हुआ है। यद्यपि यह वृद्ध हो चुका है, फिर भी दुर्जेय है। इसकी शक्ति ऐसी है कि ये असत्य में सत्य का आभास करा देता है। यह अकल्याण को कल्याणकारी निश्चय कराने में एक ही है। यह सम्पूर्ण संसार की उत्पत्ति करने वाला है, अतः यह पितामह कहलाता है। इससे बड़े-बड़े बली भी डरते हैं। अब मैं इसके परिवार वालों का संक्षिप्त परिचय भी तुम्हें दूँगा।

इतना कहने के बाद विमर्श कुछ देर के लिए मौन हुआ और फिर बोला—

"प्रकर्ष ! लगता है कि तूने मेरा वर्णन ध्यान से नहीं सुना। तू कहीं अन्यत्र खो गया है, क्योंकि बीच-बीच में न तो तूने हुंकारा भरा, न कोई टिप्पणी दी और न कोई प्रश्न किया।

"भद्र ! वार्त्तालाप के बीच में जिज्ञासा करना, कुछ पूछना यह सिद्ध करता है कि श्रोता ध्यान देकर सुन रहा है। यदि तू ऐसा नहीं करेगा तो तेरी स्थिति वस्तुतत्त्व से अज्ञात भौताचार्य जैसी हो जाएगी।"

"मामा !" प्रकर्ष बोला—"मैंने आपकी पूरी बात ध्यान से सुनी है। फिर भी मैं भौताचार्य की कथा सुनना चाहता हूँ। महामोह के परिवारी-जनों की कथा कहने से पहले आप मुझे भौताचार्य की कथा सुना दीजिए।"

विमर्श प्रकर्ष को एक शिवभक्त भौताचार्य की कथा सुनाने लगा।

किसी नगर में एक शिवभक्त भौताचार्य रहते थे। वे जन्म से ही बहरे थे। जब वे काफी वृद्ध हो गए तो उनके एक शिष्य शान्तिशिव ने उनसे कहा—

"गुरुदेव ! नीतिशास्त्र में ऐसा लिखा है कि दरिद्र से गोष्ठी करना, पाप से प्रेम करना, स्त्री की परपुरुष से आसक्ति आदि विष के समान हैं। इसी तरह अपने रोग की उपेक्षा करना भी विष के समान है; यथा—

> विषं गोष्ठी दरिद्रस्य, जन्तोः पापरतिर्विषम्।
> विषं परे रता भार्या, विषं व्याधिरुपेक्षितः॥

"अतः हे गुरुदेव ! आप अपने बहरेपन रोग की उपेक्षा मत कीजिए। इसकी चिकित्सा कराइए।"

इस पर भौताचार्य ने शान्तिशिव से कहा कि तू वैद्य से मेरे रोग

बहरेपन की औषध ले आ। शान्तिशिव वैद्य के घर पहुँचा तो उसी समय वैद्य का पुत्र बाहर से आया। वैद्य ने क्रोध से उसे पहले तो फटकारा फिर मूँज की रस्सी से उसे एक खम्भे से बांध दिया और डण्डे से पिटाई करने लगा। दयावश शान्तिशिव ने पूछा—वैद्यजी ! इसे इतनी निर्ममता से क्यों मारते हो ? इस पर वैद्य बोला—यह मेरी बात सुनता ही नहीं है। इसलिए मार रहा हूँ। इतने में वैद्य की पत्नी अपने पुत्र को बचाने आई तो वैद्य उस पर भी कुपित हुआ—तू दूर हट जा, वरना तुझे भी मारूँगा। यह मेरी सुनता कैसे नहीं है।

अब शान्तिशिव सोचने लगा कि अब वैद्य से औषध माँगना व्यर्थ है। बहरेपन की औषध तो मैं जान ही गया। यह सोच शान्तिशिव वैद्य के घर से चल दिया और एक शिवभक्त से रस्सी माँगी कि मुझे अपने गुरुदेव के बहरेपन की चिकित्सा करनी है। शिवभक्त ने सन की रस्सी दे दी तो शान्तिशिव ने कहा—अरे भाई, मूँज की रस्सी दो। उसी से गुरुदेव का बहरापन दूर होगा।

आश्रम जाकर शान्तिशिव ने वैद्य की तरह क्रोध किया और भौताचार्य को खम्भे से बाँधकर पीटने लगा। पीछे-पीछे रस्सी देने वाला शिवभक्त भी यह देखने पहुँच गया कि मूँज की रस्सी से शान्तिशिव बहरेपन की कैसे चिकित्सा करेगा। भौताचार्य को खम्भे से बँधा और शान्तिशिव द्वारा पिटते देख शिवभक्त उन्हें बचाने गया तो शान्तिशिव उस पर भी कुपित हुआ और बोला—तुम दूर हट जाओ, वरना तुम्हें भी मारूँगा। फिर बहुत-से शिवभक्तों ने मिलकर शान्तिशिव को पकड़ कर बाँध दिया और भौताचार्य को बंधनमुक्त किया।

शिवभक्तों ने शान्तिशिव से पूछा कि यह चिकित्सा तूने कहाँ से सीखी तो उसने वैद्य का नाम बताया। सब मिलकर शान्तिशिव को वैद्य के पास ले गए। सब कुछ सुनने के बाद वैद्य मुस्करा कर बोले कि मूर्ख लोग कथन का भाव तो समझ नहीं पाते और अनर्थ कर डालते हैं। मेरा लड़का सुनता नहीं है, इसका भाव यह था कि वह मेरे कहने से पढ़ाई में मन नहीं लगाता, खेलने में मस्त रहता है। मेरे पीटने से वह अब पढ़ने में मन लगाने लगा है। उसके न सुनने—पढ़ाई में ध्यान न देने अथवा मेरी बात न मानने की वही चिकित्सा थी।

इतना कहने के बाद विमर्श ने प्रकर्ष से कहा—

"प्रकर्ष ! जैसे शान्तिशिव ने वैद्य के कथन का भाव नहीं समझा था, वैसे ही यदि तूने मेरे कथन का भाव नहीं समझा, मौन रहकर केवल सुनभर लिया तो भौताचार्य की तरह तू मेरी भी दुर्दशा कर सकता है। अतः जो मैं कहूँ उसे सुनने के बाद उसके भाव को भी समझ। भाव को समझने के लिए पूछताछ, प्रश्न या शंका करना जरूरी है।"

अब प्रकर्ष बोला—

"मामा ! आपने चित्तवृत्ति अटवी, प्रमत्तता महानदी, तद्विलसित द्वीप, चित्तविक्षेप मण्डप, तृष्णा वेदिका, विपर्यास सिंहासन और अविद्या शरीर से बने मोहराजा का वर्णन किया। इनमें मैं सबका भाव समझ गया हूँ; फिर भी मैं महामोह राजा का स्वरूप सम्यक् प्रकार से नहीं समझ पाया हूँ। इसे कृपाकर पुनः समझाइए।"

इसके बाद विमर्श ने इनके अन्तरंग स्वरूप और बाह्य रूप का पुनः विवेचन किया। □

[१२] रूपक कथा : वेल्लहल कुमार की

विमर्श ने अपने भानजे प्रकर्ष को प्रमत्तता नदी, तद्विलसित द्वीप, चित्तविक्षेप मण्डप आदि का जो भाव रहस्य पुनः समझाया, वही सब विचक्षणाचार्य ने राजा नरवाहन को समझा दिया। उधर संसारी जीव जब अपनी आत्मकथा सुना रहा था तो अगृहीतसंकेता ने उससे कहा—

"भाई संसारी जीव ! जो भाव-रहस्य विमर्श ने प्रकर्ष को समझाया, उसका रहस्य मुझे भी समझाइए।"

"इसके लिए मैं तुम्हें एक रूपक कथा सुनाऊँगा।" संसारी जीव ने अगृहीतसंकेता से कहा—'दृष्टान्त अथवा रूपक के बिना आध्यात्मिक रहस्य समझ में नहीं आता। इसके लिए मैं तुम्हें वेल्लहल कुमार की कथा सुना रहा हूँ।"

× × ×

भुवनोदर नाम का एक विशाल नगर था। इस नगर में अनादि नाम का राजा राज्य करता था। यह राजा इतना शक्तिशाली था कि शेष, महेश, गणेश, दिनेश, विष्णु और ब्रह्मा तक इसके विपरीत नहीं चल सकते

थे। संस्थिति इस राजा की रानी थी। इस रानी ने जिस पुत्र को जन्म दिया, उसका नाम वेल्लहलकुमार था।

राजपुत्र वेल्लहलकुमार खाने-पीने का इतना अधिक शौकीन था कि रात-दिन कुछ-न-कुछ खाता-पीता रहता था। परिणामस्वरूप उसे अजीर्ण हो गया और वह बीमार रहने लगा। इतने पर भी उसने पथ्य-परहेज का विचार नहीं किया और बिना विचारे खाता-पीता रहा।

खाने-पीने के शौकीन वेल्लहलकुमार ने एक दिन वनभोज (पिकनिक) या गोठ का आयोजन किया। नौकर-चाकर और इष्ट मित्रों के साथ उसने विविध प्रकार के व्यंजन बनवाये। सभी व्यंजन सुन्दर थे। वेल्लहलकुमार ने थोड़ा-थोड़ा सबमें से चखा।

उपवन में तरह-तरह के मनोरंजन हुए। सुन्दरियों के नृत्य हुए। सबने भोजन किया। वेल्लहलकुमार ने पुनः सब में से थोड़ा-थोड़ा भोजन किया। जंगल की ठण्डी हवा और अजीर्ण के कारण कुमार को ज्वर हो गया। उस समय वैद्यपुत्र समयज्ञ भी वहाँ मौजूद था। उसने कुमार के मस्तक पर हाथ रखकर कहा—

"कुमार! आपको तीव्र ज्वर है। अब आप कुछ भी मत खाना, वरना सन्निपात हो जाएगा और लेने के देने पड़ जायेंगे। आपको उपवास करना ही उचित है।"

वैद्यपुत्र समयज्ञ की परम हितकर बातें वेल्लहलकुमार को अच्छी नहीं लगीं। रोगग्रस्त होने पर भी भोजन देख-देखकर उसकी जीभ से लार गिर रही थी। वैद्यपुत्र समयज्ञ ने कुमार को हाथ पकड़ कर रोका, पर कुमार नहीं माना और उसने सभी तरह का भोजन खा लिया। अवरुद्ध आमाशय में भोजन समाया नहीं। परिणाम यह हुआ कि वमन हो गई। इससे परोसा हुआ शुद्ध भोजन भी वमन-मिश्रित होकर घृणित और दूषित हो गया।

ऐसी दशा में कुमार का विपरीत चिन्तन इस प्रकार चलने लगा। उसने सोचा—वमन होने का कारण यह है कि मेरे खाली पेट में हवा भर गई है। यदि मैं अपना पेट भर लू तो फिर क्यों वमन होगी? पहले मैंने सबमें से थोड़ा-थोड़ा ही खाया था। मुझे डटकर खाना चाहिए।

ऐसा दोषपूर्ण चिन्तन करने के बाद वेल्लहलकुमार वमन-मिश्रित भोजन करने लगा। ऐसा करने से पूर्व वैद्यपुत्र समयज्ञ ने उसे चेतावनी देते हुए चिल्ला-चिल्लाकर रोका कि राजकुमार! आपको निश्चय ही सन्निपात हो जायगा।

वेल्लहलकुमार ने वैद्यपुत्र को फटकार दिया और कहा कि तू मूर्ख है। मेरे पेट में हवा भर गई है। वह भोजन करने से ही दूर होगी।

निर्लज्ज व हठी कुमार माना नहीं। उसने वमन होने पर भी भोजन किया और उसे सन्निपात हो ही गया, जो होना ही था। वह वमन किये हुए भोजन पर गिरकर छट-पटाने लगा। उसकी दशा बहुत बिगड़ गई। अब वैद्यपुत्र भी उसे नहीं बचा सकता था।

संसारी जीव ने कहा—

"अगृहीतसंकेता ! वेल्लहलकुमार की इस कथा में चित्तवृत्ति अटवी के अन्तर्गत नदी, मण्डप, द्वीप, सिंहासन जो कुछ था, उस सबका रहस्य आ गया है।"

"लेकिन मेरी समझ में तो केवल कहानी ही आई है।" अगृहीत-संकेता ने संसारी जीव से कहा—"स्पष्ट करके समझाओ।"

संसारी जीव ने प्रज्ञाविशाला से कहा—

"बहन प्रज्ञाविशाला ! वेल्लहलकुमार की कथा का रहस्य तुम तो समझ ही गई हो। अपनी आत्मकथा कहते-कहते मैं कुछ थक गया हूँ। अतः मेरी ओर से अगृहीतसंकेता को तुम्हीं कथा का रहस्य समझा दो।"

अब प्रज्ञाविशाला अगृहीतसंकेता को कथा का रहस्य समझाने लगी।

× + ×

इस कथा में वेल्लहलकुमार कर्मभार से बोझिल संसारी जीव का प्रतीक है। संसारी जीव भुवनोदर नगर (संसार) में ही पैदा होता है। कर्मबंधनयुक्त जीव अनादि काल से अपनी संस्थिति के कारण कर्मप्रवाह में भटकता रहता है, इसलिए कथा में वेल्लहलकुमार को अनादि नामक राजा और संस्थिति नामक रानी का पुत्र बताया गया है।

हे अगृहीतसंकेता ! संसारी जीव मनुष्यभव में आकर ही समस्त कर्मों को जीतने की स्थिति में आता है, इसलिए वेल्लहलकुमार को राजपुत्र बताया गया, क्योंकि राजकुमार ही राजा—शासक बनता है।

चित्रवृत्ति अटवी संसारी जीव की मनोवृत्ति समझनी चाहिए। अच्छे-बुरे कर्मों का बंध मनुष्य की मनोवृत्ति के कारण ही होता है। चूंकि जीव अपने आत्मस्वरूप को नहीं पहचानता, इसलिए उसकी मनोवृत्ति (चित्रवृत्ति अटवी) में महामोह और उसके सेनापति का द्वन्द्व चलता रहता

है। ज्यों ही मनुष्य अपने आत्मस्वरूप को जानता है, महामोह भाग खड़ा होता है।

वेल्लहलकुमार अनेक प्रकार के भोजनों को बार-बार खाने की इच्छा वाला था, उसी तरह संसारी जीव भी नाना प्रकार के विषय-भोगों की इच्छा करता हुआ, उन्हीं में डूबा रहता है। वेल्लहलकुमार की तरह संसारी जीव को कर्मों का अजीर्ण होता है। यह कर्म अशुद्ध और पाप रूप होने के कारण बहुत दारुण है। इस कर्म मे प्रमाद रूपी तद्-विलसित द्वीप है। जैसे—वेल्लहलकुमार रुग्ण होने पर भी भोजन करता गया और उसकी स्थिति बहुत दारुण हो गई, वैसे ही संसारी जीव कर्मों के बंध से रुग्ण होते हुए भी विषयों की ओर बढ़ता ही जाता है। ज्वरग्रस्त कुमार को भोजन करने की इच्छा हुई थी, वैसे ही जीव को दुःखी रहते हुए भी भोगों की इच्छा बनी रहती है। वेल्लहलकुमार की तरह प्राणी सुख प्राप्त करने की इच्छा से मोह (अज्ञान) वश विपरीत आचरण करके दुःख पाता है। उसे मान, माया, लोभ, क्रोध जितने भी शत्रु हैं, सभी प्रिय और मित्र लगते हैं।

"हे अगृहीतसंकेता! वेल्लहलकुमार की तरह संसारी जीव का अजीर्ण रोग ही प्रमत्तता नदी है। प्रमत्तता के कारण जीव को द्रव्यसंचय, झूठा यश आदि बहुत भले लगते हैं। अतः यह प्रमाद या प्रमत्तता ही चित्तवृत्ति अटवी की महानदी है। जैसे—वेल्लहल ने थोड़ा-थोड़ा भोजन सब में से चखा था, वैसे ही यह जीव नाना प्रकार के विषयों के भोग की कल्पना किया करता है, जैसे—सुन्दरियों से भोग करूँ, धन का संचय करके भवन बनवाऊँ, रथ खरीदूँ, सेवक रखूँ, उद्यान लगवाऊँ आदि-आदि।

वेल्लहलकुमार का थोड़ा-थोड़ा सब भोज्य पदार्थों में से चखना यह महारम्भ से धन प्राप्त होने पर पांचों इन्द्रियों के रसों का स्वाद लेने के समान है। कुमार नगर से निकलकर वन में गोठ करने (पिकनिक मनाने) गया, उसका भाव यह है कि संसारी जीव सन्मार्ग से हटकर दुश्चरित्री हो जाता है। यह भोजन सामग्री (विषय-साधन) प्रमत्तता नदी के मध्य तद्विलसित द्वीप के समान है।

समयज्ञ वैद्यपुत्र शास्त्र का जानकार है। जैसे—वेल्लहलकुमार ने वैद्यपुत्र की बात पर ध्यान नहीं दिया, वैसे ही जीव धर्माचार्य की बात नहीं सुनता, संसारी जीव का यह आचरण महानदी के मध्य द्वीप में बने चित्तविक्षेप मण्डप के समान है।

वमन होने पर भी वेल्लहलकुमार की भोजन करने की इच्छा बनी ही रही। मनुष्य की तृष्णा भी ऐसी ही है कि वह करोड़पति से राजा बनना चाहता है, राजा से चक्रवर्ती और फिर इन्द्र बनना चाहता है। संसारी जीव की इस मन:स्थिति को चित्तविक्षेप मण्डप में बनी तृष्णावेदिका कहते हैं।

वमन होने पर वेल्लहलकुमार ने विपरीत बात सोची कि मेरे पेट में वायु भर गई है, इसलिए वमन हुआ है। यदि मैं पेट भर लूंगा तो ठीक हो जाऊँगा। उसी प्रकार जीव का वैभव जब पापोदय से नष्ट हो जाता है तो वह विपरीत बात सोचता है कि मैंने सावधानी नहीं रखी, इसलिए धन चला गया। संसारी जीव का जब कोई स्वजन मर जाता है तो वह विपरीत बात सोचता है कि मैंने बड़े वैद्य से चिकित्सा नहीं कराई, इसलिए मर गया।

संसारी जीव का ऐसा विपरीत चिन्तन ही विपर्यास सिंहासन है। यह सिंहासन तृष्णा वेदिका पर बना होता है।

वैद्यपुत्र के बार-बार रोकने पर भी वेल्लहलकुमार वमन किये हुए भोजन पर टूट पड़ा, उसी तरह जानकारों के रोकने पर भी जीव वमन के समान घृणित विषय-भोगों पर टूटता रहता है।

महामोह राजा का शरीर अविद्या से बना है। यह राजा हमारे भीतर ही रहता है। धर्माचार्य को मूर्ख समझना, उनका मजाक उड़ाना, यही सब अविद्या है।

विपरीत चिंतन, तृष्णा, प्रमाद आदि के कारण अपथ्य को पथ्य समझकर विषयों का सेवन करने वाला जीव नाना प्रकार के ऐसे कष्टों, दुस्सह बन्धनों में बंध जाता है कि फिर उसको धर्माचार्य भी नहीं बचा सकते, जैसे कि वेल्लहलकुमार को जब सन्निपात हो गया तो वैद्यपुत्र समयज्ञ भी नहीं बचा सका।

अगृहीतसंकेता ! संक्षेप में चित्तवृत्ति अटवी के रूपक का सार यह है कि जीव का विषय-भोगों के प्रति उन्मुख रहना **प्रमत्तता नदी है।** विषय-भोग भोगने अथवा ऐसी प्रवृत्ति को **तद्‌विलसित द्वीप** कहा है। भोगों में प्रवृत्त होने पर विषय-लोलुपता के कारण मन में जो शून्यता आती है और भक्ष्याभक्ष्य, पथ्य-अपथ्य तथा त्याज्य ग्राह्य के विचार का न रहना **चित्तविक्षेप मण्डप** है; भोगों से तृप्ति का न होना, भोगों की बलवती

इच्छा का बना रहना, **तृष्णा वेदिका** कहलाता है। इसी तरह भोग पदार्थ प्राप्त होने पर भी पापोदय के कारण जब भोग पदार्थ नष्ट हो जाते हैं और उन्हें प्राप्त करने के बाह्य प्रयत्न किये जाते हैं, उस प्रयत्न को **विपर्यास सिंहासन** कहते हैं।

जगत के समस्त पदार्थ अनित्य, नाशवान और अपवित्र हैं तथा आत्मसत्ता से सर्वथा भिन्न हैं। लेकिन अनित्य पदार्थों को नित्य समझना, सुखदायक मानना—विपरीत धारणा और मान्यता ही मोह राजा का शरीर—अविद्या या अज्ञान कहलाता है। इन समस्त पदार्थों में प्रवृत्त कराने वाला तथा इनमें से ही उत्पन्न होने वाला महामोह राजा कहलाता है।

"आपका प्रज्ञाविशाला नाम सर्वथा सार्थक ही है।" अगृहीतसंकेता ने कहा—"आपने मुझे बहुत अच्छी तरह समझाया है। अब आप विश्राम करें और संसारी जीव को अपनी आत्मकथा कहने दें।"

संसारी जीव ने अपनी आत्मकथा आगे बढ़ाई।

× × ×

प्रकर्ष ने अपने मामा विमर्श से कहा—

"मामा! आपने मुझे सब कुछ समझाकर बता दिया। भौताचार्य की कथा को हृदयंगम करके मैं अब बीच-बीच में प्रश्न, टिप्पणी, शंका आदि के द्वारा कथा के भाव—रहस्य को भी समझूंगा। अब आप मुझे महामोह महाराजा के कुटुम्बियों—परिवारी जनों का परिचय दीजिए।"

विमर्श अब महामोह के परिवारीजन—महामूढ़ता, मिथ्यादर्शन, कुदृष्टि, रागकेसरी, द्वेषगजेन्द्र आदि का परिचय देने लगा। □

१३] महामोह के परिजन : महामूढ़ता, मिथ्यादर्शन, कुदृष्टि

विमर्श ने प्रकर्ष को बताया कि देखो भैया! राजसिंहासन पर जो सुन्दर और मोटी स्त्री बैठी हुई है, इसका नाम **महामूढ़ता** है। यह पृथ्वी-पति महामोह राजा की रानी है। यह कभी भी अपने पति से अलग नहीं रहती। जैसे पुष्प के साथ गन्ध, सूरज के साथ धूप और चन्द्रमा के साथ चांदनी अभिन्न रूप से रहती है, वैसे ही महामोह राजा के साथ महामूढ़ता

रानी रहती है। जो-जो गुण मैंने तुम्हें महामोह राजा के बताये थे, वे सभी गुण महामूढ़ता के भी हैं।

प्रकर्ष! महामोह महाराजा के पास काला-कलूटा—कृष्ण वर्ण का और भयंकर आकृति वाला जो राजपुरुष बैठा है, यह महामोह राजा का **सेनापति मिथ्यादर्शन** है। देखो, यह सबको टेढ़ी नजर से देख रहा है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह देव में अदेव और अदेव में देव की प्रतीति कराता है। इसी तरह यह पथ्य में अपथ्य, धर्म में अधर्म, तत्त्व में अतत्त्व आदि की प्रतीति कराता है और इसी तरह अधर्म में धर्म और अतत्त्व में तत्त्व की प्रतीति कराता है।

मिथ्यादर्शन सदैव विपरीत निश्चय कराता रहता है। सत्य ज्ञान के ज्ञाता, विशुद्ध ज्ञान में रत, उग्र तपस्वी और गुणों के भण्डार को अगुरु समझता है तथा ढोंगी-पाखण्डी, हिंसाप्रिय और चमत्कार दिखाने वाले में गुरु का बोध कराता है।

यह वस्तुतः असाधु में साधु की प्रतीति कराता है और सर्वथा सन्त में असन्त का बोध कराता है। जड़ात्मा सेनापति मिथ्यादर्शन अकरणीय को करणीय और करणीय को अकरणीय बताकर धर्म मार्ग को सर्वथा लुप्त कर देता है।

यह जो मिथ्यादर्शन है, यह स्वभाव से ही अभिमानी है। यह सम्पूर्ण राज्य का भार अपने ऊपर ही मानता है। इसीलिए यह चित्त-विक्षेप मण्डप की रचना करता है। यही इस मण्डप में वेदिका का निर्माण करके विपर्यास सिंहासन स्थापित करता है। यह सब करके यह बाह्य लोक में अनेक भीषण परिणाम उत्पन्न करता है। इसके प्रभाव से मनुष्य पागल की तरह निरुद्देश्य इधर-उधर भटकता रहता है। यह सब इसलिए होता है कि मनुष्य मिथ्यादर्शन के प्रभाव से अधर्म को ही धर्म मानकर उसमें प्रवृत्त हो जाता है। मिथ्यादर्शन के प्रभाव के कारण प्राणी तृष्णा-वेदिका का शिकार बनकर कामभोगों में जीवन भर लिप्त रहकर परिणाम में दुःख पाता है। मनुष्य यद्यपि स्वभाव से ही मुक्ति (मोक्ष) चाहता है। लेकिन मिथ्यादर्शन प्राणी को मोक्ष मार्ग से भटकाकर नरक पथ पर अग्रसर करता है।

प्रकर्ष! मिथ्यादर्शन की महिमा का वर्णन कोई नहीं कर सकता। मैंने तो तुम्हें बहुत संक्षेप में ही बताया है। जो मनुष्य पूर्णतः वृद्ध हो गए

हैं, जिनके शरीर पर झुर्रियाँ पड़ गई हैं, वे भी काम-विकारों में ग्रस्त रहते और काम-चर्चा में रस लेते हैं। यह सब मिथ्यादर्शन की महिमा के कारण ही है।

अब मैं तुम्हें मिथ्यादर्शन की पत्नी **कुदृष्टि** का परिचय दे रहा हूँ। यह जो कुदृष्टि है, यह अपने पति के समान ही गुण-स्वभाव वाली है। बाह्य लोक में असत् मार्ग पर चलने वाले जितने पाखंडी दिखाई देते हैं, वे सब मिथ्यादर्शन की पत्नी कुदृष्टि के कारण ही हैं। जैन धर्म के अलावा जितने भी धर्म-मार्ग चल रहे हैं, वे सब मिथ्यादर्शन और कुदृष्टि की ही देन हैं। इन्हीं दोनों के कारण लोगों ने भिन्न-भिन्न देव, भिन्न-भिन्न वाद, वेश, कल्प, मोक्ष के स्वरूप, विशुद्धि और वृत्ति की मान्यता को बल दिया है।

भाई प्रकर्ष ! जगत्प्रसिद्ध मिथ्यादर्शन और उसकी प्रिया कुदृष्टि बहिरंग प्राणियों में उल्टे, दुखदायी कार्य कराते हुए विलास करते हैं। □

[१४] रागकेसरी और द्वेषगजेन्द्र

रागकेसरी और द्वेषगजेन्द्र—दोनों महामोह के पुत्र हैं। महामोह ने अपना राज्य भार ज्येष्ठ पुत्र **रागकेसरी** को दे रखा है। फिर भी महामोह समय-समय पर रागकेसरी की सहायता करते रहते हैं। पिता के सभी गुण पुत्रों में भी आ गए हैं। रागकेसरी का गुण यह है कि यह संसार समुद्र में विद्यमान बाह्य पदार्थों पर बहिरंग प्राणियों की अतिशय प्रीति उत्पन्न करने और क्लेशमय पापानुबंधी पुण्य से स्वयं को क्लेशमय बनाने तथा भविष्य में भी क्लेश उत्पन्न करने वाले भावों से प्राणी को दृढ़ स्नेह-बंधन में बाँधकर रखने में यह पूर्ण समर्थ है।

अब मैं तुम्हें रागकेसरी के तीन मित्रों का परिचय देता हूँ। मंच पर रक्तवर्णी और स्निग्ध शरीर वाले तीन पुरुष बैठे हैं, ये रागकेसरी के घनिष्ठ मित्र हैं। इनमें एक तो **अतत्त्वाभिनिवेश** नामक पुरुष है। इसे **दृष्टिराग** भी कहते हैं। इसकी विशेषता यह है कि भिन्न मत-मतान्तर वालों में यह दुराग्रह पैदा करता है।

दूसरा पुरुष **भवपात** है। कुछ इसे **स्नेहराग** भी कहते हैं। यह प्राणियों में धन, स्त्री, पुत्र आदि के प्रति आसक्ति पैदा करता है।

रागकेसरी के तीसरे मित्र का नाम **अभिष्वंग** है। इसे **विषयराग या कामराग** भी कहते हैं। यह जगत में उद्दाम लीलाएँ करता है और शब्द,

रूप रस, गन्ध और स्पर्श के प्रति जीवों में लोलुपता पैदा करता है।

प्रकर्ष ! इन तीनों मित्रों के बल पर ही राजा रागकेसरी जगत पर शासन करता है।

प्रकर्ष ! रागकेसरी के पास जो स्त्री बैठी है, यह उसकी पत्नी **मूढ़ता** है। जो-जो गुण रागकेसरी में हैं, वे सब उसकी पत्नी मूढ़ता में भी हैं। दोनों दो शरीर एक प्राण रहते हैं।

अब तुम महामोह के दूसरे पुत्र और रागकेसरी के छोटे भाई **द्वेषगजेन्द्र** को देखो। महामोह का इस पर भी अत्यधिक स्नेह है। यह रागकेसरी से छोटा है, लेकिन शक्ति में उससे अधिक है। रागकेसरी को देखकर किसी को डर नहीं लगता, लेकिन द्वेषगजेन्द्र की शक्ल इतनी भयंकर है कि लोग उसे देखकर थर-थर कांपते हैं। द्वेषगजेन्द्र के कारण बहिरंग जगत के प्राणी आपसी प्रेम से हाथ धो बैठते हैं। यह चित्त अटवी में हलचल करता रहता है। उसके वश होकर प्राणी जन्म जन्मान्तर का वैर-बंध करता है।

प्रकर्ष ! द्वेषगजेन्द्र की पत्नी **अविवेकता** यहाँ दिखाई नहीं दे रही। जब हम तामसचित्तनगर में गये थे, तब हमें वहाँ शोक मिला था। शोक ने बताया था कि द्वेषगजेन्द्र की पत्नी अविवेकता युद्ध में चित्तवृत्ति अटवी में पति के साथ नहीं गई है। वह बहिरंग लोक में घूम रही है। यहाँ शोक भी आया हुआ है। पहले मैं तुम्हें यहाँ बैठे सुन्दर पुरुष मकरध्वज का परिचय दूंगा, उसके बाद शोक का परिचय भी दूंगा। □

[१५] **मकरध्वज**

"क्या यही पुरुष मकरध्वज है ?" प्रकर्ष ने विमर्श से पूछा—"जो बहुत आकर्षक तथा सुन्दर है, जिसके पास तीन व्यक्तियों का परिवार है और जिसके शरीर का रंग लाल है ?

"मामा ! इसकी आँखें बड़ी चपल-चंचल हैं। पीठ पर तरकस बंधा है, हाथ में धनुष है। पास ही पांच बाण रखे हुए हैं और एक सुन्दर स्त्री पास बैठी है।"

तुमने ठीक पहचाना। विमर्श ने कहा—यही पुरुष **मकरध्वज** है। यह पांच बाणों से ही त्रिलोकी पर शासन करता है। बड़े-बड़े मुनि अपना तप छोड़कर स्त्री में आसक्त हो जाते हैं, यह इसी की शक्ति का कमाल है। विश्वामित्र मेनका अप्सरा पर फिसल गये थे। बड़े-बड़े पवित्र पुरुष स्त्री के थूक को अधरामृत मानकर चाटते हैं, यह इस मकरध्वज की शक्ति का कमाल है। यह जगत् विजेता कहा जाता है।

प्रकर्ष ! मकरध्वज के तीन अनुचर हैं। इन्हें **वेदत्रय** कहते हैं। इनमें पहले अनुचर का नाम **पुंवेद** अथवा पुरुष वेद है। इसकी शक्ति से मनुष्य स्त्रीगमन का पाप करता है।

दूसरा अनुचर **स्त्रीवेद** है। इस अनुचर के प्रताप से स्त्रियाँ लोकलाज और कुल गौरव का त्याग करती हैं। मकरध्वज का तीसरा अनुचर **नपुंसक वेद** है। इसकी शक्ति को कौन जान सकता है? नपुंसकों की संसार में सर्वत्र निंदा होती है।

मकरध्वज के जगत् विजय कार्य में इसकी पत्नी **रति** बहुत सार्थक सेवा-सहयोग करती है। मकरध्वज द्वारा जीते गये पुरुषों में रति भोग को उद्दीप्त करती है। मकरध्वज के वशीभूत प्राणी वस्तुतः जब दुख भोगते हैं तो उसकी पत्नी रति यह आभास कराती है कि हम बड़े आनंद में हैं। यह रति ही लोगों को मकरध्वज का दास बनाती है। रति की प्रेरणा से लोग स्त्रियों को वश में करने (पटाने) के लिए सुन्दर वस्त्र पहनते हैं। नाना प्रकार के संकेत करते हैं और अनेक प्रकार से प्रयास करते हैं।

प्रकर्ष ज्यादातर प्राणी मकरध्वज और रति के दास ही होते हैं। शेरों के दाँत गिनने वाले भी इनके वश में रहते हैं। ये बड़े मीठे दुष्ट हैं। कोई-कोई मनीषी ही इनसे दूर रह पाते हैं।

"मामा! आपने मकरध्वज का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है।" प्रकर्ष बोला—"मकरध्वज के पास तीन पुरुष और जो दो स्त्रियाँ बैठी हैं, इनके बारे में भी कुछ बताइए।"

"इनका भी संक्षिप्त परिचय सुनो।" विमर्श बोला—"ये हास, अरति, भय, शोक और जुगुप्सा हैं। अब मैं तुम्हें प्रत्येक के बारे में बताऊँगा।" □

[१६] पाँच जन : हास, अरति, भय, शोक और जुगुप्सा

यह जो श्वेत रंग का पुरुष है, यह **हास** है। अपने स्वभाव से यह बहिरंग जगत के लोगों को वाचाल करता है। इसी के प्रभाव से मनुष्य सकारण-अकारण हा-हा ही-ही करके अट्टहास करता है। यह हास्य प्राणियों को कभी-कभी बड़ा दुःखदायी होता है।

हास की एक पत्नी भी है, जिसका नाम **तुच्छता** है। तुच्छता इसके शरीर में ही रहती है। गंभीर पुरुष हँसने का कारण होने पर भी मन में ही मुस्कराते हैं, पर तुच्छ मनुष्य तो अकारण ही अट्टहास करते हैं।

काले रंग की भद्दी शक्लवाली जो स्त्री बैठी है, इसका नाम अरति है। यह किसी भी कारण को लेकर उत्साहित हो जाती है।

तीसरा व्यक्ति भय है। देखो, यह कांप रहा है। यह अपने प्रभाव से बहिरंग प्राणियों को भीरु और कायर बना देता है। मनुष्य को देखकर डरता है। धन लुट जाने की आशंका मात्र से मनुष्य भयभीत रहता है। मौत से भी लोग बहुत भयभीत रहते हैं। बदनामी से भी लोग भयभीत रहते हैं। भय के प्रभाव से लोग शत्रु के पैरों पड़ जाते हैं।

चौथा व्यक्ति शोक बैठा है। इससे तो हम तामसचित्त नगर में पहले ही मिल चुके हैं। यहां यह आ ही गया है तो इसके गुण भी जान लो। स्वजन के बिछुड़ जाने या मर जाने पर शोक अपना प्रभाव दिखाता है। चोरी हो जाने पर शोक अपना प्रभाव दिखाता है। अनेक अवसरों पर शोक प्राणियों को उद्वेलित करता है। शोक के वशीभूत प्राणी आत्महत्या कर लेते हैं। खाना-पीना छोड़ देते हैं।

प्रकर्ष ! शोक की पत्नी है भवस्था। इसके बिना शोक एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता।

पांचवीं आकृति को देखो, यह कितनी कुरूप है। इसकी नाक चपटी और रंग काला है। इसे जुगुप्सा कहते हैं। यह प्राणियों में घृणा का भाव पैदा करती है। जैसे किसी के घाव, रक्त, थूक, वमन को देखकर नाक-भौं सिकोड़ना जुगुप्सा के कारण होता है। जुगुप्सा के कारण ही छुआछूत की भावना बढ़ती है। इसके वशीभूत प्राणी किसी की छाया पड़ने मात्र से दुबारा नहाते हैं। अन्य चारों की तरह यह जुगुप्सा भी बाह्य प्रदेश के प्राणियों को बहुत त्रास देती है।

प्रकर्ष ! सामने तुम जो सोलह बालक देख रहे हो, मैं इनके बारे में बताऊंगा। ये बड़े उपद्रवी हैं। देखो-देखो, ये राजाओं के सिरों पर भी बेखटके चढ़ गये। इनकी धमा-चौकड़ी भी देखने और समझने योग्य है।

विमर्श अपने भानजे प्रकर्ष को सोलह बालकों का परिचय देने लगा। □

[१७] सोलह बालक

देखो प्रकर्ष ! ये जो सोलह बालक धमा-चौकड़ी मचा रहे हैं, इनमें कुछ लाल रंग के हैं और कुछ काले रंग के। मैं सोलहों बच्चों का चार-चार के वर्ग क्रम से परिचय दे रहा हूं।

प्रकर्ष ! सोलहों बच्चों में चार बच्चे सबसे बड़े दिखाई दे रहे हैं। ये अनन्तानुबंधी वर्ग के बच्चे हैं। इनके नाम हैं—क्रोध, मान, माया और लोभ। मिथ्यादर्शन सेनापति इन चारों को अपने बच्चों-जैसा ही मानता है। ये चारों बच्चे अपनी शक्ति के प्रयोग से बाह्य क्षेत्र के लोगों को मिथ्या-दर्शन का भक्त बना देते हैं।

अब दूसरे चार बच्चों को देखो, जो अप्रत्याख्यानी वर्ग के बच्चे हैं। ये पहले चारों से कुछ छोटे हैं। ये बच्चे बाह्य-क्षेत्र के लोगों को पाप में प्रवृत्त कराते हैं। इन चारों के रहते प्राणी पाप से विरत नहीं हो पाता। इनमें एक विशेषता यह भी है कि चित्तवृत्ति में इनके रहने पर भी प्राणी तत्त्व-दर्शन स्वीकार कर लेता है। लेकिन वह कोई धर्म-संकल्प या नियम नहीं ले सकता।

प्रकर्ष ! तीसरे वर्ग के चार बच्चे प्रत्याख्यानी कहलाते हैं। इनके नाम भी क्रोध, मान, माया और लोभ हैं। जब तक ये चित्तवृत्ति अटवी में रहते हैं, प्राणी पाप को पूरी तरह नहीं छोड़ सकता। इनके रहने पर भी प्राणी कुछ-न-कुछ धर्म-संकल्प या त्याग का नियम अवश्य ले सकता है, पर पूर्णतः निर्वाह नहीं कर सकता।

शेष चार बच्चे इतने छोटे हैं, जो गर्भपिण्ड से दिखाई दे रहे हैं। प्रकर्ष ! इन्हें संज्वलन कहते हैं। इनको संज्वलनीय क्रोध, मान, माया और लोभ कहा जाता है। पाप से विरत साधुओं तक को ये चारों बच्चे चलाय-मान कर देते हैं। तब वे साधु जन प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध होते हैं। मूल बात यह है कि सोलहों बच्चे चार-चार के क्रम से उत्तरोत्तर अपनी दुष्टता में कम हैं। अन्तिम चार की दुष्टता सबसे कम है।

प्रकर्ष ! सोलह बच्चों के गुणों का मैंने संकेतमात्र तुम्हें दिया है। वस्तुतः तो इनके गुणों का वर्णन शेष भी नहीं कर सकते। इन सोलहों में आठ बालक (अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानी, प्रत्याख्यानी और संज्वलन—माया-लोभ से उत्पन्न) रागकेसरी और उसकी पत्नी मूढ़ता के बच्चे हैं। शेष आठ (क्रोध एवं मान से उत्पन्न) द्वेषगजेन्द्र और उसकी पत्नी अविवेकता के पुत्र हैं।

प्रकर्ष ! इस प्रकार मैंने महामोह राजा के परिवार वालों का वर्णन किया। अब मैं महामोह महाराजा के सामन्त-सरदार-मन्त्री आदि के बारे में बताऊँगा। ये सब भी दुष्टता और स्वभाव में महामोह के परिवारी जनों जैसे ही हैं। इनमें विशेष हैं विषयाभिलाष मन्त्री, भोग-तृष्णा तथा अन्य

सेनानी। इसके बाद मैं तुम्हें महामोह के मित्र राजाओं का परिचय भी दूँगा। □

[१८] महामोह के सामन्त : विषयाभिलाष मंत्री, भोगतृष्णा तथा अन्य सेनानी

प्रकर्ष ! देखो, वह देखो ! रागकेसरी के पास जो राजा बैठा है, इसी का नाम **विषयाभिलाष** मंत्री है। हम लोग इसी के पास आये थे। यह रागकेसरी का दाहिना हाथ हैं। इसके बिना तो रागकेसरी अपंग ही है। इसका रंग-ढंग तो देखो। मुँह में पान है। हाथ में कमल का फूल लिये है। एक हाथ सुन्दर स्त्री की कमर में डाले हुए है। देखो, यह पाँचों इंद्रियों के भोग में मग्न हो रहा है।

अरे प्रकर्ष ! आखिर तू मेरी बहिन बुद्धिदेवी का पुत्र है। तेरे पिता भी विचक्षण हैं। तू तो निर्णय करने में अद्वितीय है। तूने निर्णय कर लिया होगा कि तेरा चाचा जड़कुमार जिस रसना का दास बना हुआ है, वह इसी विषयाभिलाष मंत्री की पुत्री है।

प्रकर्ष ! इस विषयाभिलाष मंत्री के पाँच बलवान पुत्र हैं—रूप, रस, स्पर्श, गंध और शब्द। इन पाँचों के बल से इसने जगत को वश में कर रखा है। यों समझो कि पाँचों के बल से विषयाभिलाष का बल है और विषयाभिलाष के बल से रागकेसरी राजा का बल है। एक बार कोई इस मंत्री के जाल में फँस जाए, फिर तो वह सब कुछ भूल जाता है। वह भूल जाता है कि कौन-सी वस्तु खाने योग्य है और कौन-सी नहीं। इसके फन्दे में फँसा व्यक्ति धर्म को तो पास ही नहीं आने देता। इस प्रकार बाह्य प्रदेश के लोगों के लिए यह मंत्री बहुत दुखदायक है।

"मामा !" प्रकर्ष बोला—"जिस स्त्री की कमर में विषयाभिलाष ने हाथ डाल रखा है, यह इसकी पत्नी होगी ?"

"तुमने ठीक पहचाना।" विमर्श बोला—"यह स्त्री विषयाभिलाष की पत्नी **भोगतृष्णा** है। इसके सभी गुण अपने पति के समान ही हैं। अब मैं तुम्हें मोहराजा के अन्य सेनानियों का परिचय देता हूँ।

"मंच पर अन्य जो राजा बैठे हैं, इनमें दुष्टाभिसंधि का नाम उल्लेखनीय है। शेष सब भी मोह राजा के सहायक हैं, पर इनकी गिनती

करना भी मुश्किल है। मोहराजा के परिवारी जन, मंत्री आदि जितने भी सहायक हैं, सभी बड़े दुष्ट हैं। ये सब मिलकर प्राणी को इतना निकम्मा कर देते हैं कि वह अपना उद्धार नहीं कर पाता।

"प्रकर्ष ! मैंने तुम्हें मोहराजा की पत्नी, पुत्र, पुत्रवधू, सामंत, योद्धा आदि का परिचय बताया। अब उसके मित्र राजाओं का भी संक्षिप्त परिचय देता हूँ।

"प्रकर्ष ! ये राजा हैं—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र और अन्तराय। □

१६] महामोह के मित्र राजा

ज्ञानावरण राजा बहुत शक्तिशाली है। यह बाह्य प्रदेश के लोगों को एकदम ज्ञानशून्य कर अन्धा बना देता है। इसका उपनाम मोह है। इस नाम से भी यह जाना जाता है। इसके पाँच साथी और हैं, जिनके नाम मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्यायज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण हैं।

दूसरा जो राजा बैठा है, वह चार पुरुष और पाँच स्त्रियों से घिरा हुआ है। इसका नाम **दर्शनावरण** है। इसके चार साथी पुरुषों के नाम हैं—चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधि-दर्शनावरण और केवल-दर्शनावरण। जो पाँच स्त्रियाँ इसके साथ बैठी हैं, इनके नाम हैं—निद्रा, निद्रा-निद्रा, प्रचला, प्रचला-प्रचला और स्त्यानर्द्धि। यह राजा भी अपनी शक्ति से संसार को अन्धा बना देते हैं।

तीसरा राजा **वेदनीय** है, जो अपने दो साथियों के साथ घिरा बैठा है। इसके एक साथी का नाम साता है और दूसरे को असाता कहते हैं। साता प्राणियों को आनन्द देता है और असाता सन्ताप देता है।

चार छोटे-बड़े बच्चों से घिरे बैठे राजा का नाम **आयुष्य** है। इसके साथी चारों बच्चों के नाम—देवायुष्य, मनुष्यायुष्य, तिर्यंचायुष्य और नरकायुष्य हैं। कौन प्राणी किस जन्म में कितने समय तक रहेगा, इसका निश्चय करना आयुष्य राजा का काम है।

पांचवें स्थान पर अपने बयालीस (४२) साथियों से घिरे बैठे मोह राजा के मित्र राजा का नाम ही '**नाम**' है। यह अपने बयालीस साथियों की मदद से संसार को ऐसे नाच नचाता है कि जिनका वर्णन करना सम्भव नहीं है। संसार में प्राणी देव, मनुष्य, नारकी और पशु चार गतियों में पैदा होते हैं। इनमें भी एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय आदि अनेक भेद हैं। बोलचाल, स्वभाव, रूप-रंग, आकार-प्रकार की अगणित भिन्नताओं वाले जीवों से यह संसार भरा है। एक मनुष्य जाति में ही अगणित भेद हैं। कोई चोर उचक्का है तो तीर्थंकर भी मनुष्यों में बनते हैं, जिन्हें संसार पूजता है। ये सब विडम्बनाएँ महाबली राजा '**नाम**' और उसके अनुचरों के प्रभाव से ही होती हैं।

प्रकर्ष ! मोह का छठा मित्र राजा **गोत्र है**। इसके साथी दो हैं। इनमें एक उच्च गोत्र तथा दूसरा निम्न गोत्र है। प्राणियों को अच्छे या बुरे गोत्र का बनाना इस राजा का काम है।

सातवें स्थान पर पाँच पुरुषों के साथ बैठे राजा का नाम अन्तराम है। यह दुष्ट राजा बाह्य प्रदेश के लोगों को किसी भी प्रकार का पुण्यकर्म या धर्म-कर्म नहीं करने देता। यह न तो दान देने देता है और न धन का भोग करने देता है। हर अच्छे कार्य में बाधक बनना इसका काम है। इसके पांच साथी हैं—दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय।

"मामा ! आपकी सब बातें मेरी समझ में आ गयीं।" प्रकर्ष बोला—"फिर भी एक शंका है। उसका समाधान कीजिए।"

"यह इस बात का प्रमाण है कि तुमने मेरी बातें ध्यान से सुनी हैं।" विमर्श बोला—"अब अपनी शंका कहो।"

प्रकर्ष कहने लगा—

"मामा ! जिन सात राजाओं का आपने वर्णन किया, ये सातों मुझे मण्डप में बैठे दिखाई दे रहे हैं, लेकिन इनका परिवार दिखाई नहीं दे रहा। जब मैं बहुत ध्यान से देखता हूँ तो राजाओं का परिवार दिखाई देता है, पर राजा दिखाई नहीं देते। जबकि आपने राजा और उनके साथियों, अनुचरों तथा परिवार वालों का अलग-अलग वर्णन किया है। मेराप्रश्न यह है कि जब दोनों एक साथ हैं तो एक साथ दिखाई क्यों नहीं देते ? जब एक दीखता है तो दूसरा अदृश्य हो जाता है और जब दूसरा दीखता है तो पहला अदृश्य हो जाता है।"

"तेरा प्रश्न बहुत उत्तम है।" विमर्श बोला—"प्रकर्ष ! मैं तेरे प्रश्न का समाधान एक दृष्टान्त देकर करूँगा, तब तू सही निर्णय कर लेगा और तेरी शंका का समाधान हो जायगा।"

यह कह विमर्श प्रकर्ष को समझाने लगा।

सातों राजा और उनके साथी एक समय में एक साथ किसी को दिखाई नहीं दे सकते। ये सब आपस में अभिन्न और एक रूप हैं। इसको समझने के लिए एक दृष्टान्त है। मान लो एक जंगल है। उस जंगल में तीन तरह के वृक्ष हैं—धावड़े, आम और खैर। अब ये तीनों वृक्ष से भिन्न नहीं हैं। यदि वृक्ष हैं तो धावड़े, आम और खैर हैं। यदि धावड़े, आम और खैर हैं तो वृक्ष हैं। दोनों अभिन्न हैं। कभी हम वृक्ष को लक्ष्य करके देखते हैं तो वृक्ष दिखाई देते हैं और कभी हम धावड़े, आम और खैर देखते हैं तो वही दिखाई देते हैं।

इसी तरह श्रुतस्कन्ध के बिना अध्ययन नहीं हो सकता और अध्ययन के बिना श्रुतस्कन्ध नहीं हो सकता। बिना प्रकरण के पुस्तक नहीं हो सकती और बिना पुस्तक के प्रकरण नहीं हो सकते। यदि प्रकरण हैं तो पुस्तक होगी ही और पुस्तक है तो प्रकरण भी होंगे ही। समझना सिर्फ यह है कि प्रकरण और पुस्तक—दोनों का बोध एक साथ नहीं हो सकता। एक समय शास्त्र या पुस्तक दिखाई देती है तो एक समय प्रकरण दिखाई देते हैं। जब वस्तु के जिस रूप पर ध्यान होता है तो वह दिखाई देता है और दूसरा रूप अदृश्य हो जाता है।

जब हम जंगल को दूर से देखते हैं तो उसमें वृक्षों के झुण्ड ही दिखाई देते हैं, पास आने पर धावड़े, आम या खैर दिखाई देते हैं। तब हम कहेंगे कि यह धावड़ा है, यह आम है और यह खैर है। तब यह नहीं कहेंगे कि वृक्ष है, जबकि वह वृक्ष भी है। इस तरह कालान्तर करने से—कालभेद से वस्तुभेद होता है।

प्रकर्ष ! दो रूप होने पर भी दोनों के स्वभाव-गुण-प्रकृति एक ही होते हैं, क्योंकि दोनों अभिन्न हैं; फिर भी उनमें चार प्रकार की भिन्नता होती है– (१) संख्या, (२) संज्ञा (नाम), (३) लक्षण और (४) कार्य। इन चारों के कारण अभिन्नता भिन्नता में बदल जाती है।

संख्या की दृष्टि से समझो तो खैर आम आदि संख्या की दृष्टि से अनेक हैं और वृक्ष रूप में एक हैं। **संज्ञा** की दृष्टि से वृक्ष को वृक्ष ही कहेंगे,

चाहे वह किसी का हो, विशेष रूप से कई नाम होंगे; जैसे आम, खैर, धावड़ा आदि। इसी तरह **लक्षण** की बात समझो। लक्षण की दृष्टि से सभी वृक्ष हरे-भरे दिखाई देते हैं; सबमें लक्षण की समानता है। लेकिन विशेष रूप से आम-खैर आदि वृक्षों में पत्ते, फूल, छाल—सबकी भिन्नता है। इसी तरह **कार्य** की बात है। सामान्यतः सभी वृक्षों के कार्य में समानता है। सभी शीतल छाया देते हैं। लेकिन विशेष की दृष्टि से आम, खैर, धावड़े का अलग-अलग उपयोग—कार्य है।

तो प्रकर्ष! इन दृष्टान्तों से तुम समझ गए होगे कि जब विशेष पर ध्यान दिया जाता है तो सामान्य छिप जाता है और जब सामान्य पर ध्यान दिया जाता है तो विशेष छिप जाता है।

प्रकर्ष! नाम, संख्या, लक्षण और कार्य के भेदों की दृष्टि से सातों राजा और उनके परिवारों वालों को समझो। मैंने उनकी अभिन्नता को एक ओर रखकर उनके अलग-अलग गुण-स्वभाव तुम्हें बताये हैं। इसीलिए तुझे ये एक साथ दिखाई नहीं देते। जब तू विशेष (राजाओं) को देखता है तो सामान्य (अनुचर, साथी, परिजन) छिप जाते हैं और जब सामान्य को देखता है तो विशेष छिप जाते हैं।

"मामा! मेरी शंका का समाधान हो गया।" प्रकर्ष बोला—"अब मेरी एक दूसरी शंका और है। वह यह कि महामोह के मित्र राजाओं में से कुछ केवल दुःख देते हैं और कुछ सुख-दुःख दोनों देते हैं। जो राजा, जैसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय तो निश्चित रूप से दुःख देने वाले हैं। ये मनुष्य के गुणों का, विवेक का हरण कर लेते हैं। बाह्य-क्षेत्र में क्या कोई ऐसा प्राणी भी है या हैं जो मोहराजा को उसके परिवार और सैनिकों तथा मित्र राजाओं के साथ जीत लेते हों। अर्थात् जिनके सामने मोह राजा तथा उसके सहायकों की एक भी न चलती हो। मैं ऐसे प्राणियों के बारे में जानना चाहता हूँ।"

"तेरा प्रश्न बहुत उत्तम है।" विमर्श बोला—"प्रकर्ष! अब मैं तेरे प्रश्न का उत्तर विस्तार से दूँगा।" ☐

[२०] महामोह सैन्य के विजेता

विमर्श ने प्रकर्ष से कहा कि महामोह को जीतने वाले लोग होते

अवश्य हैं, पर वे बहुत थोड़े होते हैं। ऐसे अल्पसंख्यक बाह्य प्रदेश के मनुष्य सद्भावना-रूपी मंत्र-तंत्रों से पूर्ण शास्त्रों का अध्ययन कर शास्त्र ज्ञान का कवच धारण करते हैं। इस कवच से वे आत्मा की रक्षा करते हैं और महा-मोह के सेनानी उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ पाते।

ऐसे अल्पसंख्यक धीर-वीर यह जान लेते हैं कि यह संसार-सागर अनंत है, दुस्तर है। इसमें रहकर मनुष्यता प्राप्त करना राधावेध—जल में पड़ी परछाईं में देखकर ऊपर चक्र में घूमती हुई मछली की आँख को वेधने के समान अत्यन्त कठिन है। हमारी देह मल-मूत्र का भण्डार, क्षण-भंगुर और कर्मजन्य है तथा यह हमारी आत्मा से भिन्न है। इन धीर-वीरों का चिन्तन होता है कि हमारा शरीर और शरीर का विस्तार—सभी मिथ्या है। बेटा-बेटी, सम्पत्ति, घर-मकान, मित्र, परिवार, माता-पिता, भाई आदि सब शरीर के नाते अर्थात् शरीर का ही विस्तार है। संयोग-वियोग, राग-द्वेष—सब शरीर के नाते हैं। शरीर के नाते ही संसार में अपनत्व—"मैं-मेरा' का प्राकट्य दिखाई देता है, जो केवल दिखाई देता है, पर 'है नहीं'। जैसे बालू में सूर्य की किरणें पड़ने से जल दिखाई तो देता है, पर 'है नहीं'। ऐसा चिन्तन करने वाले पराक्रमी कुछ विरले जन ही महा-मोह को ससैन्य जीत लेते हैं।

संसार में डुबोने वाली स्त्री सबसे बड़ी घातक शत्रु है। स्त्री के अंगोपांगों के बारे में मोहजयी लोग अपने मन को इस तरह समझाते हैं कि रे मूढ़ मन ! स्त्री की जिन आँखों को तू कमल समझ रहा है, ये मांस के दो गोलक हैं। सुन्दर-सुन्दर जो दो कान तुझे दिखाई दे रहे हैं, इन्हें चमगादड़ जान ले। स्त्री के लाल-लाल कपोल, जिन्हें तू चूमना चाहता है, ये हड्डियों के ढाँचे पर मढ़ा हुआ चर्म है। मधु से मीठे उसके अधर मांसपेशी के दो टुकड़े मात्र हैं। इसके काले चिकने और घुँघराले बाल स्त्री के हृदय का प्रकट अंधकार ही है। इस तरह ज्ञानी पुरुष स्त्री के सर्वांगों का वास्तविक रूप समझ कर उसके जाल में नहीं फँसता।

अरे प्रकर्ष ! सचाई यह है कि स्त्री मोक्ष-मार्ग की सबसे बड़ी बाधा है। मोहविजयी तो कामदेव की पत्नी रति को भी जीत लेते हैं, क्योंकि वे सचाई जान जाते हैं। रति-जैसी महाशक्तिशाली स्त्री भी मुमुक्षुओं का कुछ नहीं बिगाड़ पाती। सद्भावनालीन ऐसे महापुरुषों के पास महामोह का पाँचवाँ योद्धा हास भी नहीं फटकता। ये महापुरुष सद्भावना रूपी जल से अपने भीतर के कषाय मलों को धो डालते हैं। ये लोग बाहरी स्नान पर

जोर नहीं देते, क्योंकि बाह्य स्नान से तो केवल शरीर का मल ही छूटता है और यह शरीर भी प्रतिपल प्रतिक्षण मैला होता रहता है। ये वीर पुरुष निरंतर भीतर की सफाई में लगे रहकर अपने पराक्रम से मोह सैन्य का दलन कर आत्मानन्द में डूबे रहते हैं।

प्रकर्ष ! जैसे प्रत्येक पर्वत पर माणिक्य नहीं मिलते, प्रत्येक हाथी में गजमुक्ता प्राप्त नहीं होते और प्रत्येक वन में चन्दन के वृक्ष नहीं होते ऐसे ही साधु जन भी बहुत कम—कहीं-कहीं ही मिलते हैं।

"महामोह को सैन्य सहित जीतने वाले महापुरुष कहाँ रहते हैं ?" प्रकर्ष ने विमर्श से कहा—'मामा ! मैं उस नगर को देखना चाहता हूँ।"

"अब हमें कहीं नहीं जाना।" विमर्श ने कहा—"प्रकर्ष ! जो काम करने हम आये थे वह तो पूरा हो ही गया। रसना के मूल स्थान की जानकारी हमने प्राप्त करली। अब हमें स्वदेश लौटना चाहिए। वैसे मैं तुम्हारी जानकारी के लिए बता दूं कि महामोह को जीतने वाले पराक्रमी भवचक्र नगर में रहते हैं।"

"मैं भवचक्र नगर अवश्य देखना चाहता हूँ।" प्रकर्ष ने आग्रह किया—"मामा ! हम एक वर्ष का समय लेकर आये थे। अभी तो छह महीने ही बीते हैं। अतः स्वदेश लौटने की हमें क्या जल्दी है ? कार्यावधि के बचे शेष छह महीनों में हम भवचक्र नगर देख लेंगे।"

प्रकर्ष का आग्रह देखकर विमर्श भवचक्र नगर जाने को तैयार हो गया और बोला—

"तो फिर चलो। भवचक्र नगर में पहुँचने से पहले मैं तुम्हें उसकी थोड़ी-सी जानकारी भी दे दूं। मैंने ज्ञानी पुरुषों से जाना है कि भवचक्र नगर सब घटनाओं का आधार है। यह आदि अन्त से रहित है। इसमें अनेक अद्‌भुत बातें होती हैं। यह बहुत विशाल है। इसमें बहुत-से मुहल्ले और हवेलियां हैं। इस नगर में इतनी जाति के लोग रहते हैं कि उन जातियों की संख्या का वर्णन असम्भव है। इस नगर की अन्यतम विशेषता यह है कि महामोह का सामना करने वाला 'सन्तोष' नामक योद्धा इसी नगर में रहता है। मोह राजा की सेना ने इस नगर को घेर रखा है।

"प्रकर्ष ! जो महामोह चित्तवृत्ति अटवी में सेना डाले पड़ा है, वह भवचक्र नगर को घेरकर कैसे बैठ गया ? इस प्रश्न का समाधान यह है महामोह आदि अन्तरंग लोग योगी जैसे होते हैं। जैसे एक योगी यहाँ भी है और दूसरी जगह भी दीखता है, वैसे ही ये अन्तरंग लोग भी एक साथ

दो या दो से अधिक जगह रह सकते हैं। ये चाहे जब छिप जाते हैं और चाहे जब प्रकट हो जाते हैं। भवचक्र नगर अन्तरंग और बाह्य—दोनों तरह के लोगों का आधार है—अतः दोनों तरह के लोग इसमें रहते हैं।"

यह कहकर विमर्श ने प्रकर्ष को साथ लिया और दोनों भवचक्र नगर की ओर चल दिये। जिस समय चले थे, तब शिशिर ऋतु चल रही थी। चलते-चलते विमर्श ने चित्तवृत्ति अटवी में फैली महामोह की सेना को देखा। महामोह की चतुरंगिणी सेना में मिथ्याभिनिवेश आदि रथ थे। ममत्व आदि हाथी थे। अज्ञान आदि सुन्दर घोड़े थे तथा दीनता, चपलता, लोलुपता आदि की पैदल सेना थी।

चित्तवृत्ति अटवी से भवचक्र नगर का मार्ग लम्बा था। इस लम्बे मार्ग को तय करते हुए प्रकर्ष विमर्श से प्रश्न पूछता जाता था और विमर्श उसका उत्तर देता जाता था। प्रकर्ष ने विमर्श से पूछा—

"मामा! कर्मपरिणाम राजा सबसे बड़ा राजा है। महामोह राजा उसके अधीन है। इन दोनों में आपस में क्या सम्बन्ध है और ये दोनों मिल कर कैसे शासन करते हैं, मैं यह जानना चाहता हूँ।"

विमर्श बोला—

"प्रकर्ष! मैं कर्मपरिणाम राजा की सत्ता और शक्ति के बारे में पहले काफी बता चुका हूँ। मोह के बारे में भी बहुत कुछ बता दिया है। अब दोनों का सम्बन्ध क्या है, इसे भी पुनः बता देता हूँ, क्योंकि यही दोनों दुःखों की जड़ हैं और संसारी जीव को इन्हीं दोनों से बचना है।"

यह कह विमर्श प्रकर्ष को कर्मपरिणाम और महामोह के आपसी-सम्बन्ध आदि के बारे में बताने लगा। □

[२१] कर्मपरिणाम और महामोह : आपसी सम्बन्ध

वस्तुतः कर्मपरिणाम और महामोह में कोई भेद नहीं है। दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। लेकिन बाह्य दृष्टि से ऐसा जाना-माना जाता है कि कर्मपरिणाम महामोह का बड़ा भाई है। कर्मपरिणाम ने महामोह—अपने छोटे भाई को चित्तवृत्ति अटवी का राज्य सौंप दिया है। चूंकि महा-मोह चोरों की तरह अँधेरे में काम करता है, इसलिए इसे अटवी—जंगल का राज्य दिया है।

कर्मपरिणाम ऐसे कार्य करता है, जो कभी अच्छे लगते हैं और कभी बुरे। लेकिन महामोह सदा बुरे लगने वाले कार्य ही करता है। दोनों के स्वभाव का दूसरा अन्तर यह है कि मोहराजा युद्धप्रिय है और अपने शत्रुओं को जीतने में लगा रहता है, जबकि कर्मपरिणाम राजा नाटकप्रिय है। वह तरह-तरह के नाटक देखने में ही लगा रहता है। मोह सहित अन्य सभी राजा कर्मपरिणाम के अधीन रहकर कार्य करते हैं और उसकी प्रसन्नता के लिए तरह-तरह के नाटक करके उसे दिखाते रहते हैं।

शुभाशुभ, सुन्दर-असुन्दर समस्त राजमण्डल का नायक कर्मपरिणाम है और महामोह उसके विभाग का नायक है। निवृत्ति नगरी को छोड़कर समस्त नगरों पर कर्मपरिणाम का ही आधिपत्य है। मोहराजा की युद्धप्रियता से प्रसन्न होकर कर्मपरिणाम ने उसे राजसचित्त और तामसचित्त—दोनों नगरों का राज्य पुरस्कार में दिया है।

कर्मपरिणाम और मोहराजा ने जो राज्य पाये हैं, ये न तो उन्हें परम्परा से प्राप्त हुए हैं और न ये इनके बाप-दादों के राज्य हैं, बल्कि बलपूर्वक इन्होंने दूसरों के राज्यों पर काबू किया है।

प्राणी जब कर्मबद्ध रहता है और बाह्य प्रदेश में रहता है, तभी वह संसारी जीव कहलाता है। ऐसे प्राणी को ये राजे चित्तवृत्ति अटवी में खदेड़ देते हैं। फिर अटवी से भी निकाल कर उसका राज्य हथिया लेते हैं। यह राज्य इन दोनों राजाओं ने कब प्राप्त किया, इसको कोई नहीं जानता, पर इसका रहस्य मालूम है।

कर्मपरिणाम राजा का यह स्वभाव है कि वह कभी किसी को कुछ देता है और कभी कुछ छीन लेता है। मोह राजा उसकी प्रच्छन्न आज्ञा से उसके कोष की वृद्धि करता रहता है। यह महारथी योद्धा भी है। कर्मपरिणाम सिर्फ नाटक देखता रहता है। अतः देखने वाले महामोह को ही महासिंहासन पर बैठा देखते हैं।

प्रकर्ष ! इतना सब होते हुए भी कर्मपरिणाम और महामोह राजाओं में कोई भेद नहीं है।

इस प्रकार चर्चा करते हुए विमर्श और प्रकर्ष भवचक्र नगर में पहुँच गए। जब ये दोनों वहाँ पहुँचे, तब वसन्त ऋतु आ चुकी थी। दोनों नगर के आस-पास बाग-बगीचों में वसन्त की शोभा देखने लगे। यह ऋतु ऋतुराज कहलाती है। भवचक्र नगर वसन्त ऋतु में ही दर्शनीय होता है। □

[२२] भवचक्र नगर में

भवचक्र नगर के लोग उद्यानों में घूमकर ऋतुराज वसन्त का आनंद ले रहे थे। कुछ लोग मिल-बैठकर मदिरा और आसव पीकर मस्त हो रहे थे। कुछ लोग स्त्रियों के मुँह में भरी मदिरा को पीकर अपने को धन्य समझ रहे थे। कुछ स्त्रियों का मुख चुम्बन करके मस्त हो रहे थे और कुछ थिरक-थिरक कर नाच रहे थे। मद्य-गोष्ठी को प्रकर्ष ने बड़े कौतूहल से देखा। इसी गोष्ठी के निकट तरह-तरह के फूलों से सजा एक मण्डप था और उस मण्डप में भी मद्य-गोष्ठी हो रही थी। उसे देख प्रकर्ष ने विमर्श से कहा—

"मामा ! देखो, यह गोष्ठी तो पहली गोष्ठी से भी अधिक विलास-रत है।"

"इस भवचक्र नगर में वसन्त ऋतु में जगह-जगह ऐसी गोष्ठियाँ होती ही रहती हैं। यही समय इस नगर के सौन्दर्य को देखने का समय है।" विमर्श बोला—"प्रकर्ष ! मदिरापान तो यहाँ के लोगों के लिए आम बात है।

"प्रकर्ष ! अभी तो तूने नगर के बाहर का भाग ही देखा है। चलो, अब नगर के भीतर चलें।"

विमर्श और प्रकर्ष जब नगर में प्रविष्ट हुए तो उन्होंने एक राजा को हाथी पर आते देखा। उसके आगे-पीछे राज्याधिकारी और नागरिक चल रहे थे। सुन्दरियों से घिरा वह राजा कामदेव जैसा लग रहा था। उसके आगे पीछे तरह-तरह के बाजे भी बज रहे थे। प्रकर्ष के पूछने पर विमर्श ने उसे बताया कि ये सब बाह्य प्रदेश में रहने वाले प्राणी हैं। यह सब महामोह तथा उसके सहयोगी राजाओं का प्रताप है कि ये लोग इतने मस्त और विलासरत हैं।

प्रकर्ष ने पूछा—मामा ! ये लोग किस राजा के प्रताप और किस घटना के कारण इतने मोदप्रिय है।

विमर्श बताने लगा कि प्रकर्ष ! चित्तवृत्ति अटवी में चित्तविक्षेप मण्डप में स्थित तृष्णावेदिका पर हमने मकरध्वज राजा को देखा था। यह जो वसन्त है, यह उसी मकरध्वज राजा का प्रिय मित्र है।

शिशिर ऋतु की समाप्ति के बाद बसंत ने मकरध्वज से कहा था कि मित्रवर ! मैं महारानी कालपरिणति की आज्ञा से 'मानवावास' नगर को जा रहा हूँ। मुझे कुछ समय के लिए तुम्हारा वियोग सहना पड़ेगा।

इस पर मकरध्वज ने वसन्त से कहा कि मित्र पिछली साल मैं भी तो तुम्हारे साथ मानवावास नगर में था। क्या तू भूल गया कि जब महारानी तुझे मानवावास नगर में भेजती हैं, तब महामोह वहाँ का राज्य मुझे सौंप देते हैं। अतः जहाँ तू होता है, वहीं मैं भी होता हूँ। फिर हम दोनों का विछोह कैसा ?

वसन्त को अपनी भूल मालूम हुई। प्रकर्ष ! उसके बाद वसन्त यहाँ आ गया। अदृश्य रूप से मकरध्वज भी यहाँ है। वसन्त का प्रभाव तुमने देख ही लिया; अब यथासमय मकरध्वज का प्रभाव भी देखना।

महामोह राजा, रागकेसरी राजा और विषयाभिलाष मन्त्री आदि के संयुक्त परामर्श से मकरध्वज मानवावास नगर पहुँच गया। मानवावास भवचक्र नगर का आन्तरिक नगर था। महामोह की आज्ञा से उसके सहायकों ने मकरध्वज का राज्याभिषेक किया और उसे विधिवत् मानवावास नगर का राजा बनाया। महामोह मानवावास नगर में मकरध्वज का मंत्री बनकर कार्य करने लगा। उसके अन्य सहयोगी राजा, पुत्र आदि भी मकरध्वज की सेवा में मानवावास नगर में रहने लगे।

अरे प्रकर्ष ! तुमने जिस राजा को हाथी पर चढ़कर उद्यान की ओर जाते देखा है, वह ललितपुर का राजा लोलाक्ष है।

भवचक्र नगर का अन्तरंग नगर मानवावास हुआ, मानवावास नगर का एक बाह्य नगर है, जिसका नाम है ललितपुर। इस नगर का राजा लोलाक्ष है। लोलाक्ष बहिरंग राज्य का राजा है। मानवावास का राजा बनते ही मकरध्वज ने लोलाक्ष राजा को जीत कर उसके सहयोगियों के साथ खदेड़ कर नगर से बाहर कर दिया है।

जिन नागरिकों को लोलाक्ष के साथ नगर से बाहर निकाला गया है, वे ऐसा नहीं मानते कि मकरध्वज ने उन्हें और उनके राजा को जीत लिया है। अतः लोलाक्ष बड़ी अकड़ और शान से अपने साथियों के साथ घूम रहा है।

प्रकर्ष ! मकरध्वज इस समय अपने सहयोगियों के साथ पास में ही छिपा बैठा है और लोलाक्ष आदि से नाटक करवा रहा है। अन्तरंग राजा

होने के कारण मकरध्वज अदृश्य है। यह चाहे जिसके शरीर में प्रविष्ट होने की योग शक्ति रखता है।

प्रकर्ष ! मेरे पास विमलालोक योगांजन है। इसके प्रभाव से मैं दूसरों के शरीर में प्रविष्ट अदृश्य मकरध्वज को देख सकता हूँ।

यह कह विमर्श ने प्रकर्ष की आँखों में भी विमलालोक योगांजन लगा दिया। अब वह भी अन्तरंग राजाओं के कौतुक देखने लगा।

विमलालोक अंजन के लगते ही प्रकर्ष को असूझ भी सूझने लगा तो वह विमर्श से कहने लगा—

"मामा, देखो ! यह मकरध्वज धनुष पर बाण चढ़ाकर खींच रहा है। देखो, इसने बाण छोड़ने शुरू कर दिये। कितने ही लोग इस मकरध्वज ने बींध डाले। इसने तो लोलाक्ष राजा को भी अपने बाणों से जर्जरित कर दिया।"

"अभी तुमने देखा ही क्या है ?" विमर्श बोला—"इस भवचक्र नगर में तुम्हें बड़े-बड़े अद्‌भुत दृश्य देखने को मिलेंगे।"

"सभी अन्तरंग राजा यहाँ हैं।" प्रकर्ष बोला—"मकरध्वज के साथ महामोह, रागकेसरी, विषयाभिलाष, हास्य आदि सपत्नीक बैठे हैं। लेकिन मामा ! इस समय द्वेषगजेन्द्र, अरति और शोक आदि यहाँ नहीं हैं। वे सब कहाँ हैं ?"

"जब उनकी जरूरत होगी, तब वे भी प्रकट हो जायेंगे।" विमर्श ने कहा—"मकरध्वज के राज्याभिषेक में सभी अन्तरंग राजा आये हैं। पर ये लोग जब चाहते हैं, तभी प्रकट होते हैं और जब चाहते हैं, तब छिप जाते हैं। जो राजा यहाँ दीख रहे हैं, इस समय इन्हीं की सेवा का अवसर है। ये लोग दूसरों के शरीर में प्रविष्ट होकर मकरध्वज का हाथ बँटा रहे हैं।

"प्रकर्ष ! लोलाक्ष राजा और उसकी प्रजा को मकरध्वज ने जीत लिया है, पर इन्हें इस बात की जानकारी नहीं है कि हम जीते जा चुके हैं। ये बाह्य लोग आपस में लिपट रहे हैं, यह कार्य रागकेसरी द्वारा किया गया है। जो इन्द्रियभोग में लिप्त हो गये हैं, वे विषयाभिलाष मन्त्री ने किये हैं। हास्य ने भी सबके शरीर में प्रवेश कर लिया है और इसीलिए लोग अट्टहास कर रहे हैं। जहाँ चुम्बन, आलिंगन और रति-क्रीड़ा हो रही है, वह कार्य मकरध्वज अपनी पत्नी रति के साथ सम्पन्न कर रहा है।

"प्रकर्ष ! तुम यह मत समझना कि इस समय चित्तवृत्ति अटवी

खाली पड़ी है। ये सब लोग वहां भी हैं। दरसल ये अन्तरंग राजा अनेकों रूप धारण करके एक साथ अनेकों जगह काम करते हैं।" □

[२३] लोलाक्ष की कामान्धता

ललितपुर का राजा लोलाक्ष मोहादि राजाओं की मार से पूर्णतः हताहत हो चुका था। हाथी से नीचे उतर कर उसने अपनी गोष्ठी जोड़ी। उसने चण्डिका देवी को मदिरा चढ़ाई और फिर खुले आम मदिरा पीने लगा। उसके साथी भी मदिरा पीकर मस्त हो गये। मदिरा पान में प्रमदा स्त्रियां भी साथ दे रही थीं।

लोलाक्ष का छोटा भाई रिपुकंपन भी अपनी पत्नी के साथ महफिल में आया था। वह युवराज पद पर आसीन था। मदिरा पीकर लोलाक्ष मकरध्वज के बाणों से ऐसा विद्ध हो गया कि वह छोटे भाई रिपुकंपन की स्त्री पर कामासक्त हो गया। कामान्ध व्यक्ति योग्य-अयोग्य का विचार छोड़ देता है। छोटे भाई की पत्नी अपनी बेटी के समान समझी जाती है। पर लोलाक्ष को यह विवेक नहीं रहा और वह अनुजवधू को पकड़ने लपका। वह बेचारी भयभीत होकर भागी और चण्डिका देवी की मूर्ति के पीछे छिप गई।

अब द्वेषगजेन्द्र को अवसर मिला तो वह लोलाक्ष के शरीर में प्रविष्ट हो गया। काम के बाद क्रोध ने अपना प्रभाव दिखाया। लोलाक्ष ने क्रुद्ध होकर सोचा कि इस स्त्री ने मेरी उपेक्षा की। मुझे भोग का दान नहीं दिया। मैं इसे जीवित नहीं छोड़ूंगा। यह सोच उसने तलवार का वार किया तो रिपुकंपन की पत्नी तो बच गई और चण्डिका देवी की प्रतिमा का सिर कट गया। अब रिपुकंपन की स्त्री पुनः भागी तो उसे उसका पति मिल गया। उसने भय का कारण पूछा तो उसकी पत्नी ने बता दिया कि पिता के समान पूज्य मेरा ज्येष्ठ और तुम्हारा भाई लोलाक्ष मेरे पीछे पड़ा है। अब द्वेषगजेन्द्र रिपुकंपन की देह में पैठ गया। रिपुकंपन ने अपने बड़े भाई लोलाक्ष को पकड़ा और उसे युद्ध के लिए ललकारा।

रिपुकंपन की पत्नी का नाम रतिललिता था। रतिललिता अपने पति और ज्येष्ठ—दोनों भाइयों का संघर्ष देखने लगी। दोनों भाइयों के

सैनिक और अंगरक्षक भी युद्धरत हो गये। देखते-देखते लाशें बिछ गयीं। अन्त में रिपुकंपन ने अपने बड़े भाई लोलाक्ष को मौत के घाट उतार दिया। यह एक साथ राग-केसरी, हास्य, विषयाभिलाष, मकरध्वज और द्वेषगजेन्द्र का कौतुक हुआ, जो प्रकर्ष और विमर्श ने अपनी आँखों से देखा। बाह्य और अन्तरंग—दोनों तरह की लीलाएँ मामा-भानजे ने देखीं।

तमाशे का निष्कर्ष निकालते हुए प्रकर्ष ने विमर्श से कहा—

"मामा ! मैं तो इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि भवचक्र के बाह्य लोगों के दुःख का कारण यह मदिरा ही है। मदिरा पान करने वाला ही मकरध्वज—काम और द्वेषगजेन्द्र—क्रोध के वश में होकर अनर्थ करता है। अतः सुरा-सुन्दरी दो ही विनाश की जड़ हैं। जो सुरा से बचेगा, वह सुन्दरी से भी बच सकता है।"

"तुमने ठीक निष्कर्ष निकाला।" विमर्श ने कहा—"जब यहाँ आये ही हैं तो और भी कुछ देखो। यहाँ भवचक्र नगर में बहुत कुछ देखने को है। भवचक्र के तमाशे देखने में तो संसारी जीव अनेक जन्म बिता देता है, पर यहाँ के कौतुक समाप्त नहीं होते।" □

[२४] रिपुकंपन

लोलाक्ष के मरने के बाद रिपुकंपन ललितपुर का राजा बना। वह अपना दरबार लगाये बैठा था। विमर्श और बुद्धि-पुत्र प्रकर्ष वहाँ पहुँचे। तभी अन्तरंग मिथ्याभिमान वहाँ दिखाई दिया। प्रकर्ष ने उसे पहचान कर कहा—मामा ! यह तो राजसचित्त नगर में स्थायी रूप से नियुक्त था। यह यहाँ कैसे आ गया ?

"तुम बार-बार भूल जाते हो।" विमर्श बोला—"महामोह मकरध्वज को बहुत चाहता है। इसीलिए उसने अपने स्थायी नियुक्त सेवक मिथ्याभिमान को ससैन्य यहाँ भेज दिया है। ये अन्तरंग लोग पलक झपकते ही एक साथ कई जगह उपस्थित हो जाते हैं। यह तथ्य मैं तुम्हें कई बार बता चुका हूँ। अब तुम मिथ्याभिमान का कौतुक देखो।"

देखते-देखते मिथ्याभिमान अपनी योग शक्ति से रिपुकंपन के शरीर में प्रविष्ट हो गया। रिपुकंपन के दो रानियाँ थीं—एक रतिललिता और

दूसरी मतिकलिता। मतिकलिता ने एक पुत्र को जन्म दिया। प्रियंवदा नामक दासी ने राजदरबार में राजा रिपुकंपन को संवाद दिया कि आपके पुत्र हुआ है। मिथ्याभिमान से वशीभूत राजा रिपुकंपन की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। उसने दासी को पुरस्कार दिया। फिर तो सबको पुरस्कार दिया। नौबतें बजने लगीं। पूरे राज्य में आनन्द सागर उमड़ चला। जो कभी भी अपना नहीं है, उसे अपना समझकर फूल उठना मिथ्याभिमान के कारण ही होता है।

मिथ्याभिमान के कारण रिपुकंपन इतना फूल गया कि फटने की नौबत आ गई। अभी उसे और भी कुछ देखना था, इसलिए फटा नहीं। फूलने वाला फट तो सकता है, पर फैल नहीं सकता। मिथ्याभिमान ने रिपुकंपन को इतना फुलाया कि मानो वह तीनों लोकों में नहीं समायेगा।

'मेरा' राज्य कितना बड़ा है। 'मेरी' सेना, 'मेरा' खजाना, और अब यह 'मेरा' पुत्र भी हो गया। यह रिपुकंपन का चिन्तन था। मिथ्याभिमान 'मेरा' की वृद्धि करता है लेकिन झूठी वृद्धि। वस्तुतः 'मेरा' तो शरीर भी नहीं होता; यहाँ तक कि मैं स्वयं भी अपना नहीं हूँ।

रिपुकंपन पुत्र का जन्मोत्सव विविध ढंगों से मनाने लगा। कहीं नाटक हो रहे थे। कहीं बाजे बज रहे थे। कहीं नृत्य-संगीत का दौर था। यह सब मात्र एक अन्तरंग पुरुष मिथ्याभिमान ही करा रहा था।

यह सब देखकर प्रकर्ष ने अपनी टिप्पणी दी—

'मामा ! रिपुकंपन अपने नाम के विपरीत अपने शत्रु—रिपु मिथ्याभिमान के वश म हो रहा है। यह तो बड़े आश्चर्य की बात है।"

"भवचक्र नगर में जो न हो जाये सो थोड़ा है।" विमर्श ने कहा—"यहाँ ज्यादातर लोग शत्रु को ही मित्र समझते हैं। कुछ मनीषी ही ऐसे होते हैं, जो अपने शत्रुओं को पहचानते हैं और उनको मार देते हैं।

"प्रकर्ष ! रिपुकंपन यद्यपि अपने रिपुओं को कम्पित करने की क्षमता रखता है। लेकिन यह बाहरी शत्रुओं के लिए ही रिपुकंपन है। भीतरी शत्रुओं—द्वेषगजेन्द्र, मिथ्याभिमान आदि के लिए तो यह भी कायर है।

"प्रकर्ष ! यह दोष केवल अज्ञान के कारण होता है। यदि ज्ञान

का प्रकाश हो जाये तो अन्तरंग शत्रु अपने असली रूप में दीखने लगते हैं।"

ये बातें हो ही रही थीं कि रनिवास में चीत्कार होने लगी। रानी मतिकलिता पछाड़ खाकर रोने लगी। हुआ यह कि जिस राजपुत्र का जन्मोत्सव मनाया जा रहा था, वह मर गया था। यह संवाद रिपुकंपन ने सुना तो वह भी रोने लगा। अब शोक का अवसर था। मौका देख शोक रिपुकंपन में प्रविष्ट हो गया। जो अपना नहीं था, उसके मरने पर भी राजा रोने लगा। वियोग का दुःख कितना असह्य होता है। यह इस समय रिपुकंपन ही जानता था।

विमर्श कहने लगा—

"प्रकर्ष! भवचक्र में दो चीजें साथ-साथ चलती हैं। यहाँ पग-पग पर द्वन्द्व है। यदि जन्म है तो मरण भी है। हर्ष है तो शोक भी है। यदि संयोग होगा तो वियोग भी होगा। अतः संयोग का सुख भूलकर योग का सुख पकड़ लो, क्योंकि योग में वियोग नहीं है। योग से ही ज्ञान (प्रकाश) मिलता है। योग होता है आत्मा से, अर्थात् आत्मा से जुड़ना योग है। ऐसा क्रम है कि धर्म से वैराग्य, वैराग्य से योग, योग से ज्ञान और ज्ञान से मोक्ष होता है। मोक्ष का अर्थ है—दुःखों से सार्वकालिक छुटकारा। एक कवि ने कहा भी है—

धर्म ते बिरति, योग ते ज्ञाना।
ज्ञान मोक्षप्रद वेद बखाना॥

रिपुकंपन, उसकी रानियाँ आदि शोक के वशीभूत होकर विलाप कर रहे थे। हा पुत्र! हा पुत्र! का करुण क्रन्दन हृदय को बेध रहा था।

विमर्श ने समझाया—

"प्रकर्ष! तूने शोक और मतिमोह को देखा था न! यह सब नाटक यही दोनों कर रहे हैं। तूने देखा कि भवचक्र में थोड़ी-थोड़ी देर बाद कैसे-कैसे अद्भुत नाटक हुए हैं। अभी और भी देखता चल।"

शोक ने अपना और भी प्रभाव दिखाया और रिपुकंपन पुत्रशोक में मर गया। सूर्य अस्त हो रहा था। राजपुत्र और राजा के दाह-संस्कार की तैयारियाँ होने लगीं।

सन्तों की विशेषता यह है कि वे दूसरों का दुःख नहीं देख सकते, क्योंकि वे दयालु होते हैं।

परदुःखं कृपावन्तः सन्तो नो द्रष्टुमीशते क्षमाः।

विमर्श और प्रकर्ष—दोनों ही सन्त थे। अतः राजभवन का करुण विलाप उनसे देखा नहीं गया और वे वहाँ से हट गये।

सन्ध्या की मटमैली चादर वातावरण में फैल गई थी। दीप जल उठे थे। बाजार की दुकानें सजी हुई थीं। प्रकर्ष और विमर्श एक बाजार में घूमने चले गये। यह बाजार रत्नविक्रेता और सराफों का था। यहाँ बड़ी चहल-पहल थी। दुकानदार अपनी-अपनी दुकानों पर मसनद के सहारे ग्राहकों की प्रतीक्षा में बैठे थे। □

[२५] महेश्वर सेठ और धनगर्व

रत्नविक्रेता एक सेठ—मोटे पेटवाला अपनी सजी-धजी दुकान पर मसनद के सहारे बैठा था। उसकी दुकान में नीलम, पुखराज, हीरा, मणियाँ, मुक्ता आदि विभिन्न प्रकार के पर्याप्त रत्न रखे हुए थे। अनेक व्यापारी उससे लेन-देन की बातें कर रहे थे। इस सेठ का नाम महेश्वर था और यह इस समय अपने को सबसे बड़ा भाग्यशाली समझ रहा था। अपने रत्नों को बार-बार देखकर सेठ महेश्वर प्रसन्नता के मारे रोमांचित हो रहा था। उसे रोमांचित होते देख प्रकर्ष ने पूछ ही लिया—

"मामा! इसकी प्रसन्नता का क्या कारण है?"

"यह धनगर्व के वशीभूत है।" विमर्श ने कहा—"प्रकर्ष! धनगर्व मिथ्याभिमान का दूसरा नाम है। धनगर्व और मिथ्याभिमान बड़े घनिष्ठ मित्र हैं। धनगर्व इस सेठ के शरीर में जमकर बैठ गया है। यह सोच रहा है कि मैं इतने रत्नों का स्वामी हूँ। यह बेचारा यह नहीं सोच पा रहा है कि धन हमेशा दुःखदायी होता है। सुख और धन में शत्रुता है। ज्यों-ज्यों धन बढ़ता है, त्यों-त्यों चिन्ता बढ़ती है। जिनको धन-गर्व होता है, वे बेचारे धन का दुष्परिणाम—उसका भविष्य नहीं जानते।"

"अरे मामा! एक नई बात और देखो।" प्रकर्ष बोला—"राग-केसरी के जो आठ बालक हमने देखे थे, उनमें से पाँचवाँ बालक, अर्थात्

अनन्तानुबन्धी मान या लोभ भी इसके पास ही बैठा है।"

"दिव्यांजन से तुम्हें सभी अन्तरंग जीव दीखने लगे हैं।" विमर्श ने कहा—"तुमने ठीक पहचाना।"

ये बातें हो ही रही थीं कि एक भुजंग (गणिकापति) महेश्वर सेठ की दुकान पर आया। उसका नाम दुष्टशील था और वह हेमपुर के राजा विभीषण का सैनिक एवं वेश्यापति था। वेश्यापति दुष्टशील ने महेश्वर सेठ से कहा कि मैं एकान्त में आपसे कुछ विशेष बात कहना चाहता हूँ। अपनी दुकान पर बैठे व्यापारियों को वहीं बैठा छोड़ सेठ दुष्टशील को भीतर ले गया। दुष्टशील के पास राजा का रत्नजटित मुकुट था। वह उसने दिखाया और बोला, इसे खरीद लो। चोरी का माल कम दामों में ही बिकता है। महेश्वर सेठ ने बहुत कम मूल्य देकर राजा का मूल्यवान हार वेश्यापति दुष्टशील से खरीद लिया। अब तो उसका धनगर्व और भी बढ़ गया।

दुष्टशील मूल्य लेकर गया ही था कि राजा के गुप्तचर दुष्टशील के पदचिन्ह खोजते हुए महेश्वर सेठ की दुकान पर आ गये और छापा मारा। उन्होंने विभीषण राजा का चोरी गया मुकुट बरामद तो किया ही, सेठ का निजी धन-रत्न आदि सब जब्त कर लिये। पलक मारते ही धनगर्वी महेश्वर सेठ कंगाल हो गया। क्रुद्ध गुप्तचरों ने सब कुछ ले लिया। सब कुछ लेने के बाद उसे बन्दी बनाकर राजा के सामने पेश किया। राजा ने उसे बन्दीगृह में डलवा दिया। बन्दीगृह में डालने से पूर्व राजा ने महेश्वर सेठ के गले में चोरी गया मुकुट डलवाया। शरीर पर राख पोती और गधे पर बैठाकर नगर में घुमाया। जो सेठ बड़ा आदमी माना जाता था, लोग उस पर थूकने लगे। चोर-चोर कहकर धिक्कारने लगे।

विमर्श ने प्रकर्ष से कहा—

"प्रकर्ष! लोग धन को जाने क्या समझते हैं? धन का उपयोग तो सभी करते हैं। पर जो धन संकटों का मूल है, उसके लिए कौन-सा कुकृत्य नहीं करते। चोरी, डाका, हिंसा-बध—सब कुछ कर डालते हैं। पर धन किसी के यहाँ नहीं टिकता। यह हाथी के कान की तरह चंचल है। चिन्ता और भय, तदनन्तर शोक—ये तीनों धन के साथ रहते हैं। इसलिए धन का सबसे प्रथम, सबसे उत्तम और सर्वमान्य उपयोग दान है। देते रहो—देते रहो—देते रहो। उसके बाद है भोग। तीसरा निकृष्ट उपयोग धन

का संचय है। संचय से ही चिन्ता, भय और शोक मिलते हैं। धन के त्याग में सुख और उसके संग्रह में दुःख है।"

"मेरे मन में एक जिज्ञासा है।" प्रकर्ष ने कहा—"क्या ऐसा भी कोई उपाय है कि धन स्थिर रहे, जाये नहीं ?"

"यह उपाय कोई-कोई ही कर पाता है।" विमर्श ने बताया—"पुण्यानुबन्धी पुण्य, अर्थात् शुभ के अनुभव से धन घर में स्थिर रहता है। जिस अनुभूति से पुण्य का संचय हो, उसे पुण्यानुबन्धी पुण्य कहते हैं। यह पुण्य धन को बढ़ाता है और उसे स्थिर करता है। लेकिन अधिकांश लोगों को पापानुबन्धी पुण्य ही होता है। प्राणियों पर दया, संसार से वैराग्य आदि से पुण्यानुबन्धी पुण्य का संचय होता है।

"प्रकर्ष ! पुण्यानुबन्धी पुण्यात्मा बिना लोभ के ही धन प्राप्त करते हैं। धर्मशील के पास सम्पत्ति बिना बुलाये उसी प्रकार आती है, जैसे नदियाँ समुद्र के पास आती हैं। शेष धनी लोग तो धन संचय, लोभ, धनासक्ति, धनगर्व में लिप्त रहकर पापों का बन्ध करते हैं। □

[२६] रमण और कुन्दकलिका

धनगर्व के कारण महेश्वर सेठ की दुर्दशा से प्रकर्ष बड़ा हैरान हुआ। फिर वह मामा विमर्श के साथ बाजार में आगे बढ़ा तो उसने देखा कि एक दीन-हीन व्यक्ति मैले-कुचैले कपड़े पहनकर आया। बाजार के पास ही बावड़ी पर उसने स्नान किया और नये कपड़े पहने। फिर मोदक खरीद कर खाये। फूलों का हार गले में डाला और फूलों का ही मुकुट बनाकर पहना। मुँह में पान चबाकर देह से इत्र लगाया। इत्र की सुगन्ध के कारण वह बड़े जोरों से साँस खींचकर प्रसन्न होता था। विमर्श उसके पीछे-पीछे चला तो प्रकर्ष भी उसके साथ चल दिया और पूछने लगा—'मामा ! यह कौन है ? आप इसका पीछा क्यों कर रहे हो ?"

"तुझे इसकी भोगासक्ति का चमत्कार दिखाऊँगा।" विमर्श बोला—"यह वेश्यागामी है। तू देखना, वेश्यागमन का इसे क्या कुफल मिलेगा।"

इतना कह विमर्श प्रकर्ष को बताने लगा कि देखो प्रकर्ष ! यह जो व्यक्ति वेश्या के पास जा रहा है, इसका नाम रमण है।

यह रमण इस नगर के सेठ समुद्रदत्त का पुत्र है। यह बहुत धनी

था। रत्नों के ढेर इसके घर में थे। इसने सब धन वेश्यागमन में फूँक दिया और दर-दर का भिखारी बन गया। इस नगर की वेश्या मदनमंदरी की जवान पुत्री कुन्दकलिका पर यह अनुरक्त था। जब इसके पास धन नहीं रहा तो मदनमंजरी ने इसे धक्के मार कर निकाल दिया। इतने पर भी इसकी आँखें नहीं खुलीं। दूसरों की मजदूरी करके यह अपना पेट भरता है। आज कुछ पैसा इसे मिला है तो पूरी सजधज करके रसिक बनकर कुन्दकलिका वेश्या के पास जा रहा है।

इन्हीं बातों में रमण कुन्दकलिका के आवास पर पहुँच गया। वह रूपवती वेश्या रमण को देखकर खिल उठी। मानो मेंढक को निगलने के लिए सर्पिणी को प्रसन्नता हुई हो। वेश्या को देख विमर्श ने नाक-भौं सिकोड़ीं और प्रकर्ष से बोला—"प्रकर्ष! यहाँ से दूर हटो। मुझे तो इस स्त्री से भयंकर दुर्गन्ध आ रही है। ऊपर से सुन्दर होकर भी यह अशुचि का भण्डार है।"

प्रकर्ष और विमर्श दूर खड़े होकर रमण और कुन्दकलिका का नाटक देखने लगे। तभी मकरध्वज और भय ने वेश्या के घर में प्रवेश किया। मकरध्वज के बाणों से घायल रमण को कुन्दकलिका भीतर ले गई। तभी मदनमंदरी वहाँ आई। उसने भी बनावटी प्रसन्नता प्रकट करके रमण के पास जो धन था, वह ले लिया। उसके कपड़े उतरवा कर नंगा कर दिया। फिर मदनमंदरी बोली—"रमण! अभी-अभी राजा का पुत्र चण्ड यहाँ आने वाला है। वह तुम्हें यहाँ देखेगा तो मार डालेगा। अतः भाग जाओ।" उसी समय भय ने रमण में प्रवेश किया तो वह भय से काँपने लगा। वह भागने ही वाला था कि राजपुत्र चण्ड वहाँ आगया। रमण को देख वह बहुत क्रुद्ध हुआ तो भय के कारण रमण उसके पैरों में गिरकर प्राणदान माँगने लगा। दया करके चण्ड ने रमण का प्राणान्त तो नहीं किया, पर उसकी पिटाई कर दी और धक्के मारकर नीचे फेंक दिया। भय और पीड़ा के कारण भूखा-प्यासा रमण तड़प-तड़प कर मर गया। उसका ऐसा करुणान्त देख प्रकर्ष सिहर उठा। विमर्श ने उसे समझाया—

प्रकर्ष! यह सब वेश्यावृत्ति का फल है। मुनियों ने जब घर की नारी को त्यागने का उपदेश दिया है तो वेश्या का क्या भरोसा? घर की नारी भी चाहे जब बेवफा हो जाती है, पर-पुरुष से प्रेम भी करने लगती है तो उस वेश्या का क्या विश्वास जिसका लक्ष्य ही धन होता है। कुन्दकलिका ने रमण को सेठ से भिखारी बना दिया और अन्त में ऐसी मृत्यु दी।

सभी वेश्यागामियों की ऐसी ही दुर्दशा होती है और मरने के बाद भी सद्गति नहीं होती ।

विमर्श ने प्रकर्ष से कहा—

"प्रकर्ष ! अभी हमें बहुत कुछ देखना है । घर लौटने की अवधि भी कम रह गई है । अतः सामने जो सफेद पर्वत दीख रहा है, उस पर चलते हैं । इस पर्वत का नाम विवेक पर्वत है ।

"प्रकर्ष ! अब हमें गली-गली, बाजार-हाट नहीं घूमना पड़ेगा । विवेक पर्वत पर रहकर इस नगर के सभी दृश्य एक-एक करके देखे जा सकते हैं । इस तरह एक ही जगह से पूरा नगर देखा जा सकता है । थोड़े समय में अधिक काम विवेक पर्वत पर ही सम्भव है ।"

इसके बाद प्रकर्ष और विमर्श विवेक पर्वत पर चढ़ गये । जिस तरह मंच पर नाटक के दृश्य एक के बाद एक आते-जाते रहते हैं, उसी तरह विमर्श और प्रकर्ष भवचक्रान्तर्गत नाटकों के दृश्य देख रहे थे । □

[२७] विवेक पर्वत पर : भवचक्री नाटकों के दृश्य

विमर्श और प्रकर्ष देख रहे थे । एक मन्दिर में एक व्यक्ति बड़ी दीन दशा में बैठा था । उसके बाल बिखरे थे । कपड़े फटे थे । कुछ व्यक्ति उसे चारों ओर से घेर कर खड़े थे । उनके हाथों में नंगी तलवारें थीं । विमर्श प्रकर्ष को बता रहा था—

यह कुबेर नामक व्यापारी का पुत्र कपोतक है । पहले इसका नाम धनेश्वर था । इसके पास अपार धन था । लेकिन जुए में सब हार गया । कुपुत्र अथवा कपूत एवं कपोत जैसा निरीह होने के कारण इसका नाम कपोतक पड़ गया ।

कपोतक जब सब कुछ हार गया तो उसने अपना सिर दाँव पर लगा दिया । अब यह सिर भी जुए में हार गया है तो जीते हुए लोग इसका सिर काटने को खड़े हैं ।

ये बातें हो ही रही थीं कि कपोतक को घेरे खड़े लोगों ने उसका सिर धड़ से अलग कर दिया ।

विमर्श ने आगे कहा—

द्यूत व्यसन अथवा जुए के चस्के का दुष्परिणाम तुमने देख लिया। धनेश्वर ने अपना नाम खोया और कपोतक बना। धन खोया और प्राण भी दिये। जुए ने इसे क्या दिया?

जुए में जीतना और हारना—दोनों ही बुरे हैं। जीतने से लोभ की वृद्धि होती है और हारने से दुराशा (झूठी आशा) बढ़ती है। जीतने वाले के पास धन नहीं रहता। वह अन्य व्यसनों में चला जाता है। हारने वाले पर तो रहता ही नहीं।

प्रकर्ष! पुण्यों के संचय से ही धन मिलता है। यदि भाग्य में धन का मिलना निश्चित है तो वह किसी न किसी निमित्त से मिलेगा ही। यदि नहीं ही मिलना है तो चोरी, जुआ आदि पाप कर्मों से कभी नहीं मिलता, उल्टे दुस्सह कर्मों का बंध होता है। तुमने कभी सुना है कि कोई जुआरी भी लखपति या कोटीश्वर होता है।

देखो प्रकर्ष! अब दूसरा दृश्य। यह दृश्य शिकारी का है। वह घोड़े पर चढ़ा कौन जा रहा है?

प्रकर्ष! घोड़े पर चढ़कर हाथ में शस्त्र लिये जो शिकारी जा रहा है, यह ललितपुर का राजा ललन है। इसे आखेट का बहुत शौक है। मनुष्य जन्म का सिद्धान्त है—जीओ और जीने दो। पर यह मूर्ख दुःख देकर सुख चाहता रहा है, जो कभी किसी को नहीं मिला। इसके मन्त्रियों और परिवारी जनों ने इसे बहुत बार शिकार करने से रोका; पर यह नहीं माना। तब सबने मिलकर इसके पुत्र को राजसिंहासन पर बैठाया और इसे नगर से निकाल दिया। इतने पर भी यह जंगल में शिकार करने जा रहा है। इस विवेक पर्वत से जंगल, नगर—सब कुछ कितना स्पष्ट दीख रहा है।

ललन ने एक सियार के पीछे घोड़ा दौड़ा। तभी अचानक वह घोड़े सहित एक गड्ढे में गिर पड़ा। उसके देह का चूरा हो गया और प्राण पखेरू उड़ गये।

"शिकार का बड़ा बुरा फल इसे भोगना पड़ा।" प्रकर्ष ने कहा—"शिकार तो बहुत ही बुरा व्यसन है।"

"यह तो यहीं का—इसी लोक का फल है।" विमर्श ने कहा—"मरने के बाद ललन को नरक की असह्य यातनाएँ सहनी पड़ेंगी।

"प्रकर्ष! शिकार के मूल में मांस-भक्षण का दोष है। मांस को

देखते ही घृणा होती है। वह पूर्णतः त्याज्य है। फिर भी लोग उसे खाते हैं। मांस हिंस्र पशुओं का भोजन है। अतः मांस खाने वाले मनुष्य, मनुष्य के रूप में पशु ही हैं। मांस के लिए दूसरों के प्राण लेने पड़ते हैं। हमारे जब छोटा-सा कांटा भी लगता है तो कैसी पीड़ा होती है और हम दूसरों के प्राण भी ले लेते हैं। जो लोग यहां-वहां—दोनों लोकों में सुख चाहते हैं, उनको तो मांस-भक्षण का चिंतन भी नहीं करना चाहिए।

दृश्य बदला। विवेक पर्वत पर चढ़े प्रकर्ष ने एक अन्य दृश्य देखा। एक व्यक्ति को कुछ राजपुरुष पकड़े हुए हैं और वे उस व्यक्ति में मुंह में तपाया हुआ शीशा डाल रहे हैं। प्रकर्ष ने विमर्श से पूछा कि यह क्या मामला है? तो वह बताने लगा—

यहां चणकपुर नामक एक नगर है। इसी नगर का यह रहने वाला यह सुमुख नामक सार्थवाह है। सुमुख को झूठी अफवाहें फैलाने, विकथा—दुर्भाषण करने और झूठ बोलकर दूसरों का अनिष्ट करने का बड़ा शौक है। इसी से इसका नाम दुर्मुख पड़ गड़ा। प्रकर्ष! एक बात गांठ बांध लो कि **विकथा कहना अर्थात् दुर्भाषण करना भी भारी पाप है।**

चणकपुर के राजा का नाम है तीव्र। तीव्र राजा एक बार अपने शत्रु राजा से युद्ध करने गया। उसके पीछे दुर्मुख ने यह अफवाह फैला दी कि शत्रु राजा बहुत बलवान है। वह हमारे राजा तीव्र को मार कर यहां हम लोगों को भी मारेगा। अतः समय रहते सब लोग नगर खाली कर दो।

भयभीत नगरवासी नगर खाली करके भाग गये। कालान्तर में तीव्र राजा शत्रु को जीतकर आया और नगर को सुनसान पाया तो उसको कारण का पता चला कि लोग दुर्मुख के दुर्भाषण से भयभीत होकर भागे हैं। राजा ने अपने दूत इधर-उधर भेजकर भागे हुए लोगों को निर्भय किया और चणकपुर नगर को पुनः आबाद किया। लेकिन वह दुर्मुख पर कुपित हो गया। उसने राजसेवकों को आज्ञा दी कि इसमें मुंह में तपाया हुआ शीशा भर दो।

प्रकर्ष! तीव्र राजा के सेवक दुर्मुख को दुर्भाषण—विकथा का यह असह्य दण्ड दे रहे हैं कि शीशा पिघला कर इसके मुंह में भर रहे हैं।

प्रकर्ष! यह वाणी हमें सत्य बोलने के लिए ही मिली है। सत्य से ही सबका कल्याण होता है। सभी सन्त कहते हैं कि सत्य से बड़ा कोई तप

नहीं है और झूठ से बड़ा कोई पाप नहीं है। कभी-न-कभी दुर्भाषी की दुर्दशा अवश्य होती है।

"यहाँ से तो सब कुछ स्पष्ट दीख रहा है।" प्रकर्ष ने कहा—"मामा! यह तो आपने बहुत ही अच्छा किया, जो यहाँ विवेक पर्वत पर आ गए।"

इसके बाद प्रकर्ष ने दो व्यक्तियों को जाते देखा तो विमर्श से पूछा कि मामा! ये दोनों कौन हैं? विमर्श ने बताया—

"प्रकर्ष! बाह्य लोगों की जो भी लीलाएँ होती हैं, वे अन्तरंग पुरुषों की ही लीलाएँ होती हैं। दीखने में ऐसा लगता अवश्य है कि अमुक व्यक्ति रो रहा है और अमुक प्रसन्न हो रहा है। पर यह कार्य अन्तरंग पुरुष ही करते हैं।

"प्रकर्ष! ये जो दो पुरुष जा रहे हैं, ये दोनों अन्तरंग पुरुष हैं। इनमें से एक का नाम हर्ष और दूसरे का नाम विषाद है। हर्ष रागकेसरी का खास आदमी है और विषाद शोक का परम मित्र है। हर्ष और विषाद एक ही व्यक्ति में बारी-बारी से प्रवेश करके अपना कमाल दिखायेंगे। अब तुम इनका कमाल देखो।"

थोड़ी ही देर बाद दृश्य बदला। एक बड़ा भव्य भवन सामने था। उसमें एक सेठ बैठा था। उस सेठ का नाम वासव था। वासव सेठ की धनदत्त नामक सेठ से बचपन से ही मित्रता थी। बहुत दिनों बाद धनदत्त वासव के घर आया तभी हर्ष ने वासव के शरीर में प्रवेश किया। अब तो वासव हर्ष से खिल उठा। वह धनदत्त से लिपट गया। हर्ष से पुलकित होकर वासव सेठ ने अपने कुटुम्बी जनों, मित्रों, स्वजनों को इकट्ठा किया और अपने बचपन के मित्र के आने के हर्ष में एक दावत दे डाली। बाजे बजवाये। आमोद-प्रमोद के साधन जुटाये।

थोड़ी ही देर बाद भयंकर आकृति वाले विषाद नामक अन्तरंग पुरुष ने वासव सेठ के घर में प्रवेश किया। तभी बाहर से एक अन्य व्यक्ति आया। उसने सेठ के कान में कुछ कहा ही था कि मौका देखकर विषाद उसकी देह में पैठ गया। अब तो सेठ विषाद के वशीभूत होकर 'हा पुत्र! हाय मेरे कुलदीपक!' कहकर रोने लगा। विषाद घर के अन्य लोगों की देह में भी पैठा। सब रोने लगे। कुछ देर पहले जो आनन्द का सागर हिलोरें मार रहा था वह विषाद के दावानल में बदल गया।

प्रकर्ष ने पूछा—

"मामा ! मैंने हर्ष का नाटक भी देखा। अब विषाद का भी देख रहा हूँ। लेकिन इस विषाद के पीछे कारण क्या है ?"

"असली कारण तो अज्ञान ही है।" विमर्श बोला—"हर जीव अपने कर्मों से दुःख पाता है। पर हम अज्ञानवश दुखी व्यक्ति को अपना मानकर विषाद के वशीभूत हो जाते हैं। अज्ञान के कारण ही हम हर्षित होते हैं। फिर भी मैं तुम्हें वासव सेठ के विषाद का निमित्त कारण बता रहा हूँ।"

वासव सेठ के वर्धन नामक इकलौता पुत्र है। वह विदेश में व्यापार करने गया था। उसने काफी धन कमाया। जब वह साथ लेकर चला तो रास्ते में उसे डाकुओं ने लूट लिया और खूब पिटाई की। अब डाकू वर्धन को अपनी पल्ली—बस्ती में ले गये हैं और उसे मारणान्तक पीड़ा दे रहे हैं।

वासव सेठ का लुम्बनक नामक स्वामिभक्त सेवक भी वर्धन के साथ था। वह किसी तरह यहाँ भाग आया। उसी लुम्बनक ने वासव सेठ को इसके पुत्र वर्धन की दुर्दशा की सूचना यहाँ आकर दी है। इस उपयुक्त अवसर को देख विषाद ने सब पर अपना प्रभाव दिखाया है।

"सेठ के रोने-चिल्लाने से क्या वर्धन बच जाएगा ?" प्रकर्ष ने पूछा—"वर्धन का क्या होगा ?"

'किसी के रोने-धोने से कुछ नहीं होता।" विमर्श ने बताया—"सब कुछ अपने कर्मों के परिणामस्वरूप ही होता है।

"प्रकर्ष ! इस बात को भवचक्र के लोग जानते भी हैं कि हमारे करने से कुछ नहीं होता; फिर भी ये लोग हर्ष-विषाद के वश में हो जाते हैं। वासव सेठ के घर में तूने हर्ष-विषाद के नाटक एक साथ देखे। ऐसे नाटक भवचक्र में होते ही रहते हैं। ये दोनों इतने प्रभावशाली हैं कि अकारण को कारण बनाकर लोगों के सोचने-विचारने की शक्ति नष्ट कर देते हैं और लोग अकारण ही कभी हर्षित और कभी विषाद में डूब जाते हैं।

"हर्ष-विषाद के शासन से निकलने के विषय में कुछ ही लोग सोचते हैं और जितने लोग सोचते हैं, उनमें से कुछ ही इनसे बचने का प्रयत्न करते हैं। ज्यादातर तो इन्हीं के वशीभूत रहते हैं।

"प्रकर्ष ! भवचक्र नगर की लीलाओं का तो कोई अन्त नहीं। अतः तू कहाँ तक देखेगा ? अब मैं तुझे कुछ विशेष बातें बिना दिखाये, वर्णन द्वारा सुना रहा हूँ। पहले तू इस भवचक्र नगर के चार उपनगरों का हाल सुन ले। इससे तुझे भवचक्र नगर के बारे में काफी जानकारी हो जाएगी।" □

[२८] **चार उपनगर**

भवचक्र नगर के चारों उपनगरों का पूरा वर्णन करना असम्भव-जैसा कार्य है; फिर भी संक्षेप में इनके रूप-स्वरूप का संकेत मात्र दिया जा सकता है। ये चारों नगर चार होकर भी ऐसे एक हैं कि चारों नगरों के प्राणी एक ही भवचक्र नगर में रहते हुए दिखाई देते हैं। ऊपर से ये चारों उपनगर भिन्न-भिन्न हैं, पर अन्दर से मिले हुए लगते हैं, पर वस्तुतः हैं अलग-अलग।

भवचक्र नगर के ये चार उपनगर इस प्रकार हैं—(१) मानवावास, (२) विबुधालय, (३) पशु-संस्थान; और (४) पापीपिंजर।

प्रथम उपनगर **मानवावास** है, जो महामोह, रागकेसरी, द्वेषगजेन्द्र आदि अन्तरंग प्राणियों से व्याप्त हैं। इस उपनगर में हर समय द्वन्द्व की धमा चौकड़ी मची रहती है। कहीं हर्ष है तो कहीं शोक, कहीं जन्म का उत्सव है तो कहीं मरण का विलाप; कहीं धन-नाश का दुःख है तो कहीं धन-प्राप्ति का आनन्द। इस तरह यहाँ परस्पर विपरीत घटनाएँ घटती ही रहती हैं।

दूसरा उपनगर **विबुधालय** है। जितने भी भौतिक और स्थूल सुखों, भोगों की कल्पना की जा सकती है, वे सब विबुधालय के निवासियों को प्राप्त होते हैं। यहाँ के लोग मानवावास के लोगों के मुकाबले बहुत सुखी हैं, क्योंकि इन्हें किसी वस्तु का अभाव नहीं होता। लेकिन मोहादि अन्तरंग शत्रु इन्हें भी प्रताड़ित करते रहते हैं। ईर्ष्या, द्वेष, राग आदि भीतर के द्वन्द्वों से यहाँ के निवासियों का भी पीछा नहीं छूटता। लेकिन जो लोग इन्द्रियों के सुख को ही सुख मानते हैं, उनके लिए विबुधालय में रहना वरदान सिद्ध होता है।

तीसरा उपनगर **पशु-संस्थान** है। इस उपनगर के प्राणी पीड़ित और दुःखी रहते हैं; इन्हें तृण-घास का भोजन मिलता है; यह भी कभी मिलता है तो कभी नहीं मिलता। प्यास लगने पर कभी-कभी पानी भी नहीं मिलता। इनकी भूख-प्यास की तृप्ति दूसरों पर निर्भर है। इस उपनगर के प्राणी पूर्णतः पराधीन होते हैं। इन्हें बोझा ढोना पड़ता है, सवारियाँ खींचनी पड़ती हैं और मार भी खानी पड़ती है। कभी-कभी तो इन्हें बड़ी निर्दयता से पीटा जाता है।

चौथा उपनगर पापीपिंजर है। महापाप के प्रभाव से प्राणियों को इस उपनगर में रहना पड़ता है। इस नगर के प्राणियों को जो-जो यातनाएँ मिलती हैं, उसके वर्णन मात्र से रोंगटे खड़े हो जाते हैं। रक्त-पीब की नदी में गोते खाना, खौलते तेल के कढ़ाव में डालना आदि साधारण कष्ट हैं। इनसे भी बड़े-बड़े कष्ट यहाँ के पापिष्ठ प्राणियों को मिलते हैं।

इस उपनगर के सात मुहल्ले हैं। पहले तीन मुहल्लों में परमाधामी देव—असुर दण्ड देते हैं। अन्य तीन मुहल्लों के निवासी आपस में एक-दूसरे को पीड़ा देते हैं। सातवें मुहल्ले के प्राणियों को तीक्ष्ण काँटों से बींधा जाता है। जाड़ा-गरमी के बचाव का यहाँ कोई साधन नहीं है। इस उपनगर को नरक भी कहते हैं।

विमर्श ने चारों उपनगरों का वर्णन समाप्त किया ही था कि विवेक पर्वत पर बैठे हुए प्रकर्ष ने चौंककर विमर्श से कहा—

"मामा ! काली-कलूटी, भयंकर आकृतियों की ये जो सात स्त्रियां मानवावास नगर में खड़ी हैं, ये कौन हैं ?"

"ये सातों पिशाचिनी हैं।" विमर्श ने कहा—"ये सातों अन्तरंग और बाह्य—दोनों तरह से यहाँ के प्राणियों को दुःख देती रहती हैं।

"प्रकर्ष ! ये सातों कर्मपरिणाम और कालपरिणति रानी के संकेत पर मनुष्य को प्रभावित करती हैं। इनका प्रभाव अनिवार्य होता है। इन सातों के साथ इनका विरोध करने वाली सात भली स्त्रियाँ भी हैं। वे सातों इस समय अदृश्य हैं। कभी उन भली सातों का प्रभाव रहता है तो कभी इन सातों पिशाचिनों का प्रभाव रहता है। पर अन्तिम प्रभाव इन सातों पिशाचिनों का ही रहता है।" □

[२६] सात पिशाचिनें

प्रकर्ष ! अब मैं यहाँ से दीख रही सातों पिशाचिनों का वर्णन करता हूँ। इनके साथ ही इनका विरोध करने वाली भली स्त्रियों के बारे में भी बताता चलूँगा।

ये सातों इस प्रकार है—(१) जरा, (२) रुजा (व्याधि या बीमारी),

(३) मृत्यु, (४) खलता या दुष्टता, (५) कुरूपता, (६) दरिद्रता; और (७) दुर्भगता या दुर्भाग्य।

पहली पिशाचिनी **जरा** है। महारानी कालपरिणति ने इसे भवचक्र में हमेशा के लिये भेज दिया है। यह प्राणी को कुरूप, दुर्बल और श्रीहीन कर देती है। इसके बाह्य कारण अतिमैथुन, अतिभोजन, असंयम आदि भी बताये जाते हैं, पर मुख्य कारण कालपरिणति की व्यवस्था ही है।

यौवन जरा का विरोधी है। यह भी कालपरिणति द्वारा नियुक्त है। यह बल-वीर्य का वर्द्धक, सुन्दर, स्वस्थ बनाने वाला और उछल-कूद वाला बनाता है। लेकिन अन्त में जरा इसको जीत लेती है। यौवन आकर चला जाता है, पर जरा जब आती है तो जाने का नाम नहीं लेती और मृत्यु के साथ ही जाती है।

दूसरी पिशाचिनी **रुजा** है। इसे बीमारी या व्याधि भी कहते हैं। चित्तवृत्ति अटवी में बैठे जिन सात राजाओं का वर्णन मैंने किया था, उनमें एक वेदनीय भी था। वेदनीय के साथ उसका मित्र असाता भी था। असाता ही व्याधि को यहाँ भेजता है। दोषपूर्ण आहार-विहार, कुपथ्य-सेवन आदि इसके बाह्य कारण भी माने जाते हैं। लेकिन मूल कारण असाता ही है।

रुजा का विरोध करने वाली एक भली स्त्री **नीरोगता** है। नीरोगता होने पर जराकाल में भी यौवन की अनुभूति होती है। बल, शक्ति और स्फूर्ति आदि के साथ नीरोगता सौन्दर्य को बढ़ाती है। लेकिन ऐसी स्थिति कम लोगों की होती है। ज्यादातर लोगों पर व्याधियाँ—रुजता हावी रहती है। साता ने नीरोगता को भवचक्र में भेजा है।

चौथी पिशाचिनी **मृत्यु** है। आयु नामक राजा इसे भवचक्र में भेजता है। राजा-रंक, साधु-गृहस्थ, चक्रवर्ती, देव-दानव, युवा-वृद्ध, स्त्री-पुरुष—सभी इसकी अनिवार्यता से भयभीत रहते हैं। जरा, व्याधि, पानी में डूबना, आत्महत्या, पहाड़ से गिरना, ठोकर खाना आदि अनेकों बाह्य कारण मृत्यु के माने जाते हैं, किन्तु मूल कारण आयु राजा का निर्देश ही है।

आयु राजा के **जीविका** नाम एक स्त्री और है। यह लोगों को प्रसन्न रखती है। जीविका जीने का आनन्द प्रदान करती है। यह मृत्यु को भुलाये रखती है। पर जीवन के आनन्द में डूबे प्राणी का मृत्यु बड़ी निर्ममता से अन्त करती है।

चौथी पिशाचिनी **खलता या दुष्टता** है। कर्मपरिणाम राजा के दो सेनापति हैं—एक पापोदय, दूसरा पुण्योदय। पापोदय खलता को भवचक्र नगर में भेजता है। कुसंगति से भी खलता में वृद्धि होती है, पर यह बाह्य कारण कहने भर को है। मूल कारण पापोदय ही है। खलता से मनुष्य तरह-तरह के पापकर्म करके पापों का पुंज एकत्र कर लेता है।

खलता के विपरीत **सज्जनता या सौजन्य** को भेजने वाला पुण्योदय है। सौजन्य के कारण मनुष्य देवतुल्य भला आदमी बनकर पुण्यों, सद्भाग्य और यश का अर्जन करता है।

पाँचवीं पिशाचिनी **कुरूपता** है। चित्तविक्षेप मण्डप में बयालीस अनुचरों से घिरा हुआ 'नाम' नामक एक राजा बैठा तुमने देखा था। 'नाम' राजा ने ही कुरूपता को भवचक्र नगर में भेजा है। कुरूपता के यद्यपि कुछ बाह्य कारण भी कहे जाते हैं पर मूल कारण नाम राजा ही है। लंगड़ापन, काना होना, ठिगना, लम्बा, मोटा, पतला, बेडौल, चेचक के दाग आदि कुरूपता के कारण होते हैं।

नाम राजा ही अपनी दूसरी स्त्री **सुरूपता** को भवचक्र में भेजता है। सुरूपता प्राणी को सुन्दर और आकर्षक बनाती है। इसके कारण पुरुष देवकुमार और स्त्री देवकन्या लगती है। पर कुरूपता का प्रभाव प्राणियों पर अधिक रहता है। दुर्घटना, बीमारी आदि के बहाने कुरूपता सुरूपता पर हावी हो जाती है।

छठी पिशाचिनी **दरिद्रता** है। जो पापोदय दुष्टता या खलता को भेजता है, वही दरिद्रता को भेजता है। पापोदय इसे अन्तराय राजा की मार्फत भेजता है। इसके कारण प्राणी दीन-हीन, मलिन, अभावग्रस्त, साधनहीन, फटे हाल, अपमानित, तिरस्कृत और अत्यन्त दुखी रहता है।

दरिद्रता की विरोधिनी **सम्पन्नता, समृद्धि या ऐश्वर्य** है। इसे पुण्योदय भेजता है। इससे मनुष्य साधन सम्पन्न, रत्नाभूषणों वाला, समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त और यश वाला बनता है। लेकिन ज्यों ही पाप उदय में आता है, दरिद्रता पिशाचिनी ऐश्वर्य का नाश कर उसे अपने चंगुल में कस लेती है। दरिद्रता के कुछ बाह्य कारण भी कहे जाते हैं; जैसे आलसी, निरुद्यमी आदि। पर मूल कारण पापोदय और अन्तराय ही हैं। दान न देने से भी दरिद्रता आती है।

सातवीं पिशाचिनी **दुर्भगता या दुर्भाग्य** है। कर्मपरिणाम राजा जब

रुष्ट होता है तो दुर्भगता को भेजता है। इसके प्रभाव से प्राणी हर क्षेत्र में विफल रहता है। उसके सब प्रयास व्यर्थ चले जाते हैं। यह प्राणी को दरिद्र, निर्धन, निर्बल आदि बना देती है।

सुभगता दुर्भगता की विरोधिनी है। सौभाग्य के उदय होने पर प्राणी जब मिट्टी को छूता है तो वह सोना बन जाती है। सौभाग्य सुखदाता माना गया है। भाग्य से शत्रु भी मित्र बन जाते हैं। लेकिन मौका देखकर दुर्भगता सुभगता को नष्ट कर अपना सिक्का जमा लेती है। दुर्भगता के कारण पिता यमराज बन जाता है। स्त्री साथ नहीं देती। मित्र साथ छोड़ देते हैं और अपने पराये हो जाते हैं। राजा भी न्याय नहीं देता।

एक उच्छ्वास लेकर प्रकर्ष ने पूछा—

"मामा! क्या भवचक्र नगर में ऐसा कोई राजा या दण्डनायक नहीं है जो इन पिशाचिनों को दण्ड दे सके?"

"नहीं है।" विमर्श ने कहा—"प्रकर्ष! ये सातों पिशाचिनें परम स्वतन्त्र और परम बलवान हैं। इनका दमन करना असम्भव है। तीनों लोकों में कौन ऐसा है, जो इन्हें दबा सके? कोई नहीं है।"

"तो फिर इनसे बचने का प्रयत्न तो करना ही चाहिए?" प्रकर्ष ने पूछा—"या नहीं करना चाहिए?"

"प्रयत्न करना व्यर्थ ही है।" विमर्श बोला—"लेकिन व्यवहार के नाते अथवा मन को तसल्ली देने के लिए प्रयत्न करने में बुराई नहीं है। इससे ये पिशाचिनें तो नहीं मिटतीं; पर इनके प्रभाव को सहन करने की अवधि आसानी से बीत जाती है। बिना प्रयत्न के समय नहीं कटता, वैसे कट जाता है। जैसे व्याधि आने पर वह तभी जायगी, जब पुण्योदय होगा और साता की कृपा होगी। लेकिन व्याधि के आने और साता के आदेश से नीरोगता के आने के बीच की जो अवधि है, वह चिकित्सा करते रहने से आसानी से बीत जाती है। मान लो कोई बीमार व्यक्ति पन्द्रह दिन में नीरोग होता है। चिकित्सा न करने पर भी वह पन्द्रह दिन में ठीक होगा। पर चिकित्सा करते रहने से पन्द्रह दिन की प्रतीक्षा असह्य नहीं होगी।"□

[३०] पिशाचिनों का प्रभाव और निवृत्ति

सातों पिशाचिनों के प्रेरक कुछ अन्तरंग और कुछ बाह्य कारण होते

हैं। लेकिन बाह्य कारण भी अन्तरंग कारणों से प्रेरित, अर्थात् निमित्तमात्र होते हैं। मूल कारण कर्मपरिणाम राजा, कर्मपरिणति रानी और इनके नौकर असाता, साता, आयु, नाम, पापोदय आदि ही होते हैं। भवितव्यता, लोकस्थिति और स्वभाव आदि पांच इनके मुख्य हेतु हैं। कर्मपरिणाम, काल परिणति, भवितव्यता, लोकस्थिति और स्वभाव—जब ये पांचों निर्णय कर लेते हैं तो इनके विरुद्ध पलक झपकने जैसा तुच्छतम कार्य भी नहीं टाला जा सकता।

सिद्धान्ततः तो सातों पिशाचिनों से बचने का पुरुषार्थ व्यर्थ है। पर व्यवहारतः यदि पुरुषार्थ नहीं किया जाएगा तो मनुष्य निर्वीर्य, आलसी, निरुद्यमी बनकर और भी दुखी रहेगा। प्रयत्न से आशा का सम्बल मिलता है। आशा के सहारे दुर्दिनों की लम्बी अवधि भी पार की जा सकती है।

प्रयास करने से मनुष्य पाप से पुण्य की ओर अग्रसर होता है। उसके संस्कार शुभ बनते हैं और वह सोचता है कि मैं भविष्य में पाप नहीं करूंगा। यदि शुभ प्रयत्न करने पर भी अच्छा फल नहीं मिलता तो व्यक्ति को पछतावा नहीं रहता। अतः सद्प्रयत्न से मनुष्य पछतावे के दुःख से बच जाता है। वैसे यह सोचना व्यर्थ है कि मैं ऐसा कर लेता तो इस कुफल से बच जाता। संचित पाप उदय में आयेगा तो कुफल के भोग से कौन बच सकता है। पर प्रयास-प्रयत्न से भोगकाल में समता आती है।

"आपकी बात मेरी समझ में आ गई।" प्रकर्ष ने कहा—"क्या कोई ऐसा स्थान भी है, जहां जरा आदि पिशाचिनें प्रभावहीन रहती हैं?"

"है!" विमर्श ने कहा—"निवृत्ति नगरी ऐसा स्थान है, जहां मोह का आधिपत्य नहीं है और वहां इन पिशाचिनों की भी पहुंच नहीं है।

"एक बार जो प्राणी निवृत्ति नगरी में पहुंच जाता है, फिर वह अविनाशी हो जाता है। वहां जरा-मृत्यु कुछ भी नहीं व्यापता, वहां आनंद ही आनंद है।

"जो प्राणी इस नगरी में जाना चाहता है, उसे तत्त्वबोध (सम्यक्ज्ञान) प्राप्त करना चाहिए और शुद्ध श्रद्धा (सम्यग्दर्शन) रखनी चाहिए।

"भवचक्र नगर के चारों उपनगर सातों पिशाचिनों से पीड़ित हैं। इनसे बचने के लिए निवृत्ति नगरी जाने का शुभ संकल्प करना चाहिए।

"प्रकर्ष! यद्यपि यह भवचक्र नगर दुखों का भण्डार है; फिर भी यहां के लोगों को प्रायः इस नगर से निर्वेद नहीं होता। महामोह सबको बड़ी प्रबलता से अपने वश में रखता है। अतः जानकर भी यहां के लोग

कोल्हू के बैल की तरह भवचक्र में घूमते रहना ही पसंद करते हैं। परायों को अपना मानने में उन्हें विशेष आनन्द आता है। महामोह की गोद में पड़े रहकर ये लोग बार-बार जन्म लेने और बार-बार मरने तथा सातों पिशाचिनों से पीड़ित रहने का बंध जान-बूझकर करते हैं।"

"ऐसे मूर्ख लोगों की चर्चा में ज्यादा समय बिताने से क्या लाभ?" बुद्धि के पुत्र प्रकर्ष ने कहा—"मामा! हमारे सोचने से क्या होगा? भवचक्र के प्राणी यदि निवृत्ति नगरी जाने की सोचेंगे भी नहीं तो दुःखी होते ही रहेंगे।"

□

[३१]

छह अवान्तर मण्डल : षट्दर्शन

रसना की मूल उत्पत्ति का पता लगाने निकले प्रकर्ष और विमर्श ने अन्तरंग और बाह्य नगरों के कुतूहल देखे। राजसचित्त, तामसचित्त, चित्तवृत्ति अटवी, भवचक्र नगर आदि के देखने के बाद बुद्धि के पुत्र प्रकर्ष ने कुछ निर्णय निकाले। लेकिन कई बातों को लेकर उसमें उलझन बढ़ गई। उसका मामा विमर्श तत्त्वदर्शी था, वह विचारपूर्वक सही बात जान लेता था। अतः प्रकर्ष ने विमर्श से चलते-चलते पूछा—

"मामा! अब हमें जल्दी घर लौटना है। चलते-चलते मुझे कुछ बातें और बतायें। आपने पहले बताया था कि मिथ्यादर्शन और इसकी पत्नी कुदृष्टि बहुत भयंकर एवं शक्तिशाली हैं। कृपया, पुनः यह बताइए कि आखिर मिथ्यादर्शन दम्पती के गुण, स्वभाव क्या हैं कि भवचक्र के लोग उनके वश में होकर दुःख उठाते रहते हैं और निवृत्ति नगरी में जाने का संकल्प नहीं करते।"

अब विमर्श ने धाराप्रवाह कहना शुरू किया।

भवचक्र नगर के अधिकांश निवासी मिथ्यादर्शन के वशीभूत रहते हैं लेकिन इसके वश में रहने वाले प्राणी अधिकतर कहाँ रहते हैं, क्यों रहते हैं और कैसे रहते हैं, इसके बारे में तुम्हें मैं बताता हूँ।

मानवावास उपनगर में छह अवान्तर मण्डल तुम देख ही रहे हो। ये इस उपनगर के मुहल्ले हैं। इन मुहल्लों या मण्डलों के अधिकतर निवासी (सभी नहीं) मिथ्यादर्शन के वश में रहते हैं।

प्रकर्ष ! मानवावास उपनगर के छहों मुहल्ले या मण्डल इस प्रकार हैं—

प्रथम **नैयायिकपुर** है। इसके निवासी **नैयायिक** कहलाते हैं। दूसरा मण्डल **वैशेषिकपुर**, इसके निवासी **वैशेषिक**, तीसरा **सांख्यपुर**, निवासी **सांख्य**, चौथा **बौद्धपुर**, निवासी बौद्ध, पाँचवां **मीमांसक**, निवासी **मीमांसक**, और छठा मण्डल **लोकायतनिवास या चार्वाक मण्डल** है। इसके निवासी **नास्तिक या बार्हस्पत्य** कहलाते हैं। इन मुहल्लों या मण्डलों के निवासियों पर मिथ्यादर्शन और कुदृष्टि का शासन चलता है। इनमें मीमांसक के अतिरिक्त सभी मण्डल दर्शन कहे जाते हैं।

प्रकर्ष ! हम दोनों जिस श्रेष्ठतम पर्वत विवेक पर्वत पर खड़े हैं, इसके सामने **अप्रमत्तत्व** नामक श्रेष्ठतम चोटी है। इस चोटी पर छठा लोकोत्तर नगर जैनपुर बसा हुआ है।

जैनपुर नगर में ही ऐसे प्राणी रहते हैं, जिन पर मिथ्यादर्शन और कुदृष्टि का जोर नहीं चल पाता।

जैनदर्शनपुर के निवासियों पर मिथ्यादर्शन का जोर क्यों नहीं चलता, यह भी विचारणीय है। इस लोक में निवृत्ति नगर नामक जो नगर है, इसमें रहने वालों पर महामोह आदि का कोई प्रभाव नहीं है। इस नगर में द्वन्द्व रहित आनन्द का साम्राज्य है। यहाँ कोई उपद्रव नहीं कर सकता। नास्तिक लोगों के अलावा सभी मण्डलों या दर्शनों के लोग इस निवृत्तिनगर में पहुँचना तो चाहते हैं, पर सही मार्ग न जानने के कारण भटकते रहते हैं। इन लोगों ने अपनी-अपनी कल्पना से भ्रान्त मार्गों की सृष्टि करली है। लेकिन जैनपुर वालों ने खोज करके निवृत्ति नगर जाने का सही मार्ग पा लिया है। मिथ्यादर्शन के प्रभाव के कारण अन्य दर्शनों के लोग जैनपुर वासियों वाला सही मार्ग जानने की कोशिश ही नहीं करते।

जैनदर्शनपुर अनादि और अनन्त है। यह सर्वकाल और शाश्वत है। जबकि मिथ्यादर्शन ने अनेक पुर बसाये और बिगाड़े।

इसके बाद विमर्श ने सभी दर्शनों की कल्पना वाले निवृत्ति नगर को जाने वाले उनके भ्रान्त मार्गों का विस्तार से वर्णन किया। उसके बाद बताया कि इनके मार्ग कभी भी निवृत्ति नगर को नहीं ले जा सकते। □

[३२]

जैनदर्शनपुर की ओर

जैनदर्शनपुर की ओर जाते हुए विमर्श और प्रकर्ष को मार्ग में कुछ

साधु मिले। विमर्श ने बताया कि ये साधु निवृत्ति नगर के पथिक हैं। इन्होंने मोहादि राजाओं को जीत लिया है। चित्तवृत्ति अटवी में मोह के साथ जो-जो राजा, सुभट, मन्त्री आदि हमने देखे थे, वे सब इनसे हार चुके हैं। वहाँ जो सात राजा थे, उनमें से ज्ञानावरणीय आदि तीन को तो इन्होंने नष्ट ही कर दिया है और वेदनीय, आयुष्य, नाम-गोत्र—चार को अनुकूल बना लिया है।

इसके बाद विमर्श ने प्रकर्ष को **चित्तसमाधान मण्डप** दिखाया। मामा-भानजे दोनों उस विशाल मण्डप में प्रविष्ट हो गए। यहाँ इन्होंने एक चतुरानन—चार मुख वाले राजा के दर्शन किये। इसके आस-पास सत्-चित-आनन्द देने वाले अन्य राजा भी बैठे थे।

यह जो 'चित्तसमाधान मण्डप' है, यह भी चित्तवृत्ति अटवी में ही स्थित है। यहाँ एक '**सात्त्विकमानसपुर**' नामक नगर है। इस नगर में ही विवेक पर्वत है। चूँकि सात्त्विक मानसपुर भवचक्र में है और उसी में विवेक पर्वत है, इसीलिए जैनपुर भी भवचक्र में माना जाता है।

जैनपुर नगर यद्यपि दोषों से पूर्ण भवचक्र में बसा हुआ है; फिर भी यह दोषमुक्त है। इस नगर के निवासी गुणों का अर्जन करने में ही लगे रहते हैं।

सात्त्विकमानसपुर अथवा जैनपुर में जो लोग रहते हैं, ये विबुधालय में जाते हैं और इनकी दृष्टि सदा विवेक पर्वत पर ही टिकी रहती है। विवेक पर्वत पर चढ़ने के कारण ये दोषों से बचे रहते हैं। इस पर्वत की यह विशेषता है कि भवचक्र का प्राणी एक बार इस पर चढ़ जाए तो फिर वह कभी दोषोन्मुख नहीं होता।

इस पर्वत पर **अप्रमत्तत्व** नामक जो शिखर है। यह भी सब दोषों को नष्ट करने वाला है।

इस प्रकार विमर्श ने प्रकर्ष को जैनदर्शनपुर के सभी रूपों का वर्णन विस्तार से सुना दिया और जैनपुर निवासियों का रहन-सहन, आचार-विचार, स्वभाव-संस्कार, गुण आदि बताया। सब कुछ सुनने के बाद प्रकर्ष ने प्रश्न किया—

"मामा ! मैं कैसे मान लूँ कि जैनपुरवासी दोषों से मुक्त हैं ? जैसे मिथ्यादर्शन से प्रभावित अन्य प्राणी मोहादि के वश में रहते हैं और मूर्च्छा, आनन्द, प्रेम, हर्ष, शोक, रोष, अहंकार, हास्य, उद्वेग, निन्दा, तिरस्कार,

प्रशंसा आदि परस्पर विरोधी भावों से उद्वेलित रहते हैं, उसी प्रकार जैन-पुर के निवासी भी रहते हैं ।

"मामा ! ये लोग साधुओं से प्रेम करते हैं, उनकी श्रद्धा करते हैं। धर्म में इनकी प्रवृत्ति और आसक्ति रहती है। ज्ञान पाकर हर्ष मनाते हैं, दोषों से द्वेष करते हैं। शास्त्र विरोधी पर रोष भी करते हैं। कर्मों की निर्जरा पर गर्व करते हैं। तो वे सब बातें तो इनमें भी हुईं, जो मिथ्यावादियों में होती हैं ?"

प्रकर्ष के प्रश्न का उत्तर देते हुए विमर्श ने कहा—

"प्रकर्ष ! जैन लोगों पर भी मोह का प्रभाव है। पर जैसे एक नाम के दो व्यक्ति होते हैं, वैसे ही मोह भी दो हैं। चित्तवृत्ति अटवी में हमने महामूढ़ता का पति जो महामोह देखा था, वह जैनपुर वाले मोह से भिन्न था।

"यहाँ का मोह जैन जनों का पतन नहीं, उत्थान चाहता है। इसका नाम **प्रशस्तमोह** है और उसका नाम **अप्रशस्तमोह** है। यह प्रशस्तमोह ऊँचा उठाने वाली वस्तुओं से प्रेम और नीचा गिराने वाली से द्वेष कराता है।"

इसके बाद विमर्श ने प्रकर्ष को **चित्तसमाधान मण्डप में निःस्पृहता नामक** वेदी जीववीर्य सिंहासन आदि दिखाकर उनकी विशेषताएँ विस्तार से बताईं।

निःस्पृहता वेदी को जो लोग बार-बार याद करते हैं; उन्हें भोगों में रस आना बन्द हो जाता है। जीववीर्य सिंहासन के राजा चार मुख वाले होते हैं और ये जैनपुरवासियों का सदा ही हित करते हैं।

सब कुछ देखने-सुनने के बाद प्रकर्ष ने यह निष्कर्ष निकाला कि सात्त्विकमानसपुर के निवासी विशुद्ध ज्ञानसहित सात्त्विक मन के कारण विबुधालय में जाते हैं। जैनधर्म के सिद्धान्तों को जाने बिना भी मात्र कर्म निर्जरा से मानव को ऐसी बुद्धि उत्पन्न हो जाती है वह स्वयं को स्त्री, पुत्र, धन, मकान, शरीर आदि से भिन्न समझने लगता है। वह महामोहादि के बारे में जान जाता है कि ये मेरे घोर शत्रु हैं। ऐसी बुद्धि होने को ही विवेक का जागरण या विवेक पर्वत पर चढ़ना कहते हैं। ऐसे विवेक जाग्रत प्राणियों में अप्रमाद आता है, जो अप्रमत्तत्व शिखर है। उसके बाद इस शिखर पर बसे जैनपुर में ये प्राणी चले जाते हैं। यहाँ श्रावक-श्राविका, श्रमण-श्रमणी चार संघ होते हैं। फिर इन चारों संघों के रूप में जैनपुरवासी धर्म को जान जाते

हैं। इस सबका सार रूप चित्तसमाधान मण्डप ही है। फिर निःस्पृहता वेदी और जीववीर्य सिंहासन आदि यहाँ हैं, जो बड़े कल्याणकारी हैं।

इतना चिंतन करने के बाद प्रकर्ष ने सोचा कि अब मुझे चित्तसमाधान मण्डप में विराजमान चार मुख वाले राजा और उसके परिवार वालों के बारे में जान लेना चाहिए। यह सोच उसने विमर्श से पूछा—

"मामा ! चार मुँह वाले राजा के बारे में भी मुझे बताइए कि यह कौन है। इसके सहायक राजा कौन हैं तथा इसके कुटुम्बीजन कौन-कौन हैं, यह भी बता दीजिए।"

विमर्श ने आगे का वर्णन शुरू किया। □

[२३] **चतुरानन राजा—चारित्रधर्म**

चित्तसमाधान मण्डप में बैठा चार मुख वाला जो राजा है, इसका नाम महाराज चारित्रधर्म है। यह राजा अनन्त, अमित और अपरिमित शक्ति का भण्डार है। इसकी शक्ति का वर्णन साक्षात् शारदा भी नहीं कर सकती।

इस राजा के जो चार मुख हैं, इनके नाम—(१) दानमुख, (२) शीलमुख, (३) तपमुख और (४) भावमुख हैं।

अपने पहले मुख—दानमुख से चारित्रधर्म राजा दान की महत्ता बताकर जैनपुरवासियों को कल्याण की ओर ले जाता है। यह मुख दया का महत्त्व भी भली-भांति समझाता है। दूसरे शीलमुख से यह राजा साधुओं को उपदेश देता है कि उत्तम शील—विशुद्ध व्यवहार ही साधुओं का सर्वस्व है। तीसरे तपमुख से यह राजा बताता है कि तप से सभी दोष और दुख उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जैसे सूर्योदय से अंधकार नष्ट हो जाता है। चौथे मुख—भावमुख से यह राजा धर्माराधन और अरिहंतों की भक्ति का उपदेश देता है।

ये जो चारित्रधर्म राजा हैं, ये संसार में भटकने वाले प्राणियों को असीम सुख प्रदान करते हैं।

आधे सिंहासन पर चारित्रधर्म राजा के पास एक सर्वांग सुन्दर स्त्री बैठी है। यह महारानी 'विरति' है। यह भी मोक्ष (निवृत्ति) का मार्ग बताने वाली और राजा चारित्रधर्म की अनुगामिनी भार्या है।

महाराज चारित्रधर्म के पास पांच अन्य राजा बैठे हैं। इनमें **पहला सामायिक** है। यह जैनपुर वासियों को पापों से छुट्टी दिलाता है। **दूसरे** सहयोगी राजा का नाम **छेदोपस्थापन** है, यह पापों को करने से रोकता है। **तीसरा** राजा **परिहारविशुद्धि** है; इसकी आज्ञा से साधु अठारह माह का तप करते हैं। **चौथे** मित्र राजा नाम **सूक्ष्मसंपराय** है। यह सूक्ष्म पापों का नाश करता है। **पांचवें** राजा का नाम **यथाख्यात** है। यह भी समस्त पापों का नाश करता है।

चारित्र राजा के परिवारीजन इस प्रकार हैं। **श्रमणधर्म** का नाम का पुत्र युवराज है। इस युवराज के पास जो दस व्यक्ति बैठे हैं, इनके नाम—**क्षमा, मार्दव, आर्जव, मुक्तता, तपोयोग, संयम, सत्य, शौच, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य** हैं। ये दसों श्रमणधर्म युवराज के विशेष सहयोगी हैं।

चारित्रधर्म के दूसरे छोटे पुत्र का नाम गृहीधर्म है। यह श्रमणधर्म का सहोदर छोटा भाई है। इसके सहयोगी बारह व्यक्ति हैं, जो इसी के पास बैठे दीख रहे हैं। इनके नाम हैं—(१) स्थूल प्राणातिपात-विरमणव्रत, (२) स्थूल मृषावाद विरमणव्रत, (३) स्थूल अदत्तादानविरमण व्रत, (४) स्थूल मैथुनविरमण व्रत, (५) स्थूल ममत्वत्यागव्रत, (६) दिग्व्रत, (७) भोगोपभोग परिमाणव्रत, (८) अनर्थदण्ड विरमणव्रत, (९) सामायिकव्रत, (१०) देशावकासिकव्रत, (११) पौषधोपवासव्रत और (१२) अतिथिसं-विभाग व्रत।

चारित्रधर्म राजा के पुत्र श्रमणधर्म की पत्नी अथवा राजा की पुत्रवधू का नाम **सद्भाव सरिता** है। यह मुनियों को बहुत प्रिय है।

सद्गुणरक्तता चारित्रधर्म राजा की दूसरी पुत्रवधू, अर्थात् गृहीधर्म की भार्या है।

इसके अतिरिक्त चारित्रधर्म राजा के अन्य सहयोगी इस प्रकार हैं—

सम्यग्दर्शन नामक सेनापति है, जो दोषों रूपी शत्रुओं का मर्दन करता है। इस सेनापति की पत्नी **सुदृष्टि** है। **सद्बोध** नाम का राजा का मंत्री है। इस मंत्री की पत्नी का नाम **अवगति** है। **सद्बोध** मंत्री के पांच मित्र हैं, जिनके नाम—(१) **अभिनिबोध** [मतिज्ञान], (२) **सदागम** [श्रुतज्ञान], (३) **अवधि**, (४) **मनःपर्यव**; और (५) **केवल** है।

सन्तोष नाम का तंत्रपाल है, जो युवराज के पास बैठा दिखाई दे रहा है। संतोष से लड़ने के लिए मोहादि राजा सदा तैयार रहते हैं। यह राजा चारित्रधर्म की सेना का एक बड़ा महारथी है। इसने स्पर्शन

आदि को हराकर अनेक प्राणियों को निवृत्ति नगर भेज दिया है और सदा भेजता रहता है। तंत्रपाल संतोष की पत्नी **निष्पिपासिता** है, यह मुनियों को तृष्णारहित कर देती है।

अब चारित्रधर्म राजा की चतुरंगिणी सेना पर भी दृष्टि डालें। इस सेना में गंभीरता, उदारता, शूरवीरता आदि रथ हैं। कीर्ति, श्रेष्ठता, सज्जनता और प्रेम आदि बड़े-बड़े हाथी हैं। बुद्धि विशालता, चातुर्य, निपुणता आदि घोड़े हैं। अचपलता, मनस्विता, दाक्षिण्य आदि योद्धाओं से परिपूर्ण पदाति सेना है।

निष्कर्ष यह है कि जैसे—महामोह राजा अपने परिवार, सहायक राजा और चतुरंगिणी सेना द्वारा जगत को संताप देता है, उसी तरह चारित्रधर्म राजा अपने सहायक-सम्बन्धी, मित्र राजा, सेना आदि द्वारा जगत को सुख, आनन्द और मोक्ष—दुःखों से सार्वकालिक निवृत्ति देता है।

प्रकर्ष ने मामा विमर्श का आभार प्रकट किया और बोला कि अब तो हमारे लौटने की अवधि के दो महीने ही शेष हैं। अब कुछ देखना भी शेष नहीं है। जो काम हम करने आये थे, वह हो ही गया। अतः अब बाकी के दो महीने जैनपुर में रहकर बिताने चाहिए।

विमर्श ने अपनी सहमति प्रदान की और दोनों मामा-भानजे दो महीने तक जैनपुर नगर में रहे।

उधर रानी कालपरिणति की आज्ञा से मानवावास नगर में वसंत ऋतु पूर्ण हो गई तथा ताप देने वाली ग्रीष्म ऋतु आ गई। ग्रीष्म बीती तो वर्षा ऋतु आ गई। गर्मी में यात्रा कठिन थी। वर्षा में यात्रा की नहीं जाती। अतः विमर्श और प्रकर्ष चार महीने जैनपुर में रहे। उसके बाद दोनों यथासमय अपने नगर में पहुँचकर माता-पिता, स्वजन सम्बन्धियों से मिले तथा अपने कार्य सम्पादन की सूचना दी। □

[३४] राजा नरवाहन की दीक्षा

महाराज शुभोदय, महारानी निजचारुता, युवराज विचक्षण, युवराज्ञी बुद्धिदेवी आदि राजसभा में उपस्थित थे। प्रकर्ष ने दादा-दादी, माता-पिता के चरण छूकर अभिवादन किया। विमर्श ने बहनोई विचक्षण, और बहन बुद्धिदेवी को अभिवादन किया और राजा-रानी को भी प्रणाम कर अपनी यात्रा का वृत्तान्त बताया। फिर रसना के बारे में बताया कि

यह विषयाभिलाष मन्त्री की पुत्री है। विमर्श और प्रकर्ष के आने से पूर्व विचक्षण ने अपने भाई जड़कुमार की मृत्यु रसना द्वारा देखी थी तो उसने रसना का लगभग त्याग ही कर दिया था।

हुआ यह कि लोलता के भड़काने से जड़कुमार ने रसना की इच्छा पूर्ति के लिए एक बकरे का बध करना चाहा। बकरा तो बच गया, पर उसका मालिक मारा गया। फिर उसने मनुष्य का मांस ही रसना को खिलाया। अब तो लोलता बार-बार नर-मांस खाने को उत्तेजित करती। जड़कुमार ढूंढ़कर बालकों व मानव-शिशुओं की नित्य हत्या करता। एक दिन वह शूर नामक क्षत्रिय के घर से उसके बच्चे की चोरी करने लगा तो पकड़ा गया और उसकी खूब पिटाई हुई। परिणाम यह हुआ कि जड़कुमार मर गया।

जड़कुमार की घटना देखकर विचक्षण कुमार को विरक्ति हो गई। उसने निश्चय किया कि मैं रसना का पोषण नहीं करूँगा। फिर उसके पिता शुभोदय ने समझाया कि रसना और तुम्हारा अभिन्न संग है। अतः इसका त्याग एकदम नहीं करना चाहिए—धीरे-धीरे त्याग करो। हाँ, इसकी जो दासी लोलता (लोलुपता) है, इसे एकदम त्याग दो। विचक्षण कुमार ने लोलता दासी को एकदम त्याग ही दिया। लोलता के अभाव में दुष्ट रसना किसी का कुछ नहीं बिगाड़ सकती। विचक्षण की इच्छा थी कि वह अपने परिवार सहित विवेक पर्वत पर जाकर रहे। लेकिन दूर होने के कारण वह नहीं जा सका। तब शुभोदय ने अपने पुत्र विचक्षण से कहा कि तेरा साला विमर्श बहुत समर्थ है। जब वह आये तो उससे विमलालोक नामक योगांजन ले लेना। उससे घर बैठे ही तुझे विवेक पर्वत के दर्शन हो जायेंगे।

जब प्रकर्ष और विमर्श पहुँचे तो विचक्षण ने विमर्श से उक्त अंजन लिया। अंजन के प्रयोग से विचक्षण ने सैकड़ों लोगों से भरा सात्त्विक-मानसपुर नगर, विवेक पर्वत, अप्रमत्तत्व शिखर, जैनपुर और उसमें रहने वाले श्रमण देखे। उसने चित्तसमाधान मण्डप में जीववीर्य सिंहासन पर चारित्रधर्म राजा को उसके सहायकों सहित देखा। अब विचक्षण ने दीक्षा लेने का निश्चय कर लिया।

विचक्षण ने अपने पिता शुभोदय, माता निजचारुता, पत्नी बुद्धिदेवी, पुत्र प्रकर्ष, साला विमर्श आदि सब को साथ लिया। रसना को भी साथ लिया। केवल लोलता को छोड़ दिया। सबको साथ लेकर विचक्षण आचार्य गुणधर्म के पास पहुँचा और उसने दीक्षा ले ली।

दीक्षा लेने के बाद मुनि विचक्षण अपने परिवार के साथ जैनपुर नगर में रहने लगे। जो आचार मुनि विचक्षण ने आचार्य गुणधर्म से सीखा, उसका भक्तिपूर्वक पालन करने से उनकी रसना निरर्थक जैसी हो गई। अन्त में आचार्य गुणधर्म ने विचक्षण को आचार्य बना दिया। मुनि विचक्षण अब विचक्षणाचार्य हो गए।

× × ×

संसारी जीव अगृहीतसंकेता, प्रज्ञाविशाला, सदागम आदि के बीच अपनी आत्मकथा सुना रहा था। उसने आगे कहा कि अपनी पत्नी और माता का वध मैंने शैलराज और मृषावाद की प्रेरणा से किया था। पिता ने मुझे राजभवन से निकाल दिया था। जिस उद्यान में बैठे मेरे पिता राजा नरवाहन विचक्षणाचार्य की आत्मकथा सुन रहे थे, वहाँ मैं भी बैठा था। आगे क्या हुआ, उसे भी ध्यान देकर सुनो।

× × ×

अपनी आत्मकथा का समापन करते हुए विचक्षणाचार्य ने राजा नरवाहन से कहा—

"राजन् ! तुमने पूछा था कि मैंने कम उम्र में दीक्षा क्यों ली, सो उसका कारण मैंने तुम्हें अपनी आत्मकथा सुनाकर बता दिया। शुभोदय का पुत्र विचक्षण मैं ही हूँ।

"राजन् ! मैं अपने परिवार के साथ हूँ। फिर भी आप मुझे दुष्कर कार्य करने वाला—दीक्षा लेकर श्रमण बनना दुष्कर कार्य करने वाला मानते हैं, इसका कारण जैनधर्म की गुणवत्ता ही है।"

सब कुछ सुनकर राजा नरवाहन को वैराग्य हुआ और दीक्षा लेने की इच्छा भी हुई। उसने विचक्षणाचार्य से कहा कि भगवन् ! आपको बुद्धिदेवी जैसी पत्नी, विमर्श जैसा साला, प्रकर्ष जैसा पुत्र आदि इतना सुन्दर परिवार मिला है। यदि मुझे भी ऐसा परिवार मिलता तो मैं कितना भाग्यशाली होता।

विचक्षणाचार्य बोले—

"राजन् ! जो परिवारीजन मुझे प्राप्त हैं, वही सब साधुओं के पास होते हैं। जो-जो घटनाएँ मेरे जीवन में घटीं, वे सभी श्रमणों के जीवन में घटती हैं। तुम भी मेरी तरह प्रयत्न करो तो तुम भी मेरे जैसे परिवार वाले श्रमण बनोगे।"

राजा नरवाहन ने दीक्षा लेने का निश्चय किया और अपना राज्य-भार पुत्र को देने की दृष्टि से भिखारी-जैसे रिपुदारण की ओर देखकर सोचा कि यह रिपुदारण तो कुल-कलंक है। इसे राज्य कैसे दूँ। उसी समय रिपुदारण का परम मित्र पुण्योदय आ गया, जो उसका साथ बहुत पहले ही छोड़ बैठा था। पुण्योदय के प्रभाव से राजा का पुत्र-प्रेम जाग्रत हो गया। राजा ने रिपुदारण को बुलाकर गोद में बैठा लिया। फिर विचक्षणाचार्य से पूछा—

"भगवन्! रिपुदारण उच्चकुल में जन्मा है। अच्छी शिक्षा भी इसने पाई थी। फिर यह कुमार्गी क्यों बन गया?"

"राजन्! रिपुदारण का इसमें कोई दोष नहीं है।" विचक्षणाचार्य ने कहा—"सारा दोष इसके मित्र शैलराज और मृषावाद का है। ये दोनों दुष्ट सदा इसे गुमराह किये रहते हैं।

"राजन्! काफी समय बाद रिपुदारण का इन दोनों से छुटकारा होगा। वह छुटकारा कैसे होगा, यह वृत्तान्त मैं तुम्हें बता रहा हूँ।"

"राजन्! शुभ्रमानस नामक एक नगर है, जहाँ शुद्धाभिसंधि नाम का राजा राज्य करता है। उस राजा के दो रानियाँ हैं, वरता और वर्यता। इन दोनों रानियों ने एक-एक पुत्री को जन्म दिया है—मृदुता और सत्यता। शुद्धाभिसंधि की ये दोनों पुत्रियाँ जगत को आनन्द देने वाली और मुनियों के मन को भी मोहने वाली हैं।

"राजन्! किसी तरह तुम्हारे पुत्र रिपुदारण का विवाह मृदुता और सत्यता से हो जाए तो उसके दोनों पापी मित्र शैलराज और मृषावाद तुरन्त किनारा कर जायेंगे। इन दोनों के साथ तुम्हारे पुत्र का विवाह कब होगा, इसकी योजना बनाने वाला कोई और ही है। अतः इस विषय में तुम्हें चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि तुम कुछ कर भी नहीं सकते। अब तो तुम वही करो, जो तुम्हें करना है।"

× × × ×

संसारी जीव ने अगृहीतसंकेता से कहा—

"बहन अगृहीतसंकेता! इसके बाद मेरे पिताजी महाराज नरवाहन ने मेरा राज्याभिषेक किया। मैं सिद्धार्थपुर नगर का राजा बन गया। फिर उन्होंने पूरे विधि-विधान से श्रामणी दीक्षा ले ली और गुरु विचक्षणाचार्य के साथ विहार किया।

"अगृहीतसंकेता ! नन्दीवर्धन के बाद मेरे जो-जो जन्म हुए वे सब मैंने तुम्हें सुनाये और बताया कि महामोह के सहायकों ने मेरा कितना पतन किया। फिर मैं रिपुदारण बना तो शैलराज—अभिमान और मृषावाद ने मेरा पीछा नहीं छोड़ा। पुण्योदय के सहयोग से मैं सिद्धार्थपुर नगर का राजा तो बन गया, पर शैलराज और मृषावाद ने मुझे पुनः अपने शिकंजे में कस लिया और मेरी अधोगति कराई। यदि मैं तब यह जान जाता कि शैलराज और मृषावाद मेरे दुष्टतम शत्रु हैं तो मेरी दुर्दशा कई जन्मों तक होती रही, वह न होती।

"जिन्हें मैं अपना शुभचिन्तक, हितैषी और मित्र समझता, उन दोनों दुष्टतम शत्रुओं—शैलराज और मृषावाद ने किस तरह मेरा पतन कराया, अन्त में तुम मेरा वह इतिवृत्त भी सुन लो।"

इसके बाद संसारी जीव रिपुदारण के रूप में अपने गर्व और पतन की कहानी सुनाने लगा।

□

[३५]

रिपुदारण का गर्व और पतन

राज्य प्राप्त होते ही रिपुदारण सारे जगत को तृण-धूल के समान समझने लगा। यह शैलराज ने किया। मृषावाद के प्रभाव से झूठ बोलना रिपुदारण के लिए स्वाभाविक और सहज बन गया। कालान्तर में तपन नाम का चक्रवर्ती रिपुदारण के नगर में आया। उसका प्रभाव दिग्दिगन्त में फैला था और वह अपने क्षेत्र का निरीक्षण करने आया था। रिपुदारण के मंत्रियों ने उससे प्रार्थना की—

"राजन् ! आप तपन चक्रवर्ती का स्वागत कीजिए, क्योंकि उसकी प्रसन्नता में ही हम सबकी भलाई है। आपके पिता भी तपन चक्रवर्ती का सम्मान करते थे। सभी राजा उसे मान देते हैं। चक्रवर्ती का रुष्ट होना हित में नहीं है।"

रिपुदारण को शैलराज ने भड़काया तो वह अपने मंत्रियों पर उबल पड़ा—

"मूर्खो ! मेरे सामने तपन चक्रवर्ती क्या चीज है? उसे ही मेरी पूजा करनी चाहिए, न कि मैं उसकी करूँ।"

इस पर रिपुदारण के मंत्रियों ने उसके पैर पकड़कर पुनः प्रार्थना की—

"पृथ्वीनाथ ! ऐसा मत बोलिए, वरना अनर्थ हो जाएगा। चक्रवर्ती की शक्ति अपरिमित है। उसकी अवज्ञा से आपको राज्य सुख का त्याग करना पड़ेगा।"

इस दूसरी प्रार्थना से शैलराज के लेप का प्रभाव कुछ कम हो गया तो रिपुदारण ने मंत्रियों से कहा—

"अच्छा, पहले तुम लोग भेंटादि ले जाकर तपन चक्रवर्ती का स्वागत करो। मैं बाद में आ जाऊँगा।"

इसके बाद रिपुदारण के मंत्री रत्नादि की भेंट लेकर वहाँ पहुँचे, जहाँ तपन चक्रवर्ती पड़ाव डाले पड़ा था। रिपुदारण के मंत्रियों के पहुँचने से पहले चक्रवर्ती के जासूस पहुँचे। और उन्होंने रिपुदारण और उसके मंत्रियों के बीच हुई बातचीत अपने राजा तपन चक्रवर्ती को बता दी। उसके बाद रिपुदारण के मंत्री स्वागत करने पहुँचे तो चक्रवर्ती ने सबको आसन दिया तथा रिपुदारण की कुशल क्षेम पूछी और कहा—रिपुदारण क्यों नहीं आये ?

रिपुदारण के मंत्रियों ने तपन चक्रवर्ती को बताया—

"वे आपको नमस्कार करने शीघ्र ही आयेंगे।"

ऐसा कहकर रिपुदारण के मंत्रियों ने उसे बुलाने सेवक भेजे। अब तो रिपुदारण अकड़ गया और बोला—

"मैं तपन के पास हरगिज नहीं जाऊंगा। मेरे जो मंत्री उसके पास गए हैं, यदि वे अपना जीवन चाहते हैं तो लौट आयें।"

राजसेवक पुनः लौटकर तपन चक्रवर्ती के पास गए और रिपुदारण का कथन दुहरा दिया। रिपुदारण की बात सुनकर उसके मंत्री घबरा गए। लेकिन तपन चक्रवर्ती बहुत ही व्यवहार कुशल था। उसने रिपुदारण के मंत्रियों से कहा—

"तुम लोग क्यों घबराते हो ? तुम्हारा राजा अभिमानी है। वह घर आये का सम्मान करना भी अपनी तौहीन समझता है। लेकिन तुम्हारा तो कोई दोष नहीं है। अतः तुम निर्भय रहो।

"मंत्रियो ! रिपुदारण न तो राजा बनने के योग्य है और न तुम्हारा स्वामी बनने के योग्य है, क्योंकि राजहंसों का स्वामी कौआ नहीं हो सकता।"

रिपुदारण के सभी मंत्री उसके विरुद्ध हो गए। तपन चक्रवर्ती ने अपने मंत्री योगेश्वर को रिपुदारण के पास उसे पाठ पढ़ाने भेजा। योगेश्वर तंत्रवादी था। बहुत से राजपुरुषों को लेकर मंत्री योगेश्वर रिपुदारण के

पास पहुँचा। जिस समय योगेश्वर रिपुदारण के पास गया, शैलराज और मृषावाद उससे चिपटे हुए थे। योगेश्वर के इशारे पर उसके साथ वाले सेवकों ने रिपुदारण को एकदम नंगा कर दिया। उसके बाल नोंच डाले गए। उसके शरीर पर राख पोत दी। रिपुदारण का ऐसा बीभत्स और हास्यास्पद रूप हो गया कि सब लोग तालियां पीट-पीट कर हँसने लगे। तपन चक्रवर्ती के मंत्री योगेश्वर के साथ जो राजसेवक थे, वे ताल दे-दे कर गाने लगे—

'जो प्राणी अविवेक की बहुलता के कारण गर्व करते हैं और विश्व को बाधा पहुँचाने वाला असत्य बोलते हैं, वे इसी भव में अपने पाप के बोझ से तीव्र विडम्बनाओं और दुःखों को प्राप्त करते हैं।''

अपनी दशा से विवश रिपुदारण सेवकों के पैरों में गिर-गिर कर दया की भीख माँग रहा था। विवश होकर उसे भी सेवकों के साथ नाचना पड़ता था।

सेवकों ने दूसरा पद गाया—

'अरे लोगो! आप शैलराज के साथ विलास करने का फल तो देखें कि जो रिपुदारण अपने गुरुजनों को भी नमस्कार नहीं करता था, वही आज सेवकों के पैरों में गिर रहा है।''

× × ×

संसारी जीव ने अगृहीतसंकेता से कहा—

"बहिन अगृहीतसंकेता! योगेश्वर मेरे पिछले जीवन के बारे में यह जानता था कि शैलराज के वश में होकर मैंने अपनी माता और पत्नी को मारा था। अतः योगेश्वर ने सेवकों से कहा—

"लोगो! इस प्रकार गीत गाओ कि जो व्यक्ति जन्म देने वाली माँ और बुद्धि देने वाले गुरु का अपमान करता है, वह यहीं दासों के पैरों से रौंदा जाता है और जो झूठ बोलकर लोगों को दुःखी करता है, वह तपन चक्रवर्ती द्वारा इसी प्रकार दण्ड पाता है।

"अगृहीतसंकेता! अन्त में योगेश्वर ने ही मुझसे कहा कि रिपुदारण तूने कभी भी गुरु और माता-पिता को नमस्कार नहीं किया, अतः तू आज तपन चक्रवर्ती के चरणों में गिरकर नाच।

"अगृहीतसंकेता! मेरी जो दुर्दशा हुई, उसका मैं कहाँ तक वर्णन करूँ। लात-घूँसों से मेरी पिटाई की गई।

"तपन चक्रवर्ती ने मेरे छोटे भाई कुलभूषण को गद्दी पर बैठा दिया। मैं तो पिटते-पिटते ऐसा हो गया कि मेरे पेट से रक्त निकलने लगा। भवितव्यता ने मुझे जो भवमेद्य गुटिका दी थी, वह समाप्त हो गई थी, अतः उसने मुझे दूसरी गोली दे दी।

"अगृहीतसंकेता! भवमेद्य गोली के प्रभाव से मैं मर कर दूसरे भव में नरक में गया। उसके बाद भवितव्यता बार-बार गोलियाँ देकर मुझे अनेक योनियों में भटकाती रही। मैं मनुष्य भव में भी गूँगा-बहरा, अपाहिज बनता रहा।"

संसारी जीव ने रिपुदारण के अन्त के साथ जब अपनी आत्मकथा समाप्त की तो प्रज्ञाविशाला सोचने लगी कि संसारी जीव को शैलराज और मृषावाद की मित्रता बहुत महँगी पड़ी। इसने बार-बार मिले देव-दुर्लभ मनुष्य जन्म को पाप बंध करने में यों ही व्यर्थ गँवा दिया। घमण्ड और झूठ—शैलराज और मृषावाद मनुष्य के दुष्टतम शत्रु हैं, पर मनुष्य उन्हें अपना मित्र समझकर अपना जन्म गँवा देता है।

इसके बाद संसारी जीव ने आगे कहा—

"अगृहीतसंकेता! अन्त में मेरी पत्नी भवितव्यता ने मुझे एक और गोली देकर कहा कि अब तुम्हारा जन्म वर्धमान नगर में होगा। वहाँ तुम्हारा मित्र पुण्योदय साथ रहेगा। भवचक्रपुर में मनुजगति नामक नगर के मुहल्ले वर्धमान नगर में मेरा जन्म हुआ। वहाँ मुझे मध्यम प्रकार के गुण प्राप्त हुए।"

× × ×

हे प्राणियो! इस प्रकार मैंने (सिद्धर्षि गणिने) मध्यस्थ भावों का अवलम्बन लेकर मान, रसना और असत्य के चरित्र का वर्णन किया। आप भी मध्यस्थ भाव का सहारा लेकर और विशुद्ध अन्तःकरण वाले बन कर रसना, मान और असत्य का त्याग कर जैनेन्द्र मत के प्रति उत्कृष्ट प्रेम धारण करें।

(प्रथम प्रकरण समाप्त)

[१]

वामदेव : माया और स्तेय

सदागम, भव्य पुरुष, प्रज्ञाविशाला और अगृहीतसंकेता संसारी जीव से उसकी आत्मकथा सुन रहे हैं। रिपुदारण तक की अपनी आत्म-कथा सुनाने के बाद संसारी जीव ने अपने अन्य छोटे-मोटे जन्म सुनाने के बाद आगे कहा कि मैं वामदेव नाम का श्रेष्ठि पुत्र बना। जब मैं नन्दिवर्धन था, तब वैश्वानर (क्रोध) मेरा अभिन्न मित्र था और हिंसा से तो मेरा विवाह ही हुआ था। उसके बाद जब मैं रिपुदारण बना तो शैलराज (अभिमान) मेरा मित्र बना और उसने मेरी दुर्गति कराई। शैलराज के साथ मृषावाद ने भी मेरे जीवन का सर्वनाश किया। लेकिन अगृहीतसंकेता ! मैं अपने शत्रुओं को कभी नहीं पहचान पाया। मैं उन्हें अपना हितैषी और शुभ-चिन्तक ही समझता रहा और अपने जीवन को उन्हीं के हाथ का खिलौना बनाता रहा। अब जब मैं वामदेव नामक श्रेष्ठिपुत्र बना तो माया और स्तेय के वश में होकर दुर्लभ मानव-भव को गर्त में गिरा दिया। अब तुम वामदेव के जीवन की मेरी आत्म-कथा सुनो।

× × × ×

अगृहीतसंकेता ! यह तो तुम जान ही गई हो कि मेरी आत्मकथा में दो तरह के नगरों—देशों का उल्लेख हुआ है—एक बाह्य और दूसरे अन्तरंग। चित्तवृत्ति अटवी, चित्तसौन्दर्य नगर, तामसचित्त आदि अन्तरंग नगर हैं, तो बाह्य देश में वर्धमान नामक नगर था। हर नगर की अपनी एक विशेषता होती है। इस वर्धमान नगर की विशेषता यह थी कि उसमें रहने वाले प्राणी जैनधर्मपरायण थे और थे जातिवत्सल, अतिथिसेवी तथा उदार। इस नगर में धवल नामक राजा राज्य करता था।

वर्धमान नगर के राजा धवल की पटरानी का नाम कमलसुन्दरी था। राजा-रानी दोनों धर्मनिष्ठ थे। रानी कमलसुन्दरी ने एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम विमल रखा गया। राजकुमार विमल पुण्यों का धनी, सुन्दर, सुलक्षण और होनहार था। जितना उसे माता-पिता चाहते थे, उतना ही प्रजाजन भी चाहते थे।

वर्धमान नगर में सोमदेव नामक एक नगर-प्रसिद्ध श्रेष्ठी रहता था। राजा धवल से भी इसकी अच्छी जान-पहचान थी। इसकी सेठानी का नाम

कनकसुन्दरी था। सेठ-सेठानी भी धर्मपरायण थे। इनके वामदेव नामक एक पुत्र था। भव-परम्परा से संसारी जीव ने ही वामदेव के रूप में कनकसुन्दरी सेठानी की कोख से जन्म लिया था। पुण्योदय नाम का परम-हितैषी अन्तरंग मित्र भी वामदेव के साथ जन्मा था।

जन्म के कुछ ही वर्षों बाद जब वामदेव कुछ समझदार हो गया तो एक दिन एकान्त में काले रंग के दो पुरुष और झुकी हुई कमर की एक स्त्री उसके पास आये। इनमें से एक पुरुष वामदेव से बोला—

"क्यों भैया! तुमने मुझे पहचाना कि नहीं?"

"मेरी पहचान में नहीं आये कि तुम कौन हो।" वामदेव ने काले रंग के पुरुष से कहा—"लेकिन तुम अपने ही स्वजन-जैसे मालूम पड़ते हो।"

"हमारा-तुम्हारा कई जन्मों का साथ है।" उस पुरुष ने कहा—"लेकिन तुम मुझे भूल गए, यह जानकर मुझे भारी संताप हुआ है। तू मुझे ही नहीं भूला, अपने को ही भूल गया है। तेरा नाम संसारी जीव है। वामदेव, रिपुदारण, नन्दिवर्धन आदि तो तेरी देहों के नाम हैं। पहले तू असंव्यवहार नगर में रहता था। भ्रमण की इच्छा से जब तू असंव्यवहार नगर छोड़कर चला तो तेरी पत्नी भवितव्यता भवमेद्य गुटिका दे-देकर तुझे भव-भ्रमण कराती रही। खैर, यह कहानी तो लम्बी है। मैं भी कई नाम-रूपों से तेरे साथ रहा है। जब तू रिपुदारण बना था, तब तू मुझे मृषावाद के नाम से जानता था। तू मुझे पाकर धन्य था। मेरी शक्ति से भी तू प्रभावित था। मैंने तुझे बताया था कि मेरी जो भी सामर्थ्य है, वह मेरी बहन माया के कारण है। यह देख, मैं तेरी भलाई के लिए अपनी बहन माया को भी साथ लाया हूँ। यह रागकेसरी की पुत्री है। इसकी शक्ति का लोहा पूरा जगत मानता है। यह दूसरा व्यक्ति स्तेय है। इसकी शक्ति भी अद्वितीय है। हम तीनों तेरे बड़े काम के हैं।"

वामदेव ने बड़ा भारी हर्ष प्रकट करते हुए कहा—

"मैंने तुम्हें एकाएक ही नहीं पहचाना, यह मेरी भूल है। लेकिन जैसे अपनों को देखते ही अपनत्व जागता है, वैसे ही तुम्हें देखते ही मैं हर्ष से भर गया था। मैं तुम्हारा हृदय से स्वागत करता हूँ। अब तुम सदा मेरे साथ ही रहोगे।"

वामदेव ने मृषावाद, स्तेय और माया—तीनों को स्थान दिया। वे तीनों अपनी योगशक्ति से वामदेव की देह में प्रविष्ट हो गए।

अब तो वामदेव की चेतना भ्रमित होने लग गई। माया की शक्ति

से वह पूरे संसार को ठगना चाहता था। स्तेय उसे चोरी करने की प्रेरणा देता था। जिसका साथी स्तेय हो, वह बिना परिश्रम और बिना भाग्य (पुण्य) के ही धनवान बन सकता है, यह सब वामदेव सोचने लगा।

वर्धमान नगर के राजा धवल और श्रेष्ठी सोमदेव के निकट के संबंध के नाते रानी कमलसुन्दरी और सेठानी कनकसुन्दरी का भी मिलना-जुलना था। जब भी सेठानी रानी के यहाँ जाती बालक वामदेव को भी साथ ले जाती। राजकुमार विमल और श्रेष्ठिपुत्र वामदेव समवयस्क थे। दोनों माताओं के मिलने-जुलने से विमल और वामदेव भी साथ-साथ खेलते और उठते बैठते थे। इस तरह दोनों में बचपन से ही मित्रता हो गई। बड़े होकर भी राजपुत्र विमल और श्रेष्ठिपुत्र वामदेव साथ-साथ खाते-पीते थे और घूमने-फिरने में भी सदा साथ रहते थे। दोनों घनिष्ठ मित्र थे। दोनों युवा हो गए थे और कलाओं-विद्याओं का उपार्जन भी किया था। फिर भी राजकुमार विमल विचक्षण, विनम्र और विद्याव्यसनी था। इस मित्रता में एक विशेष उल्लेखनीय बात यह थी कि विमल की मित्रता सच्ची थी और वामदेव की कपट तथा कुटिलता से भरी हुई, क्योंकि वह चिरसंगिनी माया के वशीभूत रहता था। वामदेव ऊपरी व्यवहार तो बहुत अच्छा करता था, पर मन में यही सोचता रहता था कि मैं कैसे इसको ठगूँ या इसके यहाँ चोरी करूँ। वस्तुतः तो वामदेव भी शुद्ध-सात्त्विक था, पर माया और स्तेय ने उसके सोच (चिन्तन) पर परदा डाल दिया था। जो भी हो, वर्धमान नगर के नागरिक, राजा धवल, रानी कमलसुन्दरी, सेठ सोमदेव और सेठानी कनकसुन्दरी यह समझते थे कि विमल और वामदेव अभिन्न मित्र हैं।

□

[२]

क्रीड़ानन्दन वन में

वनभ्रमण की इच्छा से एक बार विमल और वामदेव क्रीड़ानंदन नामक वन में पहुँचे। यह वन यथानाम तथागुण के अनुसार बहुत ही रम्य और कंटक तथा झाड़-झखांड़ों से रहित—निरापद था। इसमें बड़े सुन्दर लतामण्डप और कदली कुञ्ज बने हुए थे। वन के अनेक जीव यहाँ क्रीड़ा करते थे। ये जीव मनुष्यों को देखकर भागते नहीं थे, क्योंकि यहाँ अहिंसक और दयाधर्मी नर-नारी ही भ्रमण करने आते थे।

विमल और वामदेव एक लता मण्डप में बैठे थे कि उन्हें कुछ दूर से स्त्री-पुरुष की बातचीत तथा झांझर बजने का शब्द सुनाई दिया। झांझर वह आभूषण है, जिसे स्त्रियाँ अपने पैरों में पहनती हैं। आवाज स्पष्ट न होने के कारण दोनों मित्र उठकर आवाज की ओर चले तो रास्ते में उन्हें स्त्री-पुरुष के पद चिन्ह मिले। उन्हें देखकर विमल वामदेव को नर-नारी के लक्षण बताने लगा।

स्त्री-पुरुष—दोनों के शरीर लक्षण और उनके शुभाशुभ परिणाम बताने के बाद जब विमलदेव मौन हुआ तो वामदेव ने उससे पूछा—

"मित्रवर ! तुमने कहा था कि सभी शुभ लक्षणों का आधार अत्यन्त निर्मल सत्त्व अथवा आत्मिक बल है। तो मैं जानना यह चाहता हूँ कि आत्मिक बल जितना पहले होता है, उतना ही रहता है या इसी जन्म में बढ़ाया भी जा सकता है।"

"हाँ, आन्तरिक अथवा आत्मिक बल में वृद्धि भी हो सकती है।" विमल ने कहा—"वामदेव ! ज्ञान-विज्ञान, धैर्य, स्मृति, समाधि, ब्रह्मचर्य, दया, दान, तप आदि आन्तरिक बल बढ़ाने के साधन या उपाय हैं। जैसे कपड़े से पोंछने पर दर्पण साफ हो जाता है, उस पर जमी धूल हट जाती है, ऐसे ही इन साधनों से भी हमारा सत्व शुद्ध सो जाता है। अन्तरंग की चिकनाई—विकार दूर हो जाते हैं।"

यह बात वामदेव ने सुन तो ली और ऊपरी मन से 'हाँ' भी कह दिया। लेकिन माया के प्रभाव से विमल की हितकारी बात उसे अच्छी नहीं लगी। इस प्रकार बातें करते हुए दोनों मित्र उस लता मण्डप के निकट पहुँच गए, जहाँ स्त्री-पुरुष का एक जोड़ा आलिंगनबद्ध और रसनिमग्न था। उन दोनों के शारीरिक लक्षणों को देखकर विमल ने वामदेव से कहा कि वामदेव देखो, यह स्त्री-पुरुष साधारण स्त्री-पुरुष नहीं हैं। इनमें विशिष्ट लक्षण दिखाई दे रहे हैं, ऐसे लक्षण वाला पुरुष चक्रवर्ती होता है और स्त्री चक्रवर्ती की पत्नी होती है।

इसी बीच आकाश में दो तेजस्वी पुरुष दीखे, जो लता मण्डप के ऊपर ही मँडराने लगे। दोनों के हाथ में खड्ग थे। उनमें से एक बड़े क्रोध से लतामण्डप वाले पुरुष को ललकारने लगा—

"हे नराधम ! यहाँ तू इस स्त्री को लेकर छिपकर बैठा है, पर हमारी पहुँच से बाहर तू कभी नहीं है। आज हम तेरा वध करके ही रहेंगे।"

इस ललकार को सुनकर लतामण्डप वाले पुरुष ने स्त्री से कहा—"तुम सावधानी से रहना। मैं इन दुष्टों को पाठ पढ़ाकर आता हूँ।"

अपने साथ की स्त्री को लतामण्डप में ही छोड़कर वह पुरुष भी आकाश में उड़ गया। पहले जो दो पुरुष आकाश में थे, उनसे लतामण्डप वाले पुरुष से आकाश युद्ध होने लगा। जो दो पुरुष पहले आये थे, उनकी योजना यह थी कि एक तो लतामण्डप वाले पुरुष से युद्ध करे और दूसरा नीचे उत्तर कर लतामण्डप से उक्त स्त्री को लेकर भाग जाए। इसी इरादे से दूसरा आकाश-पुरुष बार-बार नीचे उतरने का प्रयत्न करता था और स्त्री भयभीत होकर काँप रही थी कि यह दुष्ट मुझे ले जाएगा। तब विमल ने उसे धीरज बँधाया—बहन! तुम निर्भय रहो। मेरे रहते तुम्हारा कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता।

आकाश-पुरुष जैसे ही लतामण्डप के नीचे उतरने को हुआ कि विमल के गुणों से प्रभावित होकर वन देवता ने उसे त्रिशंकु की तरह स्तम्भित कर दिया। अब तो वह अपने हाथ-पैर भी नहीं हिला सकता था। उधर लतामण्डप वाले पुरुष ने अपने प्रतिद्वन्द्वी को पराजित कर दिया और जब वह हारकर भागने लगा तो लतामण्डप वाले पुरुष ने उसका दूर तक पीछा किया। इधर वनदेवता ने स्तम्भित पुरुष को यह सोचकर मुक्त कर दिया कि स्त्री-रक्षा करने का मेरा काम पूरा हो ही गया। मुक्त होने के बाद दूसरा आकाश-पुरुष भी भयभीत होकर भाग गया।

अपने पति के चले जाने के कारण स्त्री लतामण्डप में विलाप कर रही थी कि दोनों दुष्ट मेरे मिलकर मेरे पति का कुछ अनिष्ट न कर दें। विमल उसे सांत्वना दे रहा था।

थोड़ी ही देर बाद स्त्री का पति दोनों को पूरी तरह पराजित करके लौट आया और लतामण्डप में नीचे उतर कर विमल कुमार को धन्यवाद देने लगा कि आप कोई भी हों पर मेरे पीछे मेरी स्त्री की रक्षा करके आपने मुझ पर बड़ा उपकार किया है। आप मेरे बन्धु, मित्र, जीवन, प्राण और सर्वस्व हैं।

अपनी प्रशंसा से संकुचित होकर विमल ने उक्त पुरुष से कहा—

"मैंने तो आपके साथ कुछ भी नहीं किया। आपकी स्त्री की रक्षा आपके ही पुण्यों से हुई है। फिर भी मैं इस घटना का रहस्य जानना चाहता हूँ कि ये दोनों व्यक्ति कौन थे, जो आपसे युद्ध करके आपकी स्त्री को लेजाना चाहते थे।"

"यह एक लम्बी कहानी है।" उक्त पुरुष ने विमल से कहा—"अब आप बैठिये, मैं अपने जीवन की पूरी कथा सुना रहा हूँ।"

इसके बाद वामदेव ने उक्त देव-पुरुष को विमल का परिचय दिया। देव-पुरुष अपने जीवन का इतिवृत्त प्रारंभ से ही सुनाने लगा। वह एक विद्याधर था। उसका नाम रत्नचूड़ था और उसकी स्त्री का नाम था आम्र-मंजरी। आम्रमंजरी को विमल ने पहले ही अपनी धर्मबहिन मान लिया था। धार्मिक व्यक्ति सहज भाव और स्वभाव से ही परदारा-सहादेर होते हैं। रत्नचूड़ विमल की धार्मिकता और उसके सत्व से बहुत प्रभावित था और इसीलिए अपनी आत्मकथा सुना रहा था। □

[२] विमल की निस्पृहता

वैताढ्य पर्वत की उत्तर श्रेणी में विद्याधरों के साठ नगर बसे हुए हैं और दक्षिण श्रेणी में पचास। दक्षिण श्रेणी में बसे पचास नगरों में गगन-शेखर नाम का एक नगर है। यहाँ के राजा-रानी के नाम मणिप्रभ और कनकशिखा हैं। रानी कनकशिखा के एक पुत्र और दो पुत्री हैं। पुत्र का नाम रत्नशेखर और पुत्रियों के नाम रत्नशिखा और मणिप्रभा हैं।

विद्याधर राजा मणिप्रभ ने अपनी बड़ी पुत्री रत्नशिखा का विवाह मेघनाद नामक विद्याधर के साथ किया तथा छोटी पुत्री मणिप्रभा का अमितप्रभ नामक विद्याधर के साथ। मणिप्रभा और अमितप्रभ के दो पुत्र हुए- एक अचल और दूसरा चपल। मणिप्रभ की बड़ी लड़की रत्नशिखा ने एक पुत्र को जन्म दिया, उसका नाम रत्नचूड़ रखा गया। इस प्रकार विद्याधर मणिप्रभ की दोनों पुत्रियाँ विवाहित होकर पुत्र-पुत्रियों वाली बनीं। उधर मणिप्रभ के पुत्र रत्नशेखर का विवाह रतिकान्ता नामक विद्याधर-कन्या से हुआ, जो एक पुत्री की माता बनी। उसकी पुत्री का नाम आम्रमंजरी रखा गया।

आम्रमंजरी और रत्नचूड़ रिश्ते में मामा-फूफी के बहिन भाई थे। लेकिन पुराने समय में मामा की लड़की के साथ बुआ के पुत्र का विवाह हो जाता था। अतः आम्रमंजरी का विवाह रत्नचूड़ के साथ हो गया। इस विवाह के पीछे कुछ कारण बने। एक तो यह कि आम्रमंजरी और रत्नचूड़

बचपन से ही साथ रहे थे, सो उनमें प्रेम हो गया था। दूसरा कारण यह था कि रत्नशेखर ने सिद्धपुत्र चंदन के मुँह से यह सुना कि तुम्हारा भानजा रत्नचूड़ एक दिन विद्याधरों का चक्रवर्ती बनेगा।

"यही बात मेरे मित्र विमल ने भी मुझे बताई थी।" रत्नचूड़ की आत्मकथा के बीच में ही वामदेव बोल पड़ा—"मेरे मित्र विमल स्त्री पुरुष के शारीरिक लक्षणों के विशेष जानकर हैं। आपको देखते ही इन्होंने कह दिया था कि यह पुरुष चक्रवर्ती होना चाहिए।"

"आगम वचन सत्य होते हैं।" विमल ने वामदेव से कहा—"मैंने जो भी स्त्री-पुरुष लक्षण बताये थे, वे सब आगमों के आधार पर ही बताये थे। अब तुम रत्नचूड़ की कथा सुनो कि आगे क्या हुआ।"

रत्नचूड़ आगे कहने लगा कि रत्नशेखर भी जैन धर्म को मानने वाला था और उसका भानजा रत्नचूड़, अर्थात् मैं भी जैन धर्म को मानने वाला था। इन सब कारणों से रत्नशेखर ने अपनी पुत्री आम्रमंजरी का विवाह मेरे साथ कर दिया।

अचल और चपल, जो रत्नचूड़ की मौसी के पुत्र थे, वे इस विवाह से कुपित हो गए। वे रत्नचूड़ को मारकर आम्रमंजरी को लेना चाहते थे। उन दोनों के षड्यंत्रों का पता लगाने के लिए रत्नचूड़ ने मुखर नाम का अपना एक गुप्तचर उनके पीछे लगा दिया।

गुप्तचर मुखर ने रत्नचूड़ को बताया कि आपसे शत्रुता मानने वाले अचल-चपल काली नामक विद्या सफल करके लौट आये हैं। उन दोनों की योजना यह है कि अचल तो आपके साथ युद्ध करेगा और चपल आपकी पत्नी आम्रमंजरी का हरण करेगा।

रत्नचूड़ अचल-चपल दोनों को मारने में समर्थ था, पर मौसेरे भाई होने के कारण वह उनका वध करना नहीं चाहता था। अतः वह अपनी पत्नी को लेकर क्रीड़ानंदन वन में चला गया। रत्नचूड़ बोला—

"भाई विमल ! जिस रत्नचूड़ की कथा मैं सुना रहा था, वह मैं ही हूँ। यह मेरी पत्नी आम्रमंजरी है। मुझसे युद्ध करने जो यहाँ आये थे, वे अचल-चपल ही थे। जो कुछ आपके सामने हुआ, वह तो आपने देखा ही था। मैंने जो किया, वह भी संक्षेप में सुन लो।

"विमल भैया ! मुझसे पराजित होकर अचल जब यहाँ से भागा तो मैंने उसका पीछा किया और उसे अपने प्रहार से आकाश से नीचे धरती पर

पटक दिया, जिससे उसकी हड्डियाँ टूट गईं; उसकी सब विद्याएँ नष्ट हो गईं और वह निष्पंद हो गया। अब मुझे आम्रमंजरी की चिन्ता थी कि पापी चपल उसे अवश्य उठा ले गया होगा। मैं जब इधर को आ रहा था तो आकाशमार्ग में ही मुझे चपल मिल गया। मैंने उसकी भी अचल-जैसी दुर्गति कर दी। यहाँ मैंने आपके द्वारा अपनी पत्नी को रक्षित देखा तो मैं आपके उपकार से कृतकृत्य हो गया। आपको देने योग्य मेरे पास कुछ भी नहीं है। उपकार का बदला चुकाना भी एक प्रकार से कृतघ्नता ही है। फिर भी मेरा आग्रह है कि आप मुझसे कुछ अवश्य माँगें।"

रत्नचूड़ के बार-बार आग्रह करने पर भी जब विमल ने उससे कुछ भी लेना नहीं चाहा तो उसने अपनी इच्छा से ही उसे एक अत्यधिक मूल्यवान मणि देनी चाही और कहा कि इसे स्वीकार कर मुझ पर अनुग्रह कीजिए। उस रत्न-मणि के गुण बताते हुए रत्नचूड़ ने कहा कि यह रत्न सर्व रोगों को हरने वाला, दारिद्र्य को नष्ट करने वाला और शक्ति-सामर्थ्य बढ़ाने वाला चिन्तामणि के समान है। सब कुछ जानने के बाद विमल ने कहा—

"ऐसा मूल्यवान रत्न तो विद्याधरों के पास ही रहना चाहिए। मेरी अपेक्षा यह आपके लिए ही अधिक उपयोगी है। अतः आपने कहा और मैंने ले लिया, ऐसा मानकर इसे आप अपने पास ही रखिये। आपके पास रहा तो मैं मानूंगा कि मेरे पास ही है।"

ऐसी अद्भुत निःस्पृहता देखकर रत्नचूड़ गद्गद हो गया। हर्ष के साथ उसे इसका दुःख भी हुआ कि मैं अपने उपकारी को कुछ भी दे नहीं पा रहा हूँ। तब पति की उदासी देखकर आम्रमंजरी ने विमल से कहा—

"विमल भैया! स्पृहारहित होने पर भी सज्जन पुरुष उस दान को लेने से इन्कार नहीं करते जो प्रेम से प्रेरित होकर दिया गया हो। क्योंकि सज्जन पुरुष ऐसे प्रेम दान को अस्वीकार कर दानी का दिल नहीं तोड़ते। अतः आप मेरे स्वामी को इच्छा स्वीकार कर ही लीजिए।"

विमल ने रत्नचूड़ से दिव्यरत्न मध्यस्थ भाव से स्वीकार कर लिया। रत्नचूड़ ने एक डिबिया में बन्द करके वह रत्न विमल के उत्तरीय के छोर में बाँध दिया था।

अन्त में वामदेव ने रत्नचूड़ से कहा कि रेत पर जब हमने आप दोनों के पद चिन्ह देखे थे, तब मेरे मित्र विमल ने कहा था कि इस चिन्ह वाला

पुरुष चक्रवर्ती और इस चिन्ह की स्त्री चक्रवर्ती की पत्नी होती है। उसी की प्रतीति—परीक्षा करने हम यहाँ आये थे, सो सब बात ठीक ही निकली।

बात-चीतों के क्रम में रत्नचूड़ ने यह भी जान लिया कि परम सात्विक, पुण्यों का धनी और भव्यात्मा होने पर भी विमल ने अभी तक जैन धर्म को नहीं जाना है। □

[४]

विमल का उत्थान

रत्नचूड़ ने विमल से कहा—

"मित्रवर! इसी क्रीड़ानन्दन वन में मेरे मातामह—नाना मणिप्रभ ने एक नया भव्य धर्मस्थान बनवाया है। समय-समय पर यहाँ भावुक भक्त गण आकर धर्म की आराधना-साधना करते हैं। उस स्थान का वातावरण इतना प्रशान्त और प्रभावी है कि वहाँ रहने से धर्मभाव जाग्रत होते हैं। तुम मेरे साथ चलकर उस स्थान को देख आओ।"

रत्नचूड़ की बात सुनकर धर्मात्मा विमल बहुत प्रसन्न हुआ। रत्नचूड़, आम्रमंजरी, विमल और वामदेव-चारों वह स्थान देखने चल दिये। लेकिन माया और स्तेय से ग्रसित होने के कारण वामदेव बने संसारी जीव को वहाँ जाना अच्छा नहीं लगा। पर कपटी होने के कारण उसने बाहरी प्रसन्नता दिखाकर विमल का साथ दिया।

चारों जन उस धर्मस्थान पहुँचे। संयोग से एक श्रमण वहाँ विराजमान थे। चारों ने उनकी वंदना की और देशना देने का निवेदन किया। देशना सुनते-सुनते विमल एकाएक ही मूर्च्छित होकर गिर गया। सभी लोग घबरा गए कि यह क्या हो गया। मुनिजी ने रत्नचूड़ को समझाया कि तुम्हें घबराने की आवश्यकता नहीं है, तुम्हारे मित्र को जातिस्मरणज्ञान उत्पन्न हुआ है।

शीतलोपचार के बाद विमल को जब होश आया तो उसने रत्नचूड़ के पाँव पकड़ लिये और बोला—

"आप मेरे गुरु, मेरे पिता-माता, बन्धु, सखा—सब कुछ हैं। आपने मुझे मोक्षदाता धर्म का बोध कराया है। जब मैं मुनिजी की देशना सुन रहा था तो मुझे लगा कि ऐसे संतों के दर्शन मैंने पहले भी किये हैं और उनकी देशना भी सुनी है। ऐसा सोचते-सोचते मुझे अपने पूर्वजन्मों का साक्षात्

स्मरण हो आया। पहले कई भवों में मैंने सम्यक्त्व प्राप्त किया था। मेरा अधिकांश समय धर्म का पालन करने में बीतता था। आज तक मैं धर्म को भूला हुआ था। तुम्हारे कारण ही मुझे धर्म का पुनर्बोध हुआ है। अतः तुम्हीं मेरे गुरु हो।"

"इस सबका श्रेय तो इन श्रमण संत को है।" रत्नचूड़ ने कहा—"मेरी प्रशंसा करके तुम मुझे संकोच में डाल रहे हो।"

यह कहकर रत्नचूड़ ने विमल से अपने पाँव छुड़ाये और पुनः बोला—

"तुम तो स्वभाव से ही धर्मबोधि हो। महामूल्यवान रत्न प्राप्त होने पर भी तुमको प्रसन्नता नहीं हुई। वह रत्न तुमने हर्ष-विषाद-रहित मध्यस्थ भाव से ग्रहण किया था और अब मुनि दर्शन करके तुम्हारा रोम-रोम हर्ष से भर गया। अधम जीव ही धनादि का वैभव पाकर प्रसन्न होते हैं, पर भव्य जीव तो धर्म-तत्त्व पाकर ही हर्षित होते हैं।

"भाई! मैं मानता हूँ कि लोकान्तिक देव तीर्थंकरों को भी जाग्रत करते हैं, पर वे देव तीर्थंकरों के उपदेशक या गुरु नहीं होते। तुममें जो धर्म-जागरण हुआ है, वह मुनिजी के कारण हुआ है।"

विमल बोला—

"मुनि के दर्शन और उनकी देशना सुनकर मुझे जातिस्मरणज्ञान हुआ। लेकिन तुम यहाँ न लाते तो यह कैसे सम्भव था? तुमने जो मेरे साथ उपकार किया है, उसकी तुलना लोकान्तिक देवों के आचार से नहीं की जा सकती। लोकान्तिक देव भगवान के बोध के निमित्त नहीं होते। सर्वज्ञ-भाषित धर्म की प्राप्ति में जो प्राणी तनिक भी निमित्त या साधन बनता है, वह गुरु ही होता है।"

इस प्रकार विमल और रत्नचूड़ में थोड़ी देर वार्त्तालाप हुआ। जो मुनि देशना दे रहे थे, वे आकाशचारी थे, जो तुरन्त ही आकाश में उड़ गए और चारों जन उन्हें देखते रह गए। विमल को बड़ा पछतावा हुआ, क्योंकि जातिस्मरणज्ञान उत्पन्न होने के बाद उसने दीक्षा लेने का निश्चय किया था। उसने अपने मन की बात रत्नचूड़ को बताई तो रत्नचूड़ ने कहा—

"इसी धर्मस्थान में मैंने एक बार अपने परिवार सहित बुधाचार्य के दर्शन किये थे। मैं तुम्हें उनसे मिलाऊँगा। वे तुम्हें दीक्षा देंगे।

"तुम यह भी जानना चाहोगे कि बुधाचार्य कौन हैं। अतः मैं तुम्हें बता दूं कि वे धरातल नगर के राजा शुभविपाक के पुत्र हैं। निजसाधुता

उनकी माता है। वे आचार्य अनेक लब्धियों के धारक हैं। मैंने जब उनकी देशना सुनी थी, तब उन्होंने अपना रूप बीभत्स बना रखा था।"

"तो तुम मुझे उनसे अवश्य मिलवाना।" विमल ने कहा—"मेरा मन इस संसार से उचट गया है। मैं बहुत जल्दी दीक्षा लेना चाहता हूँ।"

"मित्र ! तुम्हें छोड़ने को मेरा मन नहीं होता। सज्जन पुरुषों का संग तो दुर्जनों को भी अच्छा लगता है।" रत्नचूड़ ने कहा—"फिर भी मैं अपने नगर जाने की तुमसे अनुमति चाहता हूँ। मेरे वियोग में मेरे माता-पिता बहुत दुखी होंगे। माता-पिता से मिलने के बाद मैं बुधाचार्य का पता लगाकर शीघ्र ही तुम्हारे पास आऊँगा।"

यह कहकर रत्नचूड़ ने विमल से विदा ली। आम्रमंजरी ने आँखों में आँसू भरकर विमल से कहा—अपनी बहन को भूल मत जाना। रत्नचूड़ और आम्रमंजरी के जाने के बाद विमल और वामदेव अपने नगर को चल दिये। इतने समय रत्नचूड़ और विमल के साथ रहने के बावजूद भी वामदेव पर धर्म का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। पूरे समय वह इसी उधेड़-बुन में लगा रहा कि जो रत्न विमल के पास है, उसे मैं कैसे इससे प्राप्त करूँ। धर्मबोध के लिए साधु-संग से अधिक जरूरी ग्रहणशीलता है। जिसमें ग्रहणशीलता नहीं होती, वह कितनी ही देशनाएँ सुने, उस पर कोई प्रभाव नहीं होता। हाँ, आगे के लिए संस्कार अवश्य बनते हैं। एक ही मुनि की देशना सुनकर विमल को धर्मजागृति हुई—प्रतिबोध हुआ और वामदेव के कान पर जूँ तक नहीं रेंगी। बहुलिका अथवा माया नाम की ठगिनी के वश हुआ वामदेव दुष्ट चिन्तन में ही लीन रहा।

क्रीडानंदन वन से नगर को जाते हुए मार्ग में विमल ने वामदेव से कहा—

"वामदेव ! इस मूल्यवान रत्न को यहीं कहीं रख चलो। जब आवश्यकता होगी ले जाएँगे।"

वामदेव ने तुरन्त धरती में एक गड्ढा खोदा और रत्न उसमें रखकर धरती को समतल कर दिया। फिर यथासमय दोनों मित्र नगर पहुँच गए और अपने-अपने घर जाकर सोये। घर जाकर वामदेव सो नहीं सका। माया उसे बार-बार प्रेरित कर रही थी कि सब सिद्धियों के देने वाले रत्न को चुरा क्यों नहीं लेता ?

वामदेव ने विमल की मित्रता को भुला दिया। यह नहीं सोचा कि चोरी और वह भी मित्र की चोरी महापाप है। स्तेय और माया के वश

वामदेव तुरन्त वहां गया जहाँ रत्न गाड़ा हुआ था। उसने एक दूसरा गड्ढा खोदा। पहले गड्ढे में से रत्न निकाल कर दूसरे गड्ढे में रखा और पहले गड्ढे में रत्न के बराबर का पत्थर का टुकड़ा रखकर दोनों गड्ढों को पाट-कर समतल कर दिया। ऐसा करके वामदेव ने सोचा कि अब जब भी विमल को गड्ढा खोदकर पत्थर देखेगा तो सोचेगा कि मेरी पुण्यहीनता से रत्न पत्थर बन गया। मैं जब चाहूँगा, दूसरे गड्ढे से रत्न निकाल ले जाऊँगा। □

[५] **वामदेव का पतन**

घर आकर वामदेव रात भर छटपटाता रहा कि मैंने बहुत बड़ी मूर्खता की जो रत्न को दूसरे गड्ढे में गाड़ आया। यदि किसी ने रत्न गाड़ते समय मुझे देख लिया होगा तो वह रत्न निकाल ले जायगा। मुझे वह रत्न अपने साथ लाना था। यह सोचकर बहुत सबेरे प्रातःकाल वामदेव पुनः क्रीड़ानन्दन वन में पहुँचा और गड्ढा खोदकर रत्न निकाल लिया। उधर प्रातःकाल विमल वामदेव के घर पहुँचा तो उसके घर वालों ने बताया कि हमसे कुछ कहकर नहीं गया। वैसे हमने उसे क्रीड़ानंदन वन की ओर जाते देखा।

मैत्रीभाव से अभिभूत होकर विमल भी वामदेव को देखने क्रीड़ा-नंदन वन में पहुँच गया। वहाँ उसे वामदेव मिल गया तो वह विमल को देखकर सकपका गया। गनीमत यह थी कि विमल के पहुँचने से पूर्व वामदेव रत्न निकालकर अपने पास छिपा चुका था। अपनी सफाई देते हुए वामदेव पहले से ही कहने लगा—

"विमल भैया! मुझे मालूम हुआ था कि तुम क्रीड़ानंदन वन में गये हो तो तुम्हें देखने यहाँ चला आया।"

"अच्छा हुआ, हम दोनों मिल गये।" विमल ने सहज भाव से कहा—"तुम्हारे बिना मुझे कहीं भी जाना अच्छा नहीं लगता। अब आये ही हैं तो चलो पुनः मणिप्रभ द्वारा बनवाये गये धर्मस्थान को देख आयें।"

विमल और वामदेव धर्मस्थान में गये। विमल जैसे ही धर्मस्थान में प्रविष्ट हुआ, वामदेव वहाँ से भाग छूटा। रत्न लेकर वह नगर में

रहना नहीं चाहता था। उसने सोचा कि चोरी का धन लेकर बाहर ही रहना चाहिए। फिर मेरे पास तो ऐसा रत्न है कि जहाँ भी रहूँगा, ठाट से रहूँगा। यह सोचकर वामदेव भागता रहा—भागता रहा। तीन रात और तीन दिन लगातार दौड़ने के बाद वामदेव अपने नगर से अट्ठाईस योजन (३४० किलोमीटर लगभग) दूर पहुँच गया।

उधर विमल ने जब अचानक ही वामदेव को गायब देखा तो उसे बड़ी चिन्ता हुई। उसने अपने सेवकों से कहा कि पूरा क्रीड़ानंदन वन छान डालो। चारों दिशाओं को खोजो। जैसे भी बने मेरे मित्र वामदेव को लेकर आओ।

अपने नगर से अट्ठाईस योजन दूर पहुँचने के बाद वामदेव ने जब छिपा हुआ रत्न निकाला तो अपना सिर धुनने लगा। रत्न की जगह वह पत्थर उठा लाया था। जल्दी में उसने पहले वाला गड्ढा खोदकर वहाँ पत्थर रखा था, वह निकाला और भाग आया। अब देखा तो पछताने लगा कि चोरी में जल्दी तो करनी ही पड़ती है। मैंने घर भी छोड़ा और रत्न भी गँवाया। अब तो लौटना पड़ेगा।

रत्न लेने की धुन में वामदेव नगर को लौटने लगा। रास्ते में उसे विमल के सेवक मिल गये और बोले कि आप कहाँ चले गये थे। आपके वियोग में युवराज विमल तड़प रहे हैं।

वामदेव का बचकर निकलना अब मुश्किल था। अतः उसे विमल के सेवकों के साथ जाना पड़ा। उसे देखकर विमल उससे लिपट गया। आँखों में आँसू भर कर बोला—वामदेव ! तुम कहाँ चले गये थे ?

आँसू वामदेव की आँखों में भी थे। पर वे आँसू कपट और माया के थे, जबकि विमल के आँसू मित्र-मिलन की खुशी के थे।

माया महाठगिनी है। इसका दूसरा नाम बहुलिका है, क्योंकि यह बहुत से रूप धारण कर लेती है। स्तेय की शक्ति से वामदेव ने चोरी की थी और अब माया अथवा बहुलिका की शक्ति से वह नया नाटक रचकर विमल पर अपनी नकली मित्रता का प्रभाव जमाना चाहता था। अतः माया से उसने तुरन्त एक कहानी बनाई—

"मित्र विमल ! तुम जैसे ही धर्मस्थान के द्वार से भीतर गये, मैं द्वार पर ही खड़ा था कि एक विद्याधरी मुझे लेकर उड़ गई। वह बहुत सुन्दर थी, पर उसके हाथ में नंगी तलवार भी थी। मैं भय और शृंगार के भावों से ग्रसित उस विद्याधरी के चंगुल में फँस गया। वह मुझसे

भोग की याचना करने लगी। मैंने उससे कहा कि विमल जैसे मित्र को छोड़कर मुझे स्वर्ग का सुख भी नहीं चाहिए। बातें हो ही रही थीं कि तभी एक दूसरी विद्याधरी आ गई। मुझे अपनाने के लिये दोनों आपस में आकाश-युद्ध करने लगी। मैं पहली के हाथ से छूटकर नीचे गिरा तो मेरा कचूमर निकल गया। गिरते-पड़ते मैं अपने नगर को लौट रहा था कि रास्ते में तुम्हारे सेवक मिल गये।"

सरल स्वभावी विमल ने वामदेव की मनगढ़न्त कहानी पर विश्वास कर लिया। जो स्वयं सच्चे होते हैं, वे सारे संसार को सच्चा समझते हैं।

वामदेव जब अपनी कपट कहानी सुना चुका तो अचानक उसे पेट में भयंकर दर्द होने लगा। दर्द से वह छटपटाने लगा। तुरन्त राजवैद्य बुलाये गये। राजा धवल भी वामदेव को देखने आये। सभी प्रयासों के बाद भी वामदेव का उदर-शूल शान्त नहीं हुआ। तब विमल ने सोचा, अरे मुझे जो रत्न रत्नचूड़ ने दिया था, वह तो सब रोगों को हरने वाला है। मैं स्वयं जाकर उस रत्न को लेकर आता हूँ।

तभी एक स्त्री प्रकट हुई और बोली—

"यह रोग नहीं है, जो रत्न से ठीक हो जायगा। यह तो दण्ड है, जो मैंने ही इसे दिया है।"

"हे महाभागे ! आप कौन हैं ?" विमल ने पूछा—"आपने किस अपराध पर मेरे मित्र को उदर-शूल का दण्ड दिया है।"

वह स्त्री बोली—

"मैं वनदेवी हूँ। तुम्हारा मित्र कपटी है। यह तुम्हारा रत्न चुरा कर भागा था। गलती से यह रत्न की जगह पत्थर का टुकड़ा लेकर भागा। मालूम होने पर यह पुनः असली रत्न चुराने लौटा था। विद्याधरी के अपहरण की कहानी इसने मनगढ़न्त सुनाई है। इसी ने गड्ढा खोदकर रत्न की जगह पत्थर रखा था और रत्न को दूसरे गड्ढे में गाड़ दिया।"

यह कहकर वनदेवी अन्तर्धान हो गई। वामदेव ठीक हो गया। वामदेव के कपट का भण्डाफोड़ हो गया तो सभी लोग उसे धिक्कारने लगे।

× × ×

संसारी जीव ने अगृहीतसंकेता से कहा—

"बहिन ! लेकिन सज्जनता की पराकाष्ठा तो देखो कि मेरा मित्र विमल किंचित् भी नहीं बदला। उसने मुझे पूर्ववत् गले से लगा लिया। मेरे माता-पिता सम्बन्धियों ने मेरा बहिष्कार कर दिया, फिर भी विमल ने मुझे अपने पास रखा। पर मुझ जैसे अधम प्राणी तो सज्जनों की मित्रता का लाभ नहीं उठा पाते। विमल को मैं मित्र मानता ही कब था ? मैं तो माया ठगिनी और दुष्ट स्तेय को ही अपना सब कुछ मानता था। विमल प्रतिबुद्ध होकर बुधाचार्य से दीक्षा लेने की प्रतीक्षा कर रहा था और मैं वामदेव भव कूप में गहरे से गहरा डूबने का ही प्रयास कर रहा था। सोचता हूँ, जो कुछ अब मैं जान पाया हूँ, पहले से ही जान जाता तो अपने दुष्ट अन्तरंग शत्रुओं को मित्र समझ कर अपने भव क्यों बिगाड़ता।" □

[६] **बुधाचार्य का संकेत—गुप्त संदेश**

एक दिन विमल और वामदेव पुनः क्रीडानंदन वन में गए और धर्म स्थान में जाकर देखा कि बुधाचार्य या अन्य कोई मुनि आये हों तो उनकी वंदना करें। दोनों मित्र जब धर्मस्थान में पहुँचे, तभी रत्नचूड़ विद्याधर वहाँ आया और विमल को प्रणाम कर बोला—

"मित्रवर ! मुझे वापस आने में दो-चार दिन लग गए, इस विलम्ब की मैं क्षमा चाहता हूँ। मैं विलम्ब से क्यों आया, इसका कारण भी सुनो।

"जब मैं अपने नगर में पहुँचा तो मेरे माता-पिता मेरे वियोग में तड़प रहे थे। उन्हें सांत्वना देने के बाद मैं नवकार मंत्र का जाप करते हुए सो गया तो मेरे कानों में आवाज पड़ी कि हे महाभाग उठो। मैं उठकर बैठा हो गया तो देखा कि अनेक देवियाँ मेरे सामने खड़ी हैं। वे सब रोहिणी आदि विद्यादेवियाँ थी। जो स्वतः ही सिद्ध होने मेरे पास आई थीं। धर्म-अनुग्रह से मैं अनेक दुर्लभ विद्याओं का धनी हो गया। विद्यादेवियों ने मुझसे यह भी कहा कि मैं निकट भविष्य में ही चक्रवर्ती बनूंगा और विशाल सेना मेरे अधीन होगी।

"जब सब विद्याएँ मेरे अधीन हो गईं, तभी प्रातःकाल की सूचना देने वाले वाद्य बजने लगे और कालनिवेदक कहने लगा कि सोने वालो जागो, उठो और सद्धर्म का आदर करो, जिससे तुम्हें अकल्पित विभूतियाँ प्राप्त हों।

"विमल भैया, कालनिवेदक के शब्द सुनकर मैं उठा और नित्यकर्म से निवृत्त होकर सोचने लगा कि चक्रवर्ती बनकर तो मैं संसार में फँस जाऊँगा। फिर मैं विमल के साथ दीक्षा नहीं ले सकूंगा। पर भोगावली कर्मों को कौन टाल सकता है ? सिद्धपुत्र चंदन ने भी मेरे बारे में भविष्यवाणी की थी कि मैं विद्याधरों का चक्रवर्ती बनूंगा और मेरे पदचिन्ह तथा शारीरिक लक्षण देखकर तुमने भी यही बताया था। अतः इसे मैंने प्रबल भावी मानकर ही स्वीकार किया।

"अन्ततः समस्त विद्याधरों ने मिलकर मेरा राज्याभिषेक कर दिया और मैं चक्रवर्ती बन गया। कुछ दिन मुझे नई राज व्यवस्था में बीते। फिर बुधाचार्य की खोज में निकल गया। कई नगरों में घूमने के बाद मुझे एक जगह बुधाचार्य के दर्शन हुए। मैंने उनसे तुम्हारा संदेश कहा कि विमल दीक्षा लेना चाहते हैं और वे यह भी चाहते हैं कि आप उनके बन्धु-बांधवों को भी प्रतिबोधित करें।

"विमल ! बुधाचार्य ने आपके लिए एक गुप्त संदेश दिया है और यह भी कहा है कि मैं कुछ दिनों बाद विमल के नगर में स्वतः ही आऊँगा।"

इसके बाद रत्नचूड़ विद्याधर ने बुधाचार्य का गुप्त संदेश विमल के कान में कह दिया, जिसे वामदेव नहीं सुन पाया। उसके बाद रत्नचूड़ विमल और वामदेव के साथ उनके नगर में गया तथा दो-चार दिन रहने के बाद अपने नगर को चला गया।

घर रहकर विमलकुमार की जो दिनचर्या बनी, उससे वह राजलक्ष्मी के प्रति उदासीन लगने लगा। इन दिनों वह संसार त्यागकर मुनि बनना चाह रहा था। उसके इस विरक्ति भाव को देखकर महाराजा धवल और महारानी बहुत चिंतित हुए। एक दिन महाराज धवल ने विमल से मन की बात कही कि वत्स ! तुम अपनी अवस्था के अनुरूप कार्य क्यों नहीं करते ? तुम्हें राजकन्याओं से विवाह करके दाम्पत्य सुख भोगना चाहिए और राजकार्य में रुचि लेनी चाहिए। आखिर यह राज्य तुम्हीं को तो सम्हालना है। तुम आज्ञाकारी पुत्र हो। फिर हमारी बात मानकर हमें तृप्त क्यों नहीं करते ?"

उत्तर में विमल ने कहा—

"पूज्य तात ! आप जैसा कहेंगे, मैं वैसा ही करूँगा।"

इतना कहने के बाद विमल ने सोचा कि माता-पिता को प्रतिबोधित

करने और बुधाचार्य के गुप्त संदेश का पालन करने का यह अवसर अच्छा है। यह सोच उसने अपने पिता से पुनः कहा—

'पूज्य ! मैं चाहता हूँ कि मेरी प्रजा में कोई दुखी न रहे। अपने राज्य के लोगों के दुखों को दूर करने के बाद मैं अपना राज्याभिषेक कराना चाहता हूँ। अपनी प्रजा को सुखी रखना ही राजा का धर्म है। अतः आप राजसेवकों को आज्ञा दीजिए कि वे दुखी प्राणियों को ढूंढ़कर मेरे पास लायें। वे मेरे साथ सुख का अनुभव करें, तभी मेरा राजा बनना सार्थक रहेगा।"

महाराज धवल विमल की इस योजना से बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने पर्याप्त राजसेवक दीन-हीन दुखी प्राणियों की खोज में भेज दिये। उधर विमल हिमगृह में जाकर रहने लगा। हिमगृह ऐसा भवन था, जहाँ ग्रीष्म ऋतु में बहुत ठंडक रहती थी। महल के आस-पास झरने, नहरें बनी थीं। कमल खिले रहते थे। हर उपाय से इस भवन को हिम-जैसा शीतल बनाया गया था। नृत्य-संगीत के सुन्दर आयोजन भी इस भवन में होते रहते थे।

योजनानुसार राजपुरुष दुखी प्राणियों को ढूंढ़कर हिम भवन में ले आते और वे वहीं रहकर सभी प्रकार के बाह्य सुखों को भोगते हुए ऐसा अनुभव करते मानों हम स्वर्ग में ही रह रहे हों। यों अपने पुत्र को सुखों में डूबा देख राजा धवल और रानी कमलसुन्दरी बहुत संतुष्ट थे।

[७] **उग्र दिव्य दर्शन**

एक दिन कुछ राजसेवक एक दीन-दुखी को लेकर हिमगृह में पहुँचे और उस व्यक्ति को परदे की आड़ में रखकर बोले—

"राजन् ! हम एक विचित्र और दरिद्रता की अंतिम सीमा को प्राप्त नारकीय जीव को लेकर आये हैं। उसका रूप इतना घृणित और वीभत्स है कि इसे आप देख नहीं सकते। इसीलिए हमने इसे पर्दे के पीछे रखा है।"

"ऐसा व्यक्ति तुम्हें कहाँ और कैसे मिला ?" राजा धवल ने कहा— "इसके बारे में कुछ विस्तार से बताओ।"

राजा की बात सुनकर एक राजसेवक ने विस्तार कहना शुरू किया—

"राजन् ! अपने नगर में जब हमें कोई दीन-दुखी नहीं मिला तो हम

जंगल में गए। वहाँ हमने इस व्यक्ति को तपती धूप में नंगे पैर चलते देखा तो हम बोले—ठहर जाओ। उत्तर में इसने चलते-चलते ही कहा—तुम्ही लोग ठहरो। मैं तो ठहरा हुआ ही हूँ। यह कहते हुए यह चलता ही रहा। हम लोगों ने इसे दौड़कर पकड़ा। फिर हमने इससे पूछा कि भाई! ऊपर से सूर्य अग्नि बरसा रहा है और नीचे धरती तवे-सी तप रही है। तुम नंगे पैर क्यों घूम रहे हो? थोड़ी देर पेड़ की छाया में क्यों नहीं बैठते? इस पर इस व्यक्ति ने हमसे कहा कि मैं अपने गुरु की आज्ञा से घूम रहा हूँ। मैं पराधीन हूँ। मेरे साथ भयंकर आठ ऋणदाता लगे हुए हैं, उनका ऋण मेरे गुरु ग्रन्थीदान देकर चुकायेंगे। इसका रूप जो हमने देखा वह यह है कि इसका रंग अत्यन्त काला है। शरीर से कोढ़ फूट रहा है। आँखों में कीचड़ भरे हैं। मुँह से लार टपक रही है। रूप से यह भयावह, घृणित और नारकीय जैसा है। हमने इससे कहा कि तू हमारे राजा के पास चल, वे तुझे ऋण मुक्त कर देंगे। तेरी भूख-प्यास मिटा देंगे। सब तरह से तुझे सुखी कर देंगे। यह बोला—तुम्हारा राजा मुझे ऋणमुक्त नहीं कर सकता। यह कह यह व्यक्ति हाथ छुड़ाकर पुनः चलता बना। हमने सोचा कि दुखों के बोझ से यह पागल हो गया है। अतः हमने पुनः इसे बलपूर्वक पकड़ा और आपके पास यहाँ ले आये हैं।"

उत्सुकतावश राजा धवल ने परदा हटाकर अलग कर दिया और उस व्यक्ति को वैसा ही बीभत्स पाया, जैसा कि राजसेवकों ने कहा था। युवराज विमल ने उसे देखा तो सोचा कि ये तो निश्चय ही आचार्य बुध हैं। आचार्य बुध ने रत्नचूड़ द्वारा मुझे अपना गुप्त संदेश भिजवाया था कि तुम दीन-दुखियों को सुखी करने की योजना बनाकर हिम भवन में रहना। वहीं मैं एक दिन आकर तुम्हारे परिवारी जनों को प्रतिबोध करूँगा। अतः ये आचार्य बुध ही घृणित रूप बनाकर यहाँ आये हैं। ये वैक्रिय लब्धि द्वारा अनेक रूप धारण कर सकते हैं। आचार्य बुध ने अपने गुप्त सन्देश में यह भी कहलाया था कि मैं इन्हें सबके सामने पहचानूँ नहीं।

यह सोच विमल ने कोढ़ी रूप धारी बुधाचार्य की अन्तरंग में भाववंदना की, जिसे उन्होंने स्वीकार किया और धर्मलाभ कहा।

आचार्य बुध की दीन दशा देखकर कई लोग तो हँस रहे थे। कुछ व्यंग्य वाणी में बोल रहे थे। कुछ दया भाव दिखा रहे थे। बैठे-बैठे आचार्य बुध ऊँघने लगे तो कुछ लोग बोले कि यह तो विक्षिप्त भी है, देखो बैठा-बैठा सोने भी लगा।

सबकी बातें, हँसी-मजाक और व्यंगात्मक टीका-टिप्पणी सुनने के बाद आचार्य बुध ने अपने नेत्रों को अंगारे जैसा दहका लिया और कुपित होकर बोले—

"मूर्खो ! तुम लोग ही विक्षिप्त हो, मैं नहीं । तुम मुझे काला कह रहे हो, पर वास्तव में काले तो तुम्हीं हो । भूखे-प्यासे, मार्गश्रम से थके हुए, ताप-पीड़ित, कोढ़ी, शूल-पीड़ित, ज्वराक्रान्त, उन्मादी, अंधे, पराधीन, आठ ऋणदाताओं से दबे हुए ऋणी, निद्रित, मलिन, दुर्भागी आदि सब जो रूप तुम्हें मेरे दीख रहे हैं, वे सब तुम्ही हो, मैं नहीं ।"

बुधाचार्य की ओजस्वी वाणी सुनकर लोग डर गए । राजा धवल सोचने लगे कि जिसकी आंखे चिपचिपी और कीचड़ों से भरी थीं, उसकी आँखें अंगारों सी दहक रही हैं और जो सिंह-सी गर्जना कर रहा है, वह अवश्य ही कोई देव है । पिता की मनोदशा देखकर विमल ने उनसे कहा—पूज्य तात ! ये कोई सिद्ध पुरुष है । हमें इनकी अभ्यर्थना करके इनके कोप और उग्ररूप को शान्त करना चाहिए । यह सुन राजा धवल बुधाचार्य के चरणों में गिर पड़ा । फिर सभी उपस्थित जन आचार्य के चरणों में लेट गए । देखते-देखते ही बुधाचार्य दिव्यरूपधारी होकर कमलासन पर विराजने लगे । उन्होंने लोगों को देशना देना शुरू किया । जब वे देशना दे चुके तो राजा धवल ने उनसे पूछा—

"हे आचार्य ! आप कौन हैं यह बताने की कृपा कीजिए ।"

"मैं कोई देव नहीं हूँ, जैसा कि तुम सोच रहे हो ।" आचार्य बुध ने कहा—"मैं भी एक मानव हूँ । मैंने जो पहले अपना काला और बीभत्स रूप बनाया था, वह यह बताने के लिए बनाया था कि जैसा मैं तुम्हें दीख रहा हूँ, वैसे तो वस्तुतः तुम्हीं लोग हो, मैं नहीं । मैं ऊपर से काला था और तुम भीतर से काले हो । अब मैं तुम्हें अपने बीभत्स रूप का परमार्थ एक-एक बात लेकर समझाता हूँ ।

"राजन् ! पहले काले रंग की ही बात लो । पाप में आसक्त ऊपर से गोरा, सुन्दर और नीरोग दीखने वाला गृहस्थ भीतर से काला ही होता है । मुनिजन तो ऊपर से भले ही काले दिखाई दें, पर भीतर से वे पापमल से रहित होते हैं ।

"इसी तरह भूख-प्यास की बात है । साधारणतः तो खाने की इच्छा को भूख कहते हैं । पर संसारी जीव भोगों की भूख से कभी तृप्त नहीं होते अतः वे सदा भूखे ही रहते हैं । जो भाव-तृष्णा से पीड़ित रहते हैं,

वे सदा प्यासे ही तो हैं। धर्म से विमुख प्राणी यह नहीं जानता कि वह कहाँ से आया है, कहाँ जायेगा और भव भ्रमण में घूमता हुआ **मार्गश्रम** से थका रहता है। दूसरी ओर जैन श्रमण विवेक पर्वत पर स्थिर सतत आह्लादकारी जैनपुर नगर में निवास करते हैं। जैनपुर नगर के चित्त-समाधानमण्डप में रहकर वे अपने मार्गश्रम को दूर कर लेते हैं।

"राजन् ! इसी तरह कोढ़, शूल पीड़ा, वृद्धावस्था, ज्वर, उन्माद, अन्धापन, पराधीनता, ऋणदाता, प्रचलनिद्रा, दरिद्रता, मलिनता और दुर्भाग्य का परमार्थ है। ये सब दोष संसारी जीवों में भरपूर होते हैं, जो ऊपर से दिखाई नहीं देते, जबकि मुनिजन ऊपर से इन दोषों से युक्त होते हुए भी भीतर से दोषमुक्त होते हैं।"

इस प्रकार बुधाचार्य ने उन सभी दोषों का परमार्थ समझाया, जो उनके पहले के बीभत्स रूप में दिखाई दे रहे थे।

आठ ऋणदाताओं का परमार्थ समझाते हुए आचार्य बुध ने कहा—

"राजन् ! मैंने जो कहा था कि मेरे सिर पर आठ ऋणदाता हैं, इसका परमार्थ यह है कि हर प्राणी ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों से दबा रहता है। ये कर्म जीव को निरन्तर कदर्थित करते रहते हैं। ये आठों कभी दीन-हीन बनाते हैं तो कभी नरक में ले जाते हैं। ये आठ कर्मरूपी ऋणदाता श्रमणों के होते अवश्य हैं, पर वे शुद्धप्राय होते हैं। मुनिजन अपने दृढ़ निश्चय से थोड़ा-थोड़ा करके अपने कर्म ऋण को चुका देते हैं।"

फिर बुधाचार्य ने संसार के सुख, जो वस्तुतः दुःख ही हैं, का स्वरूप समझाया और साधुओं के पारमार्थिक आनन्द का वर्णन करते हुए मुनिजनों की ग्यारह पत्नियों के बारे में बताया—

"राजन् ! जैन श्रमणों के अन्तःपुर में उनकी ग्यारह पत्नियाँ रहती हैं, जिनके साथ वे सुख भोगते हैं। ये इन ग्यारहों के नाम हैं—(१) श्रद्धा, जो चित्त को प्रसन्न रखती है, (२) सुखासिका, (३) विविदिषा—शान्ति प्रदान करती है, (४) विज्ञप्ति—प्रमोद देती है, (५) मेधा—सद्बोध देती है, (६) अनुप्रेक्षा—हर्ष देती है, (७) मैत्री—मनोनुकूल आचरण करती है, (८) करुणा—वात्सल्य भाव रखती है, (९) मुदिता—आनन्द प्रदान करती है, (१०) उपेक्षा—उद्वेगों को शान्त करती है और (११) समभाविता—अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों में प्रशान्त रखती है।

"इन ग्यारह रमणियों के संग से जैन श्रमण भवसागर पार करने में समर्थ होते हैं।"

× × ×

संसारी जीव ने अगृहीतसंकेता से कहा—

"बहिन! जब आचार्य बुध धर्म का मर्म समझा रहे थे, तब राजा धवल और राजपुत्र विमल के बीच वामदेव नामधारी मैं भी था। पर मुझ पर आचार्य की किसी बात का कोई प्रभाव नहीं हुआ। अब आगे जो कुछ हुआ सो सुनो।"

जब आचार्य बुध बहुत कुछ बता चुके तो महाराज धवल ने उनसे पूछा—

"भगवन्! आपने अपनी देशना में बताया कि विषयों में दुःख ही दुख है और समभाव में ही सुख है तो फिर लोग जानकर भी समभाव को धारण क्यों नहीं करते?"

"राजन्! लोग महामोह के वश में होने के कारण वस्तु तत्त्व को नहीं समझते।" आचार्य बुध ने कहा—"वे सत्य मार्ग पर नहीं चलते और परमार्थ के सुख के विषय में विचार भी नहीं करते। ऐसा ही बठर गुरु ने किया था। मैं तुम्हें बठर गुरु की कथा सुनाता हूँ। इससे तुम्हारी समझ में बहुत कुछ आ जायेगा।"

"बहिन अगृहीतसंकेता! बुधाचार्य ने बठर गुरु की जो कथा राजा धवल, युवराज विमल और मुझे सुनाई थी, वही मैं तुम्हें सुनाता हूँ।"

सदागम, भव्यपुरुष, प्रज्ञाविशाला और अगृहीतसंकेता संसारी जीव की आत्मकथा के अंश की बठर गुरु की कथा उसकी जबानी सुनने लगे।

□

[८] **बठर गुरु की कथा**

भव नामक एक गाँव में स्वरूप नाम का एक शिव मन्दिर था। यह मन्दिर असाधारण था, जो अगणित मूल्यवान रत्नों, विविध प्रकार के भोज्य पदार्थों और प्रचुर सम्पत्ति से परिपूर्ण था। स्वरूप नाम के इस शिवमन्दिर में एक शिवाचार्य रहते थे। इन शिवाचार्य का नाम सार गुरु

था। शिवमन्दिर में सारगुरु के साथ, उनका परिवार भी रहता था। लेकिन विडम्बना यह थी कि शिवाचार्य सारगुरु मूर्ख थे, वह अपने मन्दिर (स्वरूप) की प्रचुर समृद्धि से अनभिज्ञ थे। सारगुरु को न तो अपने परिवारी जनों के बारे में कुछ मालूम था और न अपनी स्वयं की समृद्धि को ही जानते थे। परिणामस्वरूप वे अभावों में डूबे रहते थे।

किसी तरह कुछ चोरों को यह मालूम हो गया कि स्वरूप नामक शिवमन्दिर में पर्याप्त धन-दौलत है और उसका आचार्य सारभूत मूर्ख है। तो क्यों न मूर्ख को ठगकर मन्दिर की सम्पत्ति को हड़पा जाये? यह सोचकर चोर लोग मन्दिर में आकर रहने लगे और सारभूत से मित्रता जोड़ ली—छल-कपट वाली मित्रता। लेकिन सारगुरु चोरों को अपना हितैषी, शुभचिन्तक और परम हितकारी मित्र ही समझता था। मूर्खों को शत्रु-मित्र की पहचान ही नहीं होती।

चोरों के साथ राग-रंग और विलास में डूबा देख शिवभक्तों ने सारगुरु को बहुत समझाया कि वह इनका साथ छोड़ दे, पर सारगुरु ने उल्टे शिवभक्तों को ही अपना शत्रु समझा और उनकी हितकारी बात नहीं मानी। हुआ यह कि शिवभक्तों ने शिवमन्दिर में जाना छोड़ दिया और सारगुरु से भी नाता छोड़ दिया। मूर्खता की अतिशयता के कारण भव गाँव के लोग तथा शिवभक्त सारगुरु को बठर गुरु कहकर पुकारने लगे।

चोरों ने अपना एक नायक चुन लिया, जो सबसे अधिक धूर्त था। वे सब मिलकर तालियाँ बजाते हुए नृत्य करते थे। बठर गुरु को पूरी तरह वश में करके उन्होंने उसे भूखा रखना शुरु कर दिया। उसका सब भोजन भी अपने काबू में कर लिया। तब एक दिन भूख से अत्यन्त खिन्न होकर बठर गुरु ने चोरों से कहा कि मुझे कुछ खाने को दो। चोरों ने बठर गुरु के शरीर पर काले दाग बना दिये और हाथ में मिट्टी का ठीकरा—भिक्षा पात्र देकर कहा कि इस भव गाँव के मुहल्लों में भीख माँगो और खाओ।

अतिजघन्य, जघन्य, उत्कृष्ट और अत्युत्कृष्ट—भव गाँव में ये चार मुहल्ले थे। बठर गुरु अति जघन्य मुहल्ले में गया। वहाँ चोरों ने उसे घर-घर नचाया और मुहल्ले वालों को इशारा करके उसकी पिटाई भी करवाई। पिटाई में उसका मिट्टी का पात्र भी टूट गया और भिक्षा भी नहीं मिली। फिर उसे दूसरा मिट्टी का पात्र देकर जघन्य नामक दूसरे मुहल्ले में भेजा। वहाँ भी उसकी दुर्दशा हुई फिर तांबे का पात्र देकर

उत्कृष्ट मुहल्ले में भेजा। शिवमन्दिर का आचार्य समझ इस मुहल्ले में बठर को कुछ भिक्षादान मिला। फिर धूर्त चोरों ने बठर को चाँदी का पात्र देकर अत्युत्कृष्ट मुहल्ले में भेजा। यहाँ बठर गुरु को हर घर से अच्छी भिक्षा मिली।

इतने पर भी बठर गुरु धूर्त चोरों का ही गुणगान करता था। दुखों में आकण्ठ डूबा रहते हुए भी बठर गुरु यह समझता था कि मैं सुख सागर में गोते लगा रहा हूँ।

× × ×

बुधाचार्य ने राजा धवल से कहा—

"बठर गुरु की शेष कथा सुनाने से पूर्व मैं अब इस कथा का रूपक रहस्य तुम्हें समझाता हूँ।"

"यह संसार भव नामक गाँव है। जीव लोक वास्तविक स्वरूप को शिवमन्दिर जानना चाहिए। अनन्त ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्य आदि को शिवमन्दिर के रत्न तथा प्रचुर सम्पत्ति समझना चाहिए। शिवमन्दिर के समस्त रत्नों का स्वामो जैसे सारगुरु था, वैसे ही उक्त रत्नों का स्वामी समग्र जीव लोक है।

"सारगुरु की तरह यह जीव लोक भी कर्मयोग से उन्मत्त रहने के कारण गुणरत्नों—अपने स्वरूप को नहीं जानता। राग-द्वेष आदि धूर्त चोर हैं। इन्हें जीवलोक अपना मित्र समझता है और जैसा ये नचाते हैं, वैसा ही नाचता है। जैसे शिवभक्त सारगुरु को बार-बार समझाते थे, वैसे ही जैन-दर्शन के आचार्य जीवलोक को बार-बार समझाते हैं कि राग-द्वेषादि चोरों का साथ छोड़ दे।

"बठर गुरु ने भूख की इच्छा से धूर्त-चोरों से भोजन माँगा था। चोरों ने उसकी देह पर काले दाग लगा दिये और मिट्टी, ताँबा तथा चाँदी के भिक्षा पात्र देकर क्रमशः अतिजघन्य, जघन्य, अत्युत्कृष्ट और उत्कृष्ट—चारों मुहल्लों में घुमाया। इसका रूपक यह है कि जीव राग-द्वेषादि के समक्ष अपनी भोगेच्छा प्रकट करता है तब राग-द्वेषादि उससे भोगों की भीख मँगवाते हैं। पाप-कर्मों के काले धब्बे जीव की देह पर लगे होते हैं। नरक वास अतिजघन्य मुहल्ला है, जहाँ जीव जाता है। वहाँ कष्ट-ही-कष्ट हैं। जीव जो चाहता है, वह उसे नहीं मिलता। नरक की आयु ही मिट्टी का भिक्षा पात्र है। इन चारों मुहल्लों को नरक गति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति समझना चाहिए।

"राजन् ! पुण्यों के कारण मनुष्यगति और देवगति में ही जीव की भोगेच्छा कुछ-कुछ पूरी हो पाती है, किन्तु जीव रहता तो भिखारी ही है। उसे मूर्ख ही समझना चाहिए, जो भीतर के सुख और परमानन्द से अनभिज्ञ रहकर बाहर के सुख चाहे। इन्द्रियों का सुख बाहरी है और दूसरे के अधीन है। बठर गुरु की कथा का शेष भाग भी सुनिये।"

× × ×

बठर गुरु की अत्यन्त शोचनीय दशा देखकर एक शिवभक्त को उस पर बहुत दया आई। उसने बठर गुरु की दशा सुधारने का निश्चय किया। एक दिन रात को जब सब चोर नाच कूदकर सो गए थे, तब उक्त शिवभक्त शिवमन्दिर में पहुँचा। उसने मन्दिर में दीपक जलाया। थका-हारा बठर भी सो रहा था। दीपक का प्रकाश देखकर वह जागा और शिवभक्त से बोला मुझे जोर की प्यास लगी है। थोड़ा पानी पिला दो।

शिवभक्त ने बठर गुरु को तत्त्वरोचक तीर्थ का मधुर जल पिलाया, जिससे उसका उन्माद तत्काल दूर हो गया। अब उसे पता चल गया कि जिन्हें मैं अपना मित्र समझता था, वे चोर-लुटेरे और धूर्त हैं। फिर उसने शिवभक्त से पूछा कि अब मुझे क्या करना चाहिए। शिवभक्त ने बताया कि मैं तुम्हें एक वज्र दण्ड दे रहा हूँ। इससे इन दुष्टों को तुरन्त मारकर भगा दो। बठरगुरु ने वज्रदण्ड से सभी दुष्ट चोरों का कचूमर निकाल दिया बाद में उसने चोरों वाले भवग्राम को भी छोड़ दिया। और एकान्त में बने शिवालय में पुनः सारगुरु के रूप में रहने लगा।

× × ×

बुधाचार्य बोले—

"राजन् ! बठर गुरु की शेष कथा का रूपक-रहस्य इस प्रकार है कि शिवभक्त धर्मगुरु हैं। भोगों की क्षणिक तृप्ति से संतुष्ट जीव को देखकर धर्मगुरु को उस पर दया आती है और जिनेश्वरप्रणीत धर्म रूपी जल देकर उसे बोध कराते हैं तो वह जीव जान जाता है कि राग-द्वेष, इच्छाएँ आदि मेरे शत्रु हैं। फिर शिवभक्तरूपी धर्मगुरु जीव को चारित्र रूपी वज्र दण्ड देते हैं, जिसकी मार से वह समस्त कषायों को नष्ट कर शिवपुर में मुक्त जीव बनकर रहता है। फिर उसकी संसार परम्परा नष्ट हो जाती है।

"हे राजन् ! तुम भी इस कथा का रहस्य समझो। अपने स्वाभाविक गुणों—भाव-कुटुम्बियों को पहचान कर उन्हीं के साथ रहो और चोरों को चारित्र रूपी वज्रदण्ड से मार दो। तुम भी केवल चारित्र लेकर ही समस्त दुःखों से छूट सकते हो।

"राजन् ! मेरा बीभत्स, कोढ़ी, दयनीय, काला, ज्वरग्रस्त रूप देखकर तुम मुझे सुखी करना चाहते थे, पर वस्तुतः तो ये दोष तुममें भीतर अदृश्य होकर बैठे हैं। आठ ऋणदाताओं से तुम घिरे हो। केवल चारित्र लेकर ही इनसे छुटकारा पा सकते हो।"

यह सब सुनने के बाद राजा धवल तो दीक्षा लेने के लिए तैयार हो ही गया, और भी जो लोग वहाँ थे, सब चारित्र ग्रहण करने के अभिलाषी हो गए। सबने कहा—हमें दीक्षा दो। बुधाचार्य ने सबकी धर्मबुद्धि को सराहा और कहा—धर्मकार्य के लिए विलम्ब नहीं करना चाहिए।

× × ×

संसारी जीव ने अगृहीतसंकेता से कहा –"वामदेव के रूप में मैं भी विमल के साथ बैठा बुधाचार्य की बातें सुन रहा था। पर मैंने जो कुछ सुना, वह एक कान से सुना और दूसरे से निकाल दिया।

"बहिन ! आगे क्या हुआ, वह भी सुनो। विमल के पिता महाराज धवल ने बुधाचार्य से कहा कि भन्ते ! हम तो आपके सदुपदेश को सुनकर प्रतिबुद्ध हुए हैं और दीक्षा लेने को कृत संकल्प हैं। लेकिन आपने जो चारित्र ग्रहण किया था, उसका क्या कारण है ? आपको किस निमित्त से वैराग्य हुआ था अथवा आप स्वयंबुद्ध हैं—बिना किसी निमित्त के ही आपको वैराग्य हुआ था ? हम आपके चारित्र ग्रहण करने का कारण जानना चाहते हैं।

"अगृहीतसंकेता ! राजा धवल की यह बात सुनकर बुधाचार्य ने कहा कि राजन् ! साधु को आत्मश्लाघा से बचना चाहिए। मैं अपने बारे में जो भी कहूँगा, वह आत्म-प्रशंसा ही होगी। अतः इस प्रसंग को छोड़िए।

"अगृहीतसंकेता ! इतने पर भी राजा धवल ने बार-बार आग्रह किया तो लोकहित की कामना से बुधाचार्य अपनी आत्मकथा सुनाने लगे। उसे तुम भी सुनो।"

□

[९] बुधाचार्य के चारित्र ग्रहण का कारण

इस लोक में धरातल नामक एक नगर है, जहाँ शुभ-विपाक नाम का राजा राज्य करता है। उस राजा की निजसाधुता नामक पटरानी है। उसने एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम बुध रखा गया।

शुभविपाक राजा के अशुभविपाक नाम का एक भाई है, उसकी परिणति नामक पत्नी ने मंद नामक एक पुत्र को जन्म दिया। इस प्रकार बुध और मंद चचेरे भाई हुए। ये दोनों भाई जब बड़े हो गये तो साथ-साथ रहने लगे।

इस लोक में विमलमानस नाम का एक अन्य नगर था, जहाँ शुभाभिप्राय नाम का राजा राज्य करता था, इस राजा के धिषणा नाम की एक पुत्री थी। राजा शुभाभिप्राय ने अपनी पुत्री धिषणा का स्वयंवर रचा, जिसमें बहुत राजपुत्र आये। बुध भी पहुँचा। धिषणा ने बुध का वरण कर लिया। बुध अपनी पत्नी धिषणा के साथ रहने लगा। कालान्तर में धिषणा ने एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम विचार रखा गया। विचार अपने माता-पिता तथा दादा-दादी को बहुत प्रिय था।

एक बार बुध और मंद अपने क्षेत्र में क्रीड़ा कर रहे थे। वहाँ उन्होंने ललाटपट्ट नामक एक सुन्दर पर्वत को देखा, पर्वत पर एक ऊँचा शिखर था और शिखर पर कंबरी नामक झाड़ी थी। पर्वत की तलहटी में नासिका नामक एक गुफा थी। दोनों भाई अन्धकार से भरी दो द्वार वाली गुफा में पहुँचे तभी एक चपल बालिका निकल कर आई। उसने दोनों को प्रणाम किया और बोली—

"आप दोनों मेरे स्वामी हैं। मुझे दुःख है कि आप मुझे भूल गये हैं। मेरा नाम भुजंगता है। इस गुफा में घ्राण रहता है, जो आप दोनों का परम सखा है। अब आप इसका पोषण कीजिए। इससे आपको भारी सुख मिलेगा। आपके मित्र घ्राण को सुगन्ध बहुत पसन्द है। दुर्गन्ध से इसका दम घुटता है। चन्दन, कपूर, इलायची आदि की गंध का इसे भरपूर सेवन कराइए।"

भुजंगता की बातें सुनकर मंद इससे बहुत प्रभावित हो गया। उसने वचन दिया कि मैं अपने मित्र घ्राण का पोषण करूँगा। लेकिन बुध ने भुजंगता और घ्राण—दोनों के प्रति उपेक्षा दिखाई।

जब बुध चलने लगा तो उसने सोचा कि ललाट्पट्ट पर्वत और नासिका गुफा तो मेरी देह में ही है। नासिका गुफा में ही घ्राण रहता है। अतः मुझे इसका पोषण तो करना ही है। जब तक मैं इस क्षेत्र (शरीर) से मुक्त नहीं हो जाता, तब तक मुझे घ्राण का पोषण लोकमाया के अनुरोध से करना ही है। लेकिन आसक्त हुए बिना ही करना है।

अब मन्द तो भुजंगता के वशीभूत होकर सुगन्धित द्रव्यों की खोज करने लगा। इससे वह घ्राण का पोषण तो करता, पर उसकी सुगन्धासक्ति इतनी बढ़ गई कि वह बहुत दुःखी रहने लगा और बुध समभाव से घ्राण का पोषण करता था। उसे कोई दुःख नहीं था, क्योंकि आसक्ति नहीं थी। दुःख आसक्ति से बढ़ता है।

जिन दिनों मंद और बुध का भुजंगता और घ्राण से परिचय हुआ था, उन दिनों बुध का पुत्र विचार घर पर नहीं था, वह देशाटन करने गया हुआ था। वह अब युवा हो गया था। देशाटन करके वह अपनी जानकारी बढ़ाना चाहता था और इसीलिए वह गया था।

कालान्तर में विचार देशाटन से लौटा। उससे मिलकर उसके पिता बुध और माता धिषणा बहुत प्रसन्न हुए। विचार ने देशाटन से जो जानकारी प्राप्त की थी, वह बुध के बहुत काम की थी। अतः एक दिन विचार ने स्वयं ही अपने पिता बुध को अपनी यात्रा के संस्मरण सुनाने का निश्चय किया।

"पिताजी ! मैंने अपनी यात्रा के अनुभव से एक बात जानी है।" विचार ने बुध से कहा—"आपकी और चाचाजी मंद की घ्राण से जो मित्रता हुई है, यह अच्छी बात नहीं है। यद्यपि मैं आपका पुत्र हूँ। आपको शिक्षा देने का मुझे अधिकार नहीं है। पर मैंने तो अपने अनुभव की बात कही है।"

बुध ने पुछा—

"पुत्र ! तेरी बात मुझे भी ठीक लगती है। पर तूने यह अनुभव कैसे किया कि घ्राण अच्छा व्यक्ति नहीं है।

"पिताजी !" विचार ने बुध से कहा—"मुझे अपनी मौसी मार्गानुसारिता मिली थीं। उनसे मेरी जो बातें हुईं, उनका सार मैं आपको बताता हूँ।" □

[१०] मार्गानुसारिता और विचार की बातचीत

बुध का पुत्र विचार अनेक ग्राम-नगरों में घूमता हुआ भवचक्र नामक नगर में पहुँचा। इस नगर में एक सुन्दर स्त्री मिली। वह स्त्री सहज भाव से विचार की ओर आकर्षित हुई। विचार भी उसकी ओर बढ़ा। दोनों ने अपना-अपना परिचय दिया तो उक्त स्त्री ने विचार से कहा—

'वत्स ! तू मेरी बहिन का पुत्र है। मैं तेरी मौसी मार्गानुसारिता हूँ। तेरे पिता बुध भी मुझसे बहुत स्नेह करते हैं। तू भवचक्र नगर को देखने चला आया, यह तूने बहुत अच्छा किया, क्योंकि जिसने इस नगर को देख लिया, उसने सब कुछ देख लिया। यह नगर अनेक विचित्र घटनाओं का संगम है। मैं तुझे यह नगर अच्छी तरह से दिखा दूंगी।''

विचार ने अपने पिता बुध से कहा—

''पिताजी ! मैं मौसी मार्गानुसारिता के साथ भवचक्र नगर देखने चल पड़ा तो मैंने एक पर्वत, पर्वत पर शिखर और शिखर पर एक नगर देखा। मौसी ने मुझे बताया कि यह सात्त्विकमानसपुर नगर है और इस पर्वत को विवेकगिरि कहते हैं। इस पर जो शिखर है, इसका नाम अप्रमत्त शिखर है। शिखर पर बसे नगर को जैन पुर कहते हैं।

''मैं मौसी से ये बातें जान ही रहा था कि तभी मैंने एक घायल पुरुष को देखा, जो राजकुमार लगता था। कुछ व्यक्ति उसे उठाकर ला रहे थे। मैंने मौसी से पूछा कि यह कौन है और इसे किसने आहत किया है तो मौसी मार्गानुसारिता मुझे बताने लगी कि इस महागिरि विवेक का जो राजा है, उसका नाम चारित्रधर्म है। श्रमणधर्म नाम का उस राजा का पुत्र है। श्रमणधर्म के योद्धा का नाम संयम है। यह जो घायल व्यक्ति है, यह श्रमणधर्म का वीर योद्धा संयम है। चारित्रधर्म के राजा के घोर शत्रु हैं महामोह आदि। इन्होंने ही संयम को घायल किया है। श्रमणधर्म के सुभट घायल संयम को युद्ध भूमि से उठा लाये हैं।

''पिताजी ! उसके बाद मैं मौसी को साथ लेकर विवेक पर्वत पर यह देखने चला गया कि घायल संयम को लेकर चारित्रधर्म आदि क्या करेंगे। मैंने वहाँ देखा कि जैनपुर नगर के चित्तसमाधान मण्डप में अन्य राजाओं के बीच महाराज चारित्रधर्म बैठे हैं। मौसी ने मुझे सबके नाम और गुण बताये। सभा में जब घायल संयम को लाया गया तो उसे देख सब क्षुब्ध हो उठे। शौच, ब्रह्मचर्य आदि जितने भी राजा वहाँ थे, सबने महाराज चारित्रधर्म से कहा कि हम महामोह, रागकेसरी, विषयाभिलाष आदि दुष्ट शत्रुओं को मारकर इसका फल देंगे कि उन्होंने हमारे योद्धा संयम को आहत किया है।

''पिताजी ! सभी राजाओं को उत्तेजित देख चारित्रधर्म के मंत्री सद्बोध ने कहा कि आप इन सब को शान्त कीजिए। फिर इनके मन की बात जानिये कि ये लोग क्या चाहते हैं। चारित्रधर्म ने सबको शान्त किया और बोले कि आप लोग धीरज के साथ मन की बात कहिए।

"चारित्र धर्म के पूछने पर सत्य, शील, त्याग, तप, ब्रह्मचर्य, शौच आदि ने एक स्वर से कहा कि हम युद्ध चाहते हैं। शत्रु को छोड़ना राजधर्म के विरुद्ध है।

"आपकी बात पर विचार होगा, यह कहकर चारित्रधर्म अपने सेनापति सम्यग्दर्शन और मंत्री सद्बोध को लेकर मंत्रणाकक्ष में गए। मौसी मार्गानुसारिता के साथ मैं भी अन्तर्धान होकर चारित्रधर्म के मंत्रणाकक्ष में पहुँच गया। सेनापति सम्यग्दर्शन ने अपनी राय दी कि हमारी शक्ति मोहादि से अधिक है। अतः हमें सत्य, शील, त्याग, तप आदि योद्धाओं को लेकर महामोह से युद्ध करना ही उचित है। इस पर सद्बोध मंत्री ने टिप्पणी की कि सेनापति जी ! आपकी सब बातें ठीक हैं। लेकिन शत्रु से युद्ध करने से पूर्व हमें यह सोच लेना चाहिए कि जिसके लिए हम युद्ध करेंगे, वही यदि हमारे पक्ष में नहीं होगा तो युद्ध करना व्यर्थ है।

"सेनापति जी ! वास्तविक राजा तो संसारी जीव है। भवचक्र, हम सब तथा महामोहादि—सभी संसारी जीव के अधीन हैं। पर यह संसारी जीव सम्यग्दर्शन, सद्बोध, चारित्रधर्म आदि हम सबके नाम तक नहीं जानता। बल्कि उसका झुकाव महामोहादि की ओर ही है। अतः पहले हम संसारी जीव को अपने पक्ष में करलें। अतः हम सामनीति को अपनाते हुए पहले मोह राजा के पास अपना दूत भेजें।

"पिताजी ! फिर सर्व सम्मति से सत्य को दूत बनाकर महामोह के पास भेजा गया। मौसी मार्गानुसारिता और मैं भी सत्य नामक दूत के पीछे-पीछे गुप्त रूप से चले गए। □

[११] सत्य नामक दूत की भर्त्सना

प्रमत्तता नामक नदी के किनारे चित्तविक्षेप नामक विशाल मण्डप में महाराजा महामोह बैठे हुए थे। आस-पास अन्य राजा बैठे थे। तभी सत्य नामक दूत वहाँ पहुँचा। उसने महामोह को प्रणाम किया और आसन ग्रहण करने के बाद बोला—

"राजन् ! जैसा कि आप सभी जानते हैं, इस चित्तवृत्ति अटवी का अधिष्ठाता और स्वामी संसारी जीव ही है। जितने भी अन्तरंग राजा और अधिकारी हैं तथा जितने भी बाह्य राजा हैं, उन सबका नायक, स्वामी

और अधिपति वही है। आप और हम—कर्मपरिणाम राजा आदि संसारी जीव के सेवक हैं। अतः एक स्वामी के सेवक होने के नाते हम आपस में लड़ें, यह अच्छी बात नहीं है। हम दोनों चूंकि संसारी जीव के सेवक हैं अतः आपस में सम्बन्धी भी हैं। मैं निवेदन करता हूँ। कि आज से हम मिलकर रहें और मिलकर संसारी जीव की भलाई करें।

सत्य अपनी बात समाप्त भी नहीं कर पाया था कि मोहादि सहित सब राजा क्रोध से लाल-पीले होकर पैर पटकने लगे और एक साथ बोले—अरे दुष्ट! तू हमें संसारी जीव का सेवक बताता है। भला वह हमारा स्वामी कब से हो गया? तुम सब लोग हमारे सम्बन्धी हो, यह भी खूब कही। अब भला चाहता है तो जल्दी यहाँ से भाग जा।

बेचारा सत्य अपना-सा मुँह लेकर वापस आ गया और अपनी बात-चीत का परिणाम चारित्रधर्म को बता दिया। साम नीति से काम न चलते देख, दण्ड का निश्चय किया गया और चारित्रधर्म की सेना महामोह से युद्ध करने चल पड़ी। चारित्रधर्म के सुभट सत्य, शील, त्याग, तप, धैर्य, ब्रह्मचर्य आदि और महामोह के रागकेसरी, द्वेषगजेन्द्र, मिथ्याभिमान, विषयाभिलाष आदि में भयंकर युद्ध हुआ और परिणाम यह निकला कि चारित्रधर्म के पक्ष की बुरी तरह पराजय हुई।

युद्ध का परिणाम देखने के बाद बुध के पुत्र विचार ने अपनी मौसी मार्गानुसारिता से पूछा कि मौसी आखिर इस युद्ध का कारण क्या है। महामोह और चारित्रधर्म—इन दोनों पक्षों में युद्ध क्यों होता रहता है?

मार्गानुसारिता ने युद्ध का कारण बताते हुए कहा कि बेटा विचार! इस युद्ध का मूल कारण रागकेसरी का युद्ध निपुणमंत्री विषयाभिलाष है। एक बार इस विषयाभिलाष ने संसार को वश में करने के लिए अपने पाँच सेवक भेजे थे। चारित्रधर्म के तंत्रपाल संतोष ने उन पाँचों को सहज ही परास्त कर दिया। तभी से दोनों पक्षों में शत्रुता हो गई। तभी से अन्तरंग राजाओं के दो पक्ष बन गए और दोनों में तभी से युद्ध चलता रहता है।

बेटा विचार! स्पर्श, रसना, घ्राण, दृष्टि और श्रोत्र—ये पाँच विषयाभिलाष के पाँच वफादार सेवक हैं। ये पाँचों बहुत शक्ति सम्पन्न हैं। इनमें से कोई भी एक संसार को वश में कर सकता है।

इतनी जानकारी प्राप्त होने के बाद विचार ने मार्गानुसारिता से कहा—मौसी! मेरी यात्रा सफल हो गई। अब मैं अपने माता-पिता के पास

जाऊँगा। इस पर मार्गानुसारिता बोली कि वत्स ! तुम जाओ। मैं भी तुम्हारे पीछे-पीछे आ रही हूँ।

इतना कहने के बाद विचार ने अपने पिता बुध से कहा—

"पिता जी ! अपने देशाटन में मैंने यह जाना है कि यह जो घ्राण है, बहुत दुष्ट है। बनता तो यह आपका मित्र है, पर वस्तुतः यह आपका शत्रु ही है। अतः इसे मुँह मत लगाइए।"

ये बातें हो ही रही थीं कि तब तक मार्गानुसारिता भी आ गई। बुध ने अपनी साली मार्गानुसारिता का स्वागत किया। उसने सब बातें सुनीं और विचार के इस कथन का समर्थन किया कि घ्राण बहुत ही दुष्ट व्यक्ति है। यह सब जानने के बाद बुध घ्राण के प्रति और भी अधिक उदासीन हो गया।

उधर बुध के भाई मन्द की घ्राण के कारण भारी दुर्दशा हुई। वह उसके पोषण के लिए सुगंधित द्रव्यों की खोज में भटकता रहता था। एक बार वह अपनी बहिन लीलावती के यहाँ गया तो सुगंध के चक्कर में मृत्यु को प्राप्त हुआ।

मन्द के लीलावती नामक एक बहिन थी, जो देवराज नामक राजा को ब्याही थी। लीलावती ने अपनी सौत के लड़के को मारने के विचार से गंधविष की एक पुड़िया दरवाजे पर रख दी। यह ऐसा विष था कि इसे सूँघते ही व्यक्ति मर जाता है और इसमें बड़ी तीव्र गंध आती है। संयोग से मन्द लीलावती के घर पहुँचा और गंध से आकर्षित होकर उसने द्वार पर रखी पुड़िया उठाकर सूंघी तो तुरन्त गिर पड़ा और मर गया।

इस प्रकार घ्राण की आसक्ति के कारण मन्द की मृत्यु देखकर बुध को घ्राण से विरक्ति हो गई। उसने अपनी साली मार्गानुसारिता से पूछा कि घ्राण से बचे रहने के लिए मुझे क्या करना चाहिए। इस पर मार्गानु-सारिता ने बुध को बताया कि आप भुजंगता का त्याग करके श्रमण बन जाइए और साधुओं में रहकर श्रमणाचार का पालन कीजिए।

बस, फिर क्या था, बुध ने दीक्षा ले ली। तपश्चर्या की और अनेक लब्धियाँ अनचाहे ही प्राप्त हो गईं। कालान्तर में बुध श्रमण संघ के आचार्य हो गए।

× × ×

बुधाचार्य ने राजा धवल, राजकुमार विमल और बामदेव आदि के समक्ष राजा धवल को सम्बोधित करते हुए कहा—

"राजन् ! वह बुधाचार्य मैं ही हूँ। तुम्हें प्रतिबोध देने के लिए मैं संघ को छोड़कर अकेला तुम्हारे पास आया था। मैंने ही रूप बदल कर तुम्हें दिखाया था।"

राजा धवल और विमल ने दीक्षा ले ली। धवल ने अपने छोटे पुत्र कमल को वर्द्धमान नगर का राजा बना दिया। दीक्षा से पूर्व विमल ने अपने मित्र वामदेव को देखा तो वह जानें कहाँ भाग गया था। विमल ने वामदेव की बहुत खोज कराई, पर वह कहीं नहीं मिला। □

[१२] वामदेव का पलायन

सदागम, भव्यपुरुष, प्रज्ञाविशाला और अगृहीतसंकेता को अपनी आत्मकथा सुनाते हुए संसारी जीव ने कहा—

"बुधाचार्य की आत्मकथा सुनकर सभी को प्रतिबोध हुआ। एकमात्र मैं वामदेव ही ऐसा था कि मुझ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। बुधाचार्य को मैं ढोंगी, पाखण्डी और ऐन्द्रिजालिक बहुरूपिया समझ कर उनके कथन की उपेक्षा किये बैठा रहा।

"जब राजा धवल और राजकुमार विमल आदि दीक्षा को तैयार हो गए तो मैंने सोचा कि विमल के साथ मुझे भी दीक्षा लेनी पड़ेगी। अतः मौका देख मैं वर्द्धमान नगर से भाग गया। विमल ने मेरी काफी खोज कराई। जब मैं नहीं मिला तो उसने बुधाचार्य से मेरे बारे में पूछा। बुधाचार्य ने बताया कि "विमल! तुम्हारा मित्र वामदेव दीक्षा के भय से भाग गया है। वह अभव्य नहीं है, भव्य है। पर उस पर बहुलिका—माया और स्तेय ने अधिकार कर रखा है। माया के वशीभूत होने के कारण उसे मेरी बातें अच्छी नहीं लगी थीं और वह भाग गया है।

"विमल ! तुम्हें वामदेव के बारे में चिन्ता नहीं करनी चाहिए। काफी समय बाद वामदेव इन दुष्टों से छुटकारा पायेगा। वह ऐसे होगा कि विशुद्धमानस नगर में शुभाभिसंधि नामक राजा राज्य करता है। उसके दो रानियाँ हैं—शुद्धता और पापभीरुता। इन दोनों रानियों के ऋजुता और अचौर्यता नामक एक-एक पुत्री है। जब वामदेव इन दोनों से विवाह करेगा तो बहुलिका (माया) और चोरी (स्तेय) दोनों स्वतः ही भाग जाएँगी, क्योंकि इनका ऋजुता और अचौर्यता से प्रकाश-अंधकार जैसा विरोध है।

राजा कर्मपरिणाम, रानी कालपरिणति आदि जब चाहेंगे, तभी संसारी जीव (वामदेव) का ऋजुता और अचौर्यता के साथ पाणिग्रहण होगा। तब तक तुम तटस्थ रहो।

"अगृहीतसंकेता ! यह सुनकर विमल मेरे प्रति उदासीन हो गया। उधर मैं भागते-भागते कांचनपुर नगर में पहुँच गया। वहाँ बाजार में एक दुकान पर सरल नाम का सेठ बैठा था। माया की प्रेरणा से मैंने तुरन्त एक नाटक रचा। वह यह कि मैं सरल सेठ के पैरों में गिरकर रोने लगा। सेठ ने पूछा कि अरे-अरे ! तुम रोते क्यों हो ? मैंने कहा—आपको देखकर मुझे अपने स्वर्गीय पिता की याद आ गई।

"सरल सेठ ने मुझे वक्ष से लगा लिया और बोले आज से तुम मेरे पुत्र हो। मैंने भी कहा—तुम मेरे पिता हो। सरल सेठ मुझे अपने घर ले गया और सेठानी बंधुमती से बोला कि हमारे कोई संतान नहीं थी। भाग्य ने हमें यह पुत्र दे दिया।

"बहिन अगृहीतसंकेता ! सेठ सरल और सेठानी बंधुमती का मैं इकलौता पुत्र बनकर रहने लगा। मैं बड़े सुख में रह रहा था। सेठ की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी मैं ही था। इतने पर भी स्तेय मुझे उकसाता रहता था कि सेठ का माल लेकर चम्पत हो जा। इसके लिए मैंने माया से मदद माँगी तो वह बोली—मैं तुम्हारी मदद करूँगी।

"अगृहीतसंकेता ! मैं बड़ा ही कृतघ्न निकला। जिसने मुझे पूर्णतः अपना पुत्र माना, मैंने उसी के घर चोरी की और इसी चोरी में मेरा अन्त भी हो गया। मैं न तो नंदिवर्धन के रूप में अपने स्वरूप को जान पाया और न रिपुदारण के भव में चेता। वामदेव के रूप में भी मैंने अपना मनुष्यभव बिगाड़ लिया और नरक का वासी बना। मेरा अन्त किस तरह हुआ, इस प्रसंग को भी ध्यान से सुनो।" □

[१२] वामदेव का अन्त और भव-भ्रमण

सरल सेठ के बंधुल नाम के एक मित्र थे। एक दिन बंधुल के यहाँ से सरल सेठ के लिए निमंत्रण आया। उसके यहाँ पुत्र उत्पन्न हुआ था। सेठजी ने वामदेव से कहा—पुत्र मैं तो बंधुल के यहाँ जा रहा हूँ। भोजन करके तुम

रात को दुकान चले जाना और वहां सोना। आज मैं दुकान में नहीं सो सकूँगा।

इस पर वामदेव ने कहा—

"पिताजी! एक रात दुकान पर कोई न भी सोये तो क्या होता है? मैं तो माँ के पास ही सोऊँगा।"

"जैसी तुम्हारी इच्छा" कहकर सरल सेठ बन्धुल के यहाँ चला गया। आधी रात के समय वामदेव के भीतर बैठा स्तेय जाग्रत हुआ और उससे कहा—आज अच्छा अवसर है। दुकान पर जा और चोरी कर। वामदेव आधी रात को दुकान पर गया। उसने दुकान खोली तो बाजार के चौकीदार शंकित हो गए। यद्यपि वे वामदेव को सरल सेठ के पुत्र के रूप में जानते थे और यह भी जानते थे कि यह कहीं से आकर सेठ का पुत्र बन गया है। अतः इसकी निगरानी करनी चाहिए कि क्या करता है। क्योंकि यह समय दुकान खोलने का नहीं है।

चौकीदार लोग गुप्त रूप से वामदेव की गतिविधि देखने लगे। वामदेव ने दुकान से सभी रत्न निकाले और दुकान के पीछे एक गली में गड्ढा खोदकर गाड़ दिये। चौकीदारों ने सब कुछ देख लिया, पर अनजान बने रहे।

इतनी देर में सबेरा होने का समय हो गया। अपना काम पूरा करने के बाद वामदेव ने हल्ला मचाया कि मेरी दुकान की चोरी हो गई। दुकान खुली पड़ी है और चोर माल ले गए। यह नाटक वामदेव ने माया की शक्ति से किया था।

दुकान के पास काफी भीड़ इकट्ठी हो गई। सरल सेठ भी आ गया। उसने वामदेव से पूछा कि बेटा यह सब कैसे हुआ? वामदेव ने बताया। पिताजी अभी-अभी मैं घर से आया था तो देखा दुकान खुली पड़ी है। जानें चोर क्या-क्या ले गए।

वामदेव की बात सुनकर चौकीदार लोग सोचने लगे कि वामदेव तो बहुत बड़ा धूर्त है। जिस थाली में खाया, उसी में छेद करके कितना भला बन रहा है। सेठ को दुखी देख चौकीदारों ने कहा—सेठजी! हमें चोर का पता चल गया है। बहुत जल्दी हम उसे पकड़ कर आपको सौंप देंगे। सेठ आश्वस्त हो गया।

चौकीदार लोग वामदेव की हर गतिविधि का ध्यान रखते थे। एक रात उन्होंने वामदेव को गड्ढा खोदकर धन निकालते मय माल के पकड़

लिया और राजा को सौंप दिया। कांचनपुर का राजा चोर को मृत्युदण्ड देता था, अतः उसने वामदेव के वध की आज्ञा दे दी। सरल सेठ को पता चला तो वह राजा के पास आया और रोकर कहा—

"पृथ्वीनाथ! वामदेव मेरा पुत्र है। अपने घर की चोरी कौन करेगा? इसे आप छोड़ दीजिए।"

सरल सेठ की प्रार्थना पर राजा ने वामदेव को मृत्युदण्ड से तो मुक्त कर दिया, पर उसे स्वतन्त्र नहीं किया और सेठ से कहा—

"सेठ जी! तुम्हारा पुत्र वामदेव चोर है, इसमें सन्देह नहीं है। अतः मैं इसे खुला नहीं छोड़ सकता। आज तो इसने घर की चोरी की है। कल को दूसरे के घर की चोरी भी करेगा।"

राजा ने वामदेव को राजकर्मचारियों में रख दिया। उसकी निगरानी रहती थी। एक दिन किसी विद्याचोर ने राजा की चोरी कर ली। विद्याबल से वह चोर अदृश्य होकर राजभवन में घुस गया और अदृश्य होकर ही खजाने का धन लेकर चला गया। राजा को वामदेव पर ही सन्देह हुआ और उसकी एक नहीं सुनी तथा उसे मृत्युदण्ड दे दिया। इस बार सरल सेठ भी उसे नहीं बचा सका। जिस समय वामदेव पर चोरी का झूठा आरोप लगाया गया था, उसी समय उसका अभिन्न मित्र पुण्योदय भी साथ छोड़कर भाग गया। माया और स्तेय भी इतने निर्बल हो गये कि वामदेव को नहीं बचा सके।

मृत्यु के समय वामदेव की भवमेद्य गुटिका गल चुकी थी। भवितव्यता ने उसे नई गुटिका देकर कहा—

"आर्यपुत्र! अब तो तुम्हें पापिष्ठवास नगर के सातवें उपनगर (सातवीं नरक) में जाना पड़ेगा। कुछ समय वहाँ रहो। जब यह गोली जीर्ण हो जायगी तो मैं पुनः आऊँगी और आपको नई गोली दूँगी।"

वामदेव ने नरक की यातनाएँ भोगीं। फिर अनेक योनियों में रहा। उसके बाद भवितव्यता ने उसे मनुष्यभव की गोली देकर कहा—

"आर्यपुत्र! अब तुम्हें आनन्द नगर में जाना है। मैं आपके मित्र पुण्योदय, जो वास्तव में आपका मित्र है—को आपके साथ भेज रही हूँ। यह सदा आपके साथ रहेगा। आपकी सहायता के लिए मैं सागर नामक एक अन्य मित्र को भी आपके साथ भेज रही हूँ।"

× × ×

संसारी जीव की आत्मकथा सुनकर प्रज्ञाविशाला सोचने लगी कि

माया और स्तेय बड़े ही दुःखदायक हैं। बेचारा संसारी जीव इनके वश में कितने कष्ट भोगता रहा।

भव्यपुरुष ने संसारी जीव की आत्मकथा को सुनकर उसे कल्पित, विचित्र अद्भुत ही माना। असंव्यवहार नगर से प्रस्थान से लेकर अब तक की कथा उसे असम्भव सी और कल्पित लगी।

अगृहीतसंकेता इस कथा के रहस्य को समझने का प्रयास कर रही थी। पर वह कुछ समझ नहीं पा रही थी। सबके सामने वह प्रज्ञाविशाला से पूछने का साहस भी नहीं कर पा रही थी कि लोग उसे मूर्ख समझेंगे। अतः उसने निश्चय किया कि एकान्त में प्रज्ञाविशाला से संसारी जीव की आत्मकथा का रहस्य समझूंगी।

सदागम जी महाराज तो पहले से ही सब कुछ जानते थे। अतः वे संसारी जीव की आत्मकथा सुनकर गम्भीर बने हुए थे। संसारी जीव की आत्मकथा सुनकर किस श्रोता पर कैसा प्रभाव पड़ा था, यह श्रोताओं के मुखों पर आये भावों से जाना सकता था।

× × ×

कथा का सार यही है कि पापप्रिय प्राणी घ्राणेन्द्रिय, माया/कपट और चोरी में आसक्त रहकर असह्य दुःख भोगते हैं और भोगते ही रहते हैं।

पाठको ! यदि आप तत्त्वज्ञ हैं—आपने इस कथा के रहस्य को समझ लिया है तो आप माया/कपट, स्तेय/चोरी और घ्राणेन्द्रिय की आसक्ति (भुजंगता) का सर्वथा त्याग कर दें। □

षष्ठ-प्रस्ताव

[१] धनशेखर और सागर की मैत्री

अपने नाम को सार्थक करने वाला आनन्द नामक एक नगर था। यहाँ के प्राणी सदा-सर्वदा आनन्द में डूबे रहते थे। बाहरी समृद्धि के साथ उनके भीतर शान्ति भी रहती थी। इस नगर के राजा थे केसरी, जो सिंह की तरह पराक्रमी और प्रजावत्सल थे। इनकी अनेक रानियाँ थीं, जिनमें पटरानी थी, जयसुन्दरी। महारानी जयसुन्दरी पतिपरायणा सन्नारी थी।

आनन्दपुर में ही हरिशेखर नाम का एक करोड़पति सेठ रहता था। उसकी नगर में बहुत बड़ी साख थी और विशेष बात यह थी कि आनन्द नगर के राजा केसरी से उसके पारिवारिक सम्बन्ध थे। श्रेष्ठी हरिशेखर के बन्धुमती नामक सेठानी थी। बन्धुमती ने एक सुन्दर पुत्र को जन्म दिया। सेठानी की कोख से उत्पन्न वह पुत्र पूर्वभव का वामदेव—संसारी जीव ही था। बड़ी धूम-धाम के साथ श्रेष्ठी हरिशेखर ने अपने पुत्र का जन्मोत्सव मनाया और उसका नाम धनशेखर रखा। पुण्योदय और सागर—दो अन्तरंग मित्र धनशेखर के साथ ही जन्मे थे। सागर का दूसरा नाम लोभ था। लोभ और पुण्योदय भी धनशेखर की तरह अभी अबोधावस्था में थे, क्योंकि तीनों ही शिशुरूप में थे।

ज्यों-ज्यों धनशेखर बड़ा होता गया, त्यों-त्यों उसका अन्तरंग मित्र लोभ (सागर) भी अपना प्रभाव प्रकट करने लगा। किशोरावस्था में ही धनशेखर सोचा करता था कि जगत् में धन ही सार है। धन ही सबका पालक, आनंद का स्रोत, प्रतिष्ठा देने वाला और साक्षात् परमेश्वर है। धन से ही मनुष्य प्रजा से राजा बन जाता है। मनुष्य का उद्देश्य अधिक-से-अधिक धनसंग्रह और धनोपार्जन होना चाहिए। मैं भी विपुल धन का स्वामी बनकर अपने धनशेखर नाम को सार्थक करूँगा।

धनशेखर का यह सोच (चिन्तन) उसके अन्तरंग और जन्म से ही साथ रहने वाले मित्र सागर (लोभ) के कारण था।

कालान्तर में धनशेखर पढ़-लिखकर युवा हो गया। उसने धनोपार्जन के लिए अपने पिता हरिशेखर से विदेश जाने की अनुमति माँगी तो पुत्रस्नेह

के कारण सेठ हरिशेखर विह्वल हो गए। उन्होंने पुत्र को समझाया—वत्स ! तेरे पास धन की क्या कमी है। मेरी करोड़ों की सम्पत्ति का तू ही तो स्वामी है। तुझे धन के लिए विदेश जाने की क्या जरूरत है ? माता बन्धुमती ने रो-रोकर कहा कि पुत्र मैं तुझे घर से बाहर नहीं जाने दूँगी।

माता-पिता की जब मोहलीला कुछ संयत हुई तो धनशेखर ने पिता हरिशेखर को समझाया, पिताजी ! युवा होने पर जो पुत्र पिता की लक्ष्मी का भोग करता है, वह अधम है। जब आपने अपने पुरुषार्थ से इतना धन इकट्ठा किया है तो मुझे भी पुरुषार्थ करने दीजिए। मैं यहाँ से एक कौड़ी भी साथ नहीं ले जाऊँगा। बिना पूँजी के ही विदेश में व्यापार करूँगा।

इस प्रकार अपनी सार्थक युक्तियों से धनशेखर ने पिता को प्रसन्न कर लिया और एक दिन शुभ मुहूर्त में विदेश के लिए प्रस्थान कर दिया। चलते समय श्रेष्ठी हरिशेखर ने धनशेखर को समझाया कि वत्स ! परदेस में सावधानी से रहना। किसी की बातों में मत आना। तू प्रकृति से सीधा और सरल है। लोग प्रायः कपटी और छली होते हैं।

विदेश में धनशेखर का साथ देने वाले दो ही साथी थे—पुण्योदय और सागर। उसे जो भी सफलता मिलेगी, वह पुण्योदय के कारण ही मिलेगी, क्योंकि पुण्योदय सच्चे अर्थों में मित्र और सामर्थ्यवान् होता है, जबकि सागर (लोभ) हितचिन्तक दिखाई तो देता है, पर होता नहीं है। होता वह शत्रु ही है। □

[२] धन की खोज और प्राप्ति

आनंदनगर की दक्षिण दिशा में समुद्र तट पर बसा जयपुर नाम का एक नगर था। उस नगर में बकुल नाम का एक सेठ रहता था, जिसकी सेठानी का नाम भोगिनी था। भोगिनी सेठानी से उत्पन्न बकुल सेठ के सर्वांगसुन्दरी एक कन्या थी। श्रेष्ठि-कन्या का नाम कमलिनी था।

जलपोत से उतरकर धनशेखर जयपुर नगर के बाहर उद्यान में पहुँचा। शरीर पर पहने हुए कपड़ों के अलावा धनशेखर के पास कुछ भी नहीं था। उद्यान में बैठा-बैठा धनशेखर धनोपार्जन की युक्तियों पर विचार कर रहा था, जिससे बिना पूँजी के धन कमाया जा सके। इसी चिन्तन के बीच धनशेखर की दृष्टि केसु (पलाश) के वृक्ष पर पड़ी। आश्चर्य की बात

यह थी कि उस वृक्ष का एक पतला-सा अंकुर वृक्ष की शाखा से निकल कर नीचे भूमि के अन्दर चला गया था। भूस्तर विद्या (मेटालर्जी एवं मिनरेलाजी) के अनुसार इस वृक्ष के नीचे धन होना चाहिए था। धनशेखर ने भूस्तर विद्या का अध्ययन किया था। उसके अनुसार उसे यह जानकारी थी कि किस लक्षण वाले वृक्ष के नीचे चाँदी, किसके नीचे सोना, किसके नीचे रत्नभण्डार और किसके नीचे साधारण धन होता है। धातुवाद सिद्धान्त के अनुसार धनशेखर ने सोचा कि इस वृक्ष के नीचे अपार धन होना चाहिए। सागर ने भी धनशेखर को प्रेरित किया।

'नमो धरणेन्द्राय, नमो धनदाय और नमो क्षेत्रपालाय' मंत्रों का उच्चारण करते हुए धनशेखर ने केसू वृक्ष के नीचे खुदाई कर डाली। परिणामस्वरूप उसे स्वर्ण मुहरों से भरा एक ताम्र कलश मिल गया। उन्हें अपने उत्तरीय में बाँधकर धनशेखर जयपुर के बाजार में गया तो दुकान पर बैठे बकुल सेठ की दृष्टि उस पर पड़ी। धनशेखर के मित्र पुण्योदय ने बकुल सेठ को प्रेरणा दी तो वह सोचने लगा कि यह सुन्दर युवक तो मेरा जामाता बनने योग्य है। यह सोच बकुल सेठ स्वयं ही दुकान से उठकर नीचे आया और धनशेखर को घर ले गया। धनशेखर का परिचय जानने के बाद बकुल सेठ की प्रसन्नता दूनी हो गई, क्योंकि धनशेखर बकुल के ही वर्ण और पेशे का व्यक्ति—वैश्य और व्यापारी था। अन्ततः बकुल ने अपनी पुत्री कमलिनी का विवाह धनशेखर के साथ कर दिया लेकिन स्वाभिमानी धनशेखर ने श्वसुर बकुल के घर रहना स्वीकार नहीं किया। अलग घर लेकर रहने और स्वतंत्र व्यापार करने की शर्त स्वीकार करवाकर ही उसने बकुल की कन्या से विवाह किया था।

वृक्षमूल से प्राप्त धनशेखर के पास पर्याप्त पूँजी थी। सागर (लोभ) उसे नयी-नयी युक्तियों-विधियों से धन प्राप्त करने की प्रेरणा देता था और पुण्योदय उसे पग-पग पर सफलता दिलाता था। सागर के वशीभूत धनशेखर धनोपार्जन में इतना व्यस्त रहता था कि पतिव्रता पत्नी कमलिनी से दो बातें भी नहीं कर पाता था। □

[२]

कर्मादानों—निम्नकोटि का व्यापार

सागर (लोभ) के वश में पड़ा धनशेखर यह नहीं सोच पाया कि किस कार्य में पाप है और किसमें पुण्य। पशुओं का वध करके मांस बेचकर

कसाई भी धनोपार्जन कर लेता है। पर धार्मिक जन तो ऐसे धनोपार्जन से भूखों मरना पसंद करते हैं। धनशेखर सागर (लोभ) के वश में ऐसा हुआ कि धर्माधर्म का विचार बिल्कुल ही त्याग बैठा। उसकी धर्मबुद्धि भ्रष्ट हो गई थी। सागर उसे अधर्म कार्य के लिए नये-नये तर्क सुझा देता था।

जीवों से संकुलित तेल निकलवाने, जंगल कटवाने, वन जलाकर कोयला बेचने; सरल स्वभावी लोगों को ठगने लूटने; देनदारों का देते समय बेईमानी करने, जो विश्वास करते थे उन्हें धोखा देने आदि अन्याय अधार्मिक कार्यों का व्यापार करते हुए धनशेखर धन कमा रहा था। इस तरह उसने कुछ ही दिनों में पांच सौ मुहरों का लाभ हुआ। सागर ने हिलोरें मारीं तो फिर उसने डेढ़ हज़ार मुहरों का लाभ किया। इस तरह धनशेखर की लाभ की पूंजी ज्यों-ज्यों बढ़ती गई, त्यों-त्यों उसका असंतोष और अधिक की इच्छा बढ़ती गई। इस क्रम से असंतोष किंवा लोभ किंवा सागर की प्रेरणा और पुण्योदय की देन से धनशेखर दस लाख स्वर्णमुद्राएँ एकत्र करने में सफल हो गया। पर अब भी उसे संतोष नहीं था। ऐसा धन किस काम का कि समय पर भोजन भी न कर सके और पत्नी से दो बातें भी न कर सके। लोभ से असंतोष बढ़ता है और असंतोष से दुःख की वृद्धि होती है तथा लोभ पाप का बाप भी है। लेकिन धनशेखर को यह सब सोचने की फुर्सत ही कहाँ थी। लोभ की सीमा ही कब होती है। धनशेखर पूरी तरह अपने मित्र सागर (लोभ) के शिकंजे में कस चुका था।

धनशेखर अब करोड़पति बनना चाहता था। उसने अपना व्यापार बढ़ाया। ऊँट-गाड़ियाँ, बैल आदि से वह सामान ढोने लगा। बैलों को बधिया करने का काम भी करने लगा। हाथियों को मरवाकर हाथी दांत का व्यापार भी किया; वेश्यागृह भी चलाया। निष्कर्ष यह कि जितनी तरह के कार्य हो सकते थे, वे सब धनशेखर ने कर डाले। इनमें ज्यादातर कार्य कर्मादान—अधर्म अथवा पापवृत्ति के ही थे। इतना सब करने के बाद धनशेखर एक करोड़ स्वर्णमुद्राओं को जोड़ने में सफल हो गया।

एक दिन सागर ने धनशेखर से कहा—'मित्रवर! मेरी बात मानकर तू एक करोड़ मुद्राएँ जोड़ने में सफल हो गया। मेरी मानेगा तो सदा सुखी रहेगा, क्योंकि जगत में धन ही सार है। अब तू मेरी बात मान और रत्नद्वीप जा। असली धनवान वही है, जिसके पास रत्न होते हैं। यहाँ तो तू सोना ही कमा सकता है। रत्नों के लिए तुझे रत्नद्वीप जाना पड़ेगा।'

धनशेखर ने सागर की बात मानी और रत्नद्वीप जाने का निश्चय

कर लिया। उसकी पत्नी कमलिनी ने उसे बहुत रोका। सेठ बकुल ने भी बहुत समझाया, पर उसने किसी की नहीं मानी और जलपोत द्वारा रत्नद्वीप पहुँच ही गया।

रत्नद्वीप पहुँचकर धनशेखर वहाँ के राजा से मिला। उसे भेंट (नजराना) देकर व्यापार की अनुमति माँगी। धनशेखर अपने साथ काफी किराने का माल लाया था। लोग कहते थे कि यहाँ तो नीम के पत्तों के बदले रत्न मिल जाते हैं; फिर किराने का विक्रय करने वाला तो काफी रत्न कमायेगा।

धनशेखर अकेला ही रत्नद्वीप में रह गया। अपने साथ आये व्यापारियों को उसने वापस कर दिया। □

[४]

राजपुत्र हरिकुमार से मित्रता

एक दिन एक वृद्ध स्त्री, जिसका नाम वसुमती था, धनशेखर के पास आई और बोली—

"श्रेष्ठिपुत्र ! तुम आनंदनगर के रहने वाले हो। यह जानने के बाद मैं तुमसे कुछ विशेष बातें करने आई हूँ। मेरी रहस्यमयी बात का सम्बन्ध तुम्हारे नगर के राजा से है। यह तो तुम जानते ही हो कि तुम्हारे आनंद नगर का राजा केसरी है। उसके दो रानियाँ हैं—एक जयसुन्दरी और दूसरी कमलसुन्दरी। इसके अलावा तुम अपने राजा के बारे में कुछ नहीं जानते, वह मैं तुम्हें बताऊँगी।"

वसुमती की बात सुनकर धनशेखर को बड़ा कुतूहल हुआ। उसने वसुमती से कहा—

"माताजी ! अपने नगर के राजा का रहस्य जानने को मैं भी उत्सुक हूँ। आप सुनाइए, मैं सुनूंगा।"

"केवल सुनना ही नहीं है।" वसुमती ने कहा—'सुनकर कुछ करना भी है।"

यह कह वसुमती सुनाने लगी।

× × ×

आनन्द नगर के राजा केसरी का विचार था कि यदि मेरे कोई पुत्र हुआ तो बड़ा होकर वह मुझसे राज्य ले लेगा। अतः मैं पुत्र होने ही नही

दूँगा। इस कुविचार के वशीभूत राजा केसरी जन्म लेते ही अपने पुत्र को मार देता था। उसकी दोनों रानियाँ—जयसुन्दरी और कमलसुन्दरी राजा के इस व्यवहार से बहुत दुखी थीं; पर कुछ कर नहीं सकती थीं।

दूसरी रानी कमलसुन्दरी गर्भवती हुई। उसने निश्चय किया कि जैसे भी बने, मैं अपनी संतान को जीवित रखूंगी। इस कार्य के लिए उसने अपनी दासी वसुमती से सलाह की। वसुमती ने उसे आश्वासन दिया—आप चिन्ता न करें, मैं किसी-न-किसी युक्ति से आपकी संतान को बचाऊँगी।

प्रसव से कुछ दिन पूर्व रानी कमलसुन्दरी वसुमती दासी को साथ लेकर रात को आनन्द नगर से चली गई। वन के मध्य उसने एक सुन्दर पुत्र को जन्म दिया, पर स्वयं चल बसी। अकेली वसुमती ने रानी का दाह-संस्कार किया और नवजात राजकुमार को लेकर जंगल के रास्ते से चल दी। वनमार्ग में वसुमती को वनजारों का एक सार्थ मिला जो रत्नद्वीप जा रहा था। वसुमती ने सोचा कि यह बड़ा अच्छा अवसर है। रत्नद्वीप में स्वर्गीय रानी कमलसुन्दरी का भाई नीलकण्ठ राजा है। यह सोचकर वसुमती सार्थ के साथ राजपुत्र को लेकर रत्नद्वीप पहुँच गई और रत्नद्वीप के राजा नीलकण्ठ को उसका भानजा सौंपकर पूरा वृत्तान्त सुना दिया। राजा नीलकण्ठ ने भानजे का नाम हरिकुमार रखा और पुत्र मानकर पूरी ममता के साथ उसका पालन किया।

राजपुत्र हरिकुमार युवा होकर बहत्तर कलाओं में निपुण हो गया तो राजा नीलकण्ठ ने उसे सब कुछ बता दिया कि तुम आनंद नगर के राजा केसरी के आत्मज, उनकी रानी कमलसुन्दरी के अंगजात और मेरे भानजे हो। तुम्हें बचाने का श्रेय तुम्हारी धाय माता वसुमती को है।

× × ×

वसुमती ने धनशेखर से कहा—

"वत्स! मैं ही हरिकुमार की धायमाता वसुमती हूँ। जब हरिकुमार को यह मालूम हुआ कि तुम उसके पिता के नगर आनंद नगर के युवा व्यापारी हो तो वह तुमसे मित्रता करने का इच्छुक है। अतः मेरे साथ चलो।"

रत्नद्वीप के राजकुमार से मित्रता धनशेखर के लिए वरदान थी। अतः वह वसुमती के साथ चलकर वहाँ पहुँचा, जहाँ हरिकुमार अपने मित्रों के साथ बैठा गपशप कर रहा था। मन्मथ, पद्मकेसर, ललित, विलास, विभ्रम, कपोल आदि मित्रों के मध्य बैठा हरिकुमार ऐसा लग रहा था,

मानो तारागणों के मध्य पूर्णेन्दु बैठा हो। जब धनशेखर ने अपना नाम लेकर हरिकुमार को प्रणाम किया तो हरिकुमार ने आसन से उठकर उसे वक्ष से लगा लिया और अपने आगे आसन पर बैठाकर कहा—

"धनशेखर! जैसे तुम्हारे पिता हरिशेखर मेरे पिता राजा केसरी के मित्र हैं, वैसे ही मैं तुम्हारी मित्रता का इच्छुक हूं।"

"मैं भला इस योग्य कहाँ हूँ?" धनशेखर ने कहा--"जैसे मेरे पिता आपके पिता के सेवक हैं, वैसे ही मैं सदा आपका सेवक बना रहूँगा।"

हरिकुमार धनशेखर को पाकर प्रसन्न था और धनशेखर हरिकुमार की मित्रता पाकर प्रसन्न था। थोड़ी ही देर में धनशेखर का हरिकुमार के अन्य मित्रों से परिचय हो गया और सब मिलकर अन्याय प्रसंगों पर गप-शप करने लगे। □

[५] हरिकुमार की ज्ञानगोष्ठी : प्रश्नोत्तर

नये मित्र धनशेखर के आ जाने से राजपुत्र हरिकुमार की गोष्ठी कुछ अधिक देर तक जम गई। मन्मथ, पद्मकेसर, ललित, विलास, विभ्रम, कपोल आदि हरिकुमार के मित्रों को भी इस बात की प्रसन्नता थी कि हमारे बीच एक अन्य मित्र भी आ गया। जिस समय मित्रों में गपशप हो रही थी, उसी बीच एक वृद्ध तपस्विनी आ गई। उसने राजकुमार को आशीर्वाद दिया और एक चित्रपट देकर तुरन्त चली गई। वह चित्र एक सुन्दरी का था। उसे देख हरिकुमार ठगा-सा रह गया। चित्रित सुन्दरी के अंग-प्रत्यंग से यौवन मिश्रित सौन्दर्य फूट रहा था। मानो वह रूपसी कामदेव की पताका ही हो। हरिकुमार यह नहीं सोच पा रहा था कि चित्रित सुन्दरी चित्रकार की कल्पना है या किसी वास्तविक षोडशी का चित्र उतारा है। चित्र को देखकर हरिकुमार की दशा विक्षिप्तों की सी हो गई। कभी वह मुस्कराता, कभी चुटकी बजाने लगता तो कभी भौंहें चढ़ाकर आश्चर्य व्यक्त करता। उसकी ऐसी दशा देख मन्मथ कहने लगा—

"राजकुमार! ऐसी क्या बात हो गई, जो तुम्हारे भीतर अन्तरंग नृत्य चल रहा है?"

यह सुनते ही हरिकुमार ने तुरन्त अपने को सम्हाल लिया और बोला—

"लो देखो, तुम भी देखो मन्मथ ! मैं इस मित्र के चित्रकार की कला देख रहा था।"

फिर तो सभी मित्र चित्र को लेकर उसके बारे में तरह-तरह की बात करने लगे। हरिकुमार का ध्यान चित्रित सुन्दरी के बारे में लगा था। वह मित्रों की चर्चा सुनकर भी नहीं सुन रहा था। हरिकुमार ने अपनी चित्र-अनुराग-लीला पर परदा डालने के भाव से कहा—

"मित्रो ! यह बेकार की चर्चा बन्द करो। कोई और प्रसंग चलाओ।"

"तो फिर कुछ प्रश्नोत्तर गोष्ठी करें।" पद्मकेसर ने कहा—"मित्र ! मैं एक प्रश्न करता हूँ। तुम सब लोग अपनी-अपनी बुद्धि से मेरे प्रश्न का उत्तर देना।"

यह कह पद्मकेसर ने प्रश्न किया। सभी लोग गूढ़ प्रश्न का उत्तर देने में असमर्थ रहे तो सबने हरिकुमार से कहा कि आप ही पद्मकेसर के प्रश्न का उत्तर दे सकते हैं। जब हरिकुमार से पूछा गया तो उसने पद्मकेसर से दुबारा प्रश्न करने को कहा। पद्मकेसर ने अपना प्रश्न पुनः दुहराया। पर हरिकुमार यह नहीं समझ पाया कि प्रश्न में क्या पूछा गया है, क्योंकि उसका मन चित्र में अंकित सुन्दरी में लगा था। तीसरी बार भी हरिकुमार का यही हाल रहा तो पद्मकेसर ने कहा—"राजकुमार ! आप मेरा प्रश्न नहीं सुन सकते, क्योंकि आपके भीतर तो चित्रांकित बाला बसी है।"

यह सुनकर हरिकुमार का अहंकार जागा। उसने अपना ध्यान चित्र की सुन्दरी से बलपूर्वक हटा लिया और सावधान होकर बोला—"अच्छा, मैं अब सभी के प्रश्नों का उत्तर दूंगा।"

अब पद्मकेसर ने चौथी बार अपना प्रश्न बोला—

"जो विस्फारित नेत्रों से देखता हो और वाणी को सुनता हो; ऐसा कौन है, जिसे इतने पर भी शान्ति नहीं मिलती और क्यों नहीं मिली ? और यह भी बतायें कि इस संसार का कारण क्या है।"[1]

हरिकुमार ने दो पंक्तियों के श्लोक-प्रश्न का तुरन्त ही एक शब्द में उत्तर दिया—

---

१ पश्यन् विस्फारिताक्षोऽपि, वाचमाकर्णयन्नपि।
कस्य को यतो न तृप्तिं, किं च संसारकारणम् ॥

"ममत्वं।"

फिर अपने उत्तर की व्याख्या करते हुए बोला—

"ममत्व, मेरापन जो भी कहो, यह मोहराजा का अमोघ मन्त्र है। ममत्व संसार को अन्धा और बहरा बना देता है। आँखों से देखते हुए और कानों से सुनते हुए भी 'ममत्व' को कभी तृप्ति नहीं होती, उसे कभी शान्ति नहीं मिलती। चाहे जितना देखने पर भी अधिक देखने की इच्छा इसे (ममत्व को) होती है; चाहे जितना सुनने पर भी यह नहीं अघाता। संसार का कारण क्या है, इस दूसरे प्रश्न का उत्तर भी ममत्व है। ममत्व से ही संसार-भ्रमण होता है।"

इसके बाद पद्मकेसर ने ही दूसरा प्रश्न किया—

"युद्ध करने में जिसका मन लगा हो, वह किससे अधिक भयभीत नहीं होता ? ग्रीष्म में पवन से कांप रहे वृक्ष कैसे लगते हैं ?"[1]

थोड़ा विचार करके हरिकुमार ने प्रश्न दुबारा सुना और फिर तुरन्त उत्तर दिया—

"दलनायाः।"

अब उसने अपने उत्तर की व्याख्या की। यहाँ उल्लेखनीय बात यह है कि उत्तर प्रश्न से बड़ा होता है, पर राजकुमार हरि बड़े प्रश्न का छोटा— एक ही शब्द में उत्तर दे रहा था। अतः उसे व्याख्या भी करनी पड़ती थी। उसने अपने 'दलनायाः' उत्तर की व्याख्या की—

"युद्धस्थल में लड़ने वाले योद्धा का मन युद्ध लगा रहता है। अतः बड़ी से बड़ी सेना देखकर वह भयभीत नहीं होता। अतः दलना का अर्थ है कि (योद्धा) सेना से नहीं डरता। ग्रीष्म में पवन से कांप रहे वृक्ष कैसे लगते हैं का उत्तर भी दलनायाः—दल-न-आयाः, अर्थात् दल (पत्तों) से रहित ठूंठ-जैसे लगते हैं।"

हरिकुमार की सूझ और बुद्धि चातुर्य से सभी मित्र चकित थे। अब विलास ने भी एक प्रश्न किया। वह जैनदर्शन का मर्मज्ञ और धार्मिक था। अतः उसने धर्म सम्बन्धी प्रश्न किया, जो चार पंक्तियों का श्लोक था। उसका प्रश्न था—

"किस प्रकार का राजकुल (राज्य) अन्त में विषाद को प्राप्त होता होता है (नष्ट हो जाता है) ?

---

१ कस्या बिभ्यद्भीरुर्न भवति संग्रामलम्पटमनस्कः।
वाताकम्पित वृक्षा निदाघकाले च कीदृशा॥

"अग्नि में कौन नष्ट होता है ?

"ज्ञानी को विचरण करने योग्य उद्यान कौन-सा है ?"

"ऐसा कौन है, जो अपने स्थान से भ्रष्ट न हो और वह अल्प अथवा अधिक समय में परिपूर्ण दशा को प्राप्त हो ?

"जिनेश्वर कैसे होते हैं ?"

"गन्ध किसको प्रिय लगती है ?"

"किस प्रकार के मनुष्य में जिनेश्वर भगवान (धर्म) के प्रति भक्ति जाग्रत नहीं होती ?"[1]

इस प्रकार विलास ने एक ही श्लोक में सात प्रश्न पूछ डाले। सातों प्रश्नों का हरिकुमार ने इस बार भी एक ही उत्तर देकर चमत्कृत कर दिया। उसने कहा—

"तुम्हारे सातों प्रश्नों का उत्तर है—अकुशलभावनाभावितमानसे।"

अब उसने इसी शब्द समूह के वर्णों का विपर्यय करके प्रत्येक प्रश्न के उत्तर को इस प्रकार व्याख्यायित किया—

"अकुशल (अप्रवीण) राज्य का नाश हो जाता है। शब्द समूह में से प्रथम चार अक्षर लिये।

"अग्नि में 'शलभा' (पतंगे) जलते हैं। शब्द समूह में से पहले दो अक्षर छोड़कर तीन अक्षर शुरू से लिये।

"पहले के चार अक्षर छोड़कर तीन अक्षर लिये तो 'भावना' शब्द बना। भावना रूपी उद्यान में ज्ञानी को विचरण करने की इच्छा होती है।

"शब्द समूह के पहले छह अक्षर छोड़कर आगे के तीन अक्षर लो तो 'नाभावि' शब्द बना। जो नाभावि—न अभावि—अभव्य न हो, वे जीव अपने स्थान से च्युत नहीं होते और पूर्ण दशा (मोक्ष) को प्राप्त होते हैं। ये लोग ही अपने स्थान से भ्रष्ट नहीं होते।

"शब्द-समूह में से पहले के आठ अक्षर छोड़कर आगे के तीन अक्षर लो तो 'वितमा' शब्द बनेगा। इसका अर्थ है, 'विगतं तमः येषां ते'—जिनका

---

१ कीदृग्राजकुलं विषीदति ? विभो ! नश्यन्ति के पावके ?
बोध्यं काननमच्युताश्च बहवः काले भविष्यन्त्यलम् ?
कीदृशाश्च जिनेश्वरा ? वद विभो ! कस्यं तथा रोचते ?
गन्धः कीदृशि मानवे जिनवरे भक्तिर्न सम्पद्यते ?

अज्ञान रूपी अंधकार नष्ट हो गया हो, ऐसे केवलज्ञानी जिनेश्वर होते हैं।

"अन्तिम तीन अक्षरों से 'मानस' शब्द बनता है। सुगन्ध मन को प्रिय होती है।

"अन्तिम सातवें प्रश्न का उत्तर पूरे शब्द-समूह—'अकुशलभावनाभावितमानसे' से बनता है, अर्थात् जो अच्छी भावना नहीं रखते, उनको जिनेश्वर (प्रणीत धर्म) पर भक्ति नहीं होती।"

इस प्रकार सातों प्रश्नों का एक ही वाक्यांश में उत्तर देखकर पूरी मित्र मण्डली हरिकुमार की विचक्षणता को सराहने लगी। अब तो सभी का उत्साह जागा कि हम भी एक-एक प्रश्न पूछें।

मन्मथ ने दो प्रश्न पूछने की अनुमति माँगकर हरिकुमार से पहला प्रश्न किया—

"तू प्रकट रूप से मुझे देती है, इसलिए तेरे हाथ से (मैं) भिक्षा नहीं लूँगा। भिखारी के ऐसा कहने पर दान देने वाली स्त्री शरमा गई।"[1]

मन्मथ ने पुनः कहा—

"कुमार! मेरे श्लोक में जो विरोधाभास है, वह यह है कि प्रकट भिक्षा देते देख भिखारी ऐसा क्यों कहेगा कि मैं भिक्षा नहीं लेता और फिर उसके ऐसा कहने पर दान देने वाली स्त्री क्यों लज्जित होगी? आप मेरे इस प्रश्न का उत्तर दीजिए।"

हरिकुमार ने तुरन्त उत्तर दिया—

"दास्यसि।

"मन्मथ तुम्हारे प्रश्नश्लोक के प्रथम शब्द 'दास्यसि' का संधि-विच्छेद करके इसका भाव समझो तो तुम्हारी समस्या का समाधान हो जाएगा। 'दास्यसि' का संधि-विच्छेद है—'दासी+असि'। अब इसके भावानुसार भिखारी कह रहा है—'हे बहिन! तू प्रकट ही दासी/गणिका है। अतः मैं तेरे हाथ से भिक्षा नहीं लूंगा। यह सुन दासी लज्जित हो गई; क्योंकि कुछ भिक्षुक गणिका स्त्रियों से भिक्षा नहीं लेते।"

अब मन्मथ ने दूसरी समस्या रखी। उसका भी उत्तर हरिकुमार ने दे दिया। इसी बीच धनशेखर ने भी मन-ही-मन एक श्लोक की रचना की और बोला—

---

१ दास्यसि प्रकट तेन गृह्णमि न करात्तव।
भिक्षामित्युदिता काचिद् भिक्षुणा लज्जिता किल॥

"मित्र हरिकुमार ! मैंने चार चरण का एक श्लोक सोचा है। उसके तीन चरण मैं आपके सामने बोलूंगा। चौथा चरण आप बतायें।" यह कह धनशेखर ने श्लोक पढ़ा—

विभूतिः सर्व सामान्या,
परं शौर्यं त्रपा मदे।
भूत्यै यस्य स्वतः प्रज्ञा,
.... ॥

"तुम तो बहुत चतुर हो।" हरिकुमार ने मुस्कराकर धनशेखर से कहा—"पहले तुम्हारे तीन चरणों का अर्थ बता दूं। वह इस प्रकार है कि जिसकी विभूति—सम्पत्ति सबके उपयोग में आती है, जिसमें उत्कृष्ट वीरता हो, फिर भी जो गर्व करने से शर्माता हो और जिसकी बुद्धि स्वभाव से ही परोपकार के लिए लगी हो"।

"इस तीन चरण वाले श्लोक का पूरक चौथा चरण बनेगा—'पात्र-भूतः स भूपतिः'—अर्थात् ऐसा राजा ही सच्चा भूपति—पृथ्वी का स्वामी है—ऐसा राजा ही वास्तव में राजा है।"

अब कपोल ने भी तीन चरणों का श्लोक हरिकुमार के सामने रखा, जिसके चौथे चरण की रचना भी हरिकुमार ने कर दी।

आगे प्रश्न-चर्चा चलती कि तभी हरिकुमार की दृष्टि उद्यान में प्रेम क्रीड़ा करते एक कपोत युगल पर पड़ी। कबूतर-कबूतरी चौंच में चौंच डाले प्रेम-लीला कर रहे थे। उसे देख हरिकुमार को पुनः चित्रवाली सुन्दरी की स्मृति हो आई। वह उद्विग्न हो गया। अब उसका मन प्रश्नोत्तर गोष्ठी से एकदम उचट गया। उसने सबसे कहा—

"आप लोग उद्यान में घूमना चाहें तो घूमें। मुझे अकेला छोड़ दें। मेरे सिर में दर्द है। मेरा मित्र धनशेखर ही मेरे पास रहेगा।"

कुमार की ऐसी इच्छा देख उसके सभी मित्र चले गये। केवल धन-शेखर उसके पास रह गया। □

[६] चित्रांकित सुन्दरी की खोज में धनशेखर का प्रस्थान

हरिकुमार को लेकर धनशेखर लतामण्डप में गया। उसने उसके लिए कोमल पत्तों की शय्या बनाई और उस पर लेटाया। लेकिन हरिकुमार

कामपीड़ा से इतना विह्वल था कि उसे शीतल लतामण्डप में भी शान्ति नहीं मिल रही थी। उसके अन्य मित्र लतामण्डल के आस-पास छिपकर हरिकुमार की वेदना और तड़पन देख रहे थे।

थोड़ी ही देर में मध्यान्ह का शंख बजा, मानो कामदेव ने हरिकुमार को वेदना पहुँचाने के लिए पुकार लगाई हो। उसी समय हरिकुमार के मित्र लतामण्डप में आकर बोले—

"कुमार! मध्यान्ह का समय हो गया है। अब आपको राजभवन चलना चाहिए।"

"अभी मेरा सिर-दर्द शान्त नहीं हुआ है।" कुमार बोला—"तुम लोग घर जाओ। मैं अभी धनशेखर के साथ यहीं रहूँगा।"

अब भी हरिकुमार के मित्र गए नहीं। वे लतामण्डप के पास आयुर्वेद के अनुसार रोग, उनके लक्षण और निदान की चर्चा करने लगे। सब मित्रों में कपोल आयुर्वेद का मर्मज्ञ था। यह चर्चा हरिकुमार को सुनाने के लिए थी।

कपोल की आयुर्वेद विषयक चर्चा सुनते-सुनते हरिकुमार को हँसी आ गई। कारण यह था कि अपनी चर्चा के अन्त में कपोल ने कहा था—

"मित्रो! कुमार के लक्षण देखते हुए मुझे तो ऐसा निश्चित जान पड़ता है कि कुमार को अजीर्ण रोग है।"

यह सुनते ही हरिकुमार ठहाका मारकर हँसा तो पद्मकेसर बोला—

"कुमार! आप क्यों हँसे?"

"मैं कपोल की मूर्खता पर हँसा हूँ।" हरिकुमार ने कहा—"अपने को आयुर्वेद का मर्मज्ञ समझता है।"

पद्मकेसर भी हँसकर बोला—

"आपकी बड़ी कृपा हुई, जो आप हँसे। आयुर्वेद की यह चर्चा हमने आपको हँसाने के लिए ही छेड़ी थी।

"मित्रवर! वस्तुतः आपके रोग का उपचार तो वह तपस्विनी ही जानती है, जो चित्र देकर तत्काल चली गई। अतः विलम्ब न कर किसी तरह उस तपस्विनी की खोज कराइए।"

"जब तू सब कुछ जानता ही है तो कोई उपाय क्यों नहीं करता?" हरिकुमार ने कहा—"किसी को भेजो, जो तपस्विनी को ढूंढकर लाये।"

"आप जिसके लिए आज्ञा करें उसी को भेजा जाएगा।" पद्मकेसर बोला—"बताइए, किसे भेजूं?"

"मुझे धनशेखर की बुद्धि पर भरोसा है।" हरिकुमार ने कहा—"यही मेरा कार्य पूरा करेगा।"

"मैं कहीं से भी उस तपस्विनी को ढूंढकर लाऊँगा।" धनशेखर बोला—"उसके माध्यम से मैं चित्रांकित सुन्दरी का पता भी लगाऊँगा।"

यह कह धनशेखर तपस्विनी और चित्र-चित्रित सुन्दरी की खोज में चल दिया। □

[७] हरिकुमार का चित्रांकित कन्या से विवाह

लीलासुन्दर उद्यान के लतामण्डप से निकलकर धनशेखर तपस्विनी की खोज में चल दिया। उसका अनुमान था कि तपस्विनी को, पहले नगर में ही देखूं, क्योंकि भिक्षा के लिए वह नगर में ही भ्रमण कर रही होगी।

धनशेखर उद्यान से नगर की ओर कुछ ही दूर चला था कि उसे तपस्विनी बैठी दिखाई दे गई। उसे प्रणाम कर धनशेखर ने पूछा—

"आर्ये! उस चित्र का क्या रहस्य है? वह चित्र कल्पित है या वास्तव में भूलोक की किसी सुन्दरी का है? यदि वह वास्तविकता का चित्र है तो चित्रांकित सुन्दरी कौन है, कहाँ की है? मेरा मित्र हरिकुमार उसके बिना बहुत दुखी है। आप चित्र देकर तुरन्त क्यों चली आईं? इस सबका क्या रहस्य है?"

"बैठो! मैं विस्तार से सब कुछ बताती हूँ।" तपस्विनी ने कहा—"तपस्विनी होने के साथ-साथ मैं ज्योतिष की भी जानकार हूँ। मैंने जो-जो भविष्य विचारा था, वह सब अभी तक ठीक निकला है। आगे भी वही होगा, जो मेरे ज्योतिष-विचार का फल निकला है।"

यह कह तपस्विनी धनशेखर को एक इतिवृत्त सुनाने लगी और धनशेखर बैठकर सुनने लगा।

× × ×

रत्नद्वीप के राजा नीलकण्ठ की रानी है, शिखरिणी। महारानी शिखरिणी ने एक कन्या को जन्म दिया, जो मानो चन्द्रमा का समस्त सौन्दर्य समेटकर जन्मी थी। बड़ी होकर वह अद्‌भुत् सौन्दर्य को प्राप्त हुई। वह साक्षात् अप्सरा सी लगती थी। एक दिन प्रातः उषा काल में एक तपस्विनी भिक्षा के लिए महारानी शिखरिणी के महल में गई। तपस्विनी ने

देखा कि रानी बहुत चिन्ता में है। वह कुछ कहती कि रानी ने ही अपनी ओर से कहा—

"तपस्विनी जी ! आप निमित्तशास्त्र की मर्मज्ञ हैं। मेरी पुत्री मयूरमंजरी आज बहुत उद्विग्न है। उसकी दशा विक्षिप्तों की-सी हो गई है। वह घबराई हुई-सी इधर-उधर देखती है। उसने रात के कपड़े भी नहीं बदले। सखियों के साथ उद्यान भ्रमण को भी नहीं गई। बड़े प्यार से पाले तोता-मैना को दाना भी नहीं चुगाया। उसका हँसना बंद है। किसी से कुछ बोलती नहीं।

"तपस्विनी जी ! मयूरमंजरी मुझे प्राणों से प्यारी है। उसके दुःख से मैं दुखी हूँ। आप बताइए कि उसे क्या रोग है ?"

यह सुन तपस्विनी ने अपना गणित फैलाया। काफी देर बाद उसने जो फल निकाला, वह रानी को इस प्रकार बताया—

"महारानी जी ! पहला फलादेश यह है कि राजकन्या मयूरमंजरी किसी जीवित प्राणी के सम्बन्ध में बेचैन है। उसी के बारे में व्यग्रता से सोच रही है। वह प्राणी पुरुष होना चाहिए और उसका नाम बिष्णु का पर्याय 'हरि' होना चाहिए। दूसरा फलादेश यह है कि राजकन्या मयूर-मंजरी को उस पुरुष की प्राप्ति अवश्य होगी। राजकुमारी को उक्त पुरुष की प्राप्ति कितने समय में होगी, इसका उत्तर यह आया है कि आज ही प्राप्ति होगी।"

यह सुनते ही रानी शिखरिणी प्रसन्न होते हुए बोली—

"आपकी बात का मुझे प्रमाण भी मिल गया। कुछ देर पहले राजपुत्र हरिकुमार मित्रों के साथ लीलासुन्दर उद्यान गया था। तब मयूरमंजरी ने उसे देखा था। लेकिन हरिकुमार ने मेरी पुत्री को नहीं देखा था। यह रहस्य मुझे मयूरमंजरी की एक सखी ने बताया था।

"तपस्विनी जी ! अब आप ऐसा उपाय करें, जिससे मयूरमंजरी और हरिकुमार का मिलन हो जाए।"

× × ×

इतना कहने के बाद तपस्विनी ने धनशेखर से कहा—

"आज सबेरे उषा काल में मैं ही महारानी शिखरिणी के महल में भिक्षा लेने गई थी। रानी की बात सुनने के बाद मैंने मयूरमंजरी का एक चित्र बनाया और उसे देने लीलासुन्दर उद्यान में गई। हरिकुमार को चित्र

देते समय मैंने उसी समय भांप लिया था कि वह मयूरमंजरी की चित्र छवि पर अनुरक्त हो गया है। आगे वह स्वयं ही चित्रसुन्दरी की खोज करेगा, यह जानकर मैं चित्र देकर तुरन्त लीलासुन्दर उद्यान से चली आई। मैं यह भी जानती थी कि हरिकुमार चित्र देने वाली तपस्विनी (मुझे) को देखने किसी को भेजेगा। तब मैं उसे आगे की योजना भी बता दूंगी।

"आगे की योजना यह बनी कि हरिकुमार को चित्र देकर मैं पुनः महाराणी शिखरिणी के पास गई। मैंने उन्हें बताया कि हरिकुमार अब मेरी मुट्ठी में है। अब आप विवाह की तैयारी कराओ। रानी बहुत प्रसन्न हुई। उसने मयूरमंजरी को भी मेरे सामने शुभ संवाद भिजवा दिया। वह भी प्रसन्नता से नाच उठी। फिर महाराज नीलकंठ को सूचित किया गया। वे भी यह जानकर प्रसन्न हुए कि हरिकुमार मेरा जामाता बनेगा।

"महाराज नीलकंठ ने यह काम मुझे ही सौंपा है कि मैं हरिकुमार को लेकर आऊँ। लेकिन हरिकुमार शायद मेरे कथन का विश्वास न करें, इसलिए मैंने उन्हें विश्वास दिलाने के लिए दो चित्र मयूरमंजरी के हाथों से बनवाये हैं।"

तपस्विनी का नाम बंधुला था। बंधुला नामक तपस्विनी और धनशेखर—दोनों लीलासुन्दर उद्यान के उक्त लतामण्डप में पहुँचे, जहाँ हरिकुमार बैठा था। तपस्विनी ने हरिकुमार को बताया कि महाराज नीलकण्ठ जो आपके मामा हैं, अपनी पुत्री मयूरमंजरी का विवाह आपके साथ करना चाहते हैं। स्वयं मयूरमंजरी भी आप पर अनुरक्त है। वह चित्र जो मैं आप को दे गई थी, वह मयूरमंजरी का ही है।

बन्धुला तपस्विनी की बात पर हरिकुमार को विश्वास नहीं हुआ। तपस्विनी ने राजकुमारी के हाथ का बना एक चित्र हरिकुमार को दिखाया। वह चित्र विद्याधर दम्पती का था। दोनों एक दूसरे को बड़े प्रेम से देख रहे थे। चित्र के नीचे लिखा था—

अपने हृदयवल्लभ प्रियतम के साथ प्रेमरति, विनोद, भाषण, प्रेमोत्साह और विलास से सतत लालित स्त्रियाँ वास्तव में विशेष भाग्यशालिनी होती हैं।

हरिकुमार ने मयूरमंजरी के हाथ का बना दूसरा चित्र देखा। इस चित्र में एक राजहंसिनी चित्रित की गई थी। वन में लगे दावानल, हिमपात आदि से वह दग्ध-पीड़ित दिखाई गई थी और उस चित्र के नीचे लिखा था—

"यह राजहंसिनी अपने हृदय में बसे प्रिय को एक बार देखने के पश्चात् उसके विभोग में सूखकर कांटा हो रही है।"

दोनों चित्रों को देखकर हरिकुमार पर अनुकूल प्रभाव पड़ा। फिर राजकुमार हरि ने मन्मथ आदि अपने सब मित्रों को भी बुला लिया। उसी दिन धूमधाम से हरिकुमार का विवाह मयूरमंजरी के साथ हो गया। हरिकुमार अपनी प्रिया मयूरमंजरी के साथ दाम्पत्य सुख भोगने लगा। लेकिन उसे धनशेखर से अत्यधिक प्रेम था, अतः दिन भर वह उसको साथ रखता। एक क्षण के लिए भी अलग नहीं होने देता था।

× × ×

सदागम, भव्यपुरुष, प्रज्ञाविशाला और अगृहीतसंकेता के समक्ष अपनी आत्मकथा सुनाते हुए संसारी जीव ने अगृहीतसंकेता को सम्बोधित करते हुए कहा—

"बहिन अगृहीतसंकेता ! धनशेखर के रूप में मैं बहुत सुखी था। जयपुर में बकुल सेठ की पुत्री कमलिनी से मेरा विवाह हो ही गया था। रत्नद्वीप में आकर मैंने काफी रत्न इकट्ठे कर लिये थे और सबसे बड़ी बात यह थी कि राजपुत्र हरिकुमार से मेरी घनिष्ठ मित्रता थी। लेकिन लोभी मित्र सागर मुझे हर समय इस बात के लिए उकसाता रहता था कि धनशेखर ! तू यहाँ रत्न कमाने आया है या राजकुमार की मित्रता में समय गँवाने ?

"अगृहीतसंकेता ! मैं बड़ी दुविधा में था। मैं राजकुमार के पास बैठना, उसे समय देना भी नहीं छोड़ सकता था, क्योंकि उसके पास सत्ता थी। वह यदि क्रुद्ध हो जाता तो मुझे मिट्टी में मिला सकता था। अतः मुझ में इतना साहस नहीं था कि हरिकुमार की उपेक्षा कर दूं। दूसरी ओर मैं सागर की बात तो किसी भी मूल्य पर नहीं त्याग सकता था। धन कमाना ही मेरे जीवन का उद्देश्य था और पर्याप्त रत्न इकट्ठे कर लेने पर भी मुझे तृप्ति नहीं थी। अतः मैंने क्या किया उसे तो तुम सुनो ही। उसके साथ यह भी सुनो कि सागर-जैसे दो अन्य अन्तरंग मित्र भी मेरे गले पड़ गए। वे थे मन्मथ और यौवन। मुझे नष्ट करने के लिए सागर (लोभ) ही कम न था अब मन्मथ और यौवन भी आ धमके। अब तुम आगे की कहानी सुनो जब मुझे तीनों दुष्ट पापी मित्रों ने नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। इसका मुख्य कारण यह रहा कि मेरा सच्चा मित्र पुण्योदय मुझे छोड़कर भाग गया। पुण्योदय ने सदा मुझे आगे बढ़ाया, मेरी रक्षा की। पर मैं सदा उसकी उपेक्षा ही करता रहा।

[८] धनशेखर की मैथुन और यौवन से मित्रता

"गधे को समस्त सुख देने वाला स्वर्ग तो मिल गया, पर वहाँ भी हाथ में रस्सी लिये एक धोबी उसे मिला।" यह कहावत धनशेखर के साथ चरितार्थ हो गई। वह रत्नद्वीप रत्नों का उपार्जन करने आया था, पर हरिकुमार की मित्रता बाधक बन गई। सोच-समझकर धनशेखर ने बीच का ऐसा मार्ग निकाला कि हरिकुमार को अपनी उपेक्षा भी मालूम न हो और धनशेखर अपना रत्नों का व्यापार भी करता रहे।

धनशेखर ने धीरे-धीरे हरिकुमार को दिये गये समय को बचाया। कभी दो-एक दिन बिल्कुल नहीं जाता। कभी चला जाता। कभी केवल नमस्कार करके चला आता और कोई जरूरी काम बता देता। क्योंकि थोड़ा बहुत प्रभाव उस पर माया और मृषावाद का भी था।

धनशेखर ने बहुत रत्न कमा लिये। प्रचुर मात्रा में रत्न प्राप्त करके भी उसके असन्तोष और अतृप्ति की दशा बड़ी हास्यास्पद थी। रत्नों को लेकर वह जो-जो क्रिया या चेष्टाएँ करता उसे देखकर विवेकी जन तो हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते।

धनशेखर अपने रत्नों के ढेर को आँखें फाड़-फाड़कर देखता। फिर उन्हें छाती से लगाकर प्रसन्न होता। कभी उन्हें गड्ढा खोद कर गाड़ता। फिर सोचता कि किसी ने रत्नों को गाड़ते समय देख तो नहीं लिया? यह सोचकर वह गड़े हुए रत्नों को निकाल कर दूसरी जगह गाड़ता। जहाँ वह रत्नों को गाड़ता था, वहाँ कुछ निशान बना देता। फिर बार-बार जाकर उन निशानों का परीक्षण करता था।

रत्नों को बार-बार देखने, गाड़ने, छाती से लगाने, और अधिक रत्न कमाने की योजना बनाता—धनशेखर का सारा समय रत्न-लोलुपता में ही बीत रहा था।

एक दिन धनशेखकर के साथ एक घटना घटी। कर्मपरिणाम बहुत शक्ति सम्पन्न राजा है। उसका पूर्ण सहयोग करने वाली उस राजा की कालपरिणति रानी है। उस रानी के दो विश्वस्त दास हैं—एक मैथुन संज्ञा और दूसरा यौवन।

मैथुन संज्ञा और यौवन एक दिन आपस में बातें करने लगे। यौवन ने मैथुन संज्ञा से कहा—"मित्र मैथुन! संसारी जीव अब मेरे वश में है।

इन दिनों वह धनशेखर के रूप में जाना जाता है। अब समय आ गया है कि तुम उस पर अपना अधिकार करो। हम दोनों सदा साथ रहे हैं। वहाँ भी साथ चलते हैं।

"मित्र मैथुन ! मैं पहले उसके पास अकेला गया था। उसने मेरा अच्छा सम्मान किया था।"

"तो फिर चलो।" मैथुन संज्ञा ने यौवन से कहा—"मेरा परिचय भी धनशेखर नामधारी संसारी जीव से करवा दो। उसके साथ रहने में बड़ा आनन्द आयेगा।"

इस बातचीत के बाद रानी कालपरिणति के दोनों दास मैथुन संज्ञा और यौवन धनशेखर के पास पहुँच गए। यौवन को तो धनशेखर पहले से ही जानता था। उसी ने मैथुन संज्ञा से धनशेखर का परिचय कराया और बताया—इसके रहते तुम संसार का आनन्द लूटोगे।

वास्तविकता तो यह थी कि दोनों ही संसारी जीव—धनशेखर को गर्त में धकेलने वाले थे। पर मोहराजा के वश में होने के कारण धनशेखर को मैथुन संज्ञा और यौवन बहुत अच्छे लगे। उसने मैथुन को अपने अन्तरंग क्षेत्र—स्वान्त नामक भवन में रख लिया और यौवन को स्वान्त भवन के पास ही गात्र (शरीर) नामक महल में रखा। सागर (लोभ) सहित धनशेखर के अब तीन पापी मित्र हो गए। □

[९] मैथुन संज्ञा और सागर में संघर्ष : दोनों से समझौता

मैथुन संज्ञा के आते ही धनशेखर में प्रबल भोगेच्छा जाग्रत हो गई। वह विश्व की समस्त सुन्दरियों के साथ भोग करने की सोचने लगा। यौवन ने उसमें भोगशक्ति, विलास, हास्य, विनोद, मनहरण आदि गुण पैदा कर दिये। मैथुन संज्ञा ने धनशेखर को नगर की सबसे अच्छी वेश्या के पास जाने को प्रेरित किया। पर तभी सागर आ गया। उसने समझाया—धनशेखर ! मैथुन के चक्कर में आकर तू धन नष्ट कर देगा। वेश्या प्रचुर धन लेकर तुझे भोग का दान देगी।

अब धनशेखर बड़े असमंजस में पड़ा। वह मैथुन की बात भी नहीं टाल सकता था और सागर की उपेक्षा भी नहीं कर सकता। उसके दोनों मित्र प्रबल थे।

विजय सागर की हुई और मैथुन की भी पराजय नहीं हुई। धनशेखर वेश्या के यहाँ नहीं गया। अब वह ऐसी स्त्रियों की खोज में लग गया, जो

बिना धन लिए भोगदान दे सकती थीं या नाममात्र को धन लेती थीं। इस खोज में यौवन ने उसकी भरपूर मदद की। बाल-विधवा, ऐसी स्त्री जिसका पति बहुत दिनों से परदेश गया हो—धनशेखर को मिलने लगीं।

मैथुन और सागर के बीच में धनशेखर ऐसा पिसा कि उसने कुल-मर्यादा, समाज का भय और लोक लाज—सब कुछ त्याग दिया। उसकी बदनामी भी होने लगी। पर वह मैथुन संज्ञा के हाथ बिक चुका था। नीच जाति की स्त्रियों—मेहतरानी, चमारिन आदि के साथ धनशेखर कुकर्म करने लगा। उसका धन भी बचा—सागर (लोभ) की बात रह गई और मैथुन की इच्छा भी पूर्ण होती रही। लेकिन धनशेखर की भोगेच्छा पूरी नहीं होती थी, जैसे वन में लगी दावानल में चाहे जितना ईंधन डाल दो, सब राख बन जाता है, वैसे ही कई-कई स्त्रियों के साथ भोग करने पर भी धनशेखर अतृप्त रहता था।

जब कभी धनशेखर पकड़ में आता तो समाज में उसे बहुत अपमानित होना पड़ता था।

× × ×

"बहिन अगृहीतसंकेता ! मैंने मैथुन संज्ञा के कारण बहुत अपमान सहे, मैं निर्बल भी हो गया। फिर भी मैं समझता था कि मैथुन मेरा सच्चा मित्र है। मुझे मैथुन जो आनन्द देता है, वह कोई भी नहीं दे सकता।

"अगृहीतसंकेता ! लेकिन मैंने मैथुन संज्ञा से अधिक सागर को ही माना। सागर के कारण मैं प्रचुर रत्नों का स्वामी बना हूँ, मैं यह मानता था; जबकि रत्नराशि मुझे पुण्योदय के कारण प्राप्त हुई थी। अब तुमसे अधिक क्या कहूँ, सागर और मैथुन संज्ञा दोनों ने मिलकर मुझे बहुत सताया। इन दोनों ने परमप्रिय बहिरंग मित्र हरिकुमार और परमहितैषी अंतरंग मित्र पुण्योदय से अलग किया। सागर और मैथुन संज्ञा ने मेरी जो अवर्णनीय दुर्दशा की उसे तुम ध्यान से सुनो।" □

[१०] पुण्योदय का पलायन : धनशेखर की दुर्दशा

मयूरमंजरी के साथ विवाह के बाद हरिकुमार की लोकप्रियता अत्यधिक बढ़ गई। प्रजाजन उसके गुणों की प्रशंसा करते रहते थे। सबकी दृष्टि में वह रत्नद्वीप का भावी सम्राट् था। राज्याधिकारी भी उसे बहुत

चाहते थे। हरिकुमार की बढ़ती लोकप्रियता और प्रसिद्धि देखकर राजा नीलकण्ठ बहुत चिंतित रहने लगा। उसने सोचा, यही हाल रहा तो हरिकुमार शीघ्र ही मुझे हटाकर यहाँ का राजा बन जाएगा। अब मुझे जल्दी ही इसका वध कराकर निश्चिन्त हो जाना चाहिए।

राजा नीलकण्ठ ने एक दिन वयोवृद्ध मंत्री सुबुद्धि को बुलाकर कहा कि मन्त्रिवर ! ऐसी नीति है कि आधा राज्य हड़पने वाले नौकर को यदि मारा न जाए तो एक दिन स्वयं उसके हाथ से मरना पड़ता है। अतएव मैं हरिकुमार को मरवाकर निश्चिन्त हो जाना चाहता हूँ।

मन्त्री सुबुद्धि ने राजा की बात का समर्थन किया और आश्वासन दिया कि हरिकुमार को मारने का प्रयास किया जायगा।

राजा से एकाएक ही विरोध नहीं करना चाहिए, यही सोचकर मंत्री सुबुद्धि ने राजा नीलकण्ठ की हाँ-में-हाँ मिलाई थी। लेकिन राजा के पास से जाकर उसने विचार किया कि ऐसी राजलिप्सा किस काम की, जिसके कारण अपनों का ही अनिष्ट करना पड़े। हरिकुमार राजा की सगी बहन का लड़का—भानजा है और अब तो उसका जामाता है। राजा को हरिकुमार से अच्छा उत्तराधिकारी कहाँ मिलेगा ? उचित तो यह था कि अपने जीते-जी राजतिलक करके राजा दीक्षा ले लेता। पर वाहरे ! राज्य का लोभ—मामा भानजे को, श्वसुर जमाई को ही मारना चाहता है। मैं हरिकुमार की रक्षा करूँगा।

मन्त्री सुबुद्धि ने दमनक नाम का एक विश्वस्त चर हरिकुमार के पास भेजा, जिसने जाकर कहा—मन्त्री जी आपके हित में चाहते हैं कि जितना जल्दी हो सके आप यह राज्य छोड़कर कहीं अन्यत्र चले जाएँ। आपके श्वसुर आपको मरवाना चाहते हैं।

यह संवाद सुनकर हरिकुमार को तनिक भी घबराहट नहीं हुई। उसे अपने शौर्य पर भरोसा था। फिर भी उसने वयोवृद्ध मन्त्री की बात मानना उचित समझा और अपने प्रिय मित्र धनशेखर को बुलाकर कहा—"मित्रवर ! हमें जल्दी ही रत्नद्वीप छोड़कर अपने देश आनन्दनगर (भारतवर्ष) जाना है। तुम दो जहाज तैयार करो। एक अपने लिए और एक मेरे लिए। मेरे पास एक जहाज भर रत्न हैं, जिन्हें मैं साथ ले जाऊँगा।"

यह सुनते ही धनशेखर को काठ मार गया। वह यहाँ रत्न बटोरने आया था। अब उसे रत्नद्वीप छोड़कर जाना पड़ेगा। न चाहते हुए भी धनशेखर को तैयार होना पड़ा। उसने दो जहाज तैयार कराये। एक में

हरिकुमार के रत्न थे और दूसरे में धनशेखर के। रात में ही दोनों जहाज चल दिये। प्रेमवश हरिकुमार ने धनशेखर को अपने जहाज में बुला लिया।

धनशेखर की दृष्टि मयूरमंजरी पर पड़ी तो उसे अन्तरंग मित्र मन्मथ ने झकझोर दिया और जब हरिकुमार के रत्न देखे तो सागर (लोभ) ने उकसाया। सागर और मन्मथ— दोनों के वश में पड़कर धनशेखर ने निश्चय किया—ऐसा अवसर हाथ से नहीं जाने दूँगा। ढेर सारे रत्न और भोग्या मयूरमंजरी—दोनों को लूँगा। यह सब तभी हो सकता है, जब मैं हरिकुमार को ठिकाने लगा दूँ। यह सोच धनशेखर ने हरिकुमार को समुद्र में धकेलने का निश्चय कर लिया।

चन्द्रमा निकल आया था। समुद्र में तरंगें उठ रही थीं। धनशेखर के मनरूपी समुद्र में लोभ (सागर) और मन्मथ की तरंगें उठ रही थीं।

× × ×

धनशेखर ने यह नहीं सोचा कि जिसे मैं मारना चाहता हूँ, वह मेरा परमहितैषी और परम स्नेही मित्र है। मुझे मित्रघात का पाप लगेगा। हरिकुमार मेरे नगर आनन्द का राजा भी है; मुझे राजद्रोह का पाप लगेगा। मुझे कृतघ्नता का और विश्वासघात का पाप लगेगा। मुझे हिंसा का भयंकर पाप लगेगा। धनशेखर हरिकुमार के समस्त अहसानों को भूल गया। उसने जहाज के किनारे हरिकुमार को बुलाया और उससे लघुशंका करने को कहा। हरिकुमार ने सोचा कि यह मुझसे लघुशंका क्यों करवा रहा है, फिर भी मित्र समझ वह लघुशंका करने लगा। तभी धनशेखर ने हरिकुमार को समुद्र में धकेल दिया।

समुद्र का अधिष्ठाता देव कुन्दपुष्प अथवा चन्द्रमा जैसे हरिकुमार के गुणों पर मुग्ध था। अतः उसने तुरन्त उसे समुद्र से निकालकर जहाज में रख दिया और भयंकर रूप बनाकर धनशेखर को आकाश में उठा लिया और बोला—"पापी कृतघ्न! अब मैं तुझे नहीं छोड़ूंगा।"

हरिकुमार जानता था कि धनशेखर ने मुझे समुद्र में धकेला था। फिर भी वह उसे बचाना चाहता था। साधुजनों की यही विशेषता है कि वे अपकारी के साथ भी उपकार करते हैं। हरिकुमार सज्जन स्वभाव का था। उसने समुद्र देव से बहुत प्रार्थना की कि मेरे मित्र को छोड़ दो। पर देव ने धनशेखर को समुद्र में फेंक दिया। गिरते ही वह समुद्र की गहराई में—तह तक समा गया।

उधर हरिकुमार आनंदनगर पहुँच गया। संयोग से हरिकुमार के पिता केसरी मर चुके थे। उनका सिंहासन सूना था। हरिकुमार की धाय वसुमती ने राज परिवार, मंत्री आदि को बताया कि हरिकुमार महराज केसरी का ही आत्मज है। यह जानकर राज परिषद और प्रजाजनों को बहुत प्रसन्नता हुई। सब ने मिलकर हरिकुमार का राज्याभिषेक किया। हरिकुमार अब आनंदनगर का राजा था। थोड़े ही दिनों में वह लोकप्रिय हो गया। उसकी न्यायप्रियता और प्रजावत्सलता के गुण गाये जाते थे। धनशेखर के जहाज के सभी रत्न हरिकुमार ने उसके पिता श्रेष्ठी हरिशेखर को सौंप दिये। श्रेष्ठी हरिशेखर को यह जानकर बड़ा दुःख हुआ कि रत्नों के लोभ में मेरा पुत्र सागर (लोभ एवं समुद्र) में ही समा गया।

× × ×

अगृहीतसंकेता! जिस समय मैंने हरिकुमार को लघुशंका करते समय समुद्र में फेंका था, मेरा अन्तरंग मित्र पुण्योदय उसी समय मुझे छोड़-कर चला गया। उसके चले जाने के कारण समुद्र देव का हृदय नहीं पसीजा और उसने मुझे आकाश से समुद्र में पटका। जब तक पुण्योदय मेरे साथ रहा। मुझे सफलता पर सफलता मिलती गई। उसके न रहने से मुझे जो-जो असफलताएँ मिलीं, उन्हें तुम सुनो। पुण्योदय के बिना मैं भिखारी तक बन गया। सागर (लोभ) और (मन्मथ) मेरे प्रबल शत्रु थे, यह मैं अपनी दुर्दशा देखकर भी नहीं जाना। प्रत्येक जन्म में भवितव्यता मेरे साथ पुण्यो-दय को भेजती थी, पर मैं हर बार उसकी उपेक्षा करके उसे दुर्बल बना देता था और अन्त में वह मुझे छोड़कर चल देता था। मैं अपने शत्रुओं को ही मित्र मानता था। कभी वैश्वानर (क्रोध) को अपनाया और हिंसा से विवाह किया। फिर शैलराज (अभिमान) के वश में होकर भव बिगाड़ा। मृषावाद, माया और स्तेय ने मेरी जो दुर्दशा की वह तुम सुन ही चुकी हो। सागर (लोभ) और मन्मथ ने मेरी जो दुर्दशा की, उसका अभी अन्त नहीं था। उस दुर्दशा का अनुभव तो पुण्योदय के जाने के बाद ही मुझे हुआ। तुम भी सुनो।" □

[११] धनशेखर की विफलता

एकदम पानी में गिरने के बाद मनुष्य, पहले पानी की गहराई में नीचे जाता है और फिर ऊपर उछलता है। समुद्रदेव ने धनशेखर को

आकाश से नीचे पटका। वह समुद्रतल तक पहुँचने के बाद एकदम ऊपर उछला। अधमरा तो वह पहले ही हो चुका था। ऊपर लहर के थपेड़ों ने उसे व्याकुल कर दिया। मगर की पूँछों के प्रहार, लहरों के आघात और कछुओं की पीठ की चोटों से व्याकुल धनशेखर सात दिन सात रात समुद्र में ही रहा और एक दिन समुद्री ज्वार ने उसे किनारे पर पटक दिया। वह मृतप्राय हो चुका था। बस, साँस बाकी थी। समुद्री तट के वन की शीतल शुद्ध हवा से उसकी चेतना लौटी तो भूख की तीव्र ज्वाला से वह छटपटाने लगा। भूख के कारण उससे खड़ा नहीं हुआ जा रहा था। जैसे-तैसे उठकर फलों की खोज में वह चला, पर पुण्योदय के अभाव में उसे वन में खाने लायक फल भी नहीं मिले। घास-पात खाकर उसने पेट भरा और भटकते-भटकते वसंत देश पहुँचा।

धनशेखर के साथ वही दो अन्तरंग मित्र थे—सागर और मन्मथ। उसका सच्चा मित्र पुण्योदय तो कभी का जा चुका था। अहंकार के कारण धनशेखर न तो अपने पिता के पास आनन्दनगर गया और न अपनी सुसराल जयपुर। वह वसंत देश में ही पुनः कोई व्यापार करने का प्रयास करने लगा। पर हर काम में उसे असफलता ही मिली, रुपया लगाया तो अठन्नी हाथ रही। इस पूरी विफलता का कारण पुण्योदय का न होना था। सागर (लोभ) उसे व्यापार करने की प्रेरणा तो देता था, पर सफलता दिलाना उसके हाथ में नहीं था।

धनशेखर ने जो-जो काम किये, सब में विफल हुआ। मुख्य रूप से उसने जो-जो किया और जो-जो परिणाम निकले, उनका संक्षिप्त ब्यौरा इस प्रकार है—

धनशेखर ने पहले खेती का कार्य किया तो उस साल सूखा पड़ी—वर्षा नहीं हुई। फिर उसने राजा की नौकरी की। बड़ी निष्ठा से राजा की सेवा की, पर पुण्योदय के बिना राजा उस पर क्रुद्ध हो गया और नौकरी से निकाल दिया। राजसेवा छोड़ने के बाद धनशेखर ने सेना में नौकरी की। उसे युद्ध में जाना पड़ा। सेनापति की प्रसन्नता के लिए उसने जान की बाजी लगा दी। उसकी देह शत्रु-प्रहारों से जर्जर हो गई और विवश होकर सेना की नौकरी भी छोड़नी पड़ी।

स्वस्थ होने के बाद धनशेखर ने एक बैलगाड़ी खरीदी। उसने गाड़ी द्वारा माल ढोने का काम किया। पर वाह रे पुण्यहीनता! रोग लग जाने के कारण कुछ दिन बाद उसके बैल मर गए। बैल मर जाने के बाद

उसने माल ढोने के लिए गधे खरीदे तो एक दिन चोरों-लुटेरों ने गधों सहित उसके माल का हरण कर लिया। तंग आकर धनशेखर ने एक गृहस्थ के यहाँ नौकरी करली। निष्ठा से कार्य करने पर भी उसका मालिक बात-बिना-बात बिगड़ उठता और एक दिन उसे नौकरी से अलग ही कर दिया। जहाज के व्यापारी की नौकरी की तो व्यापारी का जहाज ही डूब गया। इस तरह धनशेखर ने सभी कामों में भाग्य अजमाया। सोना बनाने का काम भी किया। पर सब में असफलता ही हाथ लगी। वह निराशा के सागर पर तैरने लगा।

× × ×

"बहिन अगृहीतसंकेता! मैंने द्यूत कला सीखी और जुआ खेलने लगा तो मैंने हर बार हार पायी। बहिन, मैं तुझे कहाँ तक बताऊँ, पुण्योदय के अभाव में मैं जीवित होकर भी मरे के समान जी रहा था। मैंने जो-जो कष्ट उठाये, उनका वर्णन नहीं कर सकता। जब मैं हर तरफ से निराश होकर बैठ गया तो जिसे मैं अपना मित्र समझे बैठा था, उस पापी सागर ने मुझे उकसाया—अरे धनशेखर! जो प्राणी निराश हो जाते हैं, उन्हें कभी धन की प्राप्ति नहीं होती। क्या तू नहीं जानता कि संसार में धन ही सार है। उठ और प्रयास कर। भाग्य विपरीत होने पर भी धन प्राप्त करने का प्रयास करते रहना चाहिए। धन के लिए तुझे किसी की हत्या भी करनी पड़े तो कर। सगे भाई को भी मारना पड़े तो मार। धन कमाने में कोई भी पाप करना पड़े तो कर। पर धन कमा।

"बहिन अगृहीतसंकेता! पापी सागर की प्रेरणा से मैंने धन के लिए अनेक पाप कर्म किये। सागर जैसा जैसा करने को मुझसे कहता, मैं करने लग जाता। लेकिन धन तो भी हाथ नहीं आया। फिर मैं भीख माँगने लगा। लेकिन भीख भी मुझे पूरी नहीं मिलती थी। जैसे-तैसे पेट भर पाता था। उधर मैथुन भी मुझे उकसाता रहता था। लेकिन पुण्योदय के बिना कुरूप-से-कुरूप स्त्री भी मेरी तरफ नहीं देखती थी। कानी-कुबड़ी स्त्रियाँ तक मुझ से दूर रहती थीं। इस तरह सागर और मन्मथ के कारण मैं धरती पर भी नरक जीवन जी रहा था।" □

[१२] आनन्दनगर में उत्तमसूरि का आगमन

अनेक श्रमणों के साथ उत्तमसूरिजी महाराज आनन्दनगर में पधारे

और मनोरम नामक राजोद्यान में ठहरे। राजा हरिकुमार रानी मयूरमंजरी तथा अपनी राजपरिषद सहित मुनि महाराज की वंदना करने आया। धनशेखर के पिता हरिशेखर भी आये। प्रजाजनों के हजारों स्त्री-पुरुष भी देशना सुनने आये।

आचार्य उत्तम सूरि ने अमृतोपम कल्याणकारी देशना दी। देशना समाप्ति के पश्चात् आनंदनगरनरेश हरिकुमार ने उत्तमसूरि से पूछा—

"भन्ते ! मेरे मित्र धनशेखर को देव ने समुद्र में फेंक दिया था। उसका क्या हुआ ? क्या वह मर गया या अभी जीवित है ? उसने मुझे समुद्र में धकेला था, इसका क्या कारण था ?"

उत्तम सूरि महाज्ञानी थे। भूत-भविष्य को जानते थे। धनशेखर के समुद्र में गिरने के बाद से भीख माँगकर भटकने तक का सब इतिवृत्त सुनाने के बाद उत्तम सूरि ने कहा—

"राजन् ! धनशेखर तो बहुत उत्तम और निर्दोष स्वभाव का है। उसने तुम्हें समुद्र में फेंका, इसमें उसका कोई दोष नहीं है। सारा दोष उसके अन्तरंग साथी सागर और मैथुन का है। उसका सागर मित्र तुम्हारे रत्नों को लेना चाहता था और मैथुन तुम्हारी पत्नी मयूरमंजरी को चाहता था। इन्हीं दोनों दुष्टों ने धनशेखर से मित्रघात कराया था ?"

"तो भगवन् ! सागर और मैथुन मेरे मित्र का साथ कब छोड़ेंगे ?" राजा हरिकुमार ने पूछा—"भन्ते ! दोनों अन्तरंग दुष्टों से धनशेखर कब छुटकारा पायेगा ?"

"राजन् ! धनशेखर का विवाह जिस दिन ब्रह्मरति और मुक्तता नामक कन्याओं से हो जाएगा, उसी दिन सागर और मैथुन धनशेखर को छोड़कर भाग जायेंगे।

"राजन् ! ब्रह्मरति और मुक्तता कौन हैं, मैं इनका संक्षिप्त परिचय तुम्हें देता हूँ।

"शुभ्रचित्त नामक एक नगर है। यहाँ सदाशय नामक राजा राज्य करता है। इस राजा की रानी है—वरेण्यता। रानी वरेण्यता के दो पुत्रियाँ हैं—ब्रह्मरति और मुक्तता। ये दोनों परम रूपवती और गुणों की भण्डार हैं। जिस प्राणी को ये दोनों देख लेती हैं, वह पवित्र हो जाता है। ब्रह्मरति मैथुन की प्रबल शत्रु है। मैथुन इसे देखते ही भाग जाता है। मुक्तता सागर की प्रबल शत्रु है। सागर उसके सामने टिक ही नहीं सकता। तुम सोच रहे हो कि धनशेखर को इन कन्याओं की प्राप्ति कैसे होगी, इसके लिए मैं प्रबल

प्रयत्न करूँ; पर तुम कोई भी उपाय नहीं कर सकते। भविष्य में यदि राजा कर्मपरिणाम और रानी कालपरिणति प्रसन्न हो जाएँ तो शुभ्रचित्त नगर के राजा सदाशय को आदेश देंगे। तब वह राजा अपनी कन्याओं का विवाह धनशेखर—संसारी जीव के साथ करेगा। तब तक तुम तटस्थ होकर रहो।"

राजा हरिकुमार ने पुनः पूछा—

"धनशेखर स्वरूपतः निर्मल है। फिर सागर और मैथुन ने उसे दुष्ट कैसे बना दिया ?"

"राजन् ! लोक दो प्रकार का है—बहिरंग और अन्तरंग। बहिरंग लोक के दोष प्राणी को कभी प्रभावित करते हैं और कभी नहीं भी करते। लेकिन अन्तरंग लोक के दोष प्राणी को सदा प्रभावित करते हैं। अन्तरंग दोष-संग से निर्मल प्राणी भी दुष्ट बन जाता है।

"राजन् ! अन्तरंग लोक के दोष कैसे होते हैं और संसारी जीव को किस प्रकार प्रभावित करते हैं, यह कथा मैं तुमको विस्तार से सुनाता हूँ।"

उत्तम सूरि अन्तरंग लोक का हाल राजा हरिकुमार को सुनाने लगे। धर्म परिषद् के अन्य लोग भी बड़ी तल्लीनता से सुन रहे थे। □

[१३] सुख-दुख का कारण : अन्तरंग राज्य

जगत्प्रसिद्ध राजा कर्मपरिणाम और रानी कालपरिणति के अनेक पुत्र हैं। उनके पुत्रों को किसी की दृष्टि न लगे, इस दृष्टि से कर्मपरिणाम राजा के अविवेक आदि मंत्रियों ने जगत में यह प्रसिद्ध कर रखा है कि राजा कर्मपरिणाम वीर्यहीन और रानी कालपरिणति बांझ है। राजा कर्मपरिणाम के अनेकों पुत्रों में, जो अन्तरंग लोक पर शासन करते हैं, उनमें छह मुख्य हैं—(१) निकृष्ट, (२) अधम, (३) विमध्यम, (४) मध्यम, (५) उत्तम और (६) वरिष्ठ।

पुत्रों के अतिरिक्त कर्मपरिणाम राजा का एक विशेष व्यक्ति है, जिसका नाम सिद्धान्त है। सिद्धान्त सत्पुरुष और सत्यवादी है और सभी का हित करने वाला है। यह व्यक्ति राजा कर्मपरिणाम और रानी काल-परिणति के समस्त गोपनीय रहस्यों को जानता है।

सत्पुरुष सिद्धान्त का एक विनयी शिष्य है, अप्रबुद्ध । एक दिन अप्रबुद्ध ने अपने गुरु सिद्धान्त से पूछा—

"गुरुदेव ! संसार में प्राणी को सबसे अधिक क्या प्रिय है और क्या अप्रिय ?"

"प्राणि मात्र सुख चाहता है ।" सिद्धान्त ने कहा—"अप्रबुद्ध ! हर मनुष्य को सुख सबसे अधिक प्रिय है और दुख उसे सर्वाधिक अप्रिय है ।

"वत्स अप्रबुद्ध ! सुख-दुख—दोनों का कारण राज्य है । सुख-दुख—दोनों का कारण एक ही राज्य कैसे हो सकता है ? यह प्रश्न भी विचारणीय है । यदि राज्य का पालन भली रीति से किया जाए तो वह सुख का कारण बनता है और यदि गलत ढंग से किया जाए तो राज्य ही दुःख का हेतु बनता है ।"

"लेकिन राज्य सभी को प्राप्त कहाँ होता है ?" अप्रबुद्ध ने सिद्धान्त से कहा—"राज्यहीन अधिक हैं और वे सभी प्रायः दुखी रहते हैं । फिर राज्यहीनों के दुःख का कारण राज्य कैसे हो सकता है ?"

"अरे पगले ! तू बाहरी राज्य की बात कह रहा है ।" सिद्धान्त ने अप्रबुद्ध को समझाया—"राज्य दो प्रकार का होता है, एक बाह्य राज्य और दूसरा अन्तरंग राज्य । बाह्य राज्य बहुत थोड़े व्यक्तियों को प्राप्त होता है, पर अन्तरंग राज्य सभी को मिलता है । तो सुख-दुख का कारण अन्तरंग राज्य है ।

"वत्स अप्रबुद्ध ! अन्तरंग राज्य एक रूप वाला अथवा एक समान है । लेकिन विशेष प्रकार से देखने पर अनेक रूपवाला अथवा भिन्न-भिन्न रूपवाला दिखाई देता है । अब मैं तुझे इस सामान्य राज्य—अन्तरंग राज्य के बारे में तनिक विस्तार से बताता हूँ । तू ध्यान देकर सुन ।"

× × ×

अन्तरंग सामान्य राज्य का राजा संसारी जीव है । समता, ज्ञान, ध्यान, वीर्य आदि अनेक रत्नों का भण्डार इस राज्य में है । इस राज्य की लोक को जीतने वाली चतुरंगिणी सेना है । इस सेना में गंभीरता, उदारता, शूरवीरता, आदि बड़े-बड़े रथ हैं, यशस्विता, सौष्ठवता, सज्जनता, प्रेम आदि अनेक हाथी हैं । बुद्धिचातुर्य, वाक्पटुता, निपुणता आदि घोड़े हैं और अचपलता, प्रसन्नता, प्रशस्तता, मनस्विता, दाक्षिण्य आदि की पदाति सेना है ।

संसारी जीव राजा के अनेक विशिष्ट सहायक हैं। इनमें चारित्रधर्म नामका प्रतापी प्रतिनायक है। इस प्रतिनायक के सम्यग्दर्शन नाम का सेनापति और सद्बोध नाम का मंत्री है। प्रतिनायक चारित्रधर्म के दो पुत्र हैं –एक श्रमणधर्म और दूसरा श्रावकधर्म या गृहस्थधर्म। संतोष नाम का इसका तंत्रपाल और सदाशय नाम का योद्धा हैं। ये सभी लोग बड़े ही समर्थ और अनंत गुण समूहों से परिपूर्ण हैं। लेकिन यदि इस राज्य का राजा (संसारी जीव) निर्मल हो तभी अपने सहायकों–सेना, सेनापति, तंत्रपाल आदि को पहचान सकता है, अन्यथा नहीं।

इस अन्तरंग महाराज्य की भूमि चित्तवृत्ति नामक अटवी में स्थापित की गई है। इस अटवी में सात्त्विकमानसपुर, जैनपुर, बिमलमानस, शुभ्रचित्त आदि अनेक छोटे-बड़े नगर हैं। लेकिन ऐसा सुन्दर, समृद्ध और विख्यात महाराज्य अनेक डाकू एवं लुटेरों से घिरा हुआ है।

इस महाराज्य में घातिकर्म नाम के अनेक डाकू हैं, इन्द्रिय नामक चोर, कषाय नामक जल्लाद और नो-कषाय नामक जल्लाद घूमते रहते हैं। परीषह नामक उपद्रवी, उपसर्ग नामक सर्प और प्रमाद नामक लम्पट रहते हैं। इन सबके दो-दो नायक हैं—एक कर्मपरिणाम और दूसरा महामोह। कर्मपरिणाम और महामोह—दोनों भाई हैं।

कर्मपरिणाम और महामोह—दोनों भाई वीर और अपनी स्वतंत्र चतुरंगिणी सेना रखते हैं। इनके अधीनस्थ करोड़ों योद्धा हैं। ये दोनों भाई इतने घमण्डी और उद्धत हैं कि स्वयं को ही इस महाराज्य का राजा समझते हैं। असली राजा संसारी जीव को तो ये तृणवत् मानकर हमेशा उसे दबाये रहते हैं। सभी चोर-लुटेरे-दुष्टों ने मिलकर कर्मपरिणाम को अपना राजा बना लिया है और राज्य विस्तार में लगे हैं।

चोर-लुटेरों ने राजसचित्त, तामसचित्त और रौद्रचित्त नामक अनेक ग्राम-नगर बसा रखे हैं और अपनी चतुरंगिणी सेना महामोह राजा को सौंप रखी है। राज्य संचालन का समस्त कार्य महामोह करता है। वही राजा है, क्योंकि राजा कर्मपरिणाम और रानी कालपरिणति तो मनुष्यगति नगरी में बैठे-बैठे नाटक देखते रहते हैं। लेकिन कर्मपरिणाम राजा महाराज संसारी जीव की शक्ति-सामर्थ्य को अवश्य जानता है। वह प्रतिनायक चारित्रधर्म राजा के बल, मंत्री सद्बोध की शक्ति और सेनापति सम्यग्दर्शन के सैन्यबल को भी अच्छी तरह जानता है। तंत्रपाल संतोष का चातुर्य और शुभाशय के युद्धोत्साह को जानता है। इसलिए कर्मपरिणाम संसारी जीव

(राजा, के प्रति उपेक्षा भाव नहीं रखता। लेकिन उसका भविष्य देखता रहता है। इसीलिए चारित्रधर्म राजा तथा उसके सभी अधीनस्थ कर्मचारी कर्मपरिणाम राजा को मध्यस्थ मानते हैं और कर्मपरिणाम की तटस्थता के कारण उसे अपना स्वामी मानते हैं। और इसी कारण संसारी जीव के महाराज्य में कर्मपरिणाम को परामर्श देने योग्य माना जाता है।

उधर अपनी शक्ति, सेना और सहायकों के बल पर महामोह संसारी जीव तथा चारित्रधर्म राजा एवं उसके सहायकों को तिनके-जैसा तुच्छ समझता है। वह अपने को ही इस महाराज्य का स्वामी और सर्वेसर्वा समझता है। संसारी जीव अपनी शक्ति, अपने सैन्य बल और अपने सहायकों की शक्ति से अनभिज्ञ रहने के कारण महामोह के हाथ का खिलौना बना नाचता रहता है। महामोह ने अपनी शक्ति से संसारी जीव को लुटा-पिटा और अकिंचन बना रखा है।

सत्पुरुष सिद्धान्त ने अप्रबुद्ध से कहा—

"वत्स अप्रबुद्ध ! संसारी जीव जब अपनी शक्ति-सामर्थ्य को पहचान लेता है तो महामोह आदि को समूल नष्ट करके अपने अखण्ड अन्तरंग राज्य का स्वामी बनता है।

"वर्तमान में संसारी जीव का सुराज्य है या कुराज्य, इस प्रश्न के उत्तर में कहा जाएगा कि वर्तमान में संसारी जीव का कुराज्य है। संसारी जीव यह नहीं जानता कि मैं इतने बड़े महाराज्य का स्वामी हूँ। वह अभी बाह्य प्रदेश में ही भटक रहा है। उसके दुष्ट अन्तरंग साथी सागर और मैथुन उसे बाह्य प्रदेश में भटका रहे हैं और वह दुःख के समुद्र में डूबा हुआ है। उसके राज्य को महामोह की सेना ने घेर रखा है।"

"गुरुदेव ! यह अन्तरंग राज्य संसारी जीव के दुःख का कारण है, यह तो समझ में आ गया। लेकिन आपने कहा था कि विशेष रूप में देखने से यह महाराज्य अनेक रूप वाला है, कृपया इसके भिन्नत्व को भी समझाइए।"

"अब मैं अन्तरंग महाराज्य की अनेकरूपता अथवा उसके भिन्नत्व को भी समझाता हूँ।" सत्पुरुष सिद्धान्त ने कहा—"तुम ध्यान देकर सुनो।" □

[१४] अन्तरंग राज्य की अनेकरूपता : निकृष्ट राज्य

यों तो कर्मपरिणाम राजा के अनन्त पुत्र हैं, पर जो अन्तरंग राज्य

के राजा बनते हैं, वे छह हैं—(१) निकृष्ट, (२) अधम, (३) विमध्यम, (४) मध्यम, (५) उत्तम और (६) वरिष्ठ।

सत्पुरुष सिद्धान्त ने कर्मपरिणाम राजा से प्रार्थना करके यह योजना बनवाई कि उनका प्रत्येक पुत्र एक-एक वर्ष शासन करे। उसके बाद अप्रबुद्ध ने अपने अन्तरंग कर्मचारी वितर्क को यह देखने भेजा कि कर्मपरिणाम के छहों पुत्र किस प्रकार राज्य व्यवस्था—शासन करते हैं। यह योजना बन जाने के बाद अप्रबुद्ध ने वितर्क को प्रत्येक पुत्र के शासनकाल में शासन व्यवस्था देखने भेजा। उसने प्रत्येक बार जाकर सब कुछ देखा-भाला और अप्रबुद्ध को बताया। इस प्रकार वितर्क ने मनुष्यगति में छह वर्ष बिताये।

वितर्क ने मनुष्यगति के अन्तरंग राज्य में प्रवेश किया और जो कुछ उसके सामने गया-गुजरा, वह इस प्रकार सुनाया। जब उसने मनुष्यगति के अन्तरंग राज्य में प्रवेश किया, तब कर्मपरिणाम का प्रथम पुत्र निकृष्ट राज्यासीन होने जा रहा था।

× × ×

उद्‌घोषक ने पटह बजाकर घोषणा की कि अब निकृष्ट राजा बना है। आप लोग खायें-पीयें और मौज करें। यह घोषणा सुनकर पूर्व के राजा और उनके सहायकों में खलबली मच गई कि यह नया राजा जानें कैसा होगा।

महामोह के सहायक संगठित होकर उसके पास पहुँचे कि यह नया राजा निकृष्ट हमारे अनुकूल है या प्रतिकूल, यह जानना जरूरी है। इस पर महामोह के मन्त्री विषयाभिलाष ने सबके समक्ष महामोह को सम्बोधित करते हुए कहा—

"स्वामी ! हमें निकृष्ट से किंचित् भी नहीं घबराना चाहिए। कर्मपरिणाम ने अपने पुत्र इस निकृष्ट को तो हमारे अनुकूल और हमारे अधीन रहने के लिए ही बनाया है। यह तो हमारे सैनिकों का भी दास बनकर रहेगा। यह तो नाममात्र का राजा रहेगा, राज्य तो वस्तुतः हम ही करेंगे।"

"फिर भी !" महामोह ने विषयाभिलाष से कहा—"हम निकृष्ट के बारे में जानना चाहते हैं कि वह क्या है, कैसा है ?"

अब विषयाभिलाष महामोह को निकृष्ट के बारे में बताने लगा—

"राजन ! निकृष्ट कुरूप, भाग्यहीन, निर्दय, हिंसक, पाप में रत, नास्तिक, परलोक की मान्यता से विमुख और दोषों का घर है। उसे तो यह भी नहीं मालूम कि मैं अन्तरंग राज्य का राजा बना हूँ। यह हमें ही अपना सर्वस्व मानता है।"

यह सुनकर महामोह को बहुत सुख मिला। उसके साथी-सहायक हर्ष से नाचने-कूदने लगे। वे जान गए कि निकृष्ट के राज्य में हमें मनमानी करने का पूर्ण अवसर मिल गया। हमारी पाँचों उँगली घी में रहेंगी। इसके बाद ही महामोह ने निकृष्ट के राज्य पर पूरी तरह अधिकार कर लिया और चारित्रधर्म राजा को उसकी सेना सहित पराजित कर दिया। निकृष्ट राजा को तो महामोह ने राज्य से ही बाहर निकाल दिया।

वितर्क ने अब बहिरंग राज्य का निरीक्षण किया तो यह देखा कि निकृष्ट राजा अन्तरंग राज्य से निकाला जाकर बहिरंग राज्य में आ गया। उसकी दशा बड़ी दयनीय थी। उसकी देह मैल और फफोलों से भरी थी। वह घास और लकड़ी बेचकर अपनी गुजर-बसर करता था। कभी पशु-पक्षी मारकर उदर पालन करता था। इतने पर भी वह महामोह तथा उसके साथी चोर-लुटेरों को अपना हितैषी मानता था।

बेचारा निकृष्ट अपनी शक्ति को जानता और यह जानता कि मैं बहुत समृद्ध राज्य का स्वामी हूँ तो उसकी यह दुर्दशा न होती। मरने के बाद निकृष्ट राजा (निकृष्ट संसारी जीव) को नरक में भेज दिया गया।

उधर जब निकृष्ट के राज्य स्थापन की घोषणा हुई थी, तब चारित्र-धर्म राजा और उसके सहायकों में भी खलबली मची। सद्बोध मन्त्री ने बताया कि अब हम दुहरी मुसीबत में हैं। हम महामोह से पहले ही परेशान थे। अब यह निकृष्ट राजा तो उसी की शक्ति को बढ़ाने वाला आ गया है।

मन्त्री सद्बोध की यह बात सुनकर चारित्रधर्म सहित सभी निस्तेज और शोकाकुल हो गए। चारित्रधर्म के अधीनस्थ नगर सात्त्विकपुर आदि में भी शोक व्याप्त हो गया।

खैर, महामोह का समर्थक, निकृष्ट राजा मृत्यु को प्राप्त कर जब पापी पिंजर नगर (नरक) में चला गया तो कर्मपरिणाम के दूसरे पुत्र अधम का राज्य आया। अप्रबुद्ध के सेवक वितर्क ने इस राजा के राज्य का निरीक्षण करके भी अप्रबुद्ध को बताया। □

[१५] अधम का राज्य : भोगिनी दृष्टिदेवी

जब अधम के राज्यासीन होने की घोषणा हुई तो महामोह और चारित्रधर्म—दोनों की सेना में विचार-विमर्श हुआ कि अधम का राज्य

कैसा है। इस विषय में विषयाभिलाष ने महामोह को और सद्बोध ने चारित्रधर्म राज्य को अधम के बारे में भिन्न-भिन्न विचार से अवगत कराया।

पहले विषयाभिलाष मन्त्री ने महामोह को बताया—

"राजन्! अधम इसी जन्म में सुख भोगने का आकांक्षी है। वह परलोक से विमुख है। धर्म और मोक्ष का द्वेषी है—काम और अर्थ से ही प्रयोजन रखता है। निकृष्ट की तरह यह भी हमारा आज्ञापालक है। लेकिन इसमें निकृष्ट से अधिक शक्ति है। अतः इसे हम राज्य से बाहर खदेड़ें, इससे अधिक उपयुक्त यही है कि इसे राज्य में प्रवेश ही न करने दिया जाए।"

"अधम राज्य में प्रवेश न करे।" महामोह ने कहा—"इसी का उपाय बताओ।"

विषयाभिलाष ने उपाय बताया—

"स्वामिन्! इसे बाह्य प्रदेश में धन बटोरने और कामभोगों में लगा देना चाहिए, क्योंकि यह अर्थ-काम में ही रुचि रखता है।

"स्वामिन्! मेरी दृष्टि नामक एक पुत्री है। इस काम को यह करेगी।"

महामोह की सभा में विषयाभिलाष की पुत्री दृष्टि भी बैठी थी। उसने कहा—

"आपकी आज्ञा हो तो मैं अकेली इतनी सामर्थ्य रखती हूँ कि अधम को अन्तरंग राज्य में फटकने भी न दूँ। वह न केवल अपनी सेना से बे-खबर रहे, बल्कि उससे रुष्ट भी रहे।"

महामोह ने उसे आज्ञा दी कि तुम ऐसा ही करो, जिससे अधम धन-संचय और कामभोग की प्रवृत्ति में बाह्य प्रदेश में ही अटका रहे। आज्ञा प्राप्त करते ही विषयाभिलाष की पुत्री भोगिनी दृष्टिदेवी तत्काल बाह्य प्रदेश में अधम के पास पहुँच गई।

उधर चारित्रधर्म राजा की सभा में मंत्री सद्बोध ने का अधम के बारे में बताया—

"स्वामिन्! यह अधम निकृष्ट जैसा ही हमारा विरोधी और हमारे शत्रु महामोह के अधीन रहने वाला है।"

यह सुनकर चारित्रधर्म राजा की सभा में पहले की तरह शोक छा गया। अब दृष्टिदेवी ने यह किया कि वह अपने योग बल से अधम की

दृष्टि में समा गई। इससे अधम स्त्री-लोलुप हो गया। वह भोग में ही आसक्त और लिप्त रहने लगा। दृष्टिदेवी का सहयोग किया उसके भाई-बहिन—स्पर्शन आदि ने। अधम अपनी सेना से अनभिज्ञ हो गया। वह इन्द्रिय-सुख को ही वास्तविक सुख मानने लगा। एक बार तो अधम रूपवती चाण्डालिन स्त्री पर ही आसक्त हो गया। उसने लोकलाज, कुल प्रतिष्ठा, धर्माधर्म का विचार त्याग उसके साथ भोग किया। इससे उसकी समाज में बहुत बदनामी हुई।

विलर्क ने अप्रबुद्ध को बताया कि अपने अज्ञान के कारण अपनी शक्ति-सेना से अनभिज्ञ अधम भी मरकर पापी पिंजर नगर (नरक) में गया। अब तीसरे वर्ष कर्मपरिणाम का तीसरा पुत्र विमध्यम राज्यासीन हुआ। □

[१६] **विमध्यम का राज्यकाल**

विषयाभिलाष मंत्री ने महामोह की राजसभा में विमध्यम के बारे में बताया—

"स्वामिन्! नया राजा विमध्यम यद्यपि हमसे बहुत प्रेम करता है, पर कभी-कभी वह चारित्रधर्म राजा को भी देख लेता है। यह लोक के प्रति तो पूर्ण आसक्ति रखता ही है, पर कभी-कभी परलोक सुधारने की इच्छा भी करने लगता है। वह कभी-कभी सहज रूप में होने वाले धर्म कार्य भी कर लेता है। दान, धर्म, तप, शील आदि में उसे विशेष लगाव नहीं है, पर वह इनकी निन्दा नहीं करता, प्रत्युत् प्रशंसा करता है। कहने का अभिप्राय यह है कि इस वर्ष हमें अधिक सावधान रहना पड़ेगा। अन्तरंग राज्य में प्रवेश करते ही यह अपनी सेना को पहचान लेगा। इसे भी दृष्टिदेवी की मदद से अन्तरंग राज्य में प्रवेश करने से रोकना पड़ेगा।"

यह सुनकर महामोह ने दृष्टिदेवी को आज्ञा दी कि वह विमध्यम को अन्तरंग राज्य में आने से रोके। इस आज्ञा के बाद दृष्टिदेवी के सहयोग से महामोह के तस्करों ने विमध्यम को अन्तरंग राज्य में आने से रोक दिया। वह धर्म, अर्थ, काम—में समय देता। मोक्ष की ओर उसका ध्यान नहीं था। उसे लोग पुण्यवान भी कहते थे। इस तरह जीवन यापन करने के कारण विमध्यम को कभी पशु संस्थान भेजा जाता तो कभी मानव लोक में और कभी देवलोक में भी भेज दिया जाता।

वितर्क ने अप्रबुद्ध से कहा--

"स्वामिन् ! मैंने इसके बाद कर्मपरिणाम के चौथे पुत्र मध्यम के राज्यकाल का भी निरीक्षण किया वह भी आपको सुनाता हूँ।" □

[१७] **मध्यम का राज्यकाल**

महामंत्री विषायभिलाष ने महामोह की परिषद में कहा—

"मध्यम तो अर्थ-धर्म-काम-मोक्ष चारों पुरुषार्थों को पूरे समय भावपूर्वक करने वाला है। यह जानता है कि मोक्ष ही परमार्थ स्वरूप है। वह यह भी जानता है कि धर्म-साधना से ही मोक्ष की प्राप्ति की जा सकती है। लेकिन वह सांसारिक बंधनों को एक झटके के साथ तोड़ने में अपने को असमर्थ पाता है।"

वितर्क ने अप्रबुद्ध से कहा—

"स्वामिन् ! उसके अलावा एक जानकारी यह भी है कि मध्यम को राजा बनाने से पूर्व सिद्धान्त गुरु ने उसे उसकी शक्ति से अवगत करा दिया था। इसीलिए वह चारित्रधर्म राजा तथा उनके सहायकों को भी जान गया था। इससे मध्यम ने अन्तरंग राज्य की आधी भूमि को अपने कब्जे में कर लिया। उससे मोहराजा के सहायक चोर-लुटेरे घबरा गये थे। मोहादि मध्यम से डरने लगे थे। फिर भी वे उसके आस-पास मँडराते रहते थे। इस बार दृष्टिदेवी मध्यम राजा का कुछ नहीं बिगाड़ पाई। चारित्रधर्म आदि इस राजा से बहुत प्रसन्न थे। बाह्य प्रदेश में मध्यम राजा की बहुत प्रशंसा हुई।

"स्वामिन ! मध्यम राजा का पिता अपने पुत्र मध्यम से बहुत प्रसन्न हुआ। उसका राज्यकाल समाप्त होने पर उसने उसे विबुधालय—देवलोक भेज दिया।" □

[१८] **उत्तम का राज्यकाल**

निकृष्ट, अधम, विमध्यम और मध्यम—कर्मपरिणाम के चार पुत्रों के बाद पाँचवीं वर्ष उसके पांचवें पुत्र उत्तम का राज्य आया। उसके राज्य-

काल की घोषण हुई तो चारित्रधर्म राजा और महामोह—दोनों की मण्डली-परिषद में पूर्ववत् विचार-विमर्श हुआ।

सद्बोध मंत्री ने चारित्रधर्म राजा की सभा में कहा—"मित्रो ! अब आप बिल्कुल न घबरायें। यह उत्तम नाम का राजा तो पूरी तरह हमारे ही पक्ष का है और हर तरह से हमें आनंद देने वाला है। यह अपने राज्य की समृद्धि, सम्पन्नता और उसके ऐश्वर्य को भली भांति जानता है। वह यह भी जानता है कि महामोहादि मेरे शत्रु हैं। यह अपने शत्रुओं को हमारी मदद से नष्ट कर देगा। अन्ततः तो हम इसके सेवक ही हैं। अपने समर्थ और शक्ति सम्पन्न सेवकों से उत्तम नाम का पाँचवाँ राजा अच्छी तरह काम लेना जानता है।"

सद्बोध मंत्री की ऐसी बातें सुनकर चारित्र-धर्म की सभा में हर्ष का सागर उमड़ पड़ा। सब उत्सव मनाने लगे। उधर महामोह की सेना और मण्डली में तो शोक छा गया। वे अधमरे से हो गये और सोचने लगे कि इस राजा का प्रवेश हम नहीं रोक सकते। विषयाभिलाष की पुत्री दृष्टि इसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती। हमें तो अब इसके हाथों मरना ही पड़ेगा। यह सोच महामोह की मण्डली के चोर-तस्कर शोकाकुल हो गये।

अपने पिता कर्मपरिणाम से राज्य प्राप्त कर उत्तम पहले सिद्धान्त गुरु के पास गया और बोला—

"गुरुदेव ! आप विधिवेत्ता हैं। मुझे राज्य प्रवेश का उपाय बताइए और यह भी बताइए कि मैं अपने शत्रुओं पर कैसे विजय प्राप्त करूँ।"

सिद्धान्त गुरु उत्तम को समझाने लगे—

"वत्स ! तू सचमुच अन्तरंग राज्य का राजा बनने के योग्य है। तू शुरू से ही धर्म-साधना कर रहा है, क्योंकि तू संसार से विरत और मोक्ष का आकांक्षी है। मैं तेरी पात्रता से बहुत प्रसन्न हूँ। अतः मैं तुझे राज्य-प्रवेश की विधि संक्षेप में समझाता हूँ।

"वत्स उत्तम ! अन्तरंग राज्य में प्रवेश करने से पूर्व तू अपने गुरुदेव का उपदेश सुनना जैसा वे बतायें—समझायें वैसा ही करना। धर्मशास्त्रों के आदेशों पर आस्था रखकर चलना। संतों की सेवा करना, स्त्री की लालसा का त्याग करके भीतर-बाहर के परिग्रह का त्याग करना। यों राज्य-प्रवेश की विधि जानने के बाद मुनिवेश धारण करना और मुनिचर्या का जो-जो आचार है, उसका पालन पूर्ण निष्ठा से करना। इस प्रकार महाव्रत-पालन

के मार्ग को ग्रहण करने के बाद तू अपने अन्तरंग राज्य में प्रवेश करेगा। अब मैं तुझे अन्तरंग राज्य का मार्ग कैसा है, यह बताता हूँ। जब तू अपने राज्य में पहुँच जाएगा, तब तुझे कब, कहाँ, क्या, कैसे आचरण करना यह भी मैं तुझे समझाता हूँ।

अन्तरंग राज्य में प्रवेश करते समय तू **'अभ्यास'** नामक व्यक्ति को अपना अंगरक्षक बनाना और उसे सदा साथ रखना। फिर तुझे चारित्र-धर्म राजा का **'वैराग्य'** नामक योद्धा मिलेगा, उसे भी साथ लेना। अभ्यास और वैराग्य का साथ भूलकर भी मत छोड़ना।

"वत्स! जब महामोह स्वयं या उसका कोई व्यक्ति बाहर आये तो उसे तुरन्त मार देना—मोह के उदय को ही विफल कर देना। मुदिता, मैत्री, करुणा और उपेक्षा नामक—चारों महादेवियों को राज्य भूमि चित्त-वृत्ति अटवी में रखकर उनकी सेवा-सहायता लेते रहना।

"वत्स! तू पूर्व दिशा से अपने राज्य में जाना, क्योंकि इस राज्य-भूमि की उत्तर दिशा में बाईं ओर महामोह राजा की सेना के ग्राम-नगर, पर्वत, घाटियाँ आदि हैं। दक्षिण दिशा—दाईं ओर चारित्रधर्म राजा की सेना के ग्राम नगर आदि हैं। इस राज्य भूमि—चित्तवृत्ति अटवी के अन्त में निवृत्तिनगरी है, जो पश्चिम दिशा में है। निवृत्तिनगरी में पहुँचते ही तेरे सारे मनोरथ पूर्ण हो जायेंगे। चित्तवृत्ति अटवी के मध्यभाग में होकर **औदासीन्य—उदासीनता** नामक एक अति सुगम मार्ग जाता है। यह मार्ग तेरे प्रतिनायक चारित्रधर्म राजा को अतिप्रिय है। इसी मार्ग से होकर तुझे निवृत्तिनगरी को जाना है। इस मार्ग में तुझे **अध्यवसाय** नामक सरोवर मिलेगा। जब यह सरोवर गंदला-मैला होता है तो महामोह राजा का पोषण करता है। अतः तू इसे मैला मत होने देना। ज्यों-ज्यों यह सरोवर उज्ज्वल होगा, चारित्रधर्म राजा की सेना सबल बनेगी। इस सरोवर से निकली **धारणा** नामक नदी तुझे मिलेगी। तू वेग के साथ इस नदी में प्रवेश कर जाना। महामोह आदि इस नदी में उत्ताल तरंगें पैदा करेंगे। इन्हें तू सावधानी से शान्त कर देना। धारणा नदी को पार करने के बाद तुझे **धर्म ध्यान** नामक दण्डोलक (पगडंडी) मिलेगा। इस पगडंडी को पार करने के बाद तुझे **सबीज योग** नामक मार्ग मिलेगा। इस रास्ते पर चलते हुए तेरे शत्रुओं—महामोहादि का नाश होता जायगा। फिर तुझे **शुक्लध्यान** नामक दण्डोलक मिलेगा। इससे आगे बढ़ने पर तुझे **केवललोक** की प्राप्ति होगी।"

इस प्रकार सिद्धान्त गुरु ने उत्तम के समक्ष अन्तरंग राज्य के मार्ग और प्रवेश विधि का विस्तार से वर्णन किया। उत्तम ने उक्त विधि से ही

अपने अन्तरंग राज्य में प्रवेश किया। उसने समस्त शत्रुओं का नाशकर अपने पूर्ण राज्य पर अधिकार कर लिया। उसके बाह्य जीवन में भी बड़ा भारी परिवर्तन आया। लोग उसकी वंदना करने लगे, यहाँ तक कि देवता, दानव और गंधर्व भी उसकी वंदना करते थे। वह निवृत्तिनगरी में पहुँच गया, जहाँ न भूख है और न प्यास। किसी तरह का दुःख-द्वन्द्व वहाँ नहीं है। इस प्रकार चिन्तारहित निवृत्तिनगरी में पहुँचने के बाद उत्तम ने अपने पिता कर्मपरिणाम को जीत लिया। उसका पिता कर्मपरिणाम उसे अब कर देने लगा। □

[१९]

वरिष्ठ का राज्य काल

विलर्क ने अप्रबुद्ध से कहा—इस प्रकार पाँच वर्ष बिताकर मैंने कर्मपरिणाम के पाँचों पुत्रों का एक-एक वर्ष का राज्यकाल देखा। अब मैं छठे वर्ष उसके छठे पुत्र वरिष्ठ का राज्यकाल देखने गया। वहाँ रहकर मैंने जो-जो जाना, वह सब भी आपको सुनाता हूँ।"

छठे वर्ष कर्मपरिणाम का वरिष्ठ नामक पुत्र अन्तरंग राज्य का राजा नियुक्त हुआ। इसकी सब बातें उत्तम नाम के राजा जैसी थीं। उत्तम से भिन्न इस वरिष्ठ नामक राजा में जो-जो विशेषताएँ थीं, वे इस प्रकार थीं। जब उत्तम राजा बना था, उसने उसी समय सिद्धान्त गुरु से अन्तरंग राज्य के बारे में पूछा था। लेकिन वरिष्ठ राजा सिद्धान्त गुरु से पहले ही मिल चुका था। वह राज्य में प्रवेश की विधि पहले से ही जानता था। उसे राज्य प्राप्ति के समय मार्ग-निर्देशन की आवश्यकता नहीं थी। जब वह स्वयं ही अन्तरंग राज्य में प्रवेश कर गया तो उसके बहिरंग राज्य में अनेक साधु (श्रमण-मुनि) उसकी पदाति सेना में भरती हो गए। वरिष्ठ राजा की सेना के महात्मा भिन्न-भिन्न गणों-समुदायों का संचालन करने के कारण गणधर कहलाये। वरिष्ठ राजा ने अपने गणधरों को सिद्धान्त का उपदेश दिया।

ये वरिष्ठ राजा परम ऐश्वर्य और अतिशयों से युक्त थे। इनके राज्य में चारित्रधर्म राजा और उसकी परिषद् में तो आनन्द की सीमा नहीं थी। ये त्रिलोक के स्वामी कहलाये। तीनों लोकों की समृद्धि इनके चरणों में लेटती है। ये राजा महाराजा कहलाये। जब ये उपदेश देते हैं तो देवगण इनके लिए चाँदी, सोने और रत्नों के—तीन कोटों की रचना करते हैं।

देशना के समय देवगण इन महाराज के लिए आठ प्रातिहार्यों की रचना भी करते हैं, जो इस प्रकार हैं—(१) अशोक वृक्ष, (२) पंचवर्णी पुष्पों की वर्षा, (३) दिव्य निर्घोष, (४) चँवरों का ढुलाना, (५) चार विशाल सिंहासन, (६) आकाश मण्डल या प्रभामण्डल, (७) देवदुन्दुभी नाद और (८) तीन छत्र। इन आठों प्रातिहार्यों से इन राजा के वरिष्ठ होने की पहचान हो जाती है।

वरिष्ठ राजा का शरीर सुगंधित रहता है। इनका रक्त दूध-जैसा धवल होता है। जहाँ ये विराजते हैं, वहाँ से योजनों दूर तक अहिंसा का साम्राज्य रहता है। उस क्षेत्र में अकाल नहीं पड़ता।

"स्वामिन्!" वितर्क ने अप्रबुद्ध से कहा—"मैं वरिष्ठ राजा के ऐश्वर्य का वर्णन कहाँ तक करूँ। शेषादि भी उनकी महिमा का बखान नहीं कर सकते। इस प्रकार मैंने कर्मपरिणाम के छहों पुत्रों के राज्य का वर्णन किया। इस वर्णन से आप इतना तो जान ही गए कि अन्तरंग राज्य एक-जैसा, सामान्य, एक सामान होते हुए भी व्यक्तिभेद से अनेक रूप अथवा भिन्न-भिन्न रूप वाला है।" ☐

[२०] अप्रबुद्ध का चिन्तन : निष्कर्ष

अप्रबुद्ध ने वितर्क को कर्म परिणाम के छहों पुत्रों का एक-एक वर्ष की राज्य व्यवस्था देखने भेजा था। वितर्क ने छहों वर्षों की छहों राजाओं की शासन व्यवस्था अप्रबुद्ध को समझाई-बताई तो वह सोचने लगा—

'सत्पुरुष सिद्धान्त ने जो यह कहा था कि अन्तरंग राज्य तो एक ही है, पर परमार्थ से वह अनेक रूप है सो ठीक ही कहा था। उन्होंने यह भी कहा था कि सुख-दुख—दोनों का कारण एक ही है, अर्थात् अन्तरंग राज्य ही राजा की योग्यता-अयोग्यता से उसे सुख-दुख देता है। एक ही राज्य निकृष्ट और अधम—दोनों राजाओं को दुःख का कारण हुआ और विमध्यम, मध्यम, उत्तम और वरिष्ठ को क्रमशः अल्प सुख, सुख, महासुख और पूर्ण सुख का कारण हुआ।

"मनीषियों ने ठीक ही कहा है कि जिस मनुष्य ने सूक्ष्म अवलोकन द्वारा एक वर्ष देखा हो और इच्छानुसार उसको भोगा हो तो समझना चाहिए कि उसने सारी दुनिया को देखा है।"

राज्यों की व्यवस्था पर विचार करते हुए अप्रबुद्ध प्रबुद्ध संज्ञा को प्राप्त हुआ और उसे सुख-संतोष की अनुभूति हुई। □

[२१] मुनि उत्तम सूरि द्वारा कथा का निष्कर्ष

आनंदनगर के राजा हरिकुमार ने उत्तम सूरि से पूछा था कि धनशेखर स्वरूप से भद्र और अच्छा है। वह सागर और मैथुन अपने अन्तरंग साथियों के कारण दुष्ट बना है। अतः मैं यह जानना चाहता हूँ कि निर्मल-शुद्ध प्राणी दूसरों के दोष से दुष्ट कैसे बन सकता है?

राजा हरिकुमार के इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए उत्तम सूरि ने सिद्धान्त गुरु और अप्रबुद्ध की बातचीत से लेकर वितर्क द्वारा कर्मपरिणाम के पुत्रों के राज्यकाल के वर्णन तक की कथा राजा हरिकुमार को सुनाई। कथा का समापन करने के बाद उत्तम सूरि ने राजा हरिकुमार से कहा—

"राजन्! तुमने सुना कि महामोह और विषयाभिलाष की पुत्री दृष्टिदेवी कर्मपरिणाम के पुत्र निकृष्ट और अधम के लिए दुःख का कारण बने। इसी तरह सागर (लोभ) और मैथुन (भोगेच्छा) तुम्हारे मित्र धनशेखर के लिए दुख का कारण बने। मिट्टी निर्मल जल को मैला कर देती है। इसी तरह अन्तरंग शत्रु भी भद्र-निर्मल जीव को निकृष्ट-अधम बनाकर उसे नरक में फेंक देते हैं।"

"धनशेखर के बारे में मेरा संदेह दूर हो गया।" राजा हरिकुमार ने दूसरा प्रश्न किया—"भगवन्! आपने कर्मपरिणाम राजा के छह पुत्र बताये। क्या इन छहों के बाद दूसरे राज्य नहीं होते या बार-बार ये ही छह राज्य करते रहते हैं?"

उत्तम सूरि बोले—

"राजन्! इस जगत में जितने भी प्राणी हैं, वे सब कर्मपरिणाम राजा के ही पुत्र हैं। इन सभी का समावेश पूर्व वर्णित छह प्रकार के पुत्रों में हो जाता है। उनके चले जाने के बाद उन-जैसे अन्य पुत्रों को वह राज्य सौंप दिया जाता है। नये आने वाले इन पुत्रों के नाम भी छह प्रकार के होते हैं।

"मैं स्वयं भी कर्मपरिणाम राजा का पुत्र हूँ। कथा में मैंने बताया था कि कर्मपरिणाम ने अपने पाँचवें पुत्र उत्तम को एक वर्ष का राज्य दिया

था। उस उत्तम ने सिद्धान्त गुरु से राज्य प्रवेश की विधि और मार्ग जाना था। वह अभ्यास और वैराग्य के सहयोग से अन्तरंग राज्य में प्रविष्ट हुआ था। कर्मपरिणाम का वह पुत्र उत्तम मैं ही हूँ। अपने राज्य का भोग करते हुए मैं अपने सहायक श्रमणों को लेकर यहाँ आया हूँ। उत्तम नामक पुत्र की विभूतियाँ, सुख आदि सभी मुझे प्राप्त हैं।

"राजन्! मुझ जैसे उत्तम प्रवृत्ति के पुत्र और भी हैं। इसी तरह निकृष्ट और अधम नाम के भी कर्मपरिणाम के अनेकों पुत्र इस संसार में हैं।"

"भगवन्! मैं किस प्रवृत्ति का पुत्र हूँ?" राजा हरिकुमार ने पूछा—"कर्मपरिणाम के छहों पुत्रों में से मैं भी एक हूँ तो मैं उसका कौन-सा पुत्र हूँ?"

उत्तम सूरि बोले—

"राजन्! आप विमध्यम नाम के पुत्र हो। विमध्यम का जो स्वरूप था, वही आपका भी है। आप भी रात-दिन अर्थ-धर्म, काम-मोक्ष की साधना में लगे हैं। विमध्यम के सभी लक्षण आप में प्रकट हो रहे हैं।"

"तो फिर मुझे विमध्यम का राज्य नहीं चाहिए।" राजा हरिकुमार ने कहा—"आपकी तरह मैं भी उत्तम का राज्य चाहता हूँ।"

राजा हरिकुमार को यों धर्मोन्मुख देख उत्तम सूरि ने उसे भागवती दीक्षा देकर अपने संघ में मिलाकर विहार किया। दीक्षा लेने से पूर्व राजा हरिकुमार ने अपने पुत्र शार्दूल को राजगद्दी सौंपी। राजा के साथ उसकी रानी मयूरमंजरी, धनशेखर के पिता श्रेष्ठी हरिशेखर आदि ने भी दीक्षा ली थी। □

[२२] लोभ द्वारा धनशेखर की मृत्यु

दर-दर के भिखारी बने धनशेखर का भी सागर और मैथुन ने पीछा नहीं छोड़ा। वे उसके पीछे लगे रहे और उसे गिराते रहे।

धन के लोभ में भटकते-भटकते धनशेखर एक बीहड़ जंगल में पहुँचा। वहाँ उसने एक ऐसा वृक्ष देखा, जिसके लक्षण देखकर धनशेखर ने निश्चय किया कि इस वृक्षमूल में अवश्य ही धन है। धनशेखर भू-शास्त्र का जान-

कार था उसने सागर की आज्ञा से वृक्ष मूल की खुदाई की तो रत्नों से भरा एक कलश मिल गया। उसने ज्यों ही कलश को उठाना चाहा तो उसी समय भयंकर शब्द करता हुआ एक वेताल प्रकट हुआ। वह वेताल धन-शेखर को पकड़कर खा गया।

× × ×

संसारी जीव ने अपनी आत्मकथा सुनाते हुए कहा—"हे अगृहीत-संकेता! धनशेखर रूप का मेरा अस्तित्व समाप्त हो गया। मेरी आयु-गुटिका घिसकर जीर्ण हो गई थी। तब मेरी पत्नी भवितव्यता ने मुझे दूसरी गोली देकर नरक में भेज दिया। फिर मैं नरक से निकलकर कई योनियों में जन्मा। हर बार भवितव्यता मुझे नई गुटिका देती थी।

"फिर मेरे शुभ कर्मों के उदय का समय आया तो मेरी पत्नी भवित-व्यता ने मुझसे कहा कि आर्यपुत्र! अब मैं तुम्हें दूसरी भवमेद्य गुटिका देकर मनुष्य भव में भेज रही हूँ। बाह्यदेश के साह्लाद नामक नगर में तुम्हें जाना है। वहाँ तुम धनवाहन नामक राजकुमार बनोगे। मैं तुम्हारे हितैषी मित्र पुण्योदय को भी साथ भेज रही हूँ।

"बहिन अगृहीतसंकेता! पत्नी भवितव्यता की आज्ञा को शिरोधार्य कर मैं पुन: मनुष्य बना—साह्लादनगर में धनवाहन नाम का राजपुत्र बना था मैं। वहाँ मेरे साथ क्या-क्या बीती सो तुम ध्यान से सुनो।"

× × ×

यह मनुष्य जन्म बड़ी कठिनाई से मिलता है। किन्तु मूर्ख प्राणी लोभ के वशीभूत होकर अपने मनुष्यभव को बिगाड़ लेता है और मैथुन का दास बनकर भी दुर्गति को प्राप्त होता है। मूर्ख संसारी जीव अपने अन्तरंग राज्य की समृद्धि, सामर्थ्य और चारित्रधर्म राजा जैसे प्रतिनायक की शक्ति से अनभिज्ञ रहकर अपने राज्य से बाहर निकाला जाता है और निकृष्ट तथा अधम के रूप में कष्ट भोगते हुए अन्त में नरक को जाता है।

"अत: हे मनुष्यो! आप यदि सुख चाहते हैं तो रूप, लोभ और मैथुन आदि की आसक्ति से सदा दूर ही रहें।" □

सप्तम-प्रस्ताव

[१] **धनवाहन और अकलंक**

धनवाहन और अकलंक की आन्तरिक प्रकृति में बहुत अन्तर था। दोनों के भीतर की प्रकृति एक दूसरे के विपरीत थी। इतने पर भी दोनों न केवल कुलबंधु--चचेरे भाई थे, बल्कि परस्पर मित्र भी थे। दोनों का जन्म एक ही समय में हुआ था। बचपन से दोनों साथ रहे, उठे-बैठे और साथ ही घूमते फिरते थे। धनवाहन के पिता जीमूत अकलंक के पिता नीरद के बड़े भाई थे। इस तरह अकलंक धनवाहन के चाचा का लड़का था। दोनों भाई राजपरिवार के कुलदीपक थे। एक राजा का पुत्र था तो दूसरा राजा के छोटे भाई का। इन दोनों के संग-साथ और प्रकृति-स्वभाव की चर्चा तथा उनसे सम्बन्धित घटनाओं का उल्लेख करने से पूर्व इनके माता-पिता का भी कुछ परिचय देना जरूरी है।

सम्पूर्ण जगत् को आह्लादित करने वाला साह्लाद नामक एक नगर था। इस नगर के लोग आपस में अन्तःकरण से प्रेम करते थे। इस नगर के प्रतापी और शक्तिसम्पन्न राजा का नाम था, जीमूत। इस राजा की पटरानी लीलादेवी थी, जो पतिपरायणा सन्नारी थी।

राजा जीमूत के छोटे भाई थे नीरद। नीरद की पत्नी का नाम पद्मादेवी था। जिस तरह इन दोनों भाइयों में घनिष्ठ प्रेम था, उसी तरह लीलादेवी और पद्मादेवी—जेठानी-देवरानी में भी अतिशय प्रीति थी। नीरद राजा का छोटा भाई—राजा न होकर भी राजा की तरह ही वैभव सम्पन्न था। उसकी पत्नी पद्मा भी रानी ही थी। पूरा राजपरिवार सम्मिलित रहता था और आपस में हिल-मिलकर रहता था।

× × ×

भवितव्यता की भवमेद्य गोली के प्रभाव से संसारी जीव—धनशेखर के जीव ने महारानी लीलादेवी की कोख में प्रवेश किया। जननी के उदर में रहकर संसारी जीव ने नौ महीने तक नरकवास किया – नरक की यातनाएँ भोगीं। नौ महीने से कुछ दिन ऊपर बीते तो महारानी लीलादेवी ने पुत्ररत्न को जन्म दिया। अन्तःपुर की प्रतिहारी प्रियंकरी पुत्रजन्म का संवाद लेकर राजा

के पास पहुँची तो राजा ने मारे खुशी के उसे इतना धन दिया कि उसका दासीपन ही मिट गया। जब संसारी जीव ने लीलादेवी रानी के उदर से जन्म लिया तो उसके साथ ही पुण्योदय ने भी जन्म लिया था, जो उसकी देह में गुप्त रूप से बैठा था। इसका रहस्य स्वयं संसारी जीव भी नहीं जानता था।

मेरा पुत्र किस तरह के ग्रह-नक्षत्रों में हुआ है, यह जानने के लिए नरराज जीमूत ने एक ज्योतिर्विद पण्डित को बुलाकर पूछा तो पंडित ने बताया—

"राजन्! आपका पुत्र बहुत शुभ घड़ी में जन्मा है। इस समय आनन्द नामक संवत्सर चल रहा है। शरद् ऋतु, कार्तिक मास की द्वितीया तिथि है। गुरुवार है, भद्रा है। कृत्तिका नक्षत्र और वृषभ राशि है, धृति योग है। सौम्य घर का लग्न है। ऊर्ध्वमुखी होरा कुण्डली है। जातक के सभी ग्रह उच्च स्थान में बैठे हैं और सभी पापग्रह ग्यारहवें घर में हैं। आपके पुत्र का जन्म ऐसी सुन्दर राशि में हुआ है कि उसे सब प्रकार की अपार समृद्धि प्राप्त होगी।"

इसके बाद ज्योतिषी ने भिन्न राशियों में जन्मे जातक के शुभाशुभ लक्षण बताये। राजा ने पर्याप्त दक्षिणा देकर पंडित को विदा किया। बारहवें दिन राजपुत्र का नामकरण संस्कार सम्पन्न हुआ और उसका नाम धनवाहन रखा गया। पांच धायें और माता लीलादेवी राजपुत्र धनवाहन का लालन-पालन करने लगीं।

नृपानुज नीरद की पत्नी पद्मादेवी भी गर्भवती थी। जिस समय धनवाहन का जन्म-हुआ था, उसी समय पद्मादेवी ने भी एक पुत्र को इस प्रकार जन्म दिया जैसे विद्या विवेक को जन्म देती है। इसका नाम अकलंक रखा गया। एक साथ जन्मे कुलबंधु धनवाहन और अकलंक का लालन-पालन और विद्यारंभ एक साथ ही हुआ। दोनों साथ-साथ पढ़े और बड़े हुए। बड़े होकर दोनों कामदेव से सुन्दर और आकर्षक बने। दोनों की जोड़ी राम-लक्ष्मण की-सी जोड़ी थी। दोनों न केवल माता-पिता को, अपितु साह्लाद नगर की जनता को भी अतिशय प्रिय थे।

संसारी जीव ने अपनी आत्मकथा सुनाते हुए अगृहीतसंकेता से कहा—

"बहिन अगृहीतसंकेता! धनवाहन के रूप में भी मैं वैसा ही रहा, जैसा धनशेखर, वामदेव, रिपुदारण, नन्दीवर्धन के रूप में था। मैं बार-बार

नरक में जाकर भी धर्म को नहीं समझ पाया। राजकुमार धनवाहन के रूप में भी मैं वैसा ही रहा, जैसा कि पूर्वभव में श्रेष्ठिपुत्र धनशेखर के रूप में था। लेकिन मेरे साथ जन्मा मेरे चाचा नीरद का पुत्र अकलंक यथा-नाम तथागुण—सर्वगुणसम्पन्न था। वह उच्च आचरण वाला, लघु-कर्मी, व्यसनरहित, दुर्व्यवहार से दूर, शान्तिमूर्ति, पवित्रात्मा, परमार्थ का ज्ञाता और तत्त्वज्ञानी जैसा था। हम दोनों किस प्रकार साथ-साथ रहे, क्या-क्या किया। यह सब तुम मेरी—संसारी जीव की आगे की कथा—धनवाहन और अकलंक की कथा के रूप में सुनो।"

× × ×

साह्लाद नगर के बाहर बुधनंदन नामक एक उद्यान था। बड़ा ही मनोरम उद्यान था यह। यहाँ प्रायः श्रमण-संत आते रहते थे। एक बार धनवाहन और अकलंक बुधनंदन उद्यान में उद्यान क्रीड़ा के लिये गये। वहाँ कई मुनि ठौर-ठौर बैठे ध्यान, स्वाध्याय आदि कर रहे थे। जैसे बादलों को देखकर मयूर हर्षित होता है, वैसे मुनियों को देखकर अकलंक हर्षित हुआ। वह धनवाहन को लेकर एक मुनि के पास गया और वंदना करके बैठ गया। अनुकरण-न्याय से धनवाहन ने भी मुनि-वंदना की। मुनिश्री ने दोनों के समक्ष देशना दी—संक्षिप्त पर सारपूर्ण देशना। देशना के अनन्तर अकलंक ने मुनिश्री से पूछा—

"भन्ते ! आपने युवावय में ही दीक्षा ले ली। आपके साथ ऐसी क्या घटना घटी कि आपको संसार से वैराग्य हो गया और आप युवा-वस्था में ही साधु बन गए ?"

"जो घटना सबके साथ घटती है, वही मेरे साथ भी घटी थी वत्स !" मुनिश्री ने अकलंक से कहा—"लेकिन एक ही घटना सबके साथ घटित होकर भी सबको समान रूप से प्रभावित नहीं करती। ऐसा ही कुछ मेरे साथ हुआ था। तो मैं अब तुम्हें अपने वैराग्य का कारण बताता हूँ। मेरे वैराग्य का कारण मेरे ग्राम लोकोदर में आग लगना था। मैं अपने गाँव से भाग आया, पर मेरे ग्राम लोकोदर में आज भी आग लगी हुई है। कुछ लोग आग से बचकर भाग रहे हैं। और अधिकतर उसमें जल रहे हैं।"

"आग से बचकर भागने का साहस सबमें नहीं होता।" अकलंक ने कहा—"फिर भी आपके वैराग्य का निमित्त बड़ा अद्भुत और उत्सुकता से भरा है। मैं सुनना चाहता हूँ। कृपाकर सुनाइए।"

मुनिश्री अकलंक और धनवाहन—दोनों को अपनी दीक्षा का कारण सुनाने लगे। □

[२] **ग्राम लोकोदर में अग्निकाण्ड**

लोकोदर नामक ग्राम में एक सद्गृहस्थ रहता था। एक रात इस गाँव में भयंकर आग लग गई। चारों ओर धुआँ-ही-धुआँ दिखाई देने लगा। आग की ऊँची-ऊँची लपटें उठने लगीं। जाने क्या-क्या जल रहा था—बाँस के चटकने-फूटने-जैसी कड़-कड़-तड़-तड़ की आवाजें आने लगीं। इन आवाजों को सुनकर ग्रामवासी जाग गए। चारों ओर शोर मचने लगा। कुछ लोग हँस भी रहे थे। चोरों की बन आई—वे चोरी करने लगे। वस्तुओं के जलने के कारण कंजूस लोग विलाप कर रहे थे। इस अग्निकाण्ड से पूरा गाँव अनाथ-जैसा हो गया।

पूरे गाँव और गाँव के लोगों को जलते देखकर एक बुद्धिमान मंत्र-वादी को दया आ गई। गाँव के बीच में एक चबूतरे पर खड़े होकर उसने कवच धारण किया। फिर चारों ओर मंत्रित रेखाएँ खींचीं और चबूतरे के मध्य एक विशाल मण्डल बनाया। उसके बाद उसने ऐलान के स्वर में पुकारा—

"आप सब इस मंत्रित मण्डल में आ जाइए। यहाँ न तो आप जलेंगे और न आपकी कोई वस्तु ही जलेगी।"

मंत्रवादी का ऐलान सुनकर बहुत थोड़े लोग उसके मण्डल में चले गए और जलने से न केवल बचे, बल्कि हमेशा के लिए आग से सुरक्षित भी हो गए। लेकिन लोकोदर ग्राम के अधिकांश लोगों ने मंत्रवादी की बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। मण्डल में बैठे सुरक्षित लोगों को देखकर भी उन्होंने मण्डल में जाकर आग से बचने का उपाय नहीं किया। वे सब-के-सब आग बुझाने का कुछ और ही उपाय करने लगे।

आग में गाँव को जलता देख मूर्ख ग्रामवासी आग में लकड़ियाँ और घी डालने लगे। जो लोग मण्डल में प्रविष्ट थे, वे गाँववालों से कहने लगे—

"मूर्खो! घी-लकड़ी डालने से तो अग्नि और अधिक प्रज्वलित होगी। यदि तुम आग को बुझाना चाहते हो तो इसमें पानी डालो। या फिर हमारे पास इस मंत्रित मण्डल में चले आओ।"

गाँव के मूर्ख लोगों ने मण्डल में प्रविष्ट लोगों की बात पर कोई ध्यान नहीं दिया; बल्कि कुछ तो उनका मजाक भी उड़ाने लगे।

× × ×

मुनि महाराज अकलंक और धनवाहन के समक्ष अपनी दीक्षा का कारण बताते हुए कहने लगे—

"भद्र! मैं लोकोदर ग्राम का एक गृहस्थ था। मैं तो कूदकर तुरन्त मंत्रित मण्डल में चला गया और आग में जलने से बच गया। अन्य लोग भी मण्डल में प्रविष्ट होते रहे। पर उनकी संख्या बहुत कम होती। मण्डल में जो लोग थे, उनमें से कुछों ने दीक्षा ले ली। उन्हीं में से मैं भी एक हूँ। मैंने भी दीक्षा ले ली। यही मेरे दीक्षा लेने का कारण है।"

मुनि महाराज की बात सुनकर अकलंक बहुत प्रसन्न हुआ। मुनि की वन्दना कर वह दूसरे मुनि के पास उनकी दीक्षा का रहस्य जानने के लिए उठा तो धनवाहन ने उससे पूछा—

"भैया अकलंक! मुनि महाराज ने गाँव में आग लगने की जो घटना सुनाई और उसे दीक्षा का कारण बताया, यह बात मेरी तो समझ में तनिक भी नहीं आई। तुम तो सब कुछ जान गए मालूम देते हो। मुझे भी इसका रहस्य बता दो।"

अकलंक मुस्कराकर बोला—

"भैया धनवाहन! बात तो समझने लायक है। तुम भी समझो।" □

[३] लोकोदर ग्राम के अग्निकाण्ड का रूपक-रहस्य

यह जो संसार है, यही लोकोदर ग्राम है। महामोह का अंधकार ही रात्रि है। लोकोदर ग्राम रूपी यह संसार राग-द्वेष की अग्नि में जल रहा है—जलता रहता है। तामसभाव का धुआँ छाया रहता है। संसार के दुख/क्लेश बाँसों के चटकने/फूटने की आवाजें हैं। राग-द्वेष से उत्तप्त होकर ही लोग जागते-शोर करते हैं। इन्द्रिय रूपी चोर धर्म-सर्वस्व की चोरी करते हैं। राग-द्वेष की अग्नि से आत्मगृह की वस्तुएँ जलने लगती हैं। इस आग को कैसे बुझावें, यह कहना कंजूसों का विलाप है। इस आग से लोग बच नहीं पा रहे, इसीलिए इस ग्राम को अनाथ कहा गया।

तीर्थंकर—जिनेश्वर भगवान ही वह मंत्रवादी हैं, जिन्होंने मण्डल की स्थापना की और लोगों को बताया कि वे इस मण्डल में आकर आग से बचें। मंत्रवादी रूपी तीर्थंकर की देशना सुनकर कुछ ही लोग उनके तीर्थ मण्डल में प्रविष्ट हुए।

अन्य लोग आग में लकड़ी और घी डाल रहे थे और चाहते थे कि आग बुझे। इसका रूपक यह है कि संसारी लोग विषयों से अग्नि को शान्त करने का मूर्खतापूर्ण प्रयास करते हैं। कपट-लोभ-अभिमान की अग्नि इससे और भी भड़कती है। तीर्थमण्डल में प्रविष्ट लोग समझाते हैं कि भाइयो! यह अग्नि प्रशम रूपी जल से शान्त होगी। पर उनकी सुनता कौन है?

मण्डल में जो लोग प्रविष्ट हुए थे, उनमें से कुछ ही लोगों ने दीक्षा ली—सबने नहीं। इसका अभिप्राय यह है कि तीर्थ मण्डल में चार प्रकार के लोग हैं—श्रमण-श्रमणी, श्रावक और श्राविका। इनमें से श्रमण-श्रमणी ही दीक्षित हुए थे।

× × ×

"वहिन अगृहीतसंकेता! अग्निकाण्ड वाली कथा का रहस्य अकलंक ने मुझे समझाया। लेकिन उसकी बात का मुझ पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। मेरी धर्म में किंचित् भी रुचि नहीं हुई। लेकिन अकलंक की संतुष्टि के लिए मैंने उससे कहा कि मुझे मुनि की बात—उनका दीक्षा लेने का कारण बहुत अच्छा लगा।

"उसके बाद अकलंक बुधनंदन उद्यान में ही विराजमान अनेक मुनियों में से दूसरे मुनि के पास उनके वैराग्य का कारण पूछने गया। अकलंक के साथ मैंने भी दूसरे मुनि की वंदना की और उनके सामने बैठ गया। दूसरे मुनि ने छोटी-सी देशना दी। फिर अकलंक ने पूछा कि भन्ते! आपने किस कारण से दीक्षा ली है तो मुनि ने बताया कि मेरी दीक्षा का कारण मदिरालय है। यह मदिरालय अनेक अघटित-घटित घटनाओं से पूर्ण है। इसका वर्णन कौन कर सकता है? फिर भी मैं इस मदिरालय—मद्यशाला का संक्षिप्त वर्णन करके बताता हूँ कि यह मदिरालय मेरी दीक्षा का कारण कैसे बना। □

[४] मदिरालय का रूपक

एक बहुत बड़ा मदिरालय है। इसमें असंख्य मद्यपी रहते हैं। इस

मदिरालय में कई प्रकार की मदिरा रहती है और मदिरा पीने के प्याले काले कमल के समान सुन्दर हैं। इसमें रहने वाले मद्यपी नशे में धुत्त रहते हैं। नाचते-कूदते आपस में हँसी-मजाक करते रहते हैं। इस मद्यशाला में सुन्दर आकृति वाले प्रौढ़ प्राणी रहते हैं। इस मद्यगृह में मृदंग, बांसुरी आदि तरह-तरह के वाद्य बजते रहते हैं। अधिक क्या कहें, यह मद्यशाला विविध नाटकों, हास-विलास, रोदन और रसिक लीलाओं से ओतप्रोत रहती है।

इस मद्यशाला में वैसे तो अनेक विभाग हैं, पर उनमें तेरह मुख्य हैं—

(१) एक विभाग के मद्यपी चेष्टाहीन, मरे के समान और मूक रहते हैं।

(२) इस विभाग में रहने वाले शराबी भी मूर्च्छित रहते हैं लेकिन ये कभी-कभी लौकिक व्यवहार करते हैं।

(३) इस विभाग में पृथ्वी-पानी के रूप में अचेतावस्था में रहते हैं।

(४) ये लोग मदिरा के नशे में डूबे रहते हैं और मुँह पर लगी शराब चाटते रहते हैं।

(५) इस विभाग के मद्यपी केवल सूंघते हैं, देखते-सुनते नहीं है।

(६) इस विभाग के लोग केवल देखते हैं—सुनते नहीं हैं।

(७) इस विभाग के लोग मनरहित रहते हैं।

इसी प्रकार अन्य विभाग वाले मद्यपी भी हैं। सब की प्रकृति अवस्था भिन्न-भिन्न है। एक विभाग में ऐसे भी लोग हैं, जो बुद्धिमान हैं और मदिरा सेवन से रहित हैं। ये मदिरालय की बाधा-पीड़ाओं से रहित हैं।

मुनि महाराज ने अकलंक से कहा—

"भद्र! उसी मद्यशाला में रहने वाला मैं भी एक मद्यपी था। मैं अनन्त काल तक मदिरालय में रहा। मैं क्रमशः तेरह विभाग में रहा। मदिरालय की बीभत्स भूमि को मैंने चाटा। एक बार मुझ पर किसी सन्त की दृष्टि पड़ गई। उसे मुझ पर, मेरी दयनीय दशा पर दया आ गई। उसने मेरा मद्यव्यसन छुड़ाने का निश्चय किया। उसने मुझे मद्यशाला के दोष बताये, देशना दी। लेकिन मैं नासमझ ही रहा और परिणामस्वरूप मद्यशाला के विभिन्न विभागों में भटका।

"भद्र! एक बार मुझ पर सन्त के उपदेश का प्रभाव हुआ। मैंने मदिरा छोड़ दिया और मैं भी ब्राह्मण बन गया। अन्य ब्राह्मणों की तरह दीक्षित होकर मैंने भी साधुवेश धारण कर लिया। यही मेरे वैराग्य का कारण है।"

दूसरे मुनि से वैराग्य का कारण जानने के बाद अकलंक जब तीसरे मुनि के पास जाने लगा तो धनवाहन ने कहा—

"भैया अकलंक ! मदिरालय की कथा का रहस्य क्या है, मैं इसे भी नहीं समझ पाया। कृपया, मुझे समझाइए।"

अकलंक धनवाहन को मदिरालय का रूपक रहस्य समझाने लगा। □

[५]

मदिरालय का रूपक रहस्य

यह संसार ही मदिरालय अथवा मद्यशाला है। हम चाहे, जिस रूप में देखें, यह जगत् हमें उसी रूप में त्याज्य दिखाई देगा। आग से जलने वाला गाँव भी यही है, शराबियों से भरा मदिरालय भी यही है। इसमें रहने वाले जो कुछ कर रहे हैं या करते हैं, वह सब शराबियों की तरह ही करते हैं। इस मदिरालय में भी अनेक प्रकार की मदिरा मिलती है। आठ प्रकार के कर्म और उनके भेद तरह-तरह की मदिरा के रूप हैं। भिन्न-भिन्न गति के आयुष्य मद्यपात्र हैं। प्राणियों के शरीर मद्य पीने के पात्र हैं। ये पात्र काले कमल के समान बताये गए, क्योंकि शरीरस्थ इन्द्रियाँ शरीर की शोभा बढ़ाने के कारण कमल और आसक्ति के कारण काली हुई। प्राणियों की आपसी लड़ाई, हँसी-मजाक आदि शराबियों की उछल-कूद है। प्राणियों का मंद विलाप वीणा वादन है, और चीत्कार बाँसुरी के समान है।

मुनि महाराज ने संसार रूपी मदिरालय के तेरह विभाग बताये थे। ये विभाग जीव की विभिन्न अवस्थाएँ हैं, जो असंव्यवहार वनस्पति, संव्यवहार वनस्पति, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय आदि हैं।

मद्यशाला और संसार का रूपक यह है कि यह संसार भी हमें मद्यशाला की तरह दुःखदायी है। मद्यशाला स्थित व्यक्तियों को मुनि महाराज ने देखा, इसका अभिप्राय यह है कि उन्हें साधु-महात्माओं ने करुणा भरी दृष्टि से देखा। उसे संसार के दुखों और इसकी असारता का बोध कराकर जाग्रत किया। जाग्रत होने के बाद ही मनुष्य सोचता है कि अब तक मैं नशे में था। अब होश आने पर समझ में आया है कि यह संसार जन्म-मरण-रोग-शोक, भय, वियोग, जरा आदि दुःखों का कारण है।

× × ×

"हे बहिन अगृहीतसंकेता ! मेरे परम आत्मीय मित्र अकलंक ने

मुझे संसार रूपी मदिरालय का रहस्य बड़े विस्तार से समझाया। समझाने के बाद उसने मुझसे पूछा कि तुम समझे या नहीं तो मैंने बिना कुछ जाने-समझे ही प्रसन्नता प्रकट की और कहा—सब कुछ समझ में आ गया। पर मुझ पर तो मोह का परदा पड़ा था। मैंने जब ध्यान से सुना ही नहीं था तो क्या समझता। फिर अकलंक ने मुझसे कहा—धनवाहन! चलो, तीसरे मुनि महाराज से भी पूछते हैं कि उनके वैराग्य का क्या कारण है। अकलंक मुझे लेकर तीसरे मुनि के पास गया। उसने मुनि की वंदना की तो मैंने भी की। मुनि ने दोनों को देशना दी। फिर अकलंक ने उनसे पूछा—भन्ते! एक मुनि महाराज ने लोकोदर ग्राम में आग लग जाने के कारण दीक्षा ली। दूसरे महाराज ने मदिरालय के कारण ली। प्रभो! आपने किस घटना से प्रेरित होकर दीक्षा ली है, सो कृपया बताने का अनुग्रह कीजिए।

"मुझे तो रहट यंत्र को देखकर वैराग्य हुआ था।" मुनि ने कहा—"कुएँ से सिंचाई के लिए पानी निकालने के लिए बाल्टियों की एक माला लगी होती है, उसी को रहट कहते हैं।'

"अगृहीतसंकेता! अकलंक के साथ बैठकर मैं संसारी जीव, जो उस समय राजपुत्र धनवाहन था, मुनि महाराज के रहट यंत्र की कथा सुनने लगा।" □

[६] **रहट यंत्र का हेतु**

मुनि महाराज ने अकलंक और धनवाहन (संसारी जीव) को अपने वैराग्य का हेतु बताते हुए कहा कि कुएँ से पानी निकालने वाली एक रहट—अरहट्ट यंत्र के निकट मैं रह रहा था। उसे देखकर ही मुझे वैराग्य हो गया। सामान्य रहट तो कभी चलती और कभी बन्द हो जाती है, पर वह रहट-यंत्र ऐसा था, जो रात-दिन चलता था—अनादि काल से चल रहा था और अनन्त काल तक चलते रहने वाला है। इसके अलावा भी उसमें कुछ अन्य विशेषताएँ थीं।

उस अरहट्ट यंत्र—रहट का नाम था भव, उसे चलाने या खींचने वाले चार व्यक्ति थे, जिनके नाम राग, द्वेष, मनोभाव और मिथ्यादर्शन थे। वस्तुतः इसको चलाने वाला महामोह था। फिर उसमें कषाय रूपी सोलह बैल भी जुते थे। कुछ अन्य सेवक भी उसमें काम कर रहे थे, जो हास्य,

शोक, भय आदि नाम वाले थे। कुछ दासियाँ भी थीं; जिनके नाम जुगुप्सा, रति आदि थे।

जिस कुएँ पर रहट लगा था, उसका नाम था, 'असंयत जीव'। वह कुआँ काफी गहरा है, इतना कि उसका तल भी दिखाई नहीं देता था। रहट की जो घटमाला—बाल्टियों की माला थी, उसका नाम जीवलोक था। वह घटमाला अविरति रूपी पानी खींचकर बाहर लाती थी। दुष्टयोग और प्रमाद नामक दो तुम्बे तथा विलास, उल्लास और विब्बोक नामक आरे उस रहट के चक्र में लगे थे। इसको चलाने वाला एक नौकर भी था, जिसका नाम था, मरण। मरण ही इसको बार-बार चलाता था।

रहट से खींचा जाने वाला पानी जिस नाली में होकर बहता था, वह नाली 'अज्ञान मलिन आत्मा' नाम की थी और जल संचय वाले कुण्ड का नाम मिथ्याभिमान था। इसके अलावा भी दो नालियाँ थीं; जो संक्लिष्टचित्तता एवं भोग-लोलुपता नाम की क्रमशः छोटी-बड़ी नालियाँ थीं। ये नालियाँ जन्म-संतान नामक खेत को सींचती थीं तथा अलग-अलग जन्मरूपी क्यारियों की भी सिंचाई करती थीं। इस सिंचित खेत में कर्म-प्रकृति नामक बीज बोया जाता था और तज्जीवपरिणाम नामक जीव बुवाई करता था। उस क्षेत्र में सुख-दुखरूपी धान्य पैदा होता था। महा-मोह राजा ने सिंचाई करने के लिए असद्बोध नामक एक व्यक्ति नियुक्त कर दिया था।

मुनि महाराज ने अकलंक से कहा—

"भद्र ! इस रहट यंत्र का चित्रण काफी लम्बा है। मैंने तुम्हें संक्षेप में बताया है। मैं इस रहट के पास सोता हुआ पड़ा था। इसी बुधनंदन उद्यान में सामने जो मुनि महाराज बैठे हैं, इन्होंने ही मुझे जगाया था—प्रतिबोध दिया था। उन्होंने मुझसे कहा था कि मूर्ख ! इस रहट-यंत्र का वास्तविक स्वामी तो तू ही है। तू अपने स्वामित्व को नहीं जानता, इसीलिए मोह-राजा ने तेरे यंत्र पर काबू कर रखा है। अब तू जाग, उठ, चल और अपने शत्रु महामोह को उसके सहयोगियों सहित मार दे। गुरु महाराज ने मुझे बताया कि दीक्षा लेकर ही तू अपने शत्रु को मार सकता है। बस, फिर मैंने दीक्षा ले ली और मुनि बन गया।"

इसके बाद अकलंक ने धनवाहन से कहा कि मित्र ! इस रहट यंत्र को तो तू समझ ही गया कि यह संसार लोकोदर ग्राम और मदिरालय की तरह रहट यंत्र भी है। फिर अकलंक धनवाहन को लेकर चौथे मुनि के पास

गया और वंदन-नमन कर उनसे भी उनके वैराग्य का कारण पूछा। उनके वैराग्य का कारण एक मठ था। वे उस मठ की कथा अकलंक और धनवाहन को सुनाने लगे। □

[७]

कर्मभोजन की अजीर्णता

मुनि महाराज ने अपने वैराग्य की आत्मकथा का शुभारम्भ करते हुए अकलंक से कहा कि मुझे कर्मरूपी भोजन से अजीर्ण हो गया था। मुझे सन्निपात-जैसा भयंकर रोग हुआ था। मैं त्राहि-त्राहि करता था। सामने जो मुनि महाराज बैठे हैं, ये सिद्ध वैद्य हैं। इन्हीं ने मेरा उपचार किया। यह सब कैसे हुआ, इसकी कथा मैं तुम्हें सुनाता हूँ।

एक बहुत बड़ा मठ है। इस मठ में बहुत-से परिव्राजक रहते थे। उनमें से मैं भी एक था। एक बार उस मठ में एक बड़ा परिवार आया। उस परिवार में पाँच व्यक्ति मुख्य थे। वे हमारे मित्र, हितैषी और प्रेमी बनकर आये थे। हमें भी वे पाँचों बहुत अच्छे लगे। पर वस्तुतः वे थे तो हमारे शत्रु ही। उन्होंने हमें आदरपूर्वक भोजन कराया, जो अभिमंत्रित भोजन था। मठ के बटुक परिव्राजकों ने छककर भोजन किया और परिणाम यह हुआ कि सभी को अपच-अजीर्ण हो गया और सभी को सन्निपात हो गया। जीभ पर काँटे हो गए। बोलना बन्द हो गया। फिर बोल निकला तो गर्र-गर्र की आवाज होने लगी। कितनों को ज्वर भी हुआ। कितने सर्दी से परेशान हो उठे। इस प्रकार मठ के परिव्राजक दुःखों—रोगों से त्राहि-त्राहि करने लगे।

वैद्यकशास्त्र के परम ज्ञाता जो मुनि यहाँ बुधनंदन उद्यान में विराजमान हैं, मेरे पास आये। तब मैं अचेतावस्था में था। उन्होंने मेरा उपचार किया। मैं स्वस्थ हो गया और मैंने मठ के अन्य परिव्राजकों को सन्निपात आदि विविध रोगों में ग्रस्त देखकर आश्चर्य व्यक्त किया तो वे बोले—वत्स ! कुछ समय पहले तेरी भी ऐसी ही दशा थी, जो मठ के अन्य लोगों की है। अब तू कभी कुपथ्य सेवन मत करना। जैसा मैं कहता हूँ, वैसा करता रहेगा तो हमेशा स्वस्थ-नीरोग रहेगा। इसका एक मात्र उपाय आर्हती दीक्षा है।

तो अकलंक मैंने दीक्षा ले ली और वह मठ छोड़ दिया। तब से मैं नीरोग हूँ और नीरोग ही रहूँगा।

इन मुनि की आत्मकथा सुनकर अकलंक पाँचवें मुनि के पास उनकी दीक्षा का रहस्य जाने के लिए उठा तो राजकुमार धनवाहन ने कहा—

"भैया अकलंक ! इन मुनि महाराज ने मठ की जो कथा कही, वह मेरी समझ में किंचित् भी नहीं आयी। मठ, मठ में आने वाले परिवार के पाँच व्यक्ति, उनके द्वारा दिया गया भोजन आदि सबका क्या रहस्य हो सकता है ?"

"यह संसार ही मठ है।" अकलंक ने कहा—"इस भवमठ में रहने वाले प्राणी हम सब परिव्राजक या बटुक हैं। मुनि महाराज ने जो-जो अपनी आत्मकथा में कहा, वह सब इस संसार में घटित होता रहता है।

"भैया धनवाहन ! मठ के परिव्राजक अनेक प्रकार के थे, वैसे ही संसार के जीव भिन्न-भिन्न रूपों-आकारों के हैं और सम्बन्ध-रहित भी हैं। आपस में किसी का कोई सम्बन्ध नहीं है। जैसे मठ में एक परिवार आता है, वैसे ही संसार के लोगों के पास कर्मबंधन में डालने वाला—बंधहेतु एक परिवार आता है। इस परिवार में पाँच मुख्य थे, सो इन बंधहेतुओं में भी पाँच मुख्य हैं—(१) प्रमाद, (२) योग, (३) मिथ्यात्व, (४) कषाय और (५) अविरति। ये पाँच ही जीवों के बंधहेतु हैं। बंधहेतु होने के कारण ये पाँचों प्रमुख जीव के घोरतम शत्रु हैं। लेकिन विडम्बना यह है कि जीव इन्हें अपना मित्र और हितैषी समझता रहता है। ये पाँचों जीव के लिए मंत्रित भोजन तैयार करते हैं, जिसे महामोह मंत्रित करता है। इस भोजन से जीव का ज्ञान ढक जाता है और आत्मारूपी उदर को ठूंस-ठूंस कर भरता है। कर्मरूपी भोजन की अधिकता से जीव को अजीर्ण होता है और परिणाम में वह सन्निपात, ज्वर, शीत, उन्माद आदि रूप में नाना-प्रकार के दुखों को भोगता है। मिथ्यात्व को सन्निपात का रूप कहा गया है।

"मित्र धनवाहन ! मिथ्याज्ञानमय भाव-सन्निपात से जीव जब एकेन्द्रिय अवस्था को प्राप्त होता है, मूक रहता है। द्वीन्द्रिय रूप में अव्यक्त वाणी बोलता है, जिसे कथा में गर्र-गर्र कहना कहा गया। इसी प्रकार वह क्रमशः मनुष्य अवस्था को प्राप्त करता है। तब भी वह कर्मरूपी भोजन के अपच से रोगी रहता है।

"जैन मुनि रूपी वैद्य ही सन्निपातग्रसित, और कर्मभोजन के रोगी जीव का उपचार करते हैं। ये मुनि सत्शास्त्र रूपी वैद्यक ज्ञान के ज्ञाता होते हैं। मित्र धनवाहन यही भवमठ की कथा का रूपक रहस्य है। हम सब भी तो कर्मभोजन के अजीर्ण से पीड़ित हैं। अतः हमें भी तो इससे

बचने के लिए दीक्षा ग्रहण करनी चाहिए । अब चलो, पाँचवें मुनि महाराज से उनकी दीक्षा का कारण पूछें ।"

× × ×

संसारी जीव ने अगृहीतसंकेता से कहा—

'बहिन अगृहीतसंकेता ! अकलंक ने भवमठ की कथा का रहस्य मुझे समझाया । पर मैं तो मिथ्यात्व से ढके हुए ज्ञान वाला अज्ञानी था । कुछ भी मैंने नहीं समझा । फिर अकलंक मुझ धनवाहन को लेकर पाँचवें मुनि के पास गया तो उन्होंने कहा कि मैं एक व्यापारी था । चार व्यापारियों में से एक मैं भी था । रत्नों का व्यापार करते हुए मुझे बोध हुआ तो मैंने दीक्षा ले ली । यह कहने के बाद पाँचवें मुनि अपनी दीक्षा का कारण—चार व्यापारियों की कथा सुनाने लगे ।" □

[८] **चार व्यापारियों की कथा**

एक नगर था, वसन्तपुर । इस नगर में चार पुत्र व्यापारियों के रहते थे । चारों समवयस्क थे और चारों की वृत्ति व्यापार की थी । इन चारों के नाम थे—चारु, योग्य, हितज्ञ और मूढ़ । एक बार चारों रत्नद्वीप जाने को उद्यत हुए, क्योंकि रत्नद्वीप में भरपूर रत्न मिलते थे । अपने-अपने जहाज लेकर चारों रत्नद्वीप पहुँच गए ।

रत्नद्वीप रत्नों की खान तो था ही; नदी, सरोवर, बाग, बगीचे आदि की प्राकृतिक सौन्दर्य-सुषमा भी दर्शनीय थी । चारों मित्र जलचरों; लहरों-तूफानों और अन्यान्य संकटों से घिरे समुद्र को पार करके रत्नद्वीप पहुँचे थे । चारों रत्नों का क्रय करने के काम में लग गए । लेकिन इन चारों में केवल दो—चारु और योग्य ही रत्नों की परख जानते थे । शेष दो हितज्ञ और मूढ़ को सच्चे असली रत्नों की पहचान नहीं थी ।

चारु ने रत्नद्वीप में घूमने, सैर-सपाटे करने अथवा सर-सरिता, वन-उपवन के सौन्दर्य को देखने में किंचित् भी समय नहीं गँवाया । वह रत्नों को क्रय करने में लग गया । सच्चे रत्नों की तो उसे पहचान थी ही, सो थोड़े ही दिनों में चारु ने सच्चे रत्नों से अपना जहाज भर लिया ।

रत्नों की पहचान योग्य को भी थी । पर वह सैर-सपाटे और बाग-

बगीचों को देखने में अधिक समय देता था। अतः वह बहुत थोड़े रत्न इकट्ठे कर पाया।

तीसरा साथी हितज्ञ रत्नों की पहचान नहीं जानता था। अतः वह काँच, मूँगे आदि ही खरीद लेता था। दूसरे, वह वन-उपवन को देखने में भी अधिक समय देता था। अतः वह थोड़ी मात्रा में नकली रत्न ही इकट्ठे कर पाया।

चौथा मित्र मूढ़ तो पूरा-का-पूरा समय वन-उपवन घूमने में बिताता था। उसने थोड़े-बहुत मूंगे और कौड़ियाँ इकट्ठी की थीं। वह मानो यह भूल ही गया कि मैं रत्न खरीदने रत्नद्वीप आया था।

रत्नों से अपना जहाज भरने के बाद चारु पहले योग्य के पास गया और पूछा—मित्रवर ! मेरा काम तो पूरा हो गया। तुम्हारा जहाज भरा कि नहीं ? चारु के यह पूछने पर योग्य ने उसे अपनी स्थिति बता दी तो चारु ने उसे समझाया—तू यहाँ रत्न लेने आया था या घूमने ? अब तू घूमना छोड़कर रत्नों से अपना जहाज भर ले। रत्नों की पहचान तो तुझे है ही। मैं कुछ दिन और ठहर जाऊँगा।

इसके बाद चारु हितज्ञ के पास गया और पूछने पर जाना कि उसने अधिकांश समय घूमने में बिताया है। रत्नों की पहचान भी उसे नहीं है। उसने थोड़े से नकली रत्न इकट्ठे किये हैं। इस पर चारु ने हितज्ञ को भी समझाया—तुझे नकली रत्न ही इकट्ठे करने थे तो यहाँ रत्नद्वीप क्यों आया था ? जब रत्नद्वीप आया था तो घूमने में समय क्यों गँवाया ? व्यर्थ समय गँवाने पर हितज्ञ भी बहुत पछताया। उसने चारु से कहा—तुम मुझे रत्नों की पहचान बता दो। अब मैं एक क्षण भी व्यर्थ नहीं जाने दूँगा।

चारु ने हितज्ञ को रत्नों की पहचान बता दी। हितज्ञ ने नकली रत्न सब फेंक दिये और सच्चे रत्नों को क्रय करने में लग गया।

चारु अब मूढ़ के पास पहुँचा। उससे भी पूछ-ताछ की और कहा—हम तीनों का काम तो पूरा होने को है। मेरा जहाज तो रत्नों से भर भी गया। मैं स्वदेश लौट रहा हूँ। तेरा क्या हाल है ?

इस पर मूढ़ बोला—

"रत्नों को क्रय करने में क्या रखा है ? रत्नद्वीप का सौन्दर्य देखो। यहाँ कैसे सुन्दर उपवन और सर-सरिताएँ हैं। तू भी स्वदेश लौटने का विचार छोड़ और यहाँ की सुन्दरता देख।"

चारु ने मूढ़ को समझाया कि इतना भयावह सागर पार करके हम रत्न लेने रत्नद्वीप आये थे। रत्न ही सुख का आधार हैं। तूने मूँगे और कौड़ियाँ इकट्ठे कर लिये हैं। इन्हें फेंक दे। मैं तुझे सच्चे रत्नों की पहचान बताता हूँ।

यह कह चारु मूढ़ को रत्नों की पहचान बताने लगा तो मूढ़ क्रुद्ध हो उठा और बोला—

"मुझे तेरे साथ वापस नहीं जाना है। मैं यहीं रहूँगा। मुझे तुझसे रत्नों की पहचान भी नहीं जाननी। तू मेरे रत्नों को मूँगा और कौड़ियाँ बताता है? तू अपना काम कर, मुझे अपना करने दे।"

चारु ने सोचा कि मूढ़ को समझाना व्यर्थ है। ऊसर में बोया बीज कभी नहीं उगता।

हितज्ञ और योग्य ने कुछ ही दिनों में अपने जहाज भर लिये। चारु, हितज्ञ और योग्य रत्न लेकर स्वदेश लौट गए। मूढ़ वहीं—रत्नद्वीप में रह गया और सैर-सपाटे ही करता रहा। प्रथम तीनों मित्र आनंद से रहने लगे।

× × ×

पाँचवें मुनि ने अकलंक से कहा—

रत्नद्वीप के राजा ने मूढ़ को रत्नद्वीप से बाहर गहरे समुद्र में फेंक दिया। गुरुदेव रूपी गोताखोर ने संसार सागर से मेरा उद्धार करने के लिए मुझे उन्होंने यह चार व्यापारियों की कथा सुनाई और सच्चे रत्नों की पहचान तथा उपलब्धि कराई। व्यापारियों की यह कहानी सुनकर मुझे बोध हुआ और मैंने दीक्षा ले ली। ☐

[९] रत्नद्वीप की व्यापार-कथा का रहस्य

"मुनि की बात मुझे तो असंबद्ध और असंयत लगी।" धनवाहन ने छठे मुनि के पास जाने से पूर्व अकलंक से कहा—"व्यापरियों की इस कथा से दीक्षा का क्या सम्बन्ध हो सकता है? कृपया, मुझे इस कथा का रहस्य भी समझाइए।"

अकलंक धनवाहन को चार व्यापारियों की कथा का रूपक-रहस्य

समझाने लगा। असंव्यवहार जीवराशि को वसंतपुर नगर समझना चाहिए। चारु, योग्य, हितज्ञ और मूढ़—चार प्रकार के जीवों के प्रतीक हैं, जो क्रमश: सुन्दरतम, सुन्दरतर, सुन्दर और निष्कृष्ट प्रकार के हैं। संसार समुद्र है। इसमें जन्म-मरण रूपी पानी भरा रहता है। जैसे समुद्र को पार करना कठिन है, वैसे ही मिथ्यादर्शन और अविरति के कारण संसार-सागर को भी पार करना कठिन है। संसार रूपी सागर में महामोह की लहरें उठती रहती हैं।

मनुष्य जन्म की प्राप्ति रत्नद्वीप पहुँचने के समान है। वन-उपवन, सर-सरिताओं में घूमना इन्द्रियों के विषयों की भोगलिप्सा है। सद्धर्म को त्याग कुधर्म को ग्रहण करना नकली रत्नों, काच-कौड़ी-मूँगों को ग्रहण करने के समान है।

धनवाहन ! जीव का स्वरूप ही जहाज है और स्वदेश लौटना मोक्ष प्राप्ति है, क्योंकि आत्मा का स्थान यही है। मूढ़ पर रत्नद्वीप का राजा क्रुद्ध हुआ था और उसने उसे रत्नद्वीप से बाहर समुद्र में फेंक दिया था। रत्नद्वीप का राजा स्वकर्मपरिणाम का प्रतीक है। रत्नद्वीप से बाहर करना—मनुष्य भव छुड़ाना और समुद्र में फेंकना जन्म-मरण की भव परम्परा में डाल देने के समान है।

चारु, योग्य, हितज्ञ और मूढ़ की तरह इस मनुष्य भव में भी चार प्रकार के व्यक्ति रहते हैं।

चारु की प्रवृत्ति वाले लोग सुन्दरतम माने गये हैं। ऐसे व्यक्ति बिना किसी के उपदेश के स्वत: ही सद्धर्म को ग्रहण करते हैं और मनुष्य जन्म रूपी रत्नद्वीप प्राप्त करने के बाद क्षमा, दया, नम्रता, मैत्री, तप, संयम, ब्रह्मचर्य आदि सच्चे रत्नों का संग्रह करते हैं।

योग्य के समान व्यक्ति सुन्दरतर अथवा मध्यम कोटि के होते हैं। ये रत्नों की पहचान तो जानते हैं, पर अपना समय इन्द्रिय भोगों में देते हैं। ये अणुव्रतों—श्रावक व्रतों का ही पालन करते हैं, क्योंकि लघुकर्मी होते हैं। लेकिन मुनि रूपी चारु के समझाने पर ये व्यक्ति इन्द्रिय भोगों पर संयम रख रत्न संचय में लग जाते हैं।

हितज्ञ कोटि के व्यक्ति सुन्दर या सामान्य कहे जाते हैं। इनका समय भोगों में बीतता है। इन्हें सद्धर्म की जानकारी भी नहीं होती। ये दूसरों के उपदेश से सद्धर्म को जान लेते हैं।

मूढ़ कोटि के व्यक्ति निकृष्ट होते हैं। ये मनुष्य भव पाकर भी पशु-

तुल्य जीवन बिताते हैं। इन पर किसी के समझाने का प्रभाव भी नहीं पड़ता। ये संसार सागर में ही गोते खाते रहते हैं।

धनवाहन, अब मैं तुम्हें इस कथा का गूढ़ार्थ भी समझाता हूं। □

[१०] रत्नद्वीप की कथा का गूढ़ार्थ

चारु यहां मुनियों का प्रतीक है। श्रमण-मुनि अपने आत्मा रूपी जहाज को तप-संयम, शान्ति, संतोष, ज्ञान-दर्शन आदि सच्चे-खरे, मूल्यवान भाव-रत्नों से भरकर मोक्षरूपी स्वदेश लौटने को तैयार हो जाते हैं और तब श्रावकरूपी योग्य से पूछते हैं कि मनुष्य भव रूपी रत्नद्वीप में रहकर तुमने कितने रत्न इकट्ठे किये ? तुम रत्नों की पहचान भी जानते हो। बोलो क्या देर है ?

जैसे योग्य ने अपना समय वन-उपवन घूमने में बिताया था, वैसे ही श्रावक भी इन्द्रिय-भोगों में समय गँवाता है और अणुव्रत रूपी थोड़े-से रत्न इकट्ठे कर पाता है। तब जैसे चारु ने योग्य को उपदेश दिया था कि रत्न-द्वीप आकर भी तुमने रत्न क्रय नहीं किये, घूमने में ही समय गँवाया, ऐसे ही मुनि जन श्रावकों को समझाते हैं कि यह मनुष्य-तन साधना-धाम है। इससे साधना करो। मोक्ष जाने की साधना के लिए भाव-रत्न इकट्ठे करो। जैसे योग्य प्रमाद त्याग कर रत्न संचय करने में तत्पर हो गया था, वैसे ही सुश्रावक भी दीक्षा लेकर चारित्र-साधना में तत्पर हो जाते हैं।

तीसरे साथी हितज्ञ ने रत्नों के नाम पर नकली रत्न, काच आदि इकट्ठे किये थे। उसे असली-नकली की पहचान नहीं थी। चारु ने उसको रत्नों की पहचान बताई और यह भी समझाया कि वन-उपवन में घूमकर तुमने क्षणिक बाहरी सुख ही लिया। रत्नों का सुख स्थायी है। हितज्ञ ने चारु की बात को समझा। नकली रत्न फेंक दिये और असली की पहचान सीखकर उन्हीं का संचय करने लगा।

हितज्ञ की तरह ही यहां वे सामान्य—मध्यम जन हैं, जो धर्मरत्न को चाहते तो हैं, पर अज्ञानवश मिथ्याधर्म को धर्म मानने लगते हैं। वे हिंसा को धर्म के नाम पर अपनाते हैं। तब चारुरूपी श्रमण उन्हें समझाते हैं कि जिसे तुम धर्म समझ रहे हो, वह तो अधर्म है। हिंसा कभी धर्म नहीं हो सकती। दुःख देकर कभी सुख नहीं मिलता। यह कहकर मुनि सच्चा

धर्म बताते हैं। तब हितज्ञ यज्ञों में की जाने वाली तथा अन्यान्य प्रकार की हिंसा अधर्मरूपी नकली रत्नों का त्याग करके सच्चे रत्नरूपी जैन धर्म का पालन करने लग जाता है। हितज्ञ की तरह सामान्य मध्यम श्रावक भी महाव्रत रूपी रत्नों का संचय करने लग जाता है और मोक्ष रूपी स्वदेश जाने के लिए चारु के साथ तैयार हो जाता है।

अन्त में चारु मूढ़ के पास गया था। मूढ़ ने कुछ मूंगे कौड़ियाँ इकट्ठे किये थे। वह उन्हें ही रत्न समझता था। रत्नद्वीप आकर भी उसे रत्नों में रुचि नहीं थी—भ्रमण में ही रुचि थी। उसने चारु से भी कहा था कि स्वदेश लौटने की क्या जल्दी है। तुम भी यहीं रहो। यहां के बनों का आनन्द लो।

मूढ़ जैसे कुछ निकृष्ट मनुष्य भी है। मनुष्य-तन रूपी रत्नद्वीप उन्हें प्राप्त है। लेकिन उनका सारा समय भोगों में जाता है। वे व्यसनों—दुर्व्यसनों में भी लिप्त रहते हैं। जो कुछ वे धर्म के नाम पर करते हैं, वह अधर्म ही होता है। मूढ़ की तरह निष्कृष्ट मनुष्य श्रमणों से कहते हैं—

"हम बड़े सुखी हैं। अच्छा खाते-पीते हैं। रथ-पालकी में घूमते हैं। रमणियों से भोग करते हैं। तुम्हारे साथ जाने में तो हमें कायाकष्ट मिलेगा। तुम भी हमारे साथ रहो। तप-जप छोड़ो। हम चण्डी-काली, महाकाली को बकरे की बलि चढ़ाते हैं। यही धर्म है। तुम इसे अधर्म कैसे कहते हो ? हमें तुम्हारा दया धर्म जानने की जरूरत नहीं है।"

मूढ़ की युक्तियां सुनकर जैसे चारु ने सोच लिया था कि इसे समझाना व्यर्थ है। वैसे ही मुनि लोग भी सोच लेते हैं कि इन विषयी जीवों को सच्चा धर्म—सद्धर्म बताना व्यर्थ है। ये मूंगा-कौड़ी रूपी हिंसा को ही ही धर्म मानते रहेंगे। हम करें भी क्या ? ये जैसा करेंगे, वैसा ही भरेंगे।

रत्नद्वीप के राजा ने क्रुद्ध होकर मूढ़ को सागर में फिकवा दिया था। वहाँ वह भटकता रहा—कष्ट भोगता रहा। इसी प्रकार स्वकर्मपरिणाम रूपी राजा उनको भवसागर में डाल देता है और वे जन्म-मरण के पानी में डूबते-उतराते रहते हैं।

अकलंक ने धनवाहन से कहा—

"धनवाहन ! चारु—मुनि, योग्य—देशविरतिधारक श्रावक, हितज्ञ —भद्र प्रकृति वाले मिथ्यादृष्टि मानव और मूढ़—निकृष्ट वंध्या गाय जैसे प्राणी, जिससे दूध की आशा नहीं—इस संसार में हैं। यह कथा संसार

के चारों प्रकार के मनुष्यों की है। चारु, योग्य और हितज्ञ जैसे मनुष्यों का ही नरतन पाना सार्थक हो पाता है। वे मोक्ष जाते हैं—स्वदेश लौटते हैं। मूढ़ जैसे प्राणी तो जब पाप से पूरे भर जाते हैं तब कर्मपरिणाम राजा उन पर क्रुद्ध होकर मनुष्यदेहरूपी रत्नद्वीप से निकाल कर संसार सागर में निरन्तर दुःख सहने के लिए फेंक देता है।

'तो धनवाहन ! चार व्यापारियों अथवा रत्नद्वीप की इस कथा को सुनकर कौन भयभीत नहीं होगा ? अब तू बता कि मुनि महाराज ने अपनी दीक्षा का हेतु जो कथा कही, उसका रहस्य तेरी समझ में आया या नहीं।"

इस कथा को सुनने के बाद संसारी जीव की कर्मस्थिति कुछ जीर्ण हुई थी। धनवाहन के रूप में संसारी जीव में कुछ भद्र भाव जाग्रत हुए। उसे अकलंक का कथा-विश्लेषण किंचित् सुखप्रद लगा। लेकिन वह चुप रहा, उसने अकलंक को कोई उत्तर नहीं दिया। अब अकलंक धनवाहन को लेकर छठे मुनि के पास उनकी दीक्षा का कारण जानने गया।

× × ×

"बहिन अगृहीतसंकेता ! अकलंक के साथ मैंने भी छठे मुनि की वंदना की और उन्होंने हम दोनों को धर्मलाभ कहा। हम दोनों बैठ गए। अकलंक ने मुनि महाराज से पूछा—भन्ते ! आपने दीक्षा क्यों ली ? तब मुनि बोले कि भद्र ! मैंने एक बाजार को देखकर दीक्षा ली थी। इसी बुधनंदन उद्यान में सामने जो ध्यानमग्न मुनि बैठे हैं, ये मेरे गुरु हैं। इन्होंने ही मुझे भवहाट—संसार-बाजार का बोध कराया था। कैसा है यह बाजार, यह मैंने जाना तो दीक्षा ले ली। सभी इस बाजार में रहते हैं, पर उसे जानते नहीं। मैं तुम्हें अपनी दीक्षा के कारणरूप संसार-बाजार की कथा सुनाता हूँ।

"तो अगृहीतसंकेता ! छठे मुनि ने हमें भवहाट—संसार-बाजार के प्रथम चक्र की कथा सुनाई। वह अब मैं तुमको सुनाता हूँ।" □

[११] संसार-बाजार—प्रथम चक्र

जिसका न आदि है, न अन्त—ऐसी एक नगरी है। इस नगरी का नाम

है संसृति। इसमें एक बाजार है। इस बाजार में भवरूपी लम्बी-लम्बी श्रेणियाँ हैं। यहाँ जो दुकानें हैं, ये सुख-दुख रूपी किराणे से भरी हुई हैं। जीव रूपी व्यापारी यहाँ किराणे का क्रय-विक्रय करते रहते हैं। इसके लिए वे पाप-पुण्यरूपी मूल्य को माध्यम बनाते हैं। पाप-पुण्यरूपी द्रव्य या मूल्य—उत्तम, मध्यम और निकृष्ट—तीन प्रकार का इनके पास रहता है। इस बाजार में अधिकतर पुण्यहीन जीव रहते हैं, जो पाप द्रव्य से दुख रूपी किराणा ही खरीद पाते हैं। यह बाजार रात-दिन खुला रहता है—खूब चलता है—सदा चलता है।

संसृति नगरी के बाजार का सेनापति है महामोह। काम-क्रोध आदि इस सेनापति के अधिकारी हैं। यहाँ एक ऋणदाता है, जो बहुत रौद्र है—कठोर है। इसका नाम है कर्म और ऋण लेने वाले हैं जीव। यह कर्म लेन-दारों को जेल में डाल देता है, क्योंकि बहुत कठोर है। इससे छूटना असंभव है। इस बाजार में कषाय नामक कुछ बच्चे रहते हैं, जो शोर करते रहते हैं। निष्कर्षतः यह बाजार अनेक नवीनताओं से भरा है।

तो अकलंक यह बाजार मेरी दीक्षा का कारण बना। देखते हुए भी मैं इस बाजार को देख नहीं पा रहा था। मैं केवल इतना जान पाया कि इस बाजार में रहने वाले लोग दुःखी हैं। पर मैं उनके-अपने दुःख का कारण नहीं जानता था। मेरे गुरु महाराज ने मेरी आँखों में ज्ञानांजन लगा दिया। तब मैंने जान लिया– देख लिया और निश्चय किया कि मैं शिवालय में जाऊँगा। इस बाजार में नहीं रहूँगा। वहाँ एक शिवालय था। उसमें अनन्त नामक मुक्ति पुरुष रहते थे। मैंने गुरु—महाराज से कहा कि प्रभो ! मैं आपके साथ शिवालय में जाना चाहता हूँ। इस बाजार में रहना नहीं चाहता।

अकलंक ! कृपासागर गुरु बोले—तो वत्स तुम दीक्षा ले लो और जो मैं कहूँ, वह करो। मैंने श्रामणी दीक्षा अंगीकार करली और गुरुदेव से पूछा कि अब करना क्या है। इस पर वे बोले कि तुम्हें एक बंदर के बच्चे की रक्षा करनी है। यह कपिशावक बड़ा ही चंचल है। मैंने गुरु महाराज से बन्दर के बच्चे के रक्षण का भावार्थ, उसका उपाय आदि समझा। अब वही सब करके शिवालय जाने की तैयारी कर रहा हूँ।

अकलंक ने पूछा—

"भगवन् ! बंदर के बच्चे का रक्षण क्या है, इसे कुछ स्पष्ट करके समझाइए।"

इस पर छठे मुनि अपनी आत्मकथा आगे बढ़ाते हुए कहने लगे। अकलंक के साथ अब धनवाहन को भी कथा मधुर लग रही थी। □

[१२] **बन्दर के बच्चे का रक्षण**

छठे मुनि महराज ने अकलंक से कहा कि मेरे गुरु महराज ने मुझे मेरा कर्तव्य समझाते हुए कहा था कि वत्स ! तेरे पास एक सुन्दर कमरा है, जिसमें तू रहता है। यह तेरे अधिकार में है। इस कक्ष या कमरे का नाम काया है। इस कमरे के अन्दर ही कार्मण शरीर नामक एक दूसरा कमरा है। इसी दूसरे भीतरी कमरे में चित्त नाम एक बंदर का बच्चा रहता है। बन्दर का बच्चा कभी चुपचाप नहीं बैठता। चित्त नामी यह कपिशावक बहुत ही चंचल है। दीक्षा लेने के बाद तुझे इसी चित्त कपि की रक्षा करनी है। इस चित्त को जिससे भय है, उसी से इसको बचाना—रक्षण करना है।

जिस कार्मण शरीर कक्ष में चित्त रहता है, उसी कक्ष में कषाय नाम के कुछ मूषक रहते हैं, जो इस बेचारे को काटते रहते हैं। नोकषाय नामक बिच्छू इसे दंशित करते हैं। संज्ञा नामक बिल्ली चित्त कपि को अपना आहार बना लेती है। महामोह नामक बिलाव, परीषह उपसर्ग नामक मच्छर, दुष्टाभिसंधि नामक खटमल, चिन्ता नामक गिलहरी, अविरति नामक जूँ आदि इसे काटते रहते हैं और मिथ्यादर्शन नामक अँधेरा तो इसे एकदम अन्धा ही बना देता है। इन दुष्टों से बचने के लिए यह बंदर रौद्र ध्यान रूपी खैर के अंगारों वाले धधकते कुण्ड में कूद जाता है और वहाँ तो और भी अधिक दाह पीड़ा पाता है, बेचारा यह चित्त नामी बंदर का बालक। कभी यह कुविकल्प रूपी मकड़ियों के जालों से ढकी आर्तध्यान रूपी गुफा में जा पड़ता है।

तो वत्स ! तुझे चित्त कपि का रक्षण उपर्युक्त अग्निकुण्ड या गुफा से करना है। कैसे, यह मैं तुझे समझाता हूँ।

काया के भीतर पांच विष वृक्ष हैं—शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श। इनकी आधार वस्तुएँ इन वृक्षों की डालियाँ हैं। इन डालों पर भी यह बन्दर उछल-कूद करता रहता है। यह बन्दर भोग-स्नेह के जल से गीला होता है, तब यह कर्मपरमाणुनिचय नामक धूल में लोटता है। यह

जहरीली धूल इसके शरीर में घाव कर देती है। घूम-फिरकर यह अपने कक्ष में आता है, वहां इसे पूर्व दुष्ट पुनः काटते-खाते हैं।

अब मैं इसको सभी से बचाने का उपाय बताता हूं। आत्मशक्ति-रूपी हाथों में अप्रमाद नामक बज्रदण्ड पकड़ना। जब यह बंदर विष वृक्षों के फलों को खाने आये, तभी दण्ड प्रहार करके रोक देना। ऐसा बार-बार करना पड़ेगा, क्योंकि यह बहुत चंचल है। धीरे-धीरे इसकी विषफल खाने की इच्छा समाप्त हो जाएगी और भोग-स्नेह जल के भीगने से जो सर्दी हुई थी, वह भी दूर हो जाएगी। शरीर सूखेगा तो धूल भी गिर जाएगी। फिर यह दर्शनीय—सुन्दर—सफेद रंग का हो जाएगा। फिर तू उसी बज्र-दण्ड से अशुभ अध्यवसाय के चूहे, बिल्ली, बिच्छू, खटमल, मच्छर आदि को भी नष्ट कर देना।

वत्स ! तू शिवालय में जाना चाहता है। संसार-बाजार में रहना तुझे पसंद नहीं है। तो जब तक तू चित्तरूपी कपि की रक्षा नहीं करेगा, तब तक शिवालय नहीं पहुंच पायेगा। यह चित्त कपि बहुत समय से चक्र में पड़ा है, उस चक्र से भी इसे निकालना है।

छठे मुनि ने अकलंक से कहा—

"भद्र ! गुरुदेव के कथन को मैंने समझा। संसाररूपी बाजार के स्वरूप को भी जाना। शिवालय जाने के लिए मैं तभी से चित्त रूपी बंदर के बालक की रक्षा में लगा हूं। मेरा दीक्षा का हेतु जो बाजार बना, कैसे बना, वह सब मैंने तुझे समझा दिया। □

[१२] संसार-बाजार—द्वितीय चक्र

अकलंक ने छठे मुनि के समक्ष अपनी शंकास्पद जानकारी प्रस्तुत की। चित्त या मन दो प्रकार का होता है—(१) द्रव्यचित्त, (२) भाव-चित्त। द्रव्यमन जब जीवात्मा के साथ संयुक्त होता है, तब उसे भावमन कहा जाता है। भावमन कार्मण शरीर में रहता है, अतः वह अलग जाना जाता है।

यह जो भावमन है, वह जीव ही है। लेकिन जीव चित्तरूप होते भी हैं और नहीं भी होते। जैसे केवली भावमन-रहित होते हैं।

मुख्य बात यह है कि यह जो जीव है मिथ्याज्ञान के कारण विपरीत निर्णय लेता है। इसी से जन्म-मरण की बंध परम्परा चलती है। जब तक जीव भ्रान्त या विपरीत निर्णय लेता रहता है, उसकी भव-भ्रमण की परम्परा चलती रहती है। यह संसार-बाजार का द्वितीय चक्र है।

अकलंक की उपर्युक्त संक्षिप्त टिप्पणी सुनकर छठे मुनि महाराज ने उससे कहा—

"तुमने जो द्वितीय चक्र की बात कही, वह पूर्णतः सत्य है। एक बार विपरीत निश्चय का नाश हो जाए तो द्वितीय चक्र की परम्परा नष्ट हो जाती है। सही निर्णय करने वाला तत्त्वज्ञ प्राणी मन और आत्मा को अलग-अलग समझता और जानता है। फिर उसे राग-द्वेष से मुक्ति मिल जाती है। उसे इन्द्रियों के विषयों से सुख की अनुभूति नहीं होती। मन की आसक्ति मिट जाती है। कर्मपरमाणुओं का संचय रुक जाता है और फिर संसार-परम्परा नष्ट हो जाती है। निष्कर्ष यह निकला कि कर्मबन्ध से भवचक्र फैलता है। जो इन दोनों की प्रवृत्ति-निवृत्ति को जानते हैं, उनका चित्त संसार की आसक्ति में नहीं रमता। दूसरे चक्र को जानकर चित्तरूपी बंदर के बच्चे की रक्षा करते हुए उसे शिवालय या मठ ले जाया जाता है।"

"चित्त रूपी बन्दर के बालक को शिवालय में कैसे ले जाया जाता है?" अकलंक ने कहा—"इसके बारे में भी कुछ बताइए।"

"मेरे गुरुदेव ने जो मुझे समझाया, वह मैं तुम्हें बताता हूँ।" छठे मुनि ने अकलंक से कहा—"चित्तरूपी बंदर के बालक को ले जाने की विधि ध्यान देकर सुनो।

"चित्त जिस क्षयोपशम गर्भगृह में रहता है, उसमें छह सेविकाएँ रहती हैं। उन्हें लेश्या नाम से पुकारते हैं। ये छहों लेश्याएँ—कृष्ण, नील, कापोत, तैजस्, पद्म और शुक्ल रंग की हैं। इनमें पहली तीन क्रूरतम, क्रूरतर और क्रूर हैं। ये चित्त की शत्रु ही हैं। ये शिवालय जाने से चित्त को रोकती हैं और बाजार में ही रखना चाहती हैं। शेष तीन शुद्ध, शुद्धतर और शुद्धतम हैं। ये आनंद-परम्परा देने वाली लेश्याएँ हैं। यही बाजार से निकालकर चित्त को शिवालय पहुँचाती हैं। छहों लेश्याओं ने ऊपर चढ़ने के लिए परिणाम नामक सीढ़ियाँ बना रखी हैं। फिर इन पर चढ़ने के लिए अध्यवसाय नामक अनेक सीढ़ियाँ हैं।

चित्तरूपी कपि को पहली तीन लेश्याओं की सीढ़ियों से ऊपर चौथी लेश्या की सीढ़ी पर चढ़ाना चाहिए। यहाँ चित्त का संताप कम होने

लगेगा। इसी क्रम से छठी लेश्या की सीढ़ी पर चढ़ने के साथ ही सब उपद्रव नष्ट हो जाएँगे। चित्त आनंद से भर जाएगा। यहाँ बंदरों की एक टोली छिपकर रहती है। कुछ बंदरियाँ भी यहाँ हैं। इस बानर टोली का नायक एक बड़ा बन्दर है, जिसका नाम है, धर्म। टोली के अन्य वानर-वानरियों के नाम हैं—धैर्य, वीर्य, औदार्य, गाम्भीर्य, ज्ञान, दर्शन, तप आदि और वानरियाँ हैं—धृति, श्रद्धा, जिज्ञासा, सुख-प्राप्ति आदि। यह चित्तरूपी वानर भी अपनी टोली में मिल जाएगा। फिर उसे मोह-कषाय आदि रूपी चूहे, बिल्ली, बिच्छू आदि का भला क्या भय रहेगा, धर्मरूपी नायक बंदर के रहते चित्तकपि को कोई भय नहीं है। बस फिर यह एक छलांग में ही बाजार को छोड़कर शिवालय में पहुँच जाएगा।"

× × ×

"बहिन अगृहीतसंकेता! छठे मुनि महाराज मेरे मित्र अकलंक को जो कुछ बताया उससे उसे बड़ा आनंद हुआ फिर इन मुनिराज को वंदन कर हम आगे बढ़े तो अकलंक ने मुझ से पूछा—धनवाहन! कथा का गूढ़ार्थ तुम्हारी समझ में आया या नहीं? मैंने कहा—मेरी समझ में गूढ़ार्थ नहीं आया। तब वह मुझे गूढ़ार्थ समझाने लगा। उसे सुनने-समझने के बाद मेरी रुचि धर्म में 'नाम मात्र' को बढ़ने लगी थी।" □

[१४] संसार-बाजार का सार-संक्षेप

"मित्र धनवाहन! तुम मेरे परम आत्मीय मित्र हो। अतः मैं तुम्हें छठे मुनि महाराज द्वारा कथित संसाररूपी बाजार का गूढ़ार्थ समझाता हूँ। अकलंक ने अपने ताऊ जीमूतराजा के पुत्र धनवाहन (संसारी जीव) से कहा—"छठे मुनि महाराज ने जो कुछ बताया—समझाया, उसका सार यह है कि यह मन ही हमें संसार चक्र में डालता है और मन ही संसार हाट से हटाकर शिवालय (मोक्ष) को पहुँचा देता है। एक ही मन दोनों काम करता है। अब यह हमारे ऊपर है कि हम मन से कौन-सा काम लें। गर्भगृह या कक्ष में चित्त या मन रूपी जिस बंदर के बच्चे के रहने की बात कही गई है, वह सभी के लिए समान है।

"मरते समय जीव जिस लेश्या के अध्यवसाय में होता है, वह वैसे ही अध्यवसाय में पैदा होता है—'अन्त मति सो गति'। हमारा चित्त/मन

अनगिनत अध्यवसायों में गति करता है, इसलिए विभिन्न योनियों रूपी संसार का कारण बनता है। यदि यह निर्दोष-विशुद्ध अध्यवसाय में प्रवृत्ति करता है तो मोक्ष का कारण बनता है। धनवाहन ! तेरा चित्त या मन ही तेरा सर्वस्व है। तेरा भावचित्त ही तू है—भावचित्त ही जीव है। जो प्राणी अपने भावचित्त की रक्षा करता है, वही आत्मा की भी रक्षा करता है।

"तेरा चित्त जब बाह्य भ्रमण का त्याग करके इच्छारहित हो जाएगा, तभी तुझे परम सुख की प्राप्ति होगी। तुझे कोई गाली दे, क्रोध करे या प्रशंसा करे, स्तुति करे—हर दशा में तेरी अनुभूति समान होगी और तभी तुझे परम सुख की प्राप्ति होगी। फिर तुझे सहलाने वाले और तलवार से घाव करने वाले में कोई भेद दिखाई नहीं देगा।

"धनवाहन ! निष्कर्ष यह है कि त्रैलोक्य में सुख-प्राप्ति का एक मात्र साधन हमारा चित्त ही है और मिथ्याज्ञान के कारण हम इसी चित्त से नाना प्रकार के दुःखों-क्लेशों को भी प्राप्त करते हैं।"

अकलंक की बात सुनकर धनवाहन को थोड़ा अच्छा लगा—किंचित् आनन्द मिला। धनवाहन की कर्मपद्धति अत्यन्त सघन थी, जिसे अकलंक की वाणी ने काट दिया। दीर्घकाल की कर्मस्थिति को संसारी जीव ने धनवाहन के भव में पार किया, शेष अल्पकाल की कर्मस्थिति के निकट पहुँच गया।

अब संसारी जीव अपनी आत्मकथा को आगे बढ़ाते हुए धनवाहन के भव की आगे के परिणामों की कथा कहने लगा। उसने वामदेव आदि के अपने पूर्वभव की स्मृति को पुनः ताजा किया और बोला—

"अगृहीतसंकेता ! जब मैं वामदेव के भव में था, तब आचार्य बुध ने जो वचन कहे थे, वे तुझे याद हैं या नहीं ?"

"मुझे याद तो हैं।" अगृहीतसंकेता बोली—"लेकिन अच्छी तरह याद नहीं हैं। एक बार संक्षेप में पुनः बता दो।"

संसारी जीव बताने लगा—

"अपनी आत्मकथा सुनाते हुए बुधसूरि ने कहा था कि उनका 'विचार' नाम का एक पुत्र था, जो देश-देशान्तरों का भ्रमण करने निकला था। भवचक्रपुर को देखने के बाद वह अपनी मौसी मार्गानुसारिता के साथ लौटा था। उसने अपने पिता बुधसूरि को महामोह राजा और चारित्रधर्म राजा के बीच संघर्ष की घटना सुनाते हुए कहा था कि उस संघर्ष में चारित्र-

धर्म राजा की बुरी तरह हार हुई थी। महामोह की सेना ने चारित्रधर्म राजा की सेना को चारों ओर से घेरकर निरुपाय कर दिया था।"

"हां, मुझे याद आया।" अगृहीतसंकेता बोली—"विचार ने अपने पिता बुधसूरि को यह भी बताया था कि घ्राण नाम का व्यक्ति बड़ा ही दुष्ट है।"

"तो मैं तुम्हें अब पुनः धनवाहन के भव की आगे की घटना सुनाता हूँ।" संसारी जीव ने अगृहीतसंकेता से कहा—"जिस समय मैं अकलंक की वाणी सुनकर किंचित् आनंदित हुआ था और अपनी दीर्घकाल की कर्म-स्थिति को कटते हुए अनुभव किया था, उसी समय एक घटना घटी। वह यह कि मोहराजा से पीड़ित, दुखी और संतप्त चारित्रधर्म राजा और उनकी सेना में किंचित् हर्ष का संचार हुआ। अपने भविष्य को उज्ज्वल देखते हुए चारित्रधर्म राजा के मंत्री सद्‌बोध ने जो कुछ हर्षसंवाद चारित्र धर्म राजा को सुनाया, वह मैंने भी सुना था, क्योंकि वह मुझे लेकर ही था। आखिर अपने अन्तरंग राज्य का असली स्वामी तो मैं ही हूँ।"

"सद्‌बोध मंत्री के कथन को मैं भी सुनना चाहती हूँ।" अगृहीत-संकेता ने कहा—"उसके कथन का तुमसे—संसारी जीव से क्या सम्बन्ध था, यह भी जानना चाहती हूँ।"

अब संसारी जीव आगे कहने लगा। □

[१५] सदागम का सान्निध्य : भावशून्य धर्मक्रियाएं : दीक्षा

सद्‌बोध मंत्री ने चारित्रधर्म राजा से कहा—

"स्वामिन् ! हमारे राजा संसारी जीव की चित्तवृत्ति अटवी में अब धनवाहन के भव में—कुछ प्रकाश किरणें दिखाई देने लगी हैं। पहले उक्त अटवी मे गहन अँधेरा था, अतः हम सब छिप गये थे। अब संसारी जीव धनवाहन के भव में हमें पहचानने की स्थिति में आ गया है। अब हमें चाहिए कि कर्मपरिणाम से पूछकर संसारी जीव के पास किसी ऐसे व्यक्ति को भेजना चाहिए जो संसारी जीव को हमारे अनुकूल बनाये।"

"तो फिर किसे भेजें ?" चारित्रधर्म राजा ने अपने मंत्री सद्‌बोध से पूछा—"जिसे चाहो भेज दो।"

"सदागम को भेजना ही ठीक रहेगा।" सद्बोध मंत्री ने चारित्र-धर्म राजा से कहा—"सदागम संसारी जीव में हमें देखने की इच्छा पैदा करेंगे और तब कर्मपरिणाम राजा संसारी जीव को हमारा परिचय देंगे।"

"सदागम के साथ यदि सम्यग्दर्शन भी जाए तो अच्छा रहेगा।" चारित्रधर्म राजा ने अपने मंत्री सद्बोध से कहा—"क्योंकि जब सम्यग्दर्शन साथ होगा, तभी सदागम अपना वास्तविक लाभ संसारी जीव को दे सकता है।"

"बात तो ठीक है।" सद्बोध मंत्री ने कहा—"लेकिन अभी सम्यग्-दर्शन को भेजने का अवसर नहीं है। पहले सदागम संसारी जीव को अपना बनाले, तभी सम्यग्दर्शन का उसके पास जाना ठीक रहेगा।"

संसारी जीव ने अगृहीतसंकेता से कहा—

"ऐसा निश्चय हो जाने के बाद सद्बोध मंत्री ने सदागम को मेरे पास—धनवाहन के पास भेज दिया। यह घटना इस प्रकार घटी कि बुध-नंदन उद्यान में अकलंक मुझे लेकर कोविदाचार्य के पास पहुँचा। उसने आचार्य को वंदन किया। मैंने भी कोविदाचार्य की वंदना की। आचार्य ने हम दोनों भाइयों को धर्मलाभ दिया। आचार्य के पास ही सदागम बैठे थे। उधर महामोह राजा की सेना में हलचल मच गई। महामोह ने अपने विश्वस्त अधिकारी ज्ञानसंवरण को पहले से ही मेरे पास रख छोड़ा था, जो पूरी तरह महामोह और उसकी सेना का पोषण करता था। मेरे निकट सदागम को देख ज्ञानसंवरण भय के मारे छिप गया।

"मैंने अकलंक से सदागम के बारे में पूछा कि ये महात्मा कौन हैं तो अकलंक ने मुझे बताया कि ये सदागम हैं। ये धर्म-अधर्म का विवेचन करते हैं। कोविदाचार्य, अन्य मुनिगण और मैं अकलंक—धर्म के बारे में जो भी जानते हैं, सब सदागम की कृपा से ही जानते हैं। अतः तुम इनके सम्पर्क में रहो तो अपना भला-बुरा, हित-अहित, हानि-लाभ—सब जान जाओगे।

"बहिन अगृहीतसंकेता! मित्र अकलंक के आग्रह और किंचित् अपनी इच्छा से मैंने सदागम से सम्पर्क स्थापित कर लिया। मैं उनके सान्निध्य में रहकर कुछ धर्मक्रियाएँ सीख गया। लेकिन उन्हें बेमन से भाव-शून्य होकर केवल अकलंक को प्रसन्न करने के लिए ही करता था। मैं नवकार मंत्र का जाप भी श्रद्धाशून्य होकर बाहरी मन से करता था।

"वहिन ! मैं तो ज्यों का त्यों रहा। लेकिन मेरे मित्र, भाई और हितैषी अकलंक ने कोविदाचार्य से दीक्षा ग्रहण करली और वह श्रमण-संघ एवं आचार्य के साथ विहार कर गया। राजपुत्र अकलंक अब प्रातःवंदनीय मुनि अकलक बन गए। □

[१६] महामोह और परिग्रह

सदागम को संसारी जीव (धनवाहन) के निकट देख महामोह का मंत्री विषयाभिलाष घबरा गया। जो संसारी जीव दीर्घ काल से हमारे काबू में था, जो अपनी सामर्थ्य के बारे में कुछ भी नहीं जानता था और जो यह भी नहीं जानता था कि शक्तिसम्पन्न और समृद्धिशाली अन्तरंग राज्य का एक मात्र स्वामी मैं ही हूँ; वही संसारी जीव अब सदागम के सम्पर्क से सब कुछ जान जाएगा। इस प्रकार अपने दल की स्थिति पर विचार करते हुए विषयाभिलाष मंत्री महामोह के पास पहुँचा और इस प्रकार बोला—

"राजन् ! नाखून से उखाड़े जाने वाली वस्तु को इतना नहीं बढ़ने देना चाहिए कि उसे कुल्हाड़ी से उखाड़ना पड़े। अब सदागम संसारी जीव के पास जाकर रहने लगा है, जिससे हमारा साथी ज्ञानसंवरण भयभीत होकर छिप बैठा है। हमें शीघ्र ही ऐसा उपाय करना चाहिए, जिससे संसारी जीव हमारा दास ही बना रहे।"

"हमारी सेना काफी प्रबल है।" महामोह ने विषयाभिलाष से कहा—"चिन्ता की कोई बात नहीं है। मैं अपने सैनिकों का सामूहिक रूप ही हूँ। मेरे सभी सैनिक मुझमें समाये हुए हैं। अतः मैं स्वयं ही अपने पुरातन-सनातन शत्रु सदागम को मारने जा रहा हूँ। एक बात और मैं अपने अपने पौत्र—रागकेसरी के पुत्र सागर (लोभ) और उसके मित्र परिग्रह को भी साथ ले जा रहा हूँ, क्योंकि ये दोनों मुझे बहुत प्रिय हैं।"

इसके बाद महामोह और परिग्रह धनवाहन रूप संसारी जीव के निकट पहुँच गए। वह इनसे पहले से परिचित था। इनके साथ दीर्घकाल तक रह चुका था। अतः धनवाहन ने दोनों से पुनः स्नेह-सम्बन्ध स्थापित कर लिया।

उन्हीं दिनों साह्लाद नगर के राजा और धनवाहन के पिता जीमूत राजा का निधन हो गया। अतः धनवाहन राजगद्दी पर बैठा। अब वह साह्लाद नगर का राजा था। धनवाहन के राजा बनने पर पड़ोसी

राजाओं ने उसे बधाई भेजी, रत्नादि की भेंटें दी। उसके प्रताप से अनेक शत्रु उसके अधीन हो गए। महाराज धनवाहन का विवाह मदनमंजरी नामक राजकन्या से हुआ। रानी मदनमंजरी अतिशय रूपवती, लावण्य की सीमा और पति परायणा नारी थी। जितना वह राजा को चाहती थी, उससे दूना राजा धनवाहन उसे चाहता था। राजा-रानी में ऐसी प्रीति थी कि कुछ वर्णन नहीं किया जा सकता।

राजा बनने के बाद तो धनवाहन पूरी तरह महामोह और परिग्रह के वश में हो गया। सदागम, महामोह और परिग्रह तीनों उसे अपनी-अपनी ओर खींच रहे थे। पहले सदागम ने उसे समझाया—

"राजन्! महामोह और परिग्रह तेरे शत्रु हैं। ये दुष्ट हैं। तू इनकी संगति छोड़ दे। ये तुझे पौद्गलिक भोगों की ओर खींच रहे हैं। कामभोग, धनसंचय आदि नरक का बंध कराते हैं। तू अन्तरंग राज्य का एक मात्र स्वामी है। अक्षुण्ण आनन्द, ज्ञान, दर्शन आदि तेरे राज्य की सम्पत्ति हैं।"

दूसरी ओर महामोह भी समझाने लगा—

"धनवाहन! साह्लाद नगर का राजा तू हमने बनाया है। तू सदागम की चिकनी-चुपड़ी बातों में मत आना। यह दुष्ट तुझे सुख से दूर करना चाहता है। जब तक यह शरीर है, तब तक तू सुन्दरियों को भोग, सुस्वादु भोजन कर।"

फिर परिग्रह ने समझाया—

"धनसंग्रह में कभी संतोष मत करना। राज्य का विस्तार कर। खजाने को सोने से भरा रहने दे। दान-पुण्य बन्द कर दे। दान देना धन की बरबादी और उसका दुरुपयोग है। तू प्रजा पर दूना-चौगुना कर लगा-कर धन का संचय कर।"

तीनों की खींचतान में धनवाहन पर सदागम का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अनन्त काल के सम्पर्क के कारण उसने महामोह और परिग्रह की बात ही मानी। धनवाहन को महामोह और परिग्रह के वश में देख सदागम उसका साथ छोड़ गया। उसके जाते ही ज्ञानसंवरण की भी बन आई। पहले सदागम के भय से ज्ञानसंवरण छिप गया था। उसके जाते ही अब वह भी प्रकट हो गया।

महामोह और परिग्रह के वश में पड़कर धनवाहन मनमानी करने लगा। साधु-श्रमणों, याचकों आदि को दान देना उसने बंद कर दिया।

प्रजा को कर-भार से दबा दिया। बड़ी क्रूरता से उसने कर वसूल कर स्वर्ण संचय किया। भोग-विलास की उसकी प्रवृत्ति बढ़ गई। धनवाहन पर किंचिन्मात्र धर्म का जो भी प्रभाव पड़ा था, वह सब नष्ट हो गया। उसने नवकार मंत्र का जाप आदि सब छोड़ दिया।

× × ×

"वहिन अगृहीतसंकेता ! इस तरह धनवाहन के रूप में मैं धर्मशून्य हो गया। सदागम मुझे बिल्कुल अच्छा नहीं लगा। मैं संसार में आसक्त हो गया। मेरी राज्यवृद्धि श्रीसमृद्धि--सब पुण्योदय के कारण होती गई, पर मैं पुण्योदय को जानता भी न था, यद्यपि वही मेरा सहोदर और सच्चा मित्र था। मैं अपनी विजय का श्रेय मोह और परिग्रह को देता था। परिग्रह के कारण मुझे धनसंचय से कभी संतोष नहीं हुआ। धन के लिए मैं प्रजा पर मनमाने कर लगाता था। मेरा जीवन क्रम एक अधम का-सा चल रहा था। पाप-पुण्य का भेद करना मैंने छोड़ दिया था। जब मैं ऐसी पतित स्थिति में था, तभी मेरे नगर में कोविदाचार्य और मुनि अकलंक विहार करते हुए आये। मुनि दर्शनों की मुझे कतई इच्छा नहीं थी, पर मुनि अकलंक पर मेरी बहुत प्रीति थी। वे भी मुझे बहुत चाहते थे। अतः मैं मुनि अकलंक के दर्शन और वंदना करने राजोद्यान पहुँच गया। वहाँ जाकर मैंने अकलंक मुनि एवं उनके गुरु कोविदाचार्य—दोनों की वन्दना की।" □

[१७] कोविदाचार्य का आत्मचरित : सदागम का माहात्म्य

आचार्य कोविद और मुनिश्रेष्ठ अकलंक की वंदना कर राजा धनवाहन समवसरण में बैठ गया। आचार्य कोविद ने अपने ज्ञानवल से जान लिया कि धनवाहन राजा (संसारी जीव) मोह और परिग्रह के वश में हो गया है। इसने सदागम का साथ छोड़ दिया है। मुनि अकलंक भी जान गये कि धनवाहन सदागम से विमुख है। वे चाहते थे कि धनवाहन पुनः सदागम का साथ पकड़े। अतः उन्होंने अपने गुरु कोविदाचार्य से कहा—

"भन्ते ! नरराज धनवाहन ने सदागम को छोड़ दिया है। यह उनका महत्त्व भूल गया है। आप कृपाकर इसे पुनः सदागम का महत्त्व और उसकी शक्ति के बारे में बताइए।"

"आज मैं जो कुछ हूँ, सदागम के कारण हूँ।" कोविदाचार्य बोले—

"सदागम ने मुझे श्रुति के प्रति आसक्ति—अच्छा, मधुर सुनने की लालसा और श्रुति के 'संग' नामक दास से छुटकारा दिलाकर मेरा उद्धार किया है।

"राजन्! मैं तुम्हें अपनी आत्मकथा सुनाता हूँ। उसे सुनकर तुम जान जाओगे कि सदागम कितना कल्याणकारी तथा मोह, रागकेसरी, उसकी पुत्री श्रुति आदि कितने दुष्ट और अनर्थकारी हैं।"

यह कहकर आचार्य कोविद अपना आत्मचरित राजा धनवाहन को सुनाने लगे।

× × ×

अन्तरंग सृष्टि में क्षमातल नामक एक नगर है। उस नगर में स्वमल-निचय नाम के राजा राज्य करते हैं। इन राजा के तदनुभूति नामक रानी है। राजा-रानी के दो पुत्र हुए—कोविद और बालिश। कोविद पूर्व-भव परम्परा से संस्कारी था। बालिश में पापवृत्ति की प्रधानता थी। कोविद का सदागम से पूर्वजन्म में भी सम्बन्ध था। अतः जब उसने इस जन्म में सदागम को देखा तो उससे शीघ्र ही घुल मिल गया। लेकिन बालिश उससे कोसों दूर रहा।

कालान्तर में कर्मपरिणाम राजा ने अपनी पुत्री श्रुति को कोविद और बालिश के पास भेजा। साथ में श्रुति का सेवक 'संग' भी था। श्रुति ने कोविद और बालिश दोनों से विवाह कर लिया। वह दोनों की परम-प्रिया बनकर अपने सेवक संग के साथ रहने लगी।

कोविद और बालिश के अधिकार में निजदेह नामक एक पर्वत था, उसका मूर्धा नामक शिखर था। इस शिखर के दोनों ओर श्रवण नामक एक-एक—दो कक्ष थे। दोनों ही कपाट युक्त थे। श्रुति इन्हीं दोनों कक्षों में रहने लगी।

बालिश श्रुति को पाकर बहुत प्रसन्न था। इसे वह अपना सद्भाग्य मानता था कि श्रुति मेरी प्रिया बनी है। बालिश श्रुति पर आसक्त है, यह जान उसका सेवक संग उसके पास जाकर बोला—

"स्वामी! आप मेरी स्वामिनी श्रुति के स्वामी हैं। यह जानकर मैं आपसे एक निवेदन करना चाहता हूँ। वह यह कि आप श्रुति को प्रसन्न रखिये। इससे आप दोनों का प्रेम सम्बन्ध बढ़ेगा। जो वस्तु श्रुति को पसन्द है, आप उसे बार-बार दीजिए। आपकी प्रिया श्रुति को कटु सुनना नापसंद है, वह मधुर संगीत, गायन-वादन सुनना चाहती है।"

"तुम भी मेरे पास रहो।" बालिश ने संग से कहा—"श्रुति जो कुछ सुनना चाहे, वह बताते रहो। मैं तुम्हारी बात मानकर अपनी प्रिया को प्रसन्न रखूंगा।"

बालिश संग के बहकावे/भड़काने में आकर उसका दास हो गया। वह रात-दिन वीणा, मृदंग आदि के वादन और सुन्दरियों के संगीत—राग-रागनियों को सुनने में ही मस्त रहने लगा। बालिश अब श्रुति और संग का ही दास बन गया। धर्म का तो उसे नाम भी पसन्द नहीं था।

उधर कोविद भी श्रुति को पास ही रखता था। फिर भी वह जानना चाहता था कि यह मेरा कल्याण करने वाली है या पतन। अतः इसके विषय में उसने एक दिन सदागम से पूछा—

"गुरुदेव! यह जो मेरी पत्नी श्रुति है, यह कौन है? इसके साथ रहने से मुझे क्या लाभ मिलेगा?"

सदागम ने बताया—

"वत्स कोविद! श्रुति से केवल लाभ इतना ही है कि तुम धर्मदेशना सुनकर अपना कल्याण करो। लेकिन वस्तुतः तो श्रुति अच्छी नहीं है। इसका दास 'संग' तो महादुष्ट है। यह तुमसे श्रुति का दुरुपयोग करायेगा।

"कोविद! श्रुति को लोग कर्मपरिणाम की पुत्री समझते हैं। पर यह रागकेसरी की पुत्री, महामोह की पौत्री और कर्मपरिणाम की भतीजी है। महामोह के समस्त परिवारी, संगी-साथी तुम्हारे शत्रु ही हैं। फिर श्रुति तुम्हारा कल्याण कैसे कर सकती है? यह तो निश्चय ही पतनरूपिणी है। अब चूंकि तुमने इसके साथ विवाह किया है, अतः इसे त्यागा तो नहीं जा सकता। लेकिन इससे बचना तो है ही। इससे बचने का एक ही उपाय है। वह यह कि संग को पास मत फटकने दो। संग के रहते ही यह तुम्हारा अनिष्ट कर सकती है। संग से दूर रहकर मध्यस्थ भाव से तुम कुछ भी सुनो, श्रुति तुम्हारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती। यह स्पर्शन, घ्राण आदि की तरह ही दुष्ट है।"

सदागम की शिक्षा को हृदयंगम कर कोविद ने संग को तो धता बता दी—फटकार दिया। श्रुति को तटस्थ/उदासीन भाव से सामान्य पोषण देने लगा, क्योंकि वह उसकी पत्नी तो थी ही। उधर बालिश तो संग और श्रुति के चक्कर में भलाई-बुराई—सब कुछ भूल गया।

एक बार दो किन्नरों में गाने की प्रतियोगिता हुई। दोनों एक पर्वत की गुफा में अपनी-अपनी गायन कला दिखाने लगे। उसी समय कोविद

और बालिश भी उक्त गुफा के निकट पहुँचे गये। संग ने बालिश को प्रेरित किया तो बालिश श्रुति के साथ गुफा द्वार पर खड़ा हो गया। खड़े होकर वह श्रुति को मधुर संगीत का पोषण देने लगा। वह श्रुति में डूब गया। संग के प्रभाव से वह बेसुध होकर गुफा में ही पड़ गया। उसके गिरने से एक धमाका हुआ। किन्नरों ने गाना बंद कर देखा कि हमारे एकान्त गायन में यह कौन आ गया। क्रुद्ध होकर किन्नर गायकों ने बालिश की इतनी पिटाई कर दी कि वह मर गया। गायन के स्वर तो कोविद के कानों में भी पड़े थे। पर संग-दोष के कारण बालिश श्रुति-लिप्सा के कारण मृत्यु को प्राप्त हुआ। यह सब कोविद ने अपनी आँखों से देखा तो सिहर उठा। श्रुति और संग का दोष उसकी समझ में आ गया।

सदागम ने ही कोविद को श्रुति प्रभाव और संग दोष से बचाया था। अब कोविद को विरक्ति हो गई। वह आचार्य धर्मघोष के पास पहुँचा और दीक्षा ले ली।

× × ×

कोविदाचार्य ने धनवाहन से कहा—

"राजन्! बालिश का भाई कोविद मैं ही हूँ। सदागम ने मुझे बचा लिया। सदागम ने ही मुझे बताया कि महामोह का पुरा परिवार ही दुःखों की जड़ है। अतः तुम भी महामोह और परिग्रह को त्यागकर महात्मा सदागम का साथ पकड़ो।"

इतना सुनने के बाद धनवाहन मौन रहा। उसे कोविदाचार्य की आत्मकथा बिल्कुल भी अच्छी नहीं लगी। उसने यहाँ तक सोच लिया कि अकलंक और कोविदाचार्य ने मिलकर मेरे विरुद्ध यह षड्यंत्र रचा है कि मैं मोह और परिग्रह को छोड़ दूं। इतना गलत सोचने के बावजूद भी धनवाहन अकलंक को बहुत मानता था। बहुत प्रेम करता था। अतः अपनी अरुचि प्रकट नहीं की। धनवाहन का हित चाहने वाले मुनि अकलंक ने उससे पूछ लिया—

"राजन्! आचार्य की कथा तुम्हें कैसी लगी? जो कुछ इन्होंने कहा, उसे समझे या नहीं?"

"सब कुछ समझ में आ गया।" धनवाहन ने अकलंक मुनि का लिहाज रखने के कारण कहा—"आचार्य ने बड़ी कल्याणकारी बात कही है। सदागम सबके हितैषी हैं।"

"तो फिर विलम्ब क्यों ?" अकलंक ने कहा—"जब आचार्य की बातें तुम्हारी समझ में आ गई हैं तो उन पर आचरण शुरू कर दो। सदागम का साथ पकड़ो और जो सदागम कहें, वही करना अभी से शुरू कर दो।"

× × ×

"बहिन अगृहीतसंकेता ! मेरी किंचित् भी इच्छा नहीं थी कि मैं सदागम की कोई बात मानूं या सुनूं। लेकिन अकलंक का मैं बहुत लिहाज करता था। अतः मैंने उसी समय से पुनः सब धर्माचरण शुरू कर दिये। नवकार मंत्र का जाप शुरू कर दिया। दान देना शुरू कर दिया। सामायिक प्रतिक्रमण करने लगा। लेकिन ये सब काम बिना रुचि, बिना इच्छा, बिना विश्वास और बिना श्रद्धा—केवल अकलंक की बात रखने के लिए करता था। अब सदागम मेरे पास रहने लगा। मेरे आचरण को देखने के लिए अकलंक मुनि और कोविदाचार्य मेरे नगर में रहे। लेकिन जब अकलंक मुनि ने देखा कि मैं सही रास्ते पर आ गया हूं, ठीक चल रहा हूं तो वे अपने गुरु कोविदाचार्य के साथ अन्यत्र विहार कर गये।

"जब तक मुनि अकलंक और कोविदाचार्य मेरे पास रहे, तब तक मोह और परिग्रह मुझ से दूर हट गये। इन दोनों के विहार करते ही मोह-परिग्रह पुनः सावधान हो गये। वे मेरे पास आत्मीय की तरह आये। मैंने पुनः उन्हें अपने में स्थापित कर लिया। मैं अब फिर दानादि धर्म-कर्म में शिथिल हो गया। परिग्रह के प्रभाव में आकर मैं पुनः धन-संचय में असंतोषी बन गया। पुनः मैंने प्रजा पर कर का बोझ डाल दिया। पुनः सुन्दरियों में भोगासक्त हो गया।

"अगृहीतसंकेता ! दुनिया में कोई ऐसा पाप नहीं था, जो मैंने स्वर्ण-संचय के लिए न किया हो। सदागम फिर मुझे छोड़ गया। महामोह की पाँचों घी में थीं। एक अवसर ऐसा आया जब महामोह का विश्वस्त सेवक शोक मुझ पर हावी हो गया। हुआ यह कि मेरी प्रिया—मेरी पटरानी—मेरी हृदयवल्लभा मदनमंजरी रानी का निधन हो गया। उसके मरते ही शोक मेरे भीतर समा गया और उसने मुझे कितना-कितना दुखी किया कि क्या कहूँ। यह कथा भी तुम सुनो कि मैं प्रिया मदनमंजरी के शोक में कहीं का नहीं रहा। मेरे दुःख का कारण मदनमंजरी का निधन नहीं था, बल्कि महामोह के सेवक शोक का इन्द्रजाल था। यह प्रसंग भी सुनने के योग्य है। □

[१८] शोक और द्रव्याचार

अकलंक मुनि के पास धनवाहन राजा के समाचार पहुँचे कि वह शोक में डूबा हुआ है। उसकी रानी मदनमंजरी के निधन ने उसे इतना आघात पहुँचाया है कि वह खाना-पीना छोड़ 'हा प्रिया ! हा प्रिया !' रटता रहता है। उसकी आँखें आँसुओं से भरी रहती हैं। उसने राजकाज भी छोड़ दिया है।

धनवाहन की ऐसी मोहग्रसित दुर्दशा का समाचार सुन अकलंक मुनि साह्लाद नगर में आये और उसे समझाने लगे—

"राजन् ! तुम सदागम से दूर हो गए, इसलिए अकारण को कारण मान बैठे। संसारी जीव किसी का सम्बन्धी नहीं होता। न वह स्त्री होता है, न पुरुष। वह केवल आत्मा होता है। आत्मा सच्चिदानंद है। वह अखण्ड आनंदमयी है। उसकी मृत्यु नहीं होती। न कभी उसका वियोग होता है। फिर तुम किसके लिए रोते हो ? विवाह से पूर्व मदनमंजरी तुम्हारी कुछ भी नहीं थी। मरने के बाद भी कुछ नहीं है। बीच में वह तुम्हारी पत्नी कर्मपरिणाम की इच्छा से नाटकीय रूप में बनी थी। पिछले भवों में तुम नंदिवर्धन, रिपुदारण, वामदेव, धनशेखर आदि बने थे। तब तुम्हारी जो पत्नियाँ थीं, वे अब कहाँ हैं ?

"धनवाहन ! तुम मुनियों की आत्मकथाओं को क्यों नहीं याद करते ? लोकोदर ग्राम की आग, रहट यंत्र, भवमठ, संसार-बाजार की कथाओं का स्मरण करो और समझो कि यह संसार झूठा है। तुम चित्त की गति को क्यों भूलते हो ? तुम्हें चंचल चित्त की रक्षा करनी है। चित्त ही मोक्ष ले जाता है। चित्त ही संसार चक्र में डालता है। अपनी आत्मा के जहाज को सच्चे रत्नों से भरो। नर देह रूपी रत्नद्वीप पाकर तुम कहाँ भटक रहे हो ?"

इस तरह मुनि अकलंक धनवाहन का शोक नष्ट करने के लिए नित्य उपदेश देते। पर धनवाहन शोक के प्रभाव में इतना अधिक था कि वह श्रमण अकलंक के सामने भी इस तरह विलाप करता—

'हे कमलनयने ! तू कहाँ गई ? एक बार आकर मेरे हृदय से लग

जा। एक बार मुझे दर्शन दे जा। तेरे बिना मैं रह नहीं सकता।"

× × ×

"बहिन अगृहीतसंकेता! कुछ दिन यह क्रम चला। मेरा वियोग-विलाप और मुनि अकलंक का उपदेश। फिर एक दिन ऐसा हुआ कि मैं ऐसे सावधान हो गया, जैसे कोई गहरी नींद में सोने वाला बार-बार जगाने से जागकर बैठा हो जाता है। मुनि के उपदेश का प्रभाव काम कर गया। गहरी नींद वाले को बार-बार झकझोर कर जगाया जाता है। देर तो लगती है, पर हर सोने वाला जागता है। मैं भी जाग गया था। शोक मुझे छोड़कर भाग गया। उसने महामोह से शिकायत की—मैं संसारी जीव—धनवाहन को छोड़कर आ गया हूँ, क्योंकि दुरात्मा अकलंक हाथ धोकर मेरे पीछे पड़ गया था। उसने मुझे टिकने ही नहीं दिया।

"अगृहीतसंकेता! इस पर मोह ने शोक से कहा—यह अकलंक तो वाकई दुष्ट है। अब हम लोगों के बुरे दिन हैं। फिलहाल तो तू जा। कभी फिर मौका देखकर आना। यदि संसारी जीव अपने स्वरूप को जान गया और अपने राज्य का स्वामी बन बैठा तो हम कहीं के नहीं रहेंगे।

"बहिन! अब मैं पुनः सदागम के साथ रहने लगा। मोह और परिग्रह का मैंने तिरस्कार कर दिया। लेकिन पूरी तरह नहीं छोड़ पाया, किंचित् तिरस्कार ही किया। मैं पुनः सभी धर्माचरण करने लगा। मुझे सुमार्ग पर देख संतुष्ट होकर अकलंक मुनि मेरे पास ही रहने लगे। वे कोविदाचार्य की आज्ञा लेकर मेरे लिए अकेले ही आये थे। □

[१९] सागर, बहुलिका (माया) और कृपणता

सागर (लोभ) को जब यह मालूम हुआ कि संसारी जीव (धनवाहन) ने मेरे मित्र परिग्रह का तिरस्कार करना शुरू कर दिया है तो वह अपने पिता रागकेसरी के पास पहुँचा और बोला—'पिताजी! मुझे धनवाहन के पास जाने की आज्ञा दीजिए। वहाँ परिग्रह बहुत दुर्बल हो रहा है।"

"अकेले क्यों जाते हो?" रागकेसरी ने अपने पुत्र सागर से कहा—"अपनी बहिन माया—बहुलिका को भी लेते जाओ। यह हर तरह से तुम्हारी मदद करेगी।"

इतना कह रागकेसरी ने बहुलिका से कहा—

"बेटी ! तू तो सागर के साथ जा ही रही है। अपनी बहिन कृपणता को भी साथ लेती जा। कृपणता तो परिग्रह का प्राण ही समझो।"

इस तरह रागकेसरी की अनुमति लेकर सागर, बहुलिका और कृपणता—तीनों धनवाहन के पास जा पहुँचे। तीनों को देख परिग्रह की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहा। महामोह भी अपने पौत्र-पौत्रियों को देखकर फूला नहीं समाया। सबसे पहले कृपणता धनवाहन के भीतर प्रविष्ट हो गई। उसके प्रभाव से धनवाहन सोचने लगा—'धन को मैं व्यर्थ ही दान में उड़ा रहा हूँ। परलोक किसने देखा है ? मैं अब एक कौड़ी का भी दान नहीं करूँगा।'

कृपणता से प्रभावित धनवाहन दान न करने का निश्चय कर ही रहा था कि अवसर देख बहुलिका उसकी देह में प्रविष्ट हो गई। उसके प्रभाव से धनवाहन ने सोचा—'अकलंक मुनि के रहते मैं दान देना कैसे बंद कर सकता हूँ ? किसी तरह अकलंक को यहाँ से भगाना चाहिए, वरना यह फिर यही कहेगा कि धनवाहन जब तक तुझ में भावस्तव की क्षमता नहीं है, तब तक तू द्रव्यस्तव का आचरण कर। धीरे-धीरे तुझ में भावस्तव की क्षमता भी आ जाएगी।' यह सोच धनवाहन ने अकलंक मुनि को भगाने का निश्चय किया और बहुलिका ने उससे ऐसा करवाया। वह मुनि अकलंक के पास पहुँचा और बनावटी विनम्रता से बोला—

"भन्ते ! आप मेरा उपकार करने के लिए आये थे। आपने कृपा कर मुझे धर्म मार्ग पर चला दिया। जिस काम के लिए आप आये थे, वह पूरा हो गया। आपका मासकल्प—शेषकाल भी पूरा हो गया है। अब आप विहार करके अपने गुरु कोविदाचार्य के पास जाइए। आचार्य कोविद सोचेंगे कि विहार का समय हो जाने पर भी धनवाहन ने आपको रोक लिया है। आपके जाने के बाद मैं आपके सभी आदेशों का पालन करूँगा।"

यह सुन अकलंक मुनि कोविदाचार्य के पास चले गए। उनके जाने के बाद धनवाहन फिर ज्यों का त्यों हो गया। उसका परिग्रह फिर पुष्ट हो गया। परिग्रह के साथ सागर (लोभ) और कृपणता भी अपना रंग दिखाने लगे। सदागम ने फिर धनवाहन को छोड़ दिया या धनवाहन ने ने ही सदागम को छोड़ा।

× × ×

"बहिन अगृहीतसंकेता ! अकलंक मुनि के जाने के बाद मेरी आशा-तृष्णा अत्यधिक बढ़ गई थीं। मैं संसार-रसिक होकर परिग्रह और मोह

का दास बनकर रह गया। मेरी यह दुर्दशा सुनकर मुनि अकलंक ने पुनः मुझे सुधारने का विचार किया, पर मैं अभी सुधरने वाला कब था। इस सम्बन्ध में मुझे लेकर मुनि अकलंक और कोविदाचार्य में जो वार्त्ता हुई, उसे भी तुम सुनो।" □

[२०] **अकलंक मुनि और कोविदाचार्य का संवाद**

मुनि अकलंक को जब यह मालूम हुआ कि धनवाहन फिर जैसा-का-तैसा हो गया तो उसे पुनः धर्म-पथ पर लाने के लिए गुरुदेव कोविदाचार्य से उन्होंने साह्लाद नगर विहार करने की अनुमति माँगी—

"गुरुदेव ! धनवाहन पहले शोक के वश में था। मेरे-बार-बार के समझाने से शोक उसे त्यागकर भाग गया था। वह पुनः सदागम के साथ रहने लगा था। उसने मुझसे कहा था कि मैं अब बराबर धर्मपथ पर चलता रहूँगा। लेकिन अब वह पुनः न केवल मोह और परिग्रह के हाथों बिका है, बल्कि सागर, बहुलिका और कृपणता का दास हो गया है। आप मुझे साह्लाद नगर विहार करने की अनुज्ञा प्रदान कीजिए, जिससे मैं सागर, परिग्रह आदि से पुनः उसका पिण्ड छुड़ा सकूं।"

"बहरे के आगे बीन बजाना या अंधे को नृत्य दिखाना क्या बुद्धिमानी का कार्य है ?" कोविदाचार्य ने मुनि अकलंक से कहा—"तुम्हारा धनवाहन के पास जाना व्यर्थ होगा। जब तक उसके अन्तरंग क्षेत्र में महामोह और परिग्रह आदि रहेंगे, तब तक उस पर तुम्हारा कोई प्रभाव नहीं होगा, यदि होगा भी तो थोड़े समय के लिए होगा। तुम्हारा परिश्रम व्यर्थ जाएगा। इसलिए मैं तुम्हें धनवाहन के पास जाने की अनुमति नहीं दे सकता।"

"आपकी वाणी तो सत्य है प्रभो !" मुनि बोले—"फिर आखिर धनवाहन मोह-परिग्रह आदि दुष्टों से कैसे और कब मुक्त होगा ? क्या वह इन्हीं के चंगुल में फँसा रहेगा ?"

"धनवाहन (संसारी जीव) का विवाह विद्या और निरीहता के साथ होगा तो मोह और परिग्रह उसे छोड़कर ऐसे भाग जाएँगे, जैसे सूर्योदय के साथ अँधेरा भाग जाता है।" कोविदचार्य ने आगे कहा—"वत्स अकलंक ! चारित्रधर्मराज का सम्यग्दर्शन नामक सेनापति है। इन दोनों ने विद्या नामक एक मानस-कन्या को पैदा किया है। यह विद्या नामक कन्या परम

रूपवती और जगत को आनन्द देने वाली है। कामरिपु श्रमण तक इसके सम्पर्क को लालायित रहते हैं। मोह इसके नाम से ही घबराता है। जब धनवाहन इसके साथ विवाह कर लेगा तो मोह उसके पास टिक नहीं सकता। वह सिर पर पैर रखकर भागेगा।

"वत्स अकलंक! चारित्रधर्मराज की एक दूसरी पुत्री निरीहता है। यह भी परम रूपवती है। इसका परिग्रह से द्वेष है। इस निरीहता की माता है, विरति। यह संतोष द्वारा पाली गई है। इसे इन्द्र का सिंहासन भी अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकता। यह रत्नों को मिट्टी समझती है। जिस समय इस जगत्प्रसिद्ध निरीहता का विवाह धनवाहन के साथ होगा, उसी समय परिग्रह भाग जाएगा।"

"तो फिर मैं यह प्रयास करूं" मुनि अकलंक बोले—"कि इन दोनों कन्याओं के साथ धनवाहन का विवाह हो जाये?"

"तुम्हारे प्रयास से कुछ नहीं होगा।" आचार्य कोविद ने मुनि अकलंक को समझाया—"विद्या और निरीहता के साथ धनवाहन का विवाह करने-कराने का एक मात्र अधिकार कर्मपरिणाम को ही है। जब वे ही चाहेंगे, तभी तुम-जैसे लोग इस विवाह के निमित्त कारण बन सकते हो। जब कर्मपरिणाम जानेंगे कि अब धनवाहन इन दोनों कन्याओं के योग्य हो गया है, तभी वे यह विवाह करेंगे। अतः तुम्हें अनधिकार चेष्टा नहीं करनी चाहिए।"

× × ×

संसारी जीव ने कहा—

"इस प्रकार बहिन अगृहीतसंकेता! अपने गुरुजी की वाणी सुनकर मेरे परमहितैषी मुनि अकलंक ने मेरे बारे में चिन्ता करना छोड़ दिया। वे अब अपने स्वाध्याय आदि में रत रहने लगे। मैं तो जैसा था, वैसा ही बना रहा। अकलंक मुनि से पूरी तरह उपेक्षित हो जाने के कारण महामोह एवं परिग्रह के आश्रित लोग मुझे बारी-बारी से परेशान करने लगे। एक जाता, दूसरा आता। कभी दो चार एक साथ रहते।

"बहिन! आगे मेरी धनवाहन के रूप में क्या-क्या दुर्दशा हुई, उसे सुनने से पूर्व तुम थोड़ा-सा हाल पुनः महामोह का सुन लो। तुमने पहले यह तो सुन ही लिया है कि चित्तवृत्ति अटवी में प्रमत्तता नदी के बीच तद्-विलसित द्वीप स्थित है। इस द्वीप में चित्तविक्षेप मण्डप, तृष्णा वेदिका पर स्थित विपर्यास सिंहासन है। इस सिंहासन पर महामोह राजा अविद्या शरीर

को धारण करके बैठता है। इस रूप में महामोह का पूरा वर्णन विमर्श और प्रकर्ष—मामा-भानजे ने मिलकर किया था, वह सब मैंने तुम्हें सुनाया था। विमर्श ने प्रकर्ष को बताया था कि उस विपर्यास सिंहासन पर मिथ्यादर्शन आदि अनेक योद्धा महामोह की आज्ञा में खड़े रहते हैं। वे सब मेरे पास कैसे-कैसे और किस क्रम से आये, यह सब मैं तुम्हें अति संक्षेप में सुनाता हूँ।" □

[२१] **महामोह के परिजनों का आक्रमण**

सबसे पहले **महामूढ़ता** ने धनवाहन को सन्मार्ग से भ्रष्ट किया। फिर **मिथ्यादर्शन** ने उसे सदागम से बिल्कुल दूर कर दिया और ऐसा भरमाया कि धनवाहन असत्य को ही सत्य समझने लगा। मिथ्यादर्शन की पत्नी **कुदृष्टि** ने अनेकों पाप करवाये। **रागकेसरी** ने रूप, रस, गंध आदि पाँचों में प्रीति दृढ़ की। इसकी पत्नी **मूढ़ता** ने असार संसार को सार मनवाया। महामोह के पुत्र **द्वेषगजेन्द्र** ने धनवाहन को भारी संताप पहुँचाया। रागकेसरी के मंत्री **विषयाभिलाष**, इसकी पत्नी **भोगतृष्णा** आदि ने धनवाहन को इन्द्रिय भोगों में आकण्ठ डुबो दिया।

गाम्भीर्य के प्रबल विरोधी **हास्य** ने खूब हँसाया। **भय** ने मृत्यु और बाह्य शत्रुओं से भयभीत किया।

× × ×

"अगृहीतसंकेता! धनवाहन के भव का मैं अपना हाल कहाँ तक कहूँ, **शोक**, **जुगुप्सा** आदि ने मुझे बहुत पीड़ित किया। द्वेषगजेन्द्र के आठों पुत्र और रागकेसरी के भी आठ-पुत्र—सोलह कषाय बच्चों ने मुझे बहुत उद्विग्न किया। **ज्ञानसंवरण** ने मेरा ज्ञान नष्ट कर दिया। **दर्शनावरण** ने मुझे चेष्टाहीन कर दिया। **वेदनीय** ने मुझे कभी संतापित और कभी आनंदित किया। **आयुष्य** राजा ने धनवाहन के रूप में आयु काफी बढ़ा दी। **गोत्र** ने मुझे कभी नीच वर्णीय और कभी निम्न वर्णीय प्रसिद्ध किया। **दुष्टाभिसन्धि** ने मुझसे अनगिनत पाप कराये।

"अगृहीतसंकेता! मुनि अकलंक की उपेक्षा के कारण महामोह के सभी अधीनस्थ राजा और परिजनों ने मुझ पर निर्द्वन्द्व राज्य किया। अन्त में सबसे अधिक पीड़ित मुझे मकरध्वज (कामदेव) ने किया। उसने अपनी

पत्नी रति के साथ मुझ पर ऐसा प्रबल धावा बोला कि मैं रात-दिन भोग में ही रत रहने लगा। मेरे राज्य में जो भी सुन्दर स्त्री होती मैं उसे बलपूर्वक पकड़वा लेता और उससे भोग करता।

'मैं पापलिप्त था, पापकर्मी था; फिर भी मेरी सब इच्छाएँ पूर्ण होती थीं, क्योंकि मेरा सहोदर मित्र पुण्योदय मेरा साथ दे रहा था। लेकिन वह भी बेचारा मुझे छोड़कर चला गया। फिर तो मेरी ऐसी दुर्दशा हुई कि मेरे सगे-सम्बन्धियों ने भी मेरा साथ छोड़ दिया। और तो और नीरदवाहन नाम का मेरा एक छोटा भाई था, वह भी मेरे विरुद्ध हो गया।

"हे अगृहीतसंकेता ! मैं अपने पापकर्मों से राज्यहीन होकर कारागार में सड़ने लगा, इसका भी छोड़ा-सा वर्णन मैं करूँगा।" □

[२२] राज्यच्युत धनवाहन कागागार में : भवभ्रमण

धनवाहन ने मकरध्वज के वश में होकर अनेक कुलवधुओं को नष्ट-भ्रष्ट किया। उन्हीं दिनों उसका साथी पुण्योदय उसे छोड़कर चला गया। अतः पुरी प्रजा धनवाहन के विरुद्ध हो गई। सबने मिलकर तय किया कि ऐसा चरित्रभ्रष्ट, कायर और धर्महीन राजा हमें नहीं चाहिए। मंत्रियों ने धनवाहन के छोटे भाई नीरदवाहन के सामने प्रस्ताव रखा—

"साह्लादनगर का राज्य तुम संभालो। वरना एक दिन ऐसा आयेगा कि न तो तुम्हारे भाई धनवाहन बचेंगे, न तुम बचोगे और न राज्य रहेगा।"

नीरदवाहन ने मंत्रियों और प्रजाजनों का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। सैनिकों ने मदिरा में धुत्त पड़े धनवाहन को बंदीगृह में डाल दिया और नीरदवाहन का राज्याभिषेक कर दिया। नीरदवाहन के राज्याभिषेक के समय बड़ा भारी उत्सव मनाया गया। जिस कालकोठरी में धनवाहन को बंद रखा गया था, वह सीलनभरी, अंधकारपूर्ण, दुर्गन्ध वाली और कीड़े-मकोड़ों से भरी थी। जंजीरों में जकड़ा धनवाहन उस कालकोठरी में रहकर नरक का भोग भोग रहा था।

× × ×

"अगृहीतसंकेता ! उक्त कालकोठरी में ही मेरी मृत्यु हो गई। मेरी पत्नी भवितव्यता ने धनवाहन के भव की गोली जीर्ण देखकर मुझे दूसरी

भवमेद्य गोली देकर पापिष्ट निवास नगर के सातवें मुहल्ले (सातवीं नरक) में भेज दिया। यहाँ मैं अप्रतिष्ठान नामक स्थान पर तेतीस सागरोपम काल तक अनेक असह्य-दु:सह कष्ट भोगता रहा।

"मेरी यह सब दुर्दशा महामोह पर प्रीति और सदागम की उपेक्षा के कारण हुई थी। इसके बाद भी मेरे कष्टों का अन्त नहीं हुआ। नरक से निकल कर मैं पंचाक्ष पशु संस्थान में मच्छ बना। फिर पुनः नरक में गया। उसके बाद पुनः पंचाक्ष पशु संस्थान नगर में सिंह बना। मेरी पत्नी भवितव्यता बार-बार भवमेद्य गोली दे देकर जहाँ-तहाँ नये-नये रूप देती रही।

"अगृहीतसंकेता ! इसी क्रम से मैं नरक में, फिर पशुरूप बिलाव बनकर जन्मा। मैं क्या-क्या नहीं बना—गोह, मूषक, कीट, पतंग जाने क्या-क्या रूप देकर भवितव्यता ने मुझ से नाटक करवाये। भवितव्यता थी तो मेरी पत्नी, पर मैं उसकी आज्ञा मानने को बाध्य था। जहाँ वह भेजती, वहीं मुझे जाना पड़ता। फिर कर्मपरिणाम की इच्छा से भवितव्यता मुझ पर प्रसन्न हुई और प्रसन्न होकर उसने मुझे कहाँ-कहाँ भेजा, यह भी तुम ध्यान सुनो।" □

[२३] भव भ्रमण की ऊर्ध्वगति

टेढ़ा-तिरछा, बेडौल पत्थर भी नदी में घिसते-घिसते घर्षण-घूर्णन-न्याय से गोल हो जाता है। इसी प्रकार अनंत काल तक घिसते-घिसते संसारी जीव—धनवाहन जब कुछ ठीक हुआ तो भवितव्यता उस पर प्रसन्न हुई। महामोह आदि भी थक चुके थे। अतः अब भवितव्यता ने नई गोली देकर संसारी जीव को मानवावास में भेज दिया।

मनुजगति के भरतक्षेत्र में साकेतपुर नाम का एक नगर था। वहाँ नन्द नाम का व्यापारी अपनी पत्नी धनसुन्दरी के साथ रहता था। धनवाहन के बाद संसारी जीव अनेक योनियों में भटकते हुए नंद व्यापारी का पुत्र बना। उसका नाम अमृतोदर रखा गया।

अमृतोदर का साक्षात्कार एक बार सुदर्शन नामक मुनि से हुआ। वहाँ उसने सदागम को भी देखा। वहाँ अमृतोदर ने मुनि से श्रावकव्रत

ग्रहण किये और बाहरी रूप से उनका पालन किया। नवकार मंत्र का जाप आदि धर्मक्रियाएँ कीं। इस धर्म प्रभाव से अमृतोदर का भव समाप्त करके संसारी जीव विबुधालय (देवलोक) में भवन पतिदेव बना। यहाँ आकर संसारी जीव पुनः सदागम को भूल गया। देवसुख भोगने के बाद भवितव्यता ने उसे पुनः नई गोली दी और वह बंधुदत्त व्यापारी की पत्नी प्रियदर्शना की कोख से जन्मा। वहाँ उसका नाम बंधु रखा गया। बंधु सुन्दरमुनि नामक एक श्रमण के सम्पर्क में आया और सदागम से भी सम्पर्क साधा। दोनों के प्रभाव से बंधु ने दीक्षा ले ली और बाह्याचारी जैन श्रमण बन गया। श्रमणधर्म के द्रव्य (बाहरी) पालन से संसारी जीव व्यंतर जाति का देव बना—विबुधालय में जन्मा। वहाँ जाकर वह फिर सदागम को भूल गया। इसके बाद पुनः वह मानवावास में पहुँचा और पुनः सदागम से सम्पर्क हुआ।

× × ×

"अगृहीतसंकेता ! इस प्रकार मैं देवलोक में जाकर सदागम को भूल जाता और मानवावास में आकर पुनः उनके सम्पर्क में आ जाता। मैंने अनेक बार सदागम से भेंट की और अनेक बार उन्हें भूला। इसी से मैं अनेक बार श्रावक बना और अनेक बार ही श्रमण बना, यद्यपि बना बाह्य आचार से ही, पर बना तो। कई बार तो मैं गैरिक संन्यासी बना—कुतीर्थिक बना। इस भवचक्र में भटकते हुए मेरी कर्मस्थिति कई बार लम्बी हुई और कई बार छोटी हुई। महात्मा सदागम के बार-बार के सम्पर्क से मेरे भावशत्रु निर्बल बने।

"उसी समय चारित्रधर्मराज के सेनापति सम्यग्दर्शन ने सद्बोध मंत्री से कहा—मंत्रिवर ! इस समय संसारी जीव के पास जाने का बड़ा अच्छा अवसर है। मुझे उसके पास जाने की अनुमति दीजिए।

"सद्बोध मंत्री ने कहा—सेनापति ! तुम बहुत बुद्धिमान हो, जो अवसर की खोज में रहे। वाकई अब संसारी जीव के पास जाने का अच्छा अवसर है।

"मैं तो जा ही रहा हूँ। सम्यग्दर्शन ने सद्बोध मंत्री से कहा—आप आज्ञा दें तो विद्यासुन्दरी को भी साथ लेता जाऊँ। उसे ले जाकर संसारी जीव को सौंप दूं।

"अगृहीतसंकेता ! इस पर सद्बोध मंत्री ने अपनी असहमति प्रकट करते हुए सम्यग्दर्शन से कहा—विद्या को ले जाने का अभी उचित अवसर नहीं है। इसका कारण भी मैं तुम्हें समझाता हूँ। बात यह है कि संसारी जीव अभी बहुत कच्चा—अपरिपक्व है। अभी तो वह तुम्हें भी अच्छी तरह नहीं पहचानेगा। तुमको वह साधारण भाव से स्वीकार करेगा। जब वह तुम्हारे—सम्यग्दर्शन के स्वरूप को अच्छी तरह समझ लेगा, तभी उसे विद्यासुन्दरी प्रदान की जा सकती है। अभी तो उसे सदागम का आश्रय प्राप्त हुआ है। फिर जब वह तुम्हें भली-भाँति समझ लेगा, तब मैं विद्या को लेकर उसके पास पहुँचूंगा।

"यह तो बड़ी प्रसन्नता की बात है कि संसारी जीव के अब आकर भावशत्रु निर्बल हुए हैं और उसे चारित्रधर्मराज को देखने की इच्छा हुई है।

"अगृहीतसंकेता ! इस प्रकार सेनापति सम्यग्दर्शन मेरे पास आने को चल पड़ा। फिर आगे मैं किस तरह विकास पथ पर आगे बढ़ा, यह भी तुम ध्यान देकर सुनो।" □

[२४] संसारी जीव : विकास के पथ पर

संसारी जीव की पत्नी भवितव्यता इतनी कठोर-निर्मम है कि पति के नाते यह संसारी जीव के प्रति किंचित् भी रियायत नहीं करती। जब संसारी जीव दुष्कर्म में प्रवृत्त होता है तो वह उसे कुयोनियों में भटकाती है और सत्कर्म-धर्म आदि करने से जब वह प्रसन्न होती है तो नरक से हटाकर स्वर्ग भेजती है तथा मानवावास नगर में भेजकर जीवन सुधार का अवसर देती है।

भवितव्यता संसारी जीव—अपने पति पर प्रसन्न थी। उसने उसे जनमन्दिर नामक नगर में आनन्द नामक गृहस्थ का पुत्र बनाया। उसकी माता का नाम नन्दिनी था। यहाँ संसारी जीव का नाम विरोचन था।

विरोचन के भव में संसारी जीव में कुछ भद्र भाव जाग्रत हुए। वहाँ उसने नगर के बाहर चितनन्दन उद्यान में आचार्य धर्मघोष के दर्शन किये और भावपूर्ण पदवंदना करके बैठ गया। उसकी कर्मस्थिति संक्षिप्त हो गई

थी। महामोहादि शत्रु भी निर्बल पड़ गये थे, इसलिए आचार्य धर्मघोष की देशना को हृदयंगम किया। यहीं विरोचन ने सदागम से सम्पर्क किया। जिस समय आचार्य धर्मघोष विरोचन (संसारी जीव) को धर्मतत्त्व समझा रहे थे, उसी समय सेनापति सम्यग्दर्शन वहाँ पहुँच गया। उसके पहुँचने से विरोचन में आचार्य एवं उनकी देशना के प्रति श्रद्धा जाग्रत हुई। यद्यपि उसकी श्रद्धा विशिष्ट ज्ञान से रहित थी; फिर भी उसने धर्माचरण पर चलने का संकल्प किया।

श्रद्धा और ज्ञान अपनी स्वयं की पात्रता/योग्यता के बिना प्राप्त नहीं होते। गुरुजन कितने ही विज्ञ क्यों न हों; अयोग्य व्यक्ति में वे श्रद्धा-ज्ञान जाग्रत नहीं कर सकते। यही विरोचन जब धनवाहन था तो अकलंक मुनि और कोविदाचार्य के उपदेशों का उस पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। क्योंकि स्वयं की योग्यता नहीं थी। अब जब विरोचन के भव में थोड़ी-सी योग्यता हुई तो उसी के अनुसार श्रद्धा जाग्रत हुई—सूक्ष्म ज्ञान रहित श्रद्धा; क्योंकि इतनी ही योग्यता थी।

इसी भव में विरोचन के रूप में संसारी जीव का सम्पर्क चारित्रधर्म-राज के पुत्र गृहीधर्म से हुआ। यह जन्म पूरा कराने के बाद भवितव्यता ने नई गोली देकर संसारी जीव को सौधर्म नामक देवलोक में भेज दिया। वहाँ देवभव में संसारी जीव ने जो इन्द्रिय-सुख भोगे, उतकी संक्षिप्त-सी झलक यह है—

दिव्य पलंग पर सुकोमल बिछौना था। चारों ओर भीनी-भीनी, मन-भावन सुगंध फैल रही थी। पलंग के ऊपर दिव्य चँदोवा था। संसारी जीव के सिर पर भव्य-दिव्य मुकुट और दिव्य रत्नों वाले आभूषण अन्य अंगों पर थे। कण्ठ में जो पुष्पहार था, वह कभी मुरझाता नहीं था। रति-सी सुन्दर देवांगनाएँ संसारी जीव की आज्ञा पाने की प्रतीक्षा में हाथ जोड़े खड़ी थीं। देवलोक में सब कुछ दिव्य था। वहाँ के सरोवरों में रत्न कमल खिले रहते थे। देवभव में भी संसारी जीव को धर्म के प्रति किंचित् श्रद्धा रही। इस प्रकार लगभग दो सागरोपम का देवभव पूरा हो जाने के बाद भवित-व्यता ने फिर नई गोली देकर संसारी जीव को मानवावास नगर में भेजा।

देवभव से च्युत होकर संसारी जीव ने मानवावास में मदन नामक अहीर—ग्वाले की पत्नी रेणा की कोख से जन्म लिया। यहाँ उसका नाम कलंद रखा गया। यहाँ आकर कलंद के रूप में संसारी जीव सम्यग्दर्शन, सदागम को भूल गया और इन दोनों के बिना उसे गृहीधर्म के भी दर्शन

नहीं हुए। इतना सब होने पर भी कलंद (संसारी जीव) पापभीरु रहा—पाप से डरता रहा। पूर्वभव में हुए विकास—प्रगति के कारण कलंद ग्वाले की धर्म में किंचित् रुचि रही। इस प्रकार संसारी जीव ने यह भव भी पूरा किया।

कलंद ग्वाले का भव त्याग कर ज्योतिषी देवगति का भव प्राप्त किया। यहाँ उसकी मुलाकात महामोह और परिग्रह से कई बार हुई। इन दोनों से प्रेम सम्बन्ध भी बढ़ा। यहाँ आकर संसारी जीव सदागम और सम्यग्दर्शन को बिल्कुल ही भूल गया।

ज्योतिषी देव का आयुष्य पूर्ण होते ही भवितव्यता ने फिर नई भव-मेद्य गोली देकर उसे पंचाक्ष पशु संस्थान में मेढक बनाकर भेजा। महामोह और परिग्रह से प्रेम करने के कारण भवितव्यता संसारी जीव से नाराज रहती थी और इसीलिए बार-बार उसे कुयोनियों में घुमाती थी। इस प्रकार अनेक भवों में नाच नचाने के बाद भवितव्यता ने संसारी जीव को पुनः मानवावास में भेज दिया।

मानवावास में कम्पिलपुर नगर का राजा था, वसुबंध। राजा वसुबंध की रानी धरा की कोख से संसारी जीव का जन्म हुआ। वहाँ उसका नाम वासव रखा गया। वासव के भव में संसारी जीव ने पर्याप्त सत्कर्म किये। राजपुत्र वासव ने शान्तिसूरि मुनि की देशना सुनी और यहीं सदागम तथा सम्यग्दर्शन से पुनः सम्पर्क किया। इनके परिचय से वासव के मीठे दुश्मन—सुहृदाभास शत्रु परिग्रह और महामोह निर्बल हुए। लेकिन अभी तक संसारी जीव अच्छी तरह से यह नहीं समझ पाया था कि ये दोनों मेरे शत्रु हैं।

राजपुत्र वासव का भव पूरा कराने के बाद भवितव्यता संसारी जीव को पुनः देवलोक में ले गई। देवलोक से फिर उसे मनुजगति में उतारा। यहाँ वह कांचनपुर नगर में पैदा हुआ। सदागम और सम्यग्दर्शन को भूलकर उसने पुनः मोहादि से प्रेम किया।

× × ×

अपनी आत्मकथा को आगे बढ़ाते हुए संसारी जीव ने सदागम, भव्य पुरुष, प्रज्ञाविशाला और अगृहीतसंकेता के समक्ष अगृहीतसंकेता को सम्बोधित करते हुए कहा—

"बहिन अगृहीतसंकेता ! इस प्रकार धनवाहन का भव पूरा करने के बाद मैंने हजारों बार यहाँ बैठे सदागम जी महाराज और सम्यग्दर्शन से

सम्पर्क किया और अनेक बार इन दोनों को भूला—इनसे दूर रहा। इसी कारण मैं वास्तविक विरति—त्याग को धारण नहीं कर पाया। मैं बाह्य श्रद्धा से ही श्रावक बनता रहा। कभी नैसर्गिक सरलता के कारण तो कभी किसी को प्रसन्न संतुष्ट करने के कारण मैं श्रावक व्रती बनता रहा। यहाँ एक बात उल्लेखनीय है कि जब-जब मैंने गृहीधर्म, सदागम और सम्यग्दर्शन—तीनों से सम्पर्क किया, तब-तब मेरा मित्र पुण्योदय मेरे अनुकूल रहा। कई बार मैं इन तीनों में किसी एक या किन्हीं दो के ही सम्पर्क में रहा।

"अगृहीतसंकेता ! एक बात और उल्लेखनीय है। वह यह कि कभी मिथ्यादर्शन सेनापति सम्यग्दर्शन का पराभव करता, तब ज्ञानसंवरण सदागम को जीतकर उसे मुझ से दूर भगा देता। इस प्रकार मोह पक्ष और चारित्रधर्मराज पक्ष—दोनों पक्षों में मेरे अन्तरंग राज्य में जय-पराजय का चक्र चलता रहा। इस जय-पराजय में मेरा ही हाथ होता था, क्योंकि मैं जिस पक्ष को प्रेम करता, वही जीत जाता। यह क्रम अनन्त काल तक चलता रहा।

"मेरे-भव-भ्रमण और विकास पथ में किस तरह के आगे और उतार-चढ़ाव हुए एक झलक उसकी भी देखो।" □

[२४] **विकास-पथ पर : चढ़ाव-उतार**

मानवावास में सोपारक नामक एक नगर था। वहाँ शालिभद्र नामक एक व्यापारी रहता था। उसकी पत्नी कनकप्रभा के उदर से संसारी जीव का जन्म भवितव्यता ने नई गोली देकर कराया। यहाँ उसका नाम विभूषण रखा गया।

युवावय होने पर विभूषण एक बार शुभकानन उद्यान में पहुँचा। वहाँ उसने सुधाभूत आचार्य के दर्शन किये और उनकी देशना सुनी। वहाँ विभूषण की सदागम से भी भेंट हुई लेकिन यहाँ भी उसके मन में विरति भाव—सच्ची श्रद्धा जाग्रत नहीं हुई। फिर भी मुनिदेव के आग्रह से श्रामणी दीक्षा अंगीकार कर ली। संसारी जीव विभूषण मुनि के रूप में श्रमणों के बीच रहा अवश्य पर कर्मदोष के कारण विपरीत मार्ग पर चला। परिणाम यह हुआ कि साधुवेश में भी संसारी जीव पर मोहादि शत्रु हावी हो गये। सदागम और सम्यग्दर्शन दूर चले गये। मोहादि के प्रभाव से

विभूषण मुनि (संसारी जीव) में पर-निन्दा का भयंकर दोष आ गया। दूसरों की बुराई/निन्दा करने से मिलता तो कुछ नहीं, पर दुस्सह कर्मबंध अवश्य होता है। संसारी जीव—विभूषण मुनि भले सज्जन पुरुषों, तपस्वी-संन्यासियों और श्रमण-संतों तक की निन्दा करते-करते अघाता न था। गणधर और तीर्थंकर तक भी उसकी निन्दा से नहीं बचे। इस प्रकार विभूषण मुनि के भव में संसारी जीव पूर्ण पापी और मिथ्यादृष्टि बन गया। परिणाम यह हुआ कि उसकी पत्नी भवितव्यता ने रुष्ट होकर उसे अनेक कुयोनियों में भटकाया। संसारी जीव ने इतने भारी दुःख सहे कि उनका वर्णन नहीं किया जा सकता।

× × ×

अपनी आत्मकथा कहने के बाद संसारी जीव ने थोड़ा विश्राम लिया—मौन हुआ तो कथा के रहस्य को थोड़ा समझने वाली अगृहीत-संकेता आश्चर्य में पड़ी और प्रज्ञाविशाला के मन में तीव्र संवेग उत्पन्न हुआ। वह सोचने लगी कि सम्यग्दर्शन और सदागम से परिचय के अभाव में संसारी जीव नाना कुयोनियों में भटका, दुःखों के सागर में डूबा, इसमें तो कोई अनहोनी या आश्चर्य की बात नहीं है। लेकिन सम्यग्दर्शन से परिचय होने पर भी यदि मोहादि ने इसे भटकाया तो इसका कारण यही है कि मोहादि शत्रु भयंकर अनर्थकारी हैं। क्रोध, अहंकार, लोभ आदि अहंकारी तो हैं, पर ये सब मोह के पिछलगू ही हैं। जीव को दुखसागर में डुबोने वाला मूलतः तो मोह ही है।

यों प्रज्ञाविशाला को चिन्तन में डूबा देख भव्यपुरुष ने उससे पूछा—

"हे अम्ब ! आप किस गहरे सोच में डूब गईं ? क्या सोचने लगीं ?"

"अभी कुछ मत पूछो।" प्रज्ञाविशाला ने भव्यपुरुष से कहा—"राजपुत्र ! पहले तुम शान्त चित्त से संसारी जीव की पूरी आत्मकथा सुनलो। अपने चिन्तन के विषय में मैं तुम्हें कालान्तर में बताऊँगी, क्योंकि संसारी जीव की आत्मकथा, अब थोड़ी ही शेष है।"

यह सुन राजकुमार भव्यपुरुष शान्त होकर सुनने लगा। संसारी जीव ने आगे कहा—

"बहिन अगृहीतसंकेता ! भद्दिलपुर नगर में स्फटिक राज राजा राज्य करते थे। उनकी रानी विमला के उदर से भवितव्यता ने नई गोली देकर मेरा जन्म कराया। यहाँ मेरा नाम विशद रखा गया। युवावय होने पर मुझे सुप्रबुद्ध मुनि के दर्शन और देशना सुनने का संयोग प्राप्त हुआ।

यहीं सदागम, सम्यग्दर्शन और गृहीधर्म—तीनों से मेरी पुनः मित्रता हुई। मैंने धर्मबोध प्राप्त किया। मेरी आत्मा तात्त्विक श्रद्धा से पवित्र हुई। यद्यपि मुझे सूक्ष्म एवं गहन ज्ञान अभी नहीं हुआ था, पर मैं धीरे-धीरे प्रगति कर रहा था। अब मेरा मित्र पुण्योदय प्रकट रूप में मुझसे अत्यधिक प्रेम करने लगा था।

"पुण्योदय के प्रताप से मैं तीसरे देवलोक—विबुधालय के ही एक भाग में गया। यहाँ मैंने देव-सुखों का खूब उपभोग किया। यहाँ मैं सात सागरोपम काल तक रहा। यहाँ से फिर मानवावास, मानवावास से फिर देवलोक—मेरे भवभ्रमण का यही क्रम बहुत बार चला। इस भवभ्रमण में मुझे अपने चारों मित्रों—सदागम, सम्यग्दर्शन, गृहीधर्म और पुण्योदय का सम्पर्क-सान्निध्य बराबर मिलता रहा। बारह देवलोकों में भी कई बार उत्पन्न हुआ। इस बीच भवितव्यता ने पुनः पुनः मुझे मानवावास में भेजा। उसका वर्णन मैं अब तनिक विस्तार से कर रहा हूँ।

× × ×

इस कथा का उपसंहार यह है कि यह महामोह राजा बहुत शक्तिशाली है। अनेक बार यह धर्मीजनों को भी गुमराह करके पतन के गर्त में डाल देता है; यहाँ तक कि गुरुदेव द्वारा सुनी गई बार-बार की तत्त्वचर्चा को भी विस्मृत कर देता है, अतः दृढ़निश्चय करके महामोह से सदा बचते रहें।

परिग्रह सागर किंवा लोभ का आत्मीय मित्र है। यह भी संसार सागर में डुबोने वाला है। पूर्व में घ्राण, स्पर्शन आदि से बचने का परामर्श दिया गया था। इस अंश में श्रवणेन्द्रिय द्वारा माने गए सुख—मधुर ध्वनि 'संग' से बचने का सत्परामर्श है। □

अष्टम-प्रस्ताव

[१] **संसारी जीव—राजपुत्र गुणधारण के रूप में**

मानवावास में सप्रमोद नामक एक अद्वितीय नगर था। इस नगर के नागरिक देवसुखों का भोग करने वाले देवस्वरूप ही थे। दानादि सत्कर्म अथवा पुण्यकर्म तथा धर्मरुचि वाले नागरिकों के इस सप्रमोद नगर पर मधुवारण नाम का राजा राज्य करता था। इसकी परम सुन्दरी, सुशील और पतिव्रता सुमालिनी नामक रानी थी।

नन्दिवर्धन, रिपुदारण, वामदेव, धनशेखर, धनवाहन आदि अनेक मानव-भवों को भोगने के बाद संसारी जीव ने अपनी प्रिया भवितव्यता की कृपा से महारानी सुमालिनी की कोख से जन्म लिया। भवितव्यता ने पुण्योदय को भी इसके साथ ही भेजा था। पुण्योदय के साथ जन्मे संसारी जीव का जन्मोत्सव राजा मधुवारण ने बड़ी धूमधाम से मनाया और यथा-समय उसका नाम गुणधारण रखा। राजकुमार गुणधारण सर्वांगसुन्दर और सुदर्शन था। पाँच धायें इसका पालन-पोषण करती थीं।

एक दूसरे निकटवर्ती नगर में विशालाक्ष नामक राजा राज्य करते थे। ये राजा मधुवारण के सगोत्रीय भाई थे और दोनों में अटूट मैत्री थी। स्नेह सम्बन्ध थे। राजा विशालाक्ष के कुलन्धर नाम का एक सुन्दर पुत्र था, जिसका जन्म भी गुणधारण के साथ ही हुआ था। राजा मधुवारण और राजा विशालाक्ष की घनिष्ठ मित्रता के कारण राजपुत्र गुणधारण और राजपुत्र कुलन्धर में बचपन से ही मित्रता हो गई। दोनों साथ-साथ खेले, साथ ही विद्याभ्यास किया और साथ ही खाया-पिया। बड़े होकर दोनों कलाओं में निष्णात हुए और साथ-साथ ही रहने लगे। स्नेहवश कुलन्धर अपना नगर छोड़कर राजपुत्र गुणधारण के साथ उसी के भवन में रहता था। दोनों साथ-साथ ही उठते-बैठते तथा भ्रमण आदि को जाते थे। बड़े होकर दोनों दो कामदेव की कल्पना को साकार करते थे। यह कहना कठिन था कि दोनों में कौन अधिक सुन्दर है।

सप्रमोद नगर से थोड़ी दूर नन्दन वन जैसा एक सुन्दर विशाल उद्यान था, जो आह्लादमन्दिर नाम से जाना जाता था। उसमें बने अनेक

जल विहार कुण्ड, लतामण्डप, कदली कुञ्ज फलों वाले वृक्ष और पुष्पपादपों की शोभा सदा मन को मोहती रहती। एक बार गुणधारण और कुलन्धर इस उद्यान में घूमने गए। वहाँ इन्होंने दो सुन्दर रमणियों को देखा। इनमें एक तो लावण्यनिधि और साक्षात् अप्सरा थी। दूसरी पहली से कुछ कम सुन्दर थी। प्रथम रमणी को गुणधारण ने देखा तो देखता ही रह गया। वह उसके रूप पर मोहित हो गया और अपनी सुध-बुध भूल बैठा।

कुलन्धर ने गुणधारण को कामबिद्ध देखा तो टोका—"मित्रवर! चलो घर चलें।" अपनी मनोदशा छिपाने के लिए गुणधारण ने स्वयं पर नियंत्रण किया और बोला—"चलो, चलते हैं।" इस प्रकार उद्यान सुन्दरी को हृदय में बसाकर गुणधारण राजभवन लौट आया।

कुलन्धर ने गुणधारण को कुरेदा तो उसने बताया—

"मित्र! अब तुमसे क्या छिपाना? जो सुन्दरी मैंने आज प्रातः उद्यान में देखी, मैं उसके बिना रह नहीं सकता।"

"यदि ऐसी बात है तो वह तुम्हें अवश्य मिलेगी। तुम उसे चाहते हो तो वह भी तुम्हें चाहती होगी। कल सबेरे पुनः उद्यान चलेंगे। आशा है, वह अवश्य आयेगी।"

दूसरे दिन प्रातः गुणधारण और कुलन्धर पुनः उद्यान-भ्रमण को गए कि कलवाली दोनों रमणियाँ पुनः आयेंगी और उन दोनों में जिस एक पर गुणधारण अनुरक्त है, वह अवश्य ही गुणधारण को प्राप्त होगी। □

[२] **मदनमंजरी**

वैताढ्य पर्वत पर गंधसमृद्ध नाम का विद्याधरों का एक सुन्दर नगर था। यह नगर विद्याधरों के चक्रवर्ती राजा कनकोदर की राजधानी था। विद्याधर चक्रवर्ती कनकोदर के कामलता नामक रानी थी। संतान की आशा में राजा-रानी के काफी दिन बीत गये। संतान-प्राप्ति के सभी उपाय—अनुष्ठान आदि से भी जब इन्हें कोई सफलता नहीं मिली तो निराश होकर बैठ गये।

निराशा के बाद भी भाग्योदय होता है। पुण्योदय अलवा भाग्योदय का कोई समय नहीं। प्रौढ़ायु में रानी कामलता गर्भवती हुई और उसने एक

सुन्दर कन्या को जन्म दिया। इस विद्याधर-सुता का नाम मदनमंजरी रखा गया। युवावय होने पर मदनमंजरी रति की कल्पना को साकार करती थी। सभी विद्याओं में प्रवीण, गुणों की आगार और देव-कन्या-जैसी थी। पर मदनमंजरी में एक दोष यह था कि वह नरद्वेषिणी थी। उसे पुरुष के नाम से ही चिढ़ थी। मदनमंजरी की अन्तरंग सखी लवलिका उसे बहुत समझाती थी कि पुरुष के बिना नारी अपूर्ण है। तू विवाह कर ले, पर मदनमंजरी उसे हमेशा झिड़क देती थी। मेरी पुत्री नर-द्वेषिणी है, यह जानकारी होने के बाद राजा कनकोदर और रानी कामलता को बहुत चिन्ता हुई।

अपनी चिन्ता को दूर करने के लिए विद्याधर-नरेश कनकोदर ने एक स्वयंवर का आयोजन किया, जिसमें बड़े-बड़े रूपवान और वीर विद्याधर राजा आये। यथासमय मदनमंजरी सखियों और धाय माता के साथ स्वयंवर मण्डप में वरमाला लिये आई। वह जिस राजा के सामने खड़ी होती थी, उसकी धायमाता उस राजा का परिचय उसे देती जाती थी।

विद्युद्दन्त राजा के पुत्र अमितप्रभ, गांधर्वपुर के राजकुमार नाग-केसरी, रथनूपुर-चक्रवाल के राजा रतिमित्र के पुत्र रतिविलास आदि अनेक गुणी, वीर, सुन्दर और यशस्वी राजा-राजपुत्रों का परिचय कामलता ने मदनमंजरी को दिया, पर मदनमंजरी ने किसी को पसंद नहीं किया और अपनी-माँ रानी कामलता से कहा—

"माँ ! मैंने सबको देख लिया, पर मुझे कोई पसंद नहीं है। इनमें कोई भी मेरे योग्य नहीं है।"

यह सुन कामलता मदनमंजरी को स्वयंवर मण्डप से राजभवन में ले गई और रोने लगी कि हाय मेरी राजदुलारी के योग्य वर अब कौन हो सकता है। रानी का दुख देखकर लवलिका ने उसे धीरज बंधाया—"महारानी जी ! आप दुखी न हों। मैं अपनी सखी को पुनः समझाऊँगी कि वह किसी विद्याधर राजा को पुनः पसन्द करने की कोशिश करें।"

उधर स्वयंवर में आये विद्याधर राजा बड़े बौखलाये कि हममें से किसी का भी वरण मदनमंजरी ने नहीं किया। यह तो हम सभी का भारी अपमान है। हम इस अपमान का बदला लेंगे, ऐसा सोचकर सब लौट गये।

पुत्री के व्यवहार से राजा कनकोदर भी बड़े शोक संतप्त हुए। उन्हें रात भर नींद नहीं आई। जैसे-तैसे करवट बदलते हुए रात्रि के अन्त में

उनकी आँख लगी तो उन्होंने एक स्वप्न देखा। स्वप्न में दो पुरुष और दो स्त्रियाँ राजा कनकोदर से कहने लगे कि हम चारों यह चाहते थे कि मदन-मंजरी का विवाह विद्याधर से न हो। इसीलिए हमने उसे पुरुषद्वेषिणी बनाया था। उसका विवाह धरती पर रहने वाले एक मानव से होगा। उसके अलावा कोई अन्य इसका वरण नहीं कर सकता। अतः चिन्ता का त्याग करो।

यह स्वप्न देखर राजा उठे तो कालनिवेदक ने प्रातःकाल होने की सूचना बड़ी सुन्दर उक्ति देकर कही। उधर स्वप्न भी शुभ था, इधर काल-निवेदक की वाणी भी शुभ थी। अतः राजा कनकोदर को हर्ष हुआ।

उधर लवलिका ने मदनमंजरी से विवाह की बात कही तो उसने कहा कि मैं अपना पति ढूंढने स्वयं जाऊँगी। अपनी पुत्री की यह इच्छा जानकर राजा कनकोदर ने मदनमंजरी को अपना पति ढूँढने की अनुमति दे दी। लवलिका को साथ लेकर मदनमंजरी अपना पति ढूँढने निकल पड़ी। कहाँ-कहाँ घूमी, कहाँ-कहाँ देखा, इसका किसी को कुछ पता नहीं था। काफी दिनों बाद भी मदनमंजरी के न लौटने पर रानी कामलता और राजा कनकोदर चिंतित रहने लगे।

कुछ दिन और बीतने पर अकेली लवलिका लौटी। मदनमंजरी उसके साथ नहीं थी। वह बहुत उदास थी। रानी कामलता ने आतुर होकर एक साथ अनेक सवाल पूछ डाले—तूने बहुत दिन लगा दिये? सफलता मिली या नहीं? मदनमंजरी कहाँ है? तू अकेली क्यों आई? तेरे मुँह पर उदासी क्यों है?

सब प्रश्नों का उत्तर देते हुए लवलिका ने अपना यात्रा वृत्तान्त सुना दिया। उसे सुनकर रानी को हर्ष हुआ और उसने वे समाचार अपने पति महाराज कनकोदर को भी सुना दिये। उन्होंने भी हर्षित होकर पुत्री मदनमंजरी का विवाह उसकी पसंद के पति से करने का निश्चय करके एक व्यवस्थित कार्यक्रम बना डाला। □

[२] मदनमंजरी और गुणधारण का मिलन

गुणधारण और कुलंधर दूसरे दिन प्रातः उद्यान पहुँच गये। गुण-

धारण की उत्सुक निगाहें एक दिन पूर्व देखी गई दोनों रमणियों में से अपने चित्त में बसी रमणी को खोज रही थीं। कुलन्धर ने उसे आश्वासन दिया—

"मित्र गुणधारण ! एक जगह बैठकर प्रतीक्षा करें। हम कुछ जल्दी आ गये हैं। वह रमणी अपने समय पर ही आयेगी।"

दोनों लता कुञ्ज में एक स्फटिक शिला पर बैठकर दोनों रमणियों की प्रतीक्षा करने लगे। एक प्रहर समय बीतने पर दोनों को एक महिला आती दिखाई दी, जो प्रौढ़ वय की थी। निकट आकर वह दोनों के पास खड़ी हो गई तो गुणधारण और कुलंधर ने उठकर उसको प्रणाम किया। महिला ने दोनों को आशीर्वाद देने के बाद कहा—"मैं तुमसे कुछ कहने आई हूँ।"

"आप हमारी माता के समान हैं।" गुणधारण ने कहा—"आप हमें आज्ञा दीजिए कि हम आपकी क्या सेवा करें।"

फिर तीनों तसल्ली से नीचे स्वच्छ भूमि पर बैठ गए। उक्त महिला ने कहना शुरू किया—

"वत्स ! मैं वैताढ्य पर्वत पर बसे गंधसमृद्ध नगर के विद्याधर चक्रवर्ती कनकोदर की पत्नी कामलता हूँ। मैं यहाँ जो कहानी सुनाने आई हूँ, पहले आप उसे पूरी सुन लीजिए। उसके बाद आप समझ पायेंगे कि आपको मेरा कौन-सा प्रिय कार्य करना है।"

इसके बाद कामलता ने अपनी पुत्री मदनमंजरी की जन्म से लेकर नरद्वेषप्राकट्य, स्वयंवर में विफलता, स्वयंवर में आये विद्याधर-नरेशों का क्रुद्ध होकर लौटना तथा मदनमंजरी का लवलिका के साथ वर की खोज में जाने तक की कथा सुनाने के बाद कहा—

"वत्स ! लवलिका बहुत दिनों बाद अकेली लौटकर आई तो मैंने उससे पूछा कि तू अकेली ही क्यों आई है ? अपनी सखी मदनमंजरी को कहाँ छोड़ आई ? यह भी पूछा कि उसने किसी को पतिरूप में पसंद किया या नहीं ? मेरे सभी प्रश्नों का उत्तर देते हुए लवलिका ने मुझसे कहा कि माताजी, आप चिन्ता न करें। मदनमंजरी जहाँ भी है, कुशलपूर्वक है।

"माताजी ! मुझे लेकर मदनमंजरी कई नगरों, ग्रामों में पति की खोज करते हुए घूमती रही। इसी क्रम में हम दोनों सप्रमोद नगर के बाह्य उद्यान आह्लादमन्दिर में पहुँची। वह उद्यान नन्दन वन के समान सुन्दर था। वहाँ हमने देवकुमार-जैसे दो सुन्दर राजकुमारों को देखा। उनमें से

एक पर सखी मदनमंजरी आसक्त हो गई। पहली बार उसे कोई पुरुष अपने योग्य लगा। उस राजकुमार ने भी मेरी सखी को देखा तो वह भी कामबिद्ध लगा। हम दोनों कुछ सोच भी नहीं पाईं कि वह राजकुमार अपने मित्र के साथ तत्काल चला गया।

"उसके चले जाने के बाद मैंने मदनमंजरी से पूछा कि यह राजपुत्र तुझे पसंद है या नहीं? इस पर वह बोली—सखी! उसके बिना तो मैं जीवित ही नहीं रह सकती। पर मुझे इसका संदेह है कि वह मुझे पसंद करेगा या नहीं। इस पर मैंने उसे आश्वासन दिया कि मैंने उसकी निगाहों को देखकर यह जान लिया है कि वह भी तुझे इतना ही चाहता है, जितना तू उसे चाहती है।

"माताजी! इसके बाद मैंने मदनमंजरी से यहाँ आने को कहा तो वह बोली कि मैं यहीं रहूँगी। तुम गंधसमृद्ध नगर जाकर मेरे माता-पिता को सब बातें बता दो।

"वत्स! यह सब वृत्तान्त मुझे लवलिका ने मदनमंजरी के बारे में बताया। मैंने अपने पति कनकोदर महाराज को बताया तो उन्होंने मुझे यहाँ आने का आदेश दिया कि तुम राजकुमार को सब कुछ बताओ। मैं विवाह की तैयारी करके आता हूँ।"

"तो वत्स गुणधारण! कल जो दो रमणियाँ आपने उद्यान में देखी थीं, उनमें एक मदनमंजरी थी और दूसरी उसकी सखी लवलिका थी। मदनमंजरी यहाँ योगिनी की तरह आपका ध्यान लगाकर बैठी है। मैं उससे मिलकर आ रही हूँ। बड़ी लम्बी प्रतीक्षा के बाद हमें यह दिन देखने को मिला है कि मेरी नरद्वेषिणी पुत्री ने आप-जैसे गुणरत्न गुणधारण को चाहा है। अब आप उसे स्वीकार कर उसे जीवनदान दीजिए।

"मदनमंजरी के पिताजी पूरी तैयारी करके यहीं आ रहे हैं।"

इतना कहकर कामलता रानी मौन हुई तो कुलंधर ने उससे कहा—

"माताजी! मेरा मित्र भी मदनमंजरी के बिना रह नहीं सकता। इसकी ओर से मैं आपका प्रस्ताव स्वीकार करता हूँ। इन दोनों का यह विवाह-संयोग तो विधि का विधान ही लगता है। वरना यह कैसे होता कि जो जिसे चाहे, वह उसे सहज ही बिना किसी प्रतिकूलता के मिल जाए?"

इसके बाद गुणधारण और कुलंधर कामलता के साथ वहाँ पहुँचे जहाँ मदनमंजरी और लवलिका बैठी थीं। गुणधारण को देखकर

मदनमंजरी ने श्रृंगार, अद्भुत आदि कई रसों का अनुभव किया। थोड़ी ही देर बीती कि विद्याधर राजा कनकोदर भी विमान से वहाँ आ गए। जैसे ही कनकोदर राजा का विमान नीचे उतरा कि गुणधारण और कुलंधर ने खड़े होकर उनको प्रणाम किया। उनके बैठ जाने पर सब बैठ गए तो कामलता ने उन्हें सब कुछ बताने के बाद कहा—"मुझे राजकुमार गुणधारण की स्वीकृति मिल गई है। अतः शुभ कार्य करने में देर क्यों?"

"मैं वही शुभ कार्य करने आया हूँ।" कनकोदर बोले—"जिसको सम्पन्न करने के लिए हम चिन्तासागर में डूबे रहते थे।" □

[४] **गुणधारण और मदनमंजरी का विवाह**

थोड़ी देर बाद महाराज कनकोदर का एक गुप्तचर आया। उसने उनके कान में धीरे-से कुछ कहा और चला गया। उसके जाने के बाद महाराज कनकोदर ने संक्षिप्त विधि-विधान से अपनी पुत्री मदनमंजरी का विवाह मधुवारण के पुत्र गुणधारण से कर दिया। छोटे-से समारोह में उल्लास का सागर लहरा गया। राजा कनकोदर अनेक तरह के रत्न अपने विमान में साथ लाये थे। मरकत, पद्मराग, वज्र आदि रत्न कनकोदर ने गुणधारण को भेंट में दिये। दोनों—मदनमंजरी और गुणधारण की जोड़ी रति-मदन की सी जोड़ी लग रही थी।

निर्विघ्न विवाह सम्पन्न हो जाने के बाद एक विघ्न अचानक आ गया। वह वह कि मदनमंजरी के स्वयंवर से रुष्ट हुए विद्याधर राजाओं के विमान आकाश में छा गए। सब चिल्लाने लगे कि हम विद्याधर राजाओं के रहते यह नहीं हो सकता कि एक साधारण मानव विद्याधर-पुत्री मदनमंजरी को अपनी पत्नी बनाले।

इसी आक्रमण की संभावना का संदेश कनकोदर के गुप्तचर ने उन्हें दिया था। राजा कनकोदर के सैनिक भी कुछ देर पहले आ चुके थे। वे सब भी युद्धोत्साह में भर गए। राजा कनकोदर के आदेश मात्र की देर थी, उनके सैनिक भी अपने-अपने विमानों को लेकर आकाश में आकाश स्थित विद्याधरों का सामना करने को उड़े। लगता था कि दोनों पक्षों की विद्याधर सेनाओं का युद्ध आकाश से रक्त वर्षा करेगा। लेकिन चमत्कार हुआ

कि दोनों पक्षों की सेनाएँ और उनके संचालक-सेनापति स्तम्भित हो गए। जो जहाँ था, वह वहीं अधर में खड़ा रह गया।

अपनी ऐसी निरुपाय और दीन स्थिति देखकर विपक्षी विद्याधर सोचने लगे—अहा, मदनमंजरी और गुणधारण की जोड़ी कितनी सुन्दर है। ये दोनों एक दूसरे के लिए ही जन्मे थे, तो हम क्यों बाधक बनें ? फिर इस राजकुमार की अमित शक्ति तो देखिए कि जिसने हमें जड़-पत्थर की प्रतिमा की तरह स्तंभित कर दिया। हमें तो अब यही उचित लगता है कि हम इस वीर पुरुष की अधीनता स्वीकार कर इससे क्षमा माँगें।

जैसे ही सब विपक्षी-आक्रामक विद्याधरों के मन में यह विचार आया, वैसे ही सब मुक्त हो गए। फिर सबने अपने-अपने विमान नीचे उतारे और मदनमंजरी सहित गुणधारण की प्रशंसा कर क्षमा माँगी। उदार गुणधारण ने सबको क्षमा दान दिया। उधर गुणधारण के पिता मधुवारण को सब समाचारों की जानकारी मिली तो वे भी महारानी सुमालिनी को लेकर विवाह स्थल—उद्यान में आ गए। दोनों समधी प्रेम से मिले। समधिनें मिलीं। मदनमंजरी ने अपनी सास सुमालिनी रानी के चरण छूकर आशीष प्राप्त किया। कुलंधर ने राजा मधुवारण को सब वृत्तान्त सुनाया कि किस कारण से यह विवाह आकस्मिक रूप में करना पड़ा।

× × ×

संसारी जीव ने अगृहीतसंकेता से कहा—

"बहिन अगृहीतसंकेता ! गुणधारण के भव में मेरा मित्र पुण्योदय बहुत हृष्ट-पुष्ट और सबल था। जैसे स्वर्ग में इन्द्र का सम्मान होता है, वैसे ही सब विद्याधर मेरा सम्मान करते थे। मेरे यहाँ रत्नों के ढेर लगे रहते थे। मैं वैभव में डूबा रहता था। मदनमंजरी-जैसी पत्नी को पाकर तो इन्द्र भी अपने भाग्य को सराहता, मैं तो फिर भी राजकुमार था।

"विवाह वाला दिन बड़े आनंद से बीता। रात्रि प्रिया मदनमंजरी के साथ बीती। उसी रात मेरे मित्र कुलंधर ने एक स्वप्न देखा, जिसमें पाँच व्यक्तियों ने उससे बात-चीत की। इन पाँच में तीन पुरुष और दो स्त्रियाँ थीं। दूसरे दिन प्रातः उसने मुझे अपने स्वप्न के बारे में बताया। अब मैं तुम्हें इससे आगे की अपनी आत्मकथा सुनाता हूँ। यहाँ बैठे सदागम जी महाराज तो मेरे हर जन्म के बारे में जानते हैं। अब तुम भी सुनो।" □

[५] कुलन्धर का स्वप्न दर्शन : कन्दमुनि से वार्त्तालाप

गुणधारण और मदनमंजरी के विवाह के दूसरे दिन प्रातःकाल कुलन्धर गुणधारण के पास पहुँचा और बताया कि मैंने रात एक ऐसा स्वप्न देखा है, जिसमें तीन पुरुष और दो स्त्रियाँ—पाँच व्यक्ति मेरे पास आये। उन्होंने मुझसे कहा कि गुणधारण सुखसागर में डूबा हुआ है। यह सुखोपलब्धि हम पाँचों ने ही उसे कराई है और भविष्य में भी हम पाँचों ही उसे सुख साधन देंगे। यह कहकर पाँचों व्यक्ति अदृश्य हो गए।

फिर यह स्वप्न राजसभा में राजा मधुवारण को बताया गया। सभा में उपस्थित विद्वानों ने स्वप्न पर विचार करके कहा कि कुछ देव गुणधारण पर कृपालु हुए हैं। वे देव पाँच हैं। गुणधारण की सभी अनुकूलताएँ इन्हीं पाँच देवों के प्रताप से हैं।

विद्वानों द्वारा कथित कुलन्धर के स्वप्न पर निर्णय सुनकर गुणधारण सोचने लगा कि यह तो बड़ी विचित्र बात है कि मित्र कुलंधर को पाँच देवों ने दर्शन दिये जिनमें दो स्त्रियाँ थीं और मेरे श्वसुर कनकोदर के स्वप्न में दो देवी और दो देव आये थे, जिन्होंने उनसे कहा था कि मदनमंजरी के लिए हमने एक पुरुष निश्चित कर रखा है। इसका विवाह उसी के साथ होगा, जिसे हम करायेंगे। तो विचारणीय बात यह है कि चार और पाँच के भेद का क्या प्रयोजन हुआ ? मेरे अनुकूल पहले चार देव-देवी थे तो फिर पाँच देव-देवी कैसे हो गए ? कनकोदर के स्वप्न वाले देवों ने ही तो युद्धोन्मुख विद्याधरों को स्तम्भित करके मेरे अधीन बना दिया था।

इस तरह गुणधारण दोनों स्वप्नों के अन्तर को नहीं समझ पाया। उसके दिन बड़े सुख से बीतने लगे। धरती पर रहकर भी वह मदनमंजरी के साथ देवसुखों का भोग करते हुए जी रहा था। चिन्ता उससे सदा दूर रहती थी। भय का लेश भी उसके पास नहीं था। यों कुछ दिन बीतने के बाद गुणधारण एक दिन अपने मित्र कुलन्धर और पत्नी मदनमंजरी के साथ आह्लादमन्दिर नामक उद्यान को गया तो वहाँ एक मुनि के दर्शन करके प्रफुल्लित हुआ। वन्दना करके उनके सामने बैठा। ये मुनि कन्दमुनि

थे। इन्होंने बड़ी सुन्दर धर्मदेशना दी। कन्दमुनि के निकट गुणधारण ने सदागम और सम्यग्दर्शन को बैठे देखा। उन्हें पहचान कर उनसे निकट का सम्पर्क साधा।

अब तक छिपा बैठा सातावेदनीय भी प्रकट होकर गुणधारण से मिला। सातावेदनीय वेदनीय राजा का छोटा भाई है। संसारी जीव जब विबुधालय (देवलोक) में था, तब सातावेदनीय इसका स्नेही मित्र बन गया था। संसारी जीव जब सप्रमोद नगर में गुणधारण के रूप में जन्मा, तब यह भी गुप्तरूप से साथ था और गुणधारण को अनेक सुखों का स्वाद देता था। आज सदागम और सम्यग्दर्शन के साथ वह प्रकट हुआ था।

इन सबके सम्पर्क और दर्शन से महामोह की समस्त सेना अत्यन्त निर्बल/मृतप्राय हो गई थी। इससे चारित्रधर्मराज को बड़ा सतोष हुआ। उन्होंने अपने मंत्री सद्बोध से कहा—

"मन्त्रिवर! संसारी जीव को सभी अनुकूलताएँ प्राप्त हैं। अतः यह बड़ा सुन्दर अवसर है कि तुम पुत्री विद्या को लेकर उसके पास चले जाओ। संसारी जीव कन्द मुनि के समक्ष बैठा है। इस समय वह विद्या को तुरन्त स्वीकार कर लेगा।"

"विद्या को ले जाने के विषय में अभी कुछ समय हमें प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।" सद्बोध मंत्री ने चारित्रधर्मराज से कहा—"संसारी जीव (गुणधारण) के दो अन्तरंग मित्र पुण्योदय और सातावेदनीय अभी उसके साथ हैं। इनके द्वारा गुणधारण अभी कुछ सुख-भोग भोगेगा। इन दोनों के रहते संसारी जीव बाहरी सुखों को ही सुख मानता रहेगा। अतः इस समय विद्या को न भेजकर आप अपने पुत्र गृहीधर्म को सपत्नीक ही उसके पास भेजिए।

"गृहीधर्म के जाने से संसारी जीव महामोह को अधिक त्रास दे सकेगा। उसके कर्म निर्बल बनेंगे।"

इसके बाद कर्मपरिणाम की आज्ञा लेकर गृहीधर्म को गुणधारण के पास भेज दिया गया। कन्दमुनि ने श्रावकधर्म की देशना देकर उसे प्रकट किया। वह अपने बारह सेवकों (१२ श्रावक व्रतों) के साथ प्रकट हुआ। गुणधारण ने बारहों सेवकों—व्रतों सहित गृहीधर्म को धारण किया।

गृहीधर्म को सम्मान सहित धारण करने के बाद गुणधारण ने कन्द मुनि से कनकोदर और कुलन्धर के स्वप्नों के बारे में बताकर पूछा कि प्रभो! एक के स्वप्न में चार स्त्री-पुरुष और एक के में पाँच स्त्री-पुरुषों ने

दर्शन देकर मेरे अनुकूल होने का दावा किया, इसका क्या अभिप्राय है ? ये स्त्री-पुरुष कौन थे ? ये चार थे या पाँच थे ? एक स्वप्न में चार और दूसरे में पाँच क्यों आये तथा दोनों स्वप्नों में पुरुषों के साथ दो स्त्रियां कौन थीं ?"

गुणधारण के स्वप्न प्रश्न सुनकर कन्दमुनि बोले—

"युवराज गुणधारण ! तेरे स्वप्नों का यथार्थ फल तो केवली मुनि ही बता सकते हैं। मेरे गुरुदेव निर्मलाचार्य केवलज्ञानी हैं। वे इन दिनों विहार कर रहे हैं। जब मैं उनकी चरण वंदना करने जाऊँगा तो तेरे स्वप्नों की बात उनसे कहूँगा। मैं उनसे यहाँ सप्रमोदनगर के इस उद्यान में पधारने की प्रार्थना भी करूँगा। अतः जब तक वे यहाँ न आयें तब तक तुम सदागम, सम्यग्दर्शन और गृहीधर्म—तीनों का पूर्ण आदर-सम्मान करते रहना।"

× × ×

"बहिन अगृहीतसंकेता ! मैंने कन्द मुनि के वचनों को शिरोधार्य किया। मेरी पत्नी मदनमंजरी ने भी मुनि की चरण वंदना कर विदा ली। उसके बाद हम सब उद्यान से नगर आ गए।

कुछ दिनों बाद मेरे पिता राजा मधुवारण ने पण्डितमरण प्राप्त किया। उनके निधन के बाद मेरा राज्याभिषेक किया गया। मैं राजा बन गया। समस्त राजपरिषद् मेरे अनुकूल थी। प्रजा मुझे भगवान मानती थी। मेरे शत्रु मेरे अधीन हो गये थे। मैं अनासक्त भाव से बाह्य—ऐन्द्रिय सुखों का भोग करने लगा। मैं पुण्योदय से संयुक्त होकर गृहीधर्म का आदर करता था। सदागम और सम्यग्दर्शन के निकटतर होता जाता था। सातावेदनीय मुझे प्रसन्न रखता था।

इस तरह देवजैसे सुखों का भोग करते हुए पर्याप्त समय बीत गया, तब कल्याण नामक मेरे सेवक ने मुझे संदेश दिया कि आह्लादमन्दिर उद्यान में केवली भगवान निर्मलाचार्य पधारे हैं। मैंने सेवक को इस संवाद के लिए पर्याप्त धन दिया। केवली की भाव-वंदना करने के बाद मैं पत्नी मदनमंजरी, मित्र कुलंधर तथा राजपरिषद् के साथ केवली भगवान के दर्शन करने गया। मेरे स्वप्नों के विषय में उन्होंने बड़े विस्तार से प्रकाश डाला। वह स्वप्न-रहस्योद्घाटन बड़ा अद्भुत था। उसे भी तुम सुनो।" □

[६] निर्मलाचार्य द्वारा स्वप्नदर्शन विचार

सप्रमोद नगर के आह्लादमन्दिर उद्यान में केवली निर्मलाचार्य

कन्दमुनि तथा अन्य मुनियों सहित पधारे। वे देवनिर्मित कमलासन पर विराजमान हुए। उनके समवसरण में राजा गुणधारण, कुलन्धर और मदनमंजरी के अलावा गुणधारण के अधीनस्थ राजा तथा देवगण बैठे थे। आचार्य ने बड़ी सुन्दर देशना दी, जिसके कुछ अंश ये थे—

संसार चक्र निरन्तर घूमता रहता है।

यह चक्र अनेक प्रकार के भयंकर दुःखों से परिपूर्ण है।

यहाँ, मृत्यु के लिए जन्म, रोग के लिए शरीर, बुढ़ापे के लिए जवानी, संयोग के लिए वियोग और दुःख के लिए सुख प्राप्त होता है।

जरा-मृत्यु, रोग-शोक से परे मुक्तात्मा ही सुखी है।

इस प्रकार बहुत देर तक चलने वाली देशना से गुणधारण के कर्म क्षीण हुए। उसकी इच्छा दीक्षा लेने की हुई। वह अपनी इच्छा प्रकट करता कि कंदमुनि ने निर्मलाचार्य से पूछा—

"गुरुदेव! इस संसार में किस प्राणी का समय व्यतीत करना अति कठिन होता है?"

इस पर निर्मलाचार्य ने कन्द मुनि से कहा—

"वत्स! किसी जिज्ञासु को जब तक गुरु से पूछने का अवसर न मिले, तब तक जिज्ञासु का समय बड़ी कठिनता से बीतता है।"

"तो भगवन!" कंदमुनि बोले—"आप समर्थ हैं। राजा गुणधारण की जिज्ञासा का समाधान कीजिए।"

अपनी स्वप्न जिज्ञासा सुनने-जानने के लिए गुणधारण स्थिरचित्त होकर बैठ गया। निर्मलाचार्य उसे सम्बोधित करते हुए बोले—

"राजन्! तुम्हारे स्वप्नों के बारे में जानने के लिए तुम्हें लम्बी कथा सुननी पड़ेगी।"

यह कह निर्मलाचार्य ने असंव्यवहार नगर से गुणधारण के भव तक की संसारी जीव की लम्बी कथा सुनाने के बाद गुणधारण से पुनः कहा—

"राजन्! चित्तवृत्ति अटवी, महामोह राजा, राजा चारित्रधर्मराज आदि के बारे में तुम बहुत कुछ सुन चुके हो। अभी तक कर्मपरिणाम राजा तुम्हारे प्रतिकूल था। इससे मोहादि पुष्ट थे। लेकिन अभी-अभी कर्मपरिणाम राजा तेरे अनुकूल हुए हैं। उन्होंने रानी कालपरिणति को तेरे सन्मुख और भवितव्यता को प्रसन्न किया है। कर्मपरिणाम ने अपने अधिकारी 'स्वभाव' को भी तेरे पास भेजा है। तुम्हारे मित्र पुण्योदय को उत्साहित किया है और मोहादि को दुर्बल कर चित्तवृत्ति अटवी से दूर भगाया है।

इन राजा की अनुकूलता से तुझे सदागम से स्नेह हुआ है तथा सम्यग्दर्शन से मित्रता हुई है। कर्मपरिणाम ने पुण्योदय को प्रोत्साहित किया, इस कारण तेरा जन्म मधुवारण राजा के पुत्र रूप में हुआ और विद्याधर चक्रवर्ती की पुत्री मदनमंजरी से तेरा विवाह भी पुण्योदय ने कराया।

"राजन्! राजा कनकोदर को स्वप्नदर्शन में मदनमंजरी के साथ तेरा विवाह कराने की कहने वाले चार पुरुष कर्मपरिणाम, कालपरिणति, भवितव्यता और स्वभाव थे। इन्होंने ही मदनमंजरी को विद्याधरों के विमुख किया था। इन चारों की बात केवल कर्मपरिणाम राजा ने ही कनकोदर राजा से कही थी।

"बाद में कर्मपरिणाम ने पुण्योदय से कहा कि तुम संसारी जीव के बारे में प्रकट होकर कुछ क्यों नहीं कहते? सब कुछ करने-कराने वाले तो तुम ही हो। अतः जब कुलन्धर को स्वप्नदर्शन हुआ तो उसमें पुण्योदय भी शामिल हो गया। इस प्रकार कर्मपरिणाम, कालपरिणति, स्वभाव, भवितव्यता के साथ पुण्योदय के मिलने से पाँच हो गए। यही कारण है कि कनकोदर को स्वप्न में चार और कुलन्धर को स्वप्न में पाँच स्त्री-पुरुष दिखाई दिये थे।

"राजन्! ये चारों और पाँचों ही आपके समस्त कार्यों की योजना बनाते रहते हैं।"

× × ×

"अगृहीतसंकेता! मैंने निर्मलाचार्य से अपने स्वप्न की जिज्ञासा शंका का समाधान प्राप्त करने के बाद पुनः पूछा कि मुझे जो सुखोपलब्धि हुई है, वह क्या केवल पुण्योदय ने ही कराई है, जिसकी प्रेरणा उसे अन्य चारों ने दी हो।"

इस पर निर्मलाचार्य ने पुण्योदय, कर्मपरिणाम आदि के बारे में मुझे कुछ विस्तार से बताया-समझाया। उसी को मैं संक्षेप में तुम्हें सुनाता हूँ। निर्मलाचार्य का जो कथन मैं तुम्हें अब सुनाऊँगा, वह मेरी—संसारी जीव की आत्म-कथा का सार-संक्षेप ही है। ☐

[७] कार्य-कारण शृंखला

निर्मलाचार्य ने राजा गुणधारण से कहा—

"राजन् ! मदनमंजरी की प्राप्ति से लेकर अन्य जो भी उपलब्धियाँ तुम्हें हुई हैं, वे कर्मपरिणाम आदि की प्रेरणा से पुण्योदय ने कराई हैं। पूर्वभवों में भी पुण्योदय ने तुम्हें सुख उपलब्ध कराये थे। तुम्हें जब जो सफलता, विजय, यश मिला, वह सब पुण्योदय ने दिलाया।

"राजन् ! नन्दिवर्धन के भव में कनकमंजरी से विवाह, रिपुदारण के भव में नरसुन्दरी की प्राप्ति, वामदेव के भव में विमलकुमार जैसे सद्गुणी मित्र की प्राप्ति, धनशेखर के भव में मूल्यवान रत्नों की उपलब्धि और धनवाहन के भव में अकलंक-जैसे मित्र की प्राप्ति तुम्हें पुण्योदय ने ही कराई थी।

"राजन् ! लेकिन तुमने न तो कभी पुण्योदय जैसे मित्र से परिचय किया और न कभी उसे पहचाना। इसके विपरीत तुमने अपनी उपलब्धियों का श्रेय अपने शत्रुओं—वैश्वानर, हिंसा, शैलराज (अहंकार), सागर (लोभ), स्तेय, बहुलिका, मृषावाद, परिग्रह, महामोह आदि को दिया और इन्हीं का पक्ष तुम लेते रहे।"

इतना सुनने के बाद गुणधारण ने पूछा—

"भन्ते ! मेरी सुख परम्परा के हेतु पुण्योदय ने बीच-बीच में मुझसे आँख मिचौनी क्यों की ? मुझे दुखों में क्यों भटकना पड़ा ?"

आचार्य बोले—

"तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देने के लिए तुम्हें प्रारम्भ से ही सब कुछ बताना पड़ेगा। तुम याद करो, जब तुम असंव्यवहार नगर में रहते थे और तुम संसारी जीव के नाम से जाने जाते थे, तभी से—अनादि काल से तुम्हारी चित्तवृत्ति अटवी में अन्तरंग राज्य रहा है। इसमें महामोह और चारित्रधर्मराज की सेनाएँ रहती हैं और दोनों की सेनाएं तक दूसरे की प्रबल विरोधी हैं। उधर कर्मपरिणाम राजा हैं तो तटस्थ-निष्पक्ष, लेकिन महामोह से कुछ अधिक प्रेम है, क्योंकि दोनों एक ही जाति के हैं। फिर भी ये जिस पक्ष की प्रबलता देखते हैं, उसी को बढ़ावा देते रहते हैं। यह स्थिति अनादि काल से चल रही है।

"महाराज कर्मपरिणाम के दो सेनापति हैं—एक पुण्योदय, दूसरा पापोदय। पापोदय सदा तेरे प्रतिकूल रहने वाला क्रूर प्रकृति का है। यह महामोह के पक्ष का—तेरे शत्रुपक्ष का पक्षधर है। इसके विपरीत पुण्योदय तेरे अनुकूल है और यह कर्मपरिणाम के दूसरे पक्ष—चारित्रधर्मराज का सैन्य-संचालन करता है। जब तू असंव्यवहार नगर में था तभी से पापोदय

तेरे साथ रहा है। तुझे दुःखों में भटकाने वाला यह पापोदय ही है। इसने हिंसा आदि शत्रुओं में तेरी प्रीति बढ़ाई और पुण्योदय को नहीं पहचानने दिया।

"राजन् ! पापोदय ने तुझे तेरे अन्तरंग राज्य से बाहर खदेड़ दिया है। इसने तेरे शुभचिन्तक चारित्रधर्मराज आदि को निर्बल किया है। जब-जब पापोदय ने तुझे भटकाया है, उस-उस समय पुण्योदय भी तेरे साथ रहा अवश्य। लेकिन तुझे पापोदय से सम्बद्ध देखकर वह तेरी मदद नहीं कर सका। अपनी उदारता के कारण वह बीच-बीच में तुझे सुख-सफलता देता रहता था।"

गुणधारण ने अगला प्रश्न किया—"तो फिर अब पापोदय चुप क्यों बैठा है?" निर्मलाचार्य ने उत्तर दिया—

"राजन् ! पुण्योदय की तरह पापोदय भी कर्मपरिणाम, कालपरिणति, भवितव्यता आदि के अधीन है—यह भी स्वतन्त्र नहीं है। वर्तमान में इन चारों ने मिलकर पापोदय को तुझसे दूर भगा दिया है। जब से इन चारों की आज्ञा लेकर सदागम तेरे पास आया है, उसने पापोदय को निर्बल बना दिया है। पहले जब-जब तूने सदागम से प्रीति करना छोड़ा है, पापोदय तेरे निकट खिसक आता था। कर्मपरिणाम, कालपरिणाति, स्वभाव और भवितव्यता—ये चारों मिलकर तेरे बारे में विचार करते थे। इन्होंने अनेक बार तुझे सदागम से मिलाया, पुण्योदय को प्रेरणा दी और पापोदय को तुझसे दूर भगाया। वर्तमान में इन चारों महापुरुषों की आज्ञा से पापोदय अपनी सेना लेकर तुझसे बहुत दूर चला गया है। इन चारों ने सातावेदनीय और पुण्योदय को तेरे निकट भेजा है।"

"गुरुदेव !" गुणधारण ने पूछा—"पुण्योदय और पापोदय की शक्ति का अनुभव मैंने सुख-दुख भोगते समय कर लिया। लेकिन मेरी अपनी शक्ति क्या है? मैं आखिर क्या कर सकता हूँ और क्या नहीं कर सकता?"

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए आचार्य बोले—

"राजन् ! जो चारों महापुरुष तेरे विषय में कार्यक्रम निश्चित करते हैं, इन चारों का स्वामी तो तू ही है। तेरे सभी कार्यों में तेरी स्वयं की योग्यता ही मुख्य कारण है। तूने जो भी सुख-दुख प्राप्त किये हैं, उनका मुख्य कारण तू स्वयं है। कर्मपरिणाम आदि तो सहकारी कारण हैं।"

× × ×

"अगृहीतसंकेता ! इस प्रकार गुणधारण के भव में आचार्य निर्मल

सूरि ने मेरे स्वप्न सम्बन्धी संशयों का निवारण किया और बताया कि मेरे —संसारी जीव के सुख का एक मात्र आधार धर्म ही है। धर्म की सूक्ष्म विवेचना भी उन्होंने मुझे बताई। स्वप्न-संशय की निवृत्ति के बाद मैंने आचार्यश्री से अपनी अन्य शंकाओं का निवारण भी किया, वह सब भी मैं तुम्हें सुनाता हूँ।" ▢

[८] **शुभाशुभ बाह्य निमित्त**

स्वप्न संशय का निवारण हो जाने के बाद राजा गुणधारण ने निर्मलाचार्य से पूछा—

"भगवन् ! जिस समय मेरा मदनमंजरी से विवाह हुआ था, उस समय धरती और आकाश में स्थित विद्याधर सेनाओं को किसने स्तंभित किया था ? बाद में किसने उन्हें मुक्त किया और किसकी शक्ति से दोनों पक्ष के विद्याधर मेरे अधीन बने ?"

"राजन् ! इस सबका मूल कारण तो पुण्योदय ही था। निमित्त कारण उसने वन-देवता को बनाया था। तुम्हारे मन में यह भाव आया था कि दोनों सेनाओं में युद्ध होगा तो व्यर्थ में मेरे कारण रक्तपात होगा। बस, फिर पुण्योदय ने वन-देवता को प्रेरणा दी और उसने दोनों सेनाओं को स्तंभित कर दिया। फिर उसी ने उन्हें मुक्त कर तुम्हारे अधीन बनाया।

"राजन् ! पुण्योदय की यह विशेषता है कि वह स्वयं तो भलाई करता है, विजय दिलाता है और यश तथा श्रेय दूसरों को देता है। इसी तरह पापोदय भी स्वयं दुःख देता है और अपयश दूसरों को दिलाता है।

"राजन् ! जीवन में जो सुख-दुख प्राप्त होते हैं, उसके मूल कारण तो पुण्योदय तथा पापोदय ही हैं, जो दिखाई नहीं देते। दिखाई बाहरी व्यक्ति ही देते हैं, जो निमित्त मात्र होते हैं।

"राजन् ! इस समय पुण्योदय का समय आया है, जो तुम्हें भिन्न-भिन्न साधनों/निमित्तों से सुख दे रहा है।

"राजन् ! पुण्योदय के प्रभाव से तुम्हें जो सुख मिल रहा है, वह देवसुखों के समान है। लेकिन यह सुख भी वास्तविक सुख का अंश मात्र भी नहीं है। वास्तविक सुख तो तुम्हें तब प्राप्त होगा, जब तुम दस कन्याओं से विवाह करोगे।"

"भगवन् !" गुणधारण बोला—"मैं तो मदनमंजरी का भी त्याग करके दीक्षा लेना चाहता हूँ। फिर वे दस कन्याएँ कौन-सी हैं, जिनके साथ विवाह करके मैं 'वास्तविक सुख' प्राप्त करूँगा ?"

निर्मलाचार्य बोले—

"राजन् ! दस कन्याओं का परिचय देने से पहले मैं तुझे बता दूं कि उनके साथ परिणय किये बिना तेरा दीक्षा लेना व्यर्थ है। उन दसों के बिना तेरा विकास नहीं हो सकता।

"यह विवाह कर्मपरिणाम राजा स्वयं ही करायेंगे। तुम्हें तो बस उनके योग्य बनना है। कुछ विशिष्ट गुणधारण करके तुम दस कन्याओं के योग्य बनोगे और तभी अपना गुणधारण नाम सार्थक करोगे। अब मैं तुम्हें एक-एक करके दसों कन्याओं का परिचय दे रहा हूँ।" □

[६] दस कन्याओं का परिचय

निर्मलाचार्य गुणधारण को दस कन्याओं के बारे में इस प्रकार बताने लगे—

"राजन् ! **चित्तसौन्दर्य'** नगर के राजा **शुभपरिणाम** की दो रानियाँ हैं—**निष्प्रकंपता** और **चारुता**। इन दोनों रानियों से उत्पन्न (१) **क्षान्ति** और (२) **दया** नामक दो कन्याएँ हैं।

"फिर **विशदमानस** नगर के **शुद्धाभिसन्धि** राजा की **शुद्धता** और **पापभीरुता** से उत्पन्न (३) **ऋजुता** और (४) **अचौर्यता** नामक दो कन्याएँ। इसके बाद **शुभ्रचित्त नगर के सदाशय** राजा की **वरेण्यता** रानी से पैदा हुई (५) **ब्रह्मरति** और (६) **मुक्तता** नामक दो कन्याएँ। **सम्यक्दर्शन** की (७) **विद्या** नामक मानसी कन्या। महाराज **चारित्रधर्मराज** की पत्नी **विरति** से उत्पन्न (८) **निरीहता** नामक कन्या। **शुभ्रमानस** नगर के राजा **शुभाभिसंधि** की **वरता** और **वर्यता** नामक रानियों से उत्पन्न (९) **मृदुता** और (१०) **सत्यता**।

"राजन् इस प्रकार : (१) क्षान्ति, (२) दया, (३) मृदुता, (४) सत्यता, (५) ऋजुता, (६) अचौर्यता, (७) ब्रह्मरति, (८) मुक्तता, (९) विद्या और (१०) निरीहता दस कन्याएँ हुईं।

यह कन्या-परिचय समाप्त हुआ तो कन्दमुनि ने पूछा—

"गुरुदेव ! गुणधारण का विवाह इन दस कन्याओं से कब और कैसे होगा ?"

इस पर आचार्य निर्मल सूरि बोले—

"इसके लिए गुणधारण को कुछ विशिष्ट गुण धारण करके उनका सतत पालन करना होगा। तब कर्मपरिणाम इसे दसों के योग्य समझेंगे। दसों के साथ विवाह हो जाने पर इसकी उनसे ऐसी प्रीति होगी कि किसी के तोड़ने से नहीं टूटेगी। अब मैं वे गुण बताता हूँ, जिन्हें धारण करके गुण-धारण को वस्तुतः गुणधारण बनना है—

"(१) **क्षान्ति** कन्या को प्राप्त करने के लिए, मैत्री भाव का विकास, दूसरों द्वारा किये गये पराभव को सहने की शक्ति, पर-प्रीति का अनुमोदन, तिरस्कार करने वालों को हितकारी समझना, क्योंकि वे कर्मनिर्जरा के हेतु होते हैं।

"(२) **दया** के अभिलाषी को प्राणिमात्र को लेशमात्र भी संतापित न करना, परोपकार के लिए सदा तत्पर रहना चाहिए।

"(३) **मृदुता** के आकांक्षी को जातिमद, कुलाभिमान, धनाभिमान, रूपाभिमान आदि सबसे अलग रहकर विनय का अभ्यास करना चाहिए।

"(४) **सत्यता** की प्राप्ति के लिए, असत्य, अर्द्धसत्य का त्याग, परनिन्दा-चुगली का त्याग, व्यंग्य, वक्रोक्ति, कटूक्ति, हास-परिहास का त्याग कर देना चाहिए।

"(५) **ऋजुता** के लिए कुटिलता, दूसरों को ठगना आदि का त्याग करना चाहिए।

"(६) **मुक्तता** के लिए विवेक को आत्ममय करना, आत्मा को बाह्य-अन्तरंग परिग्रह से मुक्त रखना, परिग्रह का दमन करना चाहिए।

"(७) **अचौर्यता** के लिए परपीड़न, परद्रोह, परधनहरण आदि की वृत्ति-प्रवृत्ति का सर्वथा त्याग करना चाहिए।

"(८) **ब्रह्मरति** के लिए स्त्री मात्र को माता समझना चाहिए।

"(९) **विद्या** को चाहने वाले को जो कुछ दिखाई देता है; शरीर, शरीर से सम्बन्धित नाते-रिश्ते, धन, परिवार, सभी पुद्गल पदार्थों को नश्वर समझना चाहिए।

"(१०) **निरीहता** के इच्छुक को इच्छाओं का त्याग, भोग-अभिलाषा का त्याग करना चाहिए।

"कन्दमुनि ! राजा गुणधारण को इन समस्त गुणों का सतत अभ्यास करना चाहिए। जब यह गुणधारण इन गुणों का विकास करेगा तब कर्म-

परिणाम के सहयोग इसे दसों कन्याएँ प्राप्त होंगी। फिर कर्मपरिणाम चारित्रधर्मराज को उसकी सेना के साथ इसके पास भेजेंगे। उसको सेना के सुभटों के गुणों का अभ्यास भी यह गुणधारण करेगा। फिर वे स्वामि-भक्त सुभट मोह की सेना को मार भगायेंगे। इस प्रकार गुणधारण अपने बल से अपने भावशत्रुओं को जीतकर अपने भावराज्य का स्वामी बनेगा और दसों कन्याओं के साथ अनन्त सुख का भोग करेगा।"

"मेरा एक प्रश्न और है।" गुणधारण ने आचार्य निर्मल सूरि से कहा—"भगवन्! आपने यह भी कहा था कि पुण्योदय द्वारा जो सुख मुझे प्राप्त हुआ है, वह वास्तविक सुख का अंश मात्र है, यह बात मेरी समझ में नहीं आई।

"भगवन! देवसुता सी मदनमंजरी की प्राप्ति, दहेज में दुर्लभ रत्नों की प्राप्ति। विद्याधरों की सेवा, देवसम भोग-विलास, चारों ओर यश फैलना, शत्रुओं का दमन। अभिप्राय यह कि ऐसा कौन-सा सुख है, जो मुझे प्राप्त नहीं हुआ है? फिर भी मेरा यह सुख वास्तविक सुख का अंश मात्र क्यों है?"

आचार्य निर्मल सूरि बोले—

"राजन्! वास्तविक सम्पूर्ण सुख का स्वरूप तुम अपने अनुभव से ही जान सकते हो।"

गुणधारण बोला—

"वह अनुभव मुझे कब और कैसे प्राप्त होगा?"

"तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर मैं पहले बता चुका हूँ।" आचार्य निर्मल सूरि बोले—"जब तुम्हारा विवाह उपर्युक्त दस कन्याओं से होगा। तुम्हारा उनके साथ अटूट और प्रगाढ़ प्रेम होगा, तब तुम उनके साथ उद्दाम लीलाएँ करते हुए सम्पूर्ण सुख का अनुभव करोगे।"

कन्दमुनि ने आचार्य से पूछा—

"गुरुदेव! गुणधारण की यह अभिलाषा कब पूर्ण होगी? कितना समय लग जाएगा?"

"मुनिवर! इसमें राजा को छह महीने लगेंगे।"

"लेकिन मैं छह महीने तक प्रतीक्षा नहीं कर सकता।" गुणधारण व्यग्र होकर बोला—"मैं तो अभी इसी समय दीक्षा लेना चाहता हूँ। मुझे अभी दीक्षा दीजिए।"

"दीक्षा का अर्थ मुनि वेश धारण करना कदापि नहीं है।" आचार्य

निर्मल सूरि ने गुणधारण से कहा—"दीक्षा का वास्तविक अभिप्राय उन गुणों का विकास और अभ्यास करना है, जो दस कन्याओं को प्राप्त करने के लिए मैंने तुम्हें बताये हैं।

"राजन् ! गुणों के बिना दीक्षा के लिए जल्दी करना व्यर्थ है। द्रव्य लिंग—बाह्य साधुवेश तो तुमने पहले भवों में भी कई बार धारण किया है। लेकिन भावलिंग न होने से अथवा गुणों का आचरण न करने से तुम्हारा विकास नहीं हो सका। अतः धैर्य के साथ पहले गुणों का विकास करो, तभी दीक्षा लेना श्रेयस्कर रहेगा।"

गुणधारण के लिए कन्दमुनि ने एक प्रश्न आचार्य निर्मल सूरि से और किया—

"गुरुदेव ! दस कन्याओं के साथ गुणधारण का विवाह किस क्रम से होगा ?"

आचार्य बोले—

"जब राजा गुणधारण मेरे द्वारा कथित गुणों का अनुशीलन करेगा, तब कुछ समय बाद सद्बोध मंत्री अपनी विद्या नामक कन्या को लेकर राजा के पास आयेगा और उसका विवाह इससे कर देगा। फिर सद्बोध मंत्री गुणधारण के पास ही रहने लगेगा। यह सद्बोध मंत्री इतना कुशल, जानकार और विश्वासनीय है कि फिर राजा को हमारे-जैसों के उपदेशों की खास जरूरत नहीं रहेगी। राजा गुणधारण उसके परामर्श से आचरण करता रहेगा।"

× × ×

"बहिन ! अगृहीतसंकेता, इसके बाद मैं आचार्य निर्मल सूरि, कन्द-मुनि तथा अन्य श्रमणों की वंदना करके राजभवन आ गया। उसके बाद मेरा पहला विवाह विद्या के साथ हुआ। मेरे अन्तरंग राज्य में महामोह और चारित्रधर्मराज की सेनाओं में बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। उसका वर्णन भी बड़ा रोचक है। वह सब भी मैं तुम्हें सुनाता हूँ। बस, अब तो मेरी आत्मकथा समाप्त होने को ही है। मैंने बड़े-बड़े पापड़ बेले, बड़े-बड़े कष्ट उठाये। गुणधारण के भव में ही मेरी कर्मस्थिति क्षीण हुई थी। शेष भाग भी तुम उसी धैर्य से सुनो, जैसे अब तक सुनती रही हो।" □

[१०] विद्या से विवाह : अन्तरंग युद्ध

जिन गुणों को धारण करने का आदेश आचार्य निर्मलसूरि ने राजा

गुणधारण को दिया, वह उन सब गुणों का अभ्यास करते हुए समय बिताने लगा। एक बार उच्च विचारों का चिन्तन करते हुए गुणधारण गहरी नींद में सो गया। रात्रि के अन्तिम प्रहर में उसे बड़ा आनन्द हुआ और वह जागकर इधर-उधर देख ही रहा था कि तभी उसने विद्याकुमारी को साथ लिये सद्बोधमंत्री को देखा। विद्या भी गुणधारण (संसारी जीव) को देखकर मुग्ध हो गई। फिर सद्बोध मंत्री ने विद्याकुमारी का विवाह सदागम आदि की साक्षी में गुणधारण के साथ कर दिया। अनन्त/अगणित वर्षों के बाद यह समय आया था, जब संसारी जीव गुणधारण के भव में विद्याकुमारी के योग्य वर बन पाया था। इस प्रकार गुणधारण की रात्रि आनन्दपूर्वक बीत गई।

प्रातः उठकर नित्य कर्म से निवृत्त होने के बाद गुणधारण निर्मलाचार्य की वंदना करने राजोद्यान पहुँचा। वन्दन-नमन करने के बाद उसने आचार्य निर्मल सूरि को रात्रि का वृत्तान्त बताने के बाद पूछा—

"भन्ते ! मुझे रात्रि में हर्षोल्लास और अतिशय आनन्द की उपलब्धि और अनुभूति क्यों कर हुई ?"

इस प्रश्न के उत्तर में निर्मलाचार्य गुणधारण से कहने लगे—

"राजन् ! तुमने जो सद्गुणों का विकास किया है, उससे कर्मपरिणाम राजा तुम पर प्रसन्न हुआ है। उसी ने सद्बोध मन्त्री को विद्याकुमारी को लेकर तुम्हारे पास भेजा था। बाद में मन्त्री ने चारित्रधर्मराज से भी पूछा और अपनी पुत्री विद्या का विवाह तुम्हारे साथ कर दिया।

"इसके अतिरिक्त जो तुम्हें नहीं मालूम, वह भी मैं तुम्हें बताता हूँ। तुम्हारे अन्तरंग राज्य में जो अन्तरंग युद्ध हुआ और जो परिणाम निकला, उसी कारण तुम्हें हर्षोल्लास और अतिशय आनन्द की उपलब्धि हुई है। मैं तुम्हें अन्तरंग युद्ध का पूरा वृत्तान्त सुनाता हूँ।"

× × ×

गुणधारण के साथ विद्याकुमारी का विवाह करने सद्बोध मन्त्री जा रहा है, इस संवाद को सुनते ही महामोह के सभासदों में हड़कम्प मच गया। तुरन्त पापोदय की अध्यक्षता में एक आपातकालीन सभा बुलाई गई। सभा के मध्य विषयाभिलाष ने कहा कि यदि सद्बोध मन्त्री संसारी जीव (गुणधारण) के पास पहुँचने में सफल हो गया तो हम सब बेमौत मारे जायेंगे। अतः हमें सद्बोध मन्त्री का मार्ग रोकना चाहिए।

"लेकिन हमारी स्थिति तो बहुत नाजुक है।" सभा के अध्यक्ष पापोदय ने कहा—"जब राजा कर्मपरिणाम हमारे पक्ष में थे, तब हम सब दुर्जेय और प्रबल थे। पर अब तो वे संसारी जीव (गुणधारण) के पक्ष में हैं। हमें अवसर की प्रतीक्षा करनी चाहिए। इसके अलावा कोई चारा नहीं है।"

पापोदय की यह बात सुनकर ज्ञानावरण बोला—

"मेरे रहते सद्बोध संसारी जीव के पास नहीं पहुँच सकता। तुम लोग मेरे साथ चलो या यहीं रहो, मैं तो सद्बोध से युद्ध करने यह चला।"

ज्ञानसंवरण क्रोध में पैर पटकते हुए चलने लगा तो उसके पीछे-पीछे पापोदय आदि भी हो लिये। जब सद्बोध मन्त्री विद्या को लेकर संसारी जीव—गुणधारण के पास चला तो उसने देखा कि ज्ञानसंवरण, पापोदय आदि उसका रास्ता रोके खड़े हैं। सद्बोध मन्त्री ने भी अपनी सेना को उत्साहित किया। बस फिर क्या था, दोनों पक्षों की सेनाओं में मार-काट होने लगी। पापोदय, ज्ञानसंवरण आदि की सेना काले रंग की थी और सद्बोध मन्त्री के पक्ष की चारित्रधर्मराज की सेना श्वेत-धवल रंग की थी।

इस विकट युद्ध की सूचना जब कर्मपरिणाम राजा को मिली तो वे अपने कर्तव्य के विषय में सोचने लगे—प्रकट रूप में तो मुझे किसी का पक्ष नहीं लेना चाहिए, क्योंकि दोनों पक्ष मुझे तटस्थ मानते हैं। यद्यपि इस समय चारित्रधर्मराज की सेना का पक्ष लेना ही उचित है, पर इससे मोहादि मुझसे रुष्ट हो जायेंगे। मैं तो सदा मोहादि बांधवों के ही आश्रित रहता हूँ। अतः मैं गुप्त रूप से चारित्रधर्मराज की सेना की ही शक्ति बढ़ाऊँ, जिससे मोहादि मेरे बन्धु रुष्ट न हों।

ऐसा सोचकर कर्मपरिणाम ने सद्बोध मन्त्री के साथ वाली सेना की शक्ति बढ़ा दी।

× × ×

निर्मलाचार्य ने गुणधारण से कहा—

"राजन्! कर्मपरिणाम ने गुप्त रूप से तुम्हारी भावनाओं में वृद्धि की। इससे सद्बोध के पक्ष की सेना प्रबल हो गई और उसने पापोदय, ज्ञानसंवरण आदि को बुरी तरह परास्त कर दिया। युद्ध में सद्बोध मन्त्री की जीत देखकर तू स्वयं उसके निकट गया। तुझे हर्षोल्लास की उपलब्धि हुई और मन्त्री ने अपनी पुत्री विद्या का विवाह तेरे साथ कर दिया।"

इतना जानने के बाद गुणधारण ने निर्मलाचार्य से पूछा—

"भगवन् ! परास्त हुए पापोदय और ज्ञानसंवरण की अब क्या स्थिति है ?"

इस पर निर्मलाचार्य बोले—

"वर्तमान में वे सब अवसर की प्रतीक्षा में समय व्यतीत कर रहे हैं और तुम्हारे अन्तरंग राज्य में ही छिपे बैठे हैं। इनमें से जो बाहर आये थे वे नष्ट हो गए, अर्थात् भोगे जाकर समाप्त हुए।

"राजन् ! अवसर आने पर वे सब मिलकर युद्ध छेड़ेंगे। तब तुम्हें सद्बोध मन्त्री की सलाह से उन्हें परारिज करना चाहिए।"

"जैसी आज्ञा" कहकर गुणधारण ने निर्मलाचार्य से विदा ली और आचार्य भी मासकल्प समाप्त होने के कारण विहार कर गये। □

[११] शेष नौ कन्याओं से विवाह : संसारी जीव का उत्थान

निर्मलाचार्य के आदेशानुसार गुणधारण सतर्क-सावधान अथवा सचेष्ट रहकर सद्गुणों का अभ्यास करने लगा। उसकी चित्तवृत्ति अटवी में सद्बोध मंत्री बस गया। एक बार मंत्री ने समाधि नामक दो पुरुषों से परिचय कराया। उनमें एक समाधि-पुरुष का नाम 'धर्म' और दूसरे का 'शुक्ल' था। गुणधारण मन्त्री की सलाह से दोनों समाधि नामी पुरुषों का सत्कार किया।

उसके बाद सद्बोध मन्त्री ने विद्युत्, पद्म और शुक्ल वर्ण की तीन स्त्रियों से गुणधारण का परिचय देते हुए कहा—

"स्वामिन् ! ये तीनों स्त्रियाँ धर्म की सेविकाएँ हैं। ये आपके लिए बहुत उपयोगी हैं। ये तीन लेश्याएँ हैं। इनके बिना समाधि पुरुष आपके पास रह ही नहीं सकते। अतः आप इनके साथ भी अच्छा व्यवहार करें।"

इसके बाद गुणधारण उपर्युक्त तीनों लेश्याओं के अनुसार आचरण करने लगा। सदागम, सम्यग्दर्शन, गृहीधर्म का भी पूर्ण सम्मान उसने किया। सद्बोध की तो वह प्रत्येक बात मानता ही था। इस प्रकार निर्मलाचार्य के विहार करने के बाद पाँच महीने बाद तक गुणधारण ने इतना विकास कर लिया कि राजा कर्मपरिणाम पूर्णतः उसके अनुकूल हो गये।

गुणधारण के रूप में संसारी जीव के पूर्णतः अनुकूल होने के बाद राजा कर्मपरिणाम स्वयं ही चित्तसौन्दर्य आदि नगरों में गए और शुभ-परिणाम आदि राजाओं को प्रेरणा दी कि वे अपनी-अपनी कन्याओं का विवाह संसारी जीव के साथ करें। उसके बाद पुण्योदय, कालपरिणति आदि संसारी जीव—गुणधारण के पास पहुँच गये। फिर कर्मपरिणाम की आज्ञा से कन्याओं के पिता सभी राजा सात्त्विकमानसपुर में विवेक पर्वत पर स्थित जैनपुर में अपनी-अपनी पुत्रियों को लेकर पहुँच गये।

उधर मोहादि की सेना में पुनः खलबली मच गई।

विषयाभिलाष मन्त्री ने मोह राजा से कहा कि देव ! यदि संसारी जीव का विवाह क्षान्ति आदि नौ कन्याओं के साथ हो गया तो अनर्थ हो जाएगा। नीति यह है कि जब तक कार्य का अन्त दिखाई न दे, तब तक लक्ष्य सिद्ध होने तक निर्भय होकर प्रयत्न करना चाहिए, भले ही डर लगता रहे।

मोह राजा ने अपने मन्त्री विषयाभिलाष का समर्थन किया और फिर सभी योद्धा युद्ध करने पहुँच गये। लेकिन भीतर से सब दुर्बल थे, क्योंकि सबको यह भय था कि इन दिनों कर्मपरिणाम हमारे पक्ष में नहीं है। फिर युद्ध न कर सभी मिलकर भवितव्यता के पास गये और पूरी परि-स्थिति बताकर बोले—

"देवी ! अब हमें क्या करना चाहिए ?"

भवितव्यता बोली—

"यह समय मेरे पति संसारी जीव से युद्ध करने का नहीं है। कर्म-परिणाम उसके पूर्णतः अनुकूल हैं। अब यदि तुमने युद्ध करने का दुस्साहस किया तो मारे जाओगे। अतः छिपकर बैठो और अवसर की प्रतीक्षा करो। अवसर आने पर मैं स्वयं तुमको सूचित कर दूंगी।"

बस, फिर मोहादि सब शत्रु अपनी योग शक्ति से चित्तवृत्ति अटवी में छिप गये। छिपकर भी ये संसारी जीव को प्रभावित करते थे। शत्रुओं के प्रभाव से संसारी जीव—गुणधारण सोचता था कि फिलहाल नौ कन्याओं के साथ अपने विवाह को स्थगित कर दूं और भोगों का सेवन करूं, क्योंकि फिर यौवन नहीं रहेगा। यह संकल्प-विकल्प सद्बोध मन्त्री की अनुपस्थिति में हो रहा था, तभी मन्त्री जी आये और उन्होंने संसारी जीव—गुणधारण को समझाया कि विषयों का भोग भोगते हुए तो तुम्हें अनेक जन्म बीत

गये। क्या तुम्हारी तृप्ति हुई ? नहीं हुई। यदि इन नौ कन्याओं से विवाह कर लोगे तो सदा तृप्त रहोगे।

देव ! तुम अपने सैन्य बल से अपने उन सभी शत्रुओं को हटा दो, जो तुम्हारे उत्थान में बाधक बनकर तुम्हारे मन को विचलित कर रहे हैं।

वहाँ कर्मपरिणाम भी उपस्थित थे। उन्होंने सद्बोध मन्त्री से कहा कि तुम संसारी जीव को उसका स्वबल--सैन्य बल दिखा दो, जिससे यह अपने शत्रुओं को पराजित कर सके।

फिर सद्बोध मन्त्री गुणधारण रूपी संसारी जीव को चित्त समाधान मण्डप में ले गया। वहाँ उसने चारित्रधर्मराज और उसकी सेना को दिखाया। संसारी जीव ने अपनी चतुरंगिणी सेना तैयार की और युद्ध का बिगुल बजा दिया। इस युद्ध तैयारी को देखने भर से ही मोहादि शत्रु भाग खड़े हुए। इनमें कुछ तो नष्ट हुए और कुछ छिपकर बैठ गए।

फिर विवाह की तैयारियाँ हुईं। पहले आठ माताओं की स्थापना की गई। सद्बोध मन्त्री ने गुणधारण रूप में संसारी जीव को अष्ट माताओं की शक्ति का परिचय दिया कि पहली माता के प्रभाव से मुनि लोग साढ़े तीन हाथ दूर तक दृष्टि रखकर चलते हैं, जिससे मार्ग में किसी प्रकार का विक्षेप न हो। उस पहली माता का नाम ईर्या समिति है। फिर शेष सात भाषा समिति, एषणा समिति, आदि की शक्तियों का परिचय भी दिया।

उसके बाद चारित्रधर्मराज के तेज से अग्नि कुण्ड स्थापित हुआ। तीनों शुभ लेश्याओं ने वधुओं को स्नान कराया। सद्बोध मन्त्री पुरोहित बने। उन्होंने कर्मरूपी समिधाएँ अग्निकुण्ड में डाली। सदागम ज्योतिषी बने। बड़े हर्षोल्लास के साथ क्षान्ति, दया, सत्यता आदि नौ कन्याओं का विवाह संसारी जीव—गुणधारण के साथ कर दिया गया। विद्या कुमारी सहित अब संसारी जीव की दस पत्नियाँ हो गई।

× × ×

संसारी जीव ने अगृहीतसंकेता से कहा—

'बहिन अगृहीतसंकेता ! इस प्रकार गुणधारण राजा के भव में मैं उत्थान की सीढ़ियाँ चढ़ गया। लेकिन मोहादि शत्रुओं ने मेरा अभी भी पीछा नहीं छोड़ा था। यह कहावत तो तुमने सुनी ही होगी कि रस्सी जल गई, पर ऐंठ नहीं गई ? यही हाल मोहादि शत्रुओं का भी हुआ।

"जब मेरा विवाह विद्यासहित दसों राजकन्याओं से सम्पन्न हो गया तो मोह पूरी तरह नष्टप्राय था, पर वह जली रस्सी की तरह मेरे पास ही था। वैश्वानर आदि भी सब भाग गए। मोह वैश्वानर, हिंसा आदि नौ योद्धाओं के साथ छिपकर बैठा था। मेरे सभी शत्रु यद्यपि पूर्णतः नष्ट नहीं हुए थे, पर वे निर्बल और शान्त थे, इससे मुझे परम संतोष, प्रसन्नता और उल्लास की उपलब्धि हुई थी। अब मैं अपनी दसों पत्नियों के साथ उद्दाम लीला कर रहा था। मैं अभी वेश से मुनि नहीं बना था, पर भाव से मैं श्रमण हो चुका था। मेरे सद्भाग्य से निर्मलाचार्य श्रमणों सहित पुनः सप्रमोद नगर आये और राजोद्यान आह्लादमंदिर में ठहरे।

"मैं मुनि महाराज की वंदना करने गया। वे बोले कि राजन्! भावदीक्षित तो तुम हो ही गए, अब द्रव्यदीक्षा—वेशदीक्षा भी ले लो। मैं दीक्षा लेकर मुनि बन गया।

"हे अगृहीतसंकेता! मुनि गुणधारण के रूप में मेरा चारित्रधर्मराज से अतिशय प्रेम हुआ। तप और संयम से मैंने अपनी चित्तवृत्ति को अत्यन्त निर्मल कर लिया। इस प्रकार मुनिचर्या का पालन करते हुए मैंने बहुत समय बिताया और फिर भवितव्यता का संकेत पाकर मैंने संलेखना—अनशन किया। मेरी पत्नी भवितव्यता मुझ पर परम प्रसन्न की। उसने नई गोली देकर मुझे विबुधालय—देवलोक भेज दिया। मैं वहाँ प्रथम ग्रैवेयक में तेईस सागरोपम तक रहा। उसके बाद भवितव्यता ने पुनः नई गोली देकर मुझे मनुजगति के ऐरावत विभाग में भेज दिया। वहाँ मैं सिंहपुर नगर के क्षत्रिय महेन्द्र की पत्नी वीणा के उदर से जन्मा और मेरा नाम गंगाधर रखा गया।

"अगृहीतसंकेता! गंगाधर के भव में मैंने बहुत यश प्राप्त किया। मुझे जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ और मैंने जाना कि पूर्व भव में मैं देव था और उससे पूर्व के भव में गुणधारण था। गुणधारण के भव में मैंने भाव और द्रव्य—दोनों प्रकार की दीक्षा ली थी। यह याद आते ही मैं पुनः दीक्षा लेने का निश्चय कर बैठा और सुघोष नामक आचार्य से श्रामणी दीक्षा लेकर मुनिचर्या का पालन किया। मुनि गंगाधर के रूप में भी मैंने संलेखना अनशन करके शरीर छोड़ा और भवितव्यता द्वारा दी गई गोली लेकर दूसरे ग्रैवेयक में गया। इस क्रम से मैं पाँच बार मानव बना और पाँच ही बार ग्रैवेयक देव बना। पांचवें ग्रैवेयक में मैं सत्ताइस सागरोपम तक रहा। इस प्रकार मैंने अत्यन्त सुन्दर और अत्यन्त पवित्र कल्याण माला प्राप्त की।

"बहिन अगृहीतसंकेता ! इसके बावजूद भी मेरा अधःपतन हुआ। यश और कीर्ति ने किस प्रकार मुझे गौरव—गरिमा के पहाड़ से नीचे गर्त में गिराया, यह भी तुम सुनो। बड़े भाग्य से मेरा उत्थान हुआ था, पर मैं मोक्षगामी न होकर पुनः भवभ्रमण करने लगा। छिपे बैठे और निर्बल बने मोहादि मेरे शत्रु पुनः सबल-प्रबल होकर मुझ पर हावी हो गए। यह प्रसंग भी मैं तुम्हें सुनाता हूँ।" □

[१२] **शिखर से गर्त में : उत्थान से पतन**

गुणधारण के भव में संसारी जीव का उत्थान हुआ। वह पहली ग्रैवेयक में देव बना। फिर गंगाधर मुनि के भव के बाद उसे उत्तम कल्याण परम्परा प्राप्त हुई। पाँचवें ग्रैवेयक की आयु पूर्ण कर वह पुनः भवितव्यता की गोली से मनुजगति में पहुँचा। वहाँ वह धातकीखण्ड स्थित भरत क्षेत्र के शंखनगर के राजा महागिरि की रानी भद्रा की कोख से जन्मा। उसका नाम सिंहकुमार रखा गया।

पांच धायों से पालित-पोषित राजकुमार सिंह युवा हुआ तो उसने धर्मबंधु नामक ज्ञानी मुनि के दर्शन किये और उनसे श्रामणी दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा ग्रहण कर निष्ठा के साथ मुनिचर्या का पालन किया और सबसे बड़ी बात यह हुई कि सिंह मुनि के रूप में संसारी जीव ने चौदह पूर्वों का विशिष्ट ज्ञान प्राप्त कर लिया। इस उत्कृष्ट ज्ञान प्राप्ति में सदागम का पूर्ण सहयोग उसे प्राप्त था ही।

गुरुदेव धर्मबंधु ने विशिष्ट ज्ञानी और योग्य जानकर मुनि सिंह को श्री संघ का आचार्य बना दिया। उस अवसर पर देव-दानव और मनुष्यों ने आचार्य सिंह का अभिनंदन एक बड़ा महोत्सव करके किया। उस अवसर पर गुरुवर धर्मबंधु मुनि ने शिष्य आचार्य सिंह की बड़ी प्रशंसा की कि छोटी उम्र में ही सिंह ने विशिष्ट ज्ञान प्राप्त कर आचार्यत्व प्राप्त कर लिया।

धीरे-धीरे आचार्य सिंह की प्रसिद्धि चारों ओर फैल गई। बड़े-बड़े विद्वान सिंह आचार्य से पराजित होकर नमन करने लगे। विद्वान, ज्ञानी जन आचार्य सिंह के पाण्डित्य की प्रशंसा करते-करते तृप्त नहीं होते थे।

राजा लोग उनके चरणों में अपना मुकुट रख देते। देव-दानव-मानव उनकी न केवल स्तुति करते—सेवा-पूजा भी करते थे।

आचार्य सिंह के रूप में संसारी जीव की प्रशस्ति और कीर्ति देखकर पापिनी भवितव्यता ईर्ष्या से जल-भुन गई। उसे अपना वह वचन याद आ गया, जो उसने मोह, पापोदय आदि को दिया था, योग्य अवसर आने पर मैं आपको सूचित करूँगी। यह सोचकर भवितव्यता ने मोह, पापोदय आदि से कह दिया कि तुम्हारा कार्य सिद्ध होने का अवसर आ गया है। संसारी जीव इन दिनों कीर्ति अथवा यश के वश में हो गया है।

इस संवाद से प्रसन्न होकर पापोदय ने सैन्य संगठन कर संसारी जीव पर धावा बोल दिया। इस सेना में मिथ्यादर्शन, ज्ञानसंवरण, वैश्वानर, शैलराज आदि थे। शैलराज (अहंकार) ऋद्धि-गौरव, रस-गौरव, साता-गौरव को लेकर चला। उसके बाद आर्तध्यान रौद्रध्यान को भेजने का निश्चय विषयाभिलाष ने किया।

इन सबके पहुँच जाने से आचार्य सिंह में जो परिवर्तन हुआ, उससे उनके मन में ये विचार उठने लगे—

"मेरा पाण्डित्य जगत् में अद्वितीय और असाधारण है। मैं युगपुरुष हूँ। मेरे जैसा ज्ञानी न तो पहले कभी हुआ और न होगा। विश्व की समस्त कला और विद्याओं ने मात्र मेरा ही आश्रय लिया है।"

आचार्य सिंह (संसारी जीव) का ऐसा चिंतन देखकर शैलराज बहुत प्रसन्न हुआ। शैलराज के साथ मिथ्यादर्शन तो रहता ही है। इस प्रकार शैलराज, मिथ्यादर्शन और ज्ञानसंवरण—तीनों मिलकर सिंह के राज्य में प्रवेश कर उससे प्रेम सम्बन्ध बढ़ाया। इसका परिणाम यह हुआ कि आचार्य सिंह शास्त्रों का गूढ़ार्थ भूलने लगे, प्रमाद और आलस्य से साढ़े चार पूर्व पूर्णतः भूल गए।

फिर सब शत्रुओं ने संगठित होकर सिंह आचार्य के रूप में संसारी जीव की चित्तवृत्ति अटवी में स्थित प्रमत्तता नदी में बाढ़ पैदा कर दी, इससे 'ऋद्धि', 'रस' और 'साता'—तीनों गौरव अपनी-अपनी शक्ति बढ़ाने लगे। ऋद्धि-गौरव के वशीभूत आचार्य सिंह की यह धारणा बनी कि देव-दानव मेरी पूजा करते हैं। अणिमा, गरिमा आदि सिद्धियाँ मेरे पास हैं। रस-गौरव के वशीभूत सरस, स्वाद वाले पदार्थों को खाने की रुचि आचार्य सिंह में इतनी बढ़ गई कि वे साधुधर्म के विरुद्ध सुस्वादु भोजन की माँग

करने लगे। साता-गौरव के प्रभाव से आचार्य सिंह रेशमी, कोमल, जड़ाऊ कीमती से कीमती वस्त्रों को पाकर सन्तोष अनुभव करते थे।

इन तीनों गौरवों के वशीभूत सिंह मुनि ने उग्र विहार करना छोड़ दिया और शिथिलाचारी बन गए। आर्तध्यान ने उनकी शान्ति का हरण कर लिया। साधु वेश के कारण यद्यपि रौद्रध्यान उन्हें अधिक हानि नहीं पहुँचा सकता था, पर वह उनके आस-पास अवश्य रहता था। कृष्ण, नील और कपोत—तीनों लेश्याएँ शत्रु के कार्यों को गति देती थीं, जिससे आचार्य सिंह अधम बनते जा रहे थे।

शत्रुओं ने मिलकर उनकी चित्तवृत्ति अटवी में पूरा अधिकार कर लिया। चित्तविक्षेप मण्डप, तृष्णा वेदी, विपर्यास सिंहासन आदि सब सज्जित हो गए। चारित्रधर्मराज को अपनी सेना सहित छिप जाना पड़ा। अन्ततः आचार्य सिंह मुनि वेश में होकर भी मिथ्यादृष्टि बन गये।

× × ×

"बहिन अगृहीतसंकेता! इस तरह आचार्य सिंह के रूप में मेरा पतन हो गया। मेरी कल्याण परम्परा समाप्त हो गई। मेरे सब शत्रु प्रबल हो गए। मेरी पत्नी जो बड़ी निर्मम है, उसने आयुष्यराज से विचार विमर्श किया। मैं साधु होकर भी असाधु था। मेरी सिंह आचार्य के भव वाली गोली घिस गई। भवितव्यता ने मुझे नई गोली दी और आयुष्यराज से सम्पर्क कर एकाक्ष निवास नगर में पहुँचा दिया। नई-नई गोलियाँ देकर मुझे इस नगर के कई मुहल्लों में घुमाया। मुझे पंचाक्ष पशु संस्थान में ले जाया गया। वहाँ मेरी भावना कुछ शुद्ध हुई। इससे मुझे विबुधालय भेजा गया। पंचाक्ष पशु संस्थान और विबुधालय के बीच मेरा आना-जाना कई बार हुआ। मैं व्यंतर और दानव श्रेणी का देव बना। □

[१२] भव भ्रमण परम्परा : आत्मकथा का समापन

अपनी भवभ्रमण की परम्परा में संसारी जीव कभी-कभी अकाम निर्जरा प्राप्त कर लेता या हो जाती, जिससे शुभ भावना उत्पन्न होती और वह व्यन्तर देव बनता। ऐसे ही शुभ परिणामों के कारण संसारी जीव सौधर्म देवलोक में भी गया। एक बार पशु, एक बार देव के भव-भ्रमण का उसका क्रम चलता रहा।

इस क्रम में संसारी जीव अनेक बार मानवावास भी गया। कर्मभूमि और अकर्मभूमि—भोग-भूमि में एक-दो और तीन पल्योपम तक रहकर कल्पवृक्षों से अपनी इच्छाएँ पूर्ण कीं।

× × ×

संसारी जीव बोला—

"अगृहीतसंकेता ! यहाँ मेरे कई भवों के परिचित सदागम बैठे हैं। राजकुमार भव्यपुरुष और प्रज्ञाविशाला भी यहाँ हैं। तुम भी हो। तुम सब लोगों के सामने मैं चोर के रूप में बन्दी बनकर यहाँ आया हूँ। मैं चोर क्यों बना, इस प्रश्न को लेकर मैंने तुम्हें अपनी आत्म-कथा सुनानी शुरू की थी, जिसे तुमने बड़े धैर्य से सुना।

"बहिन अगृहीतसंकेता ! मैं चोर क्यों बना, इस प्रश्न का उत्तर देने से पहले मैं अपनी थोड़ी-सी बची आत्मकथा समाप्त कर दूं। अब तो बहुत थोड़ी ही शेष रही है।

"तो मैं अपनी पुन: चलने वाली भवभ्रमण परम्परा में खूब घूमा। कर्म-अकर्म भूमि में रहा। एक बार जब मैं कर्मभूमि में था तब मैंने अज्ञान के वशीभूत जल और अग्नि में झंपापात किया, पर्वतों से कूदा, विष खाया, पंचाग्नि तप किया। अनेक प्रकार के बाल तप तपे, अज्ञान तप किये। इनके प्रभाव से मैं अनेक बार ज्योतिषी देव बना। मैं जैन श्रमण भी बना, पर सम्यग्दर्शन-रहित होने से सुफल नहीं मिला। द्रव्य-दीक्षा के फल से मैं अनेक बार नौ ग्रैवेयक तक जाता रहा।

"अगृहीतसंकेता ! मैं इतना अधिक भटका, इसका मुख्य कारण यही था कि आचार्य सिंह के भव में मैं पूर्णतः शिथिलाचारी बन गया था। यदि मैं तभी अपने शत्रुओं से प्रीति न बढ़ाता, उनको नष्ट कर देता तो मैं कब का 'निवृत्ति नगर' पहुँच गया होता। पर मैं वहाँ नहीं पहुँच पाया और अपनी कुचेष्टाओं के कारण पुन: भवभ्रमण में पड़ गया। मेरी आत्मकथा समाप्त हुई। मुझे अब कुछ नहीं कहना। तुम्हें जो पूछना-कहना हो, कहो। मैं उसका उत्तर दूंगा।"

इतना कहकर संसारी जीव मौन हो गया। इतनी बड़ी आत्मकथा सुनने के अनन्तर अगृहीतसंकेता ने एक गहरा विश्वास छोड़ा, क्योंकि संसारी जीव की आत्मकथा की मुख्य श्रोता वही थी। □

[१४] **अनुसुन्दर चक्रवर्ती**

जिस व्यक्ति ने चोर के रूप में संसारी जीव नाम से अपनी कई जन्मों की कथा सुनाई, वह वस्तुतः चोर नहीं था। वह अनुसुन्दर नाम का एक चक्रवर्ती राजा और मोक्षगामी था। अपनी वैक्रिय लब्धि से उसने चोर का रूप धारण किया था। उसकी कथा सुनने वाले भव्यपुरुष, प्रज्ञाविशाला और अगृहीतसकेता के वास्तविक नाम ये नहीं थे। ये नाम उनकी प्रवृत्ति, स्वभाव और गुणों के कारण रखे गये थे। वस्तुतः ये अनुसुन्दर चक्रवर्ती उर्फ संसारी जीव के पिछले जन्मों के संगी-साथी थे, जो अपना जन्म भूले हुए थे। अनुसुन्दर चक्रवर्ती उन्हें प्रतिबोधित करना चाहता था और इसीलिए संसारी जीव नामक चोर बनकर उसने अपनी आत्मकथा सुनाई थी। इसका रहस्य इस प्रकार सामने आया कि जब संसारी जीव उर्फ अनुसुन्दर चक्रवर्ती अपनी आत्मकथा सुनाकर मौन हो गया तो आगे श्रोता-वक्ता का कथन-प्रति कथन चला, जिससे भेद खुल गया।

जब संसारी जीव अपनी आत्मकथा समाप्त कर चुका तो अगृहीतसंकेता बोली—

"भाई संसारी जीव! तुमने अपने भवभ्रमण का कारण अपनी दुश्चेष्टाएँ बताया। पर मुझे तो लगता है कि इसके अन्य कारण भी रहे हैं। मेरी राय में यदि तुम सुस्थितराज महाराजा की आज्ञा का पालन स्थिर बुद्धि से करते रहते तो तुम्हें अनर्थकारी भव परम्परा से न गुजरना पड़ता।"

"वाह! तुम तो अब वास्तव में विचक्षण बन गई हो।" संसारी जीव ने प्रसन्न होकर कहा—"तुमने वास्तविक बात कही है। अभी तक तुम मेरी आत्मकथा का रहस्य नहीं जानती थीं, पर अब जान गई हो।

"बहिन अगृहीतसंकेता! मेरी आत्मकथा तो पूरी हो गई। अब मैं यह बताना चाहता हूँ कि मैं चोर क्यों बना।"

"सुनाओ।" अगृहीतसंकेता बोली—"मैं भी यह जानने को बहुत उत्सुक हूँ कि तुम चोर कैसे बने।"

अब संसारी जीव कथा का परिशिष्ट अंश सुनाने लगा।

× × ×

संसारी जीव की पत्नी भवितव्यता उसे नौवें ग्रैवेयक से मनुजगति

में क्षेमपुरी नामक नगरी में ले गई। मनुजगति में महाविदेह नामक एक बहुत विशाल बाजार है। इसी में क्षेमपुरी नामक एक नगरी है। उस स्थान को सुकच्छ विजय भी कहते हैं।

तो उस क्षेमपुरी नगरी में युगन्धर नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम नलिनी था। भवितव्यता ने नई गोली देकर संसारी जीव को महारानी नलिनी के गर्भ में प्रविष्ट किया। जिस रात संसारी जीव रानी नलिनी की कोख में बैठा, उसी रात रानी ने चौदह स्वप्न देखे। ऐसे चौदह स्वप्न चक्रवर्ती को जन्म देने वाली माता ही देखती है या फिर तीर्थंकर की माता देखती है।

यथासमय रानी ने एक तेजस्वी सुन्दर पुत्र को जन्म दिया। प्रियंकरी नामक दासी ने राजा युगंधर को पुत्र-जन्म की सूचना दी तो राजा ने प्रसन्न होकर उसे पर्याप्त पुरस्कार दिया। राजा ने बड़ी धूमधाम से राजपुत्र का जन्मोत्सव मनाया और यथासमय उसका नामकरण संस्कार करके अनुसुन्दर नाम दिया।

अनुसुन्दर का लालन-पालन बड़े लाड़-प्यार और वैभव के साथ होने लगा। वह बड़ा हुआ। कलाओं का अर्जन भी कर लिया और राजा युगन्धर ने उत्सव करके उसे युवराज भी बना दिया। समयान्तर से महाराज युगंधर और महारानी नलिनी का देहान्त हो गया। अनुसुन्दर राजगद्दी पर बैठा। वह क्षेमपुरी का राजा बना। उसे चौदह रत्नों की प्राप्ति हुई। निधियाँ मिलीं। उसने दिग्विजय भी करली और वह छह खण्ड धरा का शासक—चक्रवर्ती बना। अनुसुन्दर चक्रवर्ती के यश की धूम दिग्दिगन्त में फैल गई। अनुसुन्दर चक्रवर्ती के अन्तःपुर में चौसठ हजार सुन्दर रानियाँ थीं। उसने चौरासी लाख पूर्व तक वैभव का भोग किया। राज्यकाल के अन्त में चक्रवर्ती अनुसुन्दर एक बार अपने विशाल राज्य का निरीक्षण करने निकला।

घूमते-घूमते अनुसुन्दर चक्रवर्ती शंखपुर नामक नगर में पहुँचा। वहाँ वह अपनी सेना से अलग हुआ और अपने पुत्र राजवल्लभ को साथ लेकर शंखपुर नगर के राजोद्यान चित्तरम नामक उद्यान में गया।

× × ×

हे अगृहीतसंकेता! संसारी जीव अनुसुन्दर चक्रवर्ती बनकर अपने पुत्र राजवल्लभ को लेकर शंखपुर नगर के चित्तरम नामक उद्यान में पहुँच

गया, अर्थात् मैं वहाँ पहुँच गया। मैं अपनी स्थिति यहीं छोड़ आगे की बात कहता हूँ। अनुसुन्दर चक्रवर्ती के भव से पूर्व मैं आचार्य सिंह था, उससे पूर्व गुणधारण राजा था। जब मैं गुणधारण था तो मुझे कन्दमुनि ने उपदेश दिया था। उस उपदेश को सुनने वाले मेरा मित्र कुलन्धर और मेरी पत्नी मदनमंजरी भी थे। ये कहाँ जन्मे, भवितव्यता कन्दमुनि, कुलन्धर और मदनमंजरी के जीव को कहाँ ले गई, इनके बारे में भी कुछ सुनो, तब आगे मैं अपनी—अनुसुन्दर चक्रवर्ती की कथा कहूँगा। □

[१५] महाभद्रा और सुललिता

सुकच्छ विजय में ही हरिपुर नामक एक नगर है। वहाँ भीमरथ नामक राजा राज्य करता था। उसके सुभद्रा नामक रानी थी। रानी सुभद्रा समन्तभद्र नामक एक पुत्र की माता थी। कालान्तर में सुभद्रा रानी ने एक पुत्री को जन्म दिया, जिसका नाम महाभद्रा रखा गया।

राजकुमार समन्तभद्र की बहिन राजकुमारी महाभद्रा कन्दमुनि का जीव थी। कन्दमुनि ने एक बार बहुलिका से सम्पर्क करके छल-कपट किया था, अत: भवितव्यता ने उन्हें स्त्रीलिंग प्रदान किया।

राजकुमार समन्तभद्र ने सुघोष मुनि की देशना सुनकर वैराग्य प्राप्त किया और दीक्षा ले ली। मुनि समन्तभद्र ने ऐसा ज्ञानार्जन किया कि गुरुवर सुघोष ने उन्हें आचार्य पद दे दिया और वे समन्तभद्राचार्य के नाम से प्रसिद्धि पा गये।

उधर राजपुत्री महाभद्रा युवती हुई। राजा भीमरथ ने उसका विवाह गंधपुर के युवराज दिवाकर से कर दिया। युवराज दिवाकर गंधपुर के राजा रविप्रभ और रानी पद्मावती के पुत्र थे। कर्मोदय से महाभद्रा विधवा हो गई, दिवाकर की मृत्यु हो जाने से वह बेसहारा थी।

जीव का सबसे बड़ा और वास्तविक सहारा मात्र धर्म है। पति, पिता आदि झूठे सहारे हैं, यह सोचकर समन्तभद्राचार्य ने सोचा कि संसारी नाते से मेरी बहिन महाभद्रा इस समय धर्म ग्रहण करने की स्थिति में है, अत: उसे उपदेश देना चाहिए।

भ्रातृ मुनि समन्तभद्राचार्य की देशना से प्रतिबोधित होकर विधवा

युवराज्ञी महाभद्रा ने दीक्षा ले ली और साध्वी बन गई। उसने भी ज्ञानार्जन कर आचार्य समन्तभद्र से प्रवर्तिनी का पद पा लिया।

× × ×

रत्नपुर नामक एक नगर था। यहाँ मगधसेन नामक राजा राज्य करते थे। इनकी रानी का नाम सुमंगला था। सुमंगला रानी के एक पुत्री थी। उसका नाम सुललिता था।

राजकुमारी सुललिता पूर्वभव में मदनमंजरी थी। यह मदनमंजरी कनकोदर विद्याधर चक्रवर्ती की पुत्री और गुणधारण राजा रूपी संसारी जीव की पत्नी थी।

पूर्वभव की मदनमंजरी के जीव वाली राजपुत्री सुललिता पुरुष-द्वेषिणी थी। पुरुष और पति के नाम से इसे बहुत चिढ़ थी। विवाह के नाम से ही दूर भागती थी। उसके माता पिता—राजा मगधसेन और रानी सुमंगला उसके विवाह के लिए बहुत चिंतित रहते थे।

एक बार साध्वी संघ की प्रवर्तिनी आर्या महाभद्रा रत्नपुर नगर पहुँची। उनकी देशना सुनने राजा-प्रजा के हजारों नर-नारी पहुँचे थे। उन्हीं में अपने परिवार के साथ राजपुत्री नरद्वेषिणी सुललिता भी थी।

सुललिता ने देशना सुनी, पर वह अपने भोलेपन के कारण साध्वी महाभद्रा के वचनों का अर्थ-अभिप्राय हृदयंगम नहीं कर सकी—देशना से प्रतिबोधित या प्रभावित नहीं हुई। लेकिन साध्वी महाभद्रा से उसका पूर्वभव का परिचय—सम्बन्ध था, क्योंकि पूर्वभव में महाभद्रा कंदमुनि थी और सुललिता मदनमंजरी थी। इस सम्बन्ध के आकर्षण से उसने अपने माता-पिता से कहा कि मैं कुछ दिन प्रवर्तिनी आर्या महाभद्रा के साथ रहना चाहती हूँ। माता-पिता ने उसे अनुमति दे दी लेकिन एक शर्त भी रख दी—

"बेटी ! तुम जब तक चाहो, तब तक साध्वी जी के साथ विहार करो, उनके साथ रहो। लेकिन हमारी अनुमति के बिना दीक्षा ग्रहण मत करना।"

सुललिता ने माता-पिता की यह शर्त सहर्ष स्वीकार करली और प्रवर्तिनी महाभद्रा के साथ चली गई।

सुललिता ने साध्वी महाभद्रा को बहुत सुना, पर उस पर धर्म का रंग नहीं चढ़ा, यहाँ तक कि वह श्रावकाचार के बारे में भी नहीं जान-समझ पाई। कारण यह था कि उसकी बुद्धि ग्रहणशील नहीं थी और वह बहुत भोली थी।

जो भी हो साध्वी महाभद्रा सुललिता तथा साध्वियों के साथ विहार करते हुए शंखपुर नामक नगर में पहुँचीं और नन्द नामक एक श्रेष्ठी की पौषधशाला में ठहरीं।

यह शंखपुर वही था, जहां अनुसुन्दर चक्रवर्ती अपने राज्य का निरीक्षण करते हुए पहुँचा था और अपनी सेना को अलग करके अपने पुत्र राजवल्लभ को लेकर चित्तरम नामक उद्यान में गया था।

शंखपुर नगर में अनुसुन्दर चक्रवर्ती के मामा श्रीगर्भ राज्य करते थे। उनकी रानी कमलिनी अनुसुन्दर चक्रवर्ती की तो मामी थी ही, वह प्रवर्तिनी महाभद्रा की मौसी यानी रानी सुभद्रा की बहन थी।

× × ×

"अगृहीतसंकेता ! मैं चोर क्यों बना, इसका रहस्य बताने से पहले मुझे इधर-उधर के जोड़-तोड़ भिड़ाकर कथा रूपी माला के मनकों को एक सूत्र में पिरोना है। अतः शंखपुर के राजा मेरे मामा के पुत्र पुण्डरीक की कथा भी सुनो। □

[१६] पुण्डरीक और समन्तभद्र

शंखपुर के राजा श्रीगर्भ और रानी कमलिनी सन्तान के बिना बहुत दुखी रहते थे। अनेक उपाय करने पर भी राजा-रानी को संतान की प्राप्ति नहीं हुई। जब भाग्योदय का समय आया तो भवितव्यता ने कुलन्धर के जीव को कमलिनी रानी के गर्भ में प्रवेश कराया। संसारी जीव (अनुसुन्दर चक्रवर्ती) जब राजा गुणधारण था, तब कुलन्धर उसका मित्र था। वही कुलन्धर रानी कमलिनी के उदर में उदयस्थ हुआ।

जिस रात रानी गर्भवती हुई, उसने यह स्वप्न देखा कि एक सर्वांग सुन्दर बालक उसके मुँह में समा गया और फिर थोड़ी देर बाद निकल आया। प्रातः जागकर रानी ने राजा श्रीगर्भ से अपने स्वप्न का फल पूछा तो राजा ने बताया—तुम एक यशस्वी पुत्र को जन्म दोगी, लेकिन तुम्हारा पुत्र ज्यादा दिन घर में नहीं रहेगा—दीक्षा ले लेगा। रानी ने इसी बात को ध्यान से सुना कि वह यशस्वी पुत्र को जन्म देगी। दीक्षा वाली फलश्रुति उसने अनसुनी कर दी।

यथासमय रानी कमलिनी ने एक पुत्र को जन्म दिया। महोत्सव के के साथ राजपुत्र का नाम पुण्डरीक रखा गया।

दूसरी ओर समन्तभद्राचार्य को केवलज्ञान प्राप्त हो गया और वे विहार करते हुए शंखपुर नगर के चित्तरम उद्यान में पहुँचे। नन्दसेठ की पौषधशाला में ठहरी संघ प्रवर्तिनी आर्या महाभद्रा ने जब सुना कि मेरे भ्रातृमुनि केवली समन्तभद्राचार्य चित्तरम उद्यान में आये हैं तो वे भी उद्यान पहुँच गईं। सुललिता उद्यान नहीं गई, क्योंकि उसे समन्तभद्राचार्य के आगमन की जानकारी नहीं हो पाई। जिस समय आर्या महाभद्रा आचार्य समन्तभद्र केवली के पास पहुँची, उसी समय उन्हें मालूम हुआ कि शंखपुर के राजा श्रीगर्भ की रानी ने पुत्र को जन्म दिया है। यह संवाद सुनकर केवली समन्तभद्र ने कहा—

"यह राजपुत्र अमित पुण्यों का धनी है। यह घर में नहीं रहेगा। दीक्षा ग्रहण करेगा।"

आचार्य की यह टिप्पणी सुनकर और उन्हें वन्दन-नमन कर आर्या महाभद्रा वापस पौषधगृह लौट गईं। फिर बाद में सुललिता भी उद्यान गई तो उसने देखा कि समन्तभद्र आचार्य राजपुत्र पुण्डरीक के बारे में यह जानकारी दे रहे थे—

"कर्मपरिणाम राजा और कालपरिणति रानी इस समय राजपुत्र पुण्डरीक के अनुकूल बने हैं। उन्होंने इसे मनुजगति नगरी में पैदा किया है। यह भव्यपुरुष नाम को सार्थक करेगा। जीव जब प्रशस्त बुद्धिवाला बन जाता है तो भव्यपुरुष कहलाता है।"

आचार्य की यह टिप्पणी सुनकर सुललिता सोचने लगी कि आचार्य कैसी उल्टी बात कह रहे हैं। इस राजकुमार के माता-पिता कालपरिणति और परिणाम कैसे हो सकते हैं?

अपनी शंका उसने पौषधशाला जाकर प्रवर्तिनी महाभद्रा के सामने रखी तो महाभद्रा ने सोचा कि बेचारी सुललिता बहुत भोली है, जो कथन के प्रतीकार्थ और गूढ़ार्थ को भी नहीं समझती। यह सोच उसने सुललिता को विस्तार से समझाया कि संसार में जितने भी जीव हैं, उन सबके माता-पिता कालपरिणति और कर्मपरिणाम हैं।

सदागम में सुललिता की प्रीति उत्पन्न करने के विचार से महाभद्रा ने उससे कहा—

"बहिन ! जो आचार्य राजकुमार के गुणों के बारे में बता रहे थे, उनका नाम सदागम है। ये सदागम महात्मा त्रिकालदर्शी और सर्वज्ञानी हैं। कर्मपरिणाम और कालपरिणति आदि के बारे में मैं भी महात्मा सदागम से ही जान पाई हूँ।"

सुललिता चूंकि गूढ़ार्थ को ग्रहण नहीं कर रही थी, इसलिए वह अगृहीतसंकेता मानी गई। इसके बाद सुललितारूपी अगृहीतसंकेता ने महाभद्रा रूपी प्रज्ञाविशाला से कहा—

"देवी ! आपका सदागम जी महाराज से घनिष्ठ परिचय है तो मेरा भी उनसे परिचय करा दीजिए।"

सुललिता (अगृहीतसंकेता) के इस प्रस्ताव को महाभद्रा (प्रज्ञा-विशाला) ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। फिर महाभद्रा (प्रज्ञाविशाला) और सुललिता (अगृहीतसंकेता)—दोनों प्रतिदिन सदागम जी महाराज (केवली समन्तभद्राचार्य) के दर्शन-सत्संग करने चित्तरम उद्यान जाने लगीं।

जब समन्तभद्राचार्य का मासकल्प पूरा हो गया तो उन्होंने महाभद्रा से कहा—

"आर्ये ! तुम में चलने (विहार करने) की शक्ति कम है, अतः तुम कुछ काल तक यहीं शंखपुर में ठहरो। हम अब विहार करेंगे। कालान्तर में हम पुनः शंखपुर आकर एक माह तक ठहरेंगे। यहाँ रहकर तुम राज-कुमार पुण्डरीक (भव्यपुरुष) का विशेष ध्यान रखना। यथासमय वह मेरा सुयोग्य शिष्य बनेगा।"

यह कहकर समन्तभद्राचार्य ने शंखपुर से विहार किया।

कालान्तर में समन्तभद्राचार्य पुनः शंखपुर में आये और चित्तरम उद्यान में ही ठहरे। तब तक राजपुत्र पुण्डरीक (भव्यपुरुष) बड़ा हो गया। महाभद्रा (प्रज्ञा विशाला) पुण्डरीक (भव्यपुरुष) को समन्तभद्राचार्य (सदागम) के पास ले गई।

पुण्डरीक भव्यात्मा था। अतः समन्तभद्राचार्य को देखकर वह बहुत प्रसन्न हुआ। उनके वचनों पर भी उसे अमित श्रद्धा हुई। अभी वह कम उम्र का था, अतः बहुत भोला-भाला था। इसलिए उसने महाभद्रा से पूछा कि ये महात्मा कौन हैं। तब महाभद्रा ने समन्तभद्र का परिचय सदा-गम नाम बताकर दिया, क्योंकि वह उसकी भोली बुद्धि में सदागम का महत्त्व भर देना चाहती थी। पुण्डरीक ने सदागम (समन्तभद्राचार्य) के पास रहकर शास्त्रों का अध्ययन करना चाहा। प्रवर्तिनी महाभद्रा ने राजा

श्रीगर्भ और रानी कमलिनी से कहकर पुण्डरीक को समन्तभद्राचार्य के पास रहने की अनुमति दिलवा दी। तभी से पुण्डरीक सदागम रूपी समन्तभद्राचार्य के पास रहकर अध्ययन करने लगा।

× × ×

संसारी जीव ने कहा—

"इस प्रकार समन्तभद्राचार्य के पास राजकुमार पुण्डरीक, प्रवर्तिनी महाभद्रा और सुललिता एक साथ बैठते थे। समन्तभद्राचार्य तो अगाध ज्ञानागार होने के कारण सदागम रूप थे ही। भव्यात्मा होने के कारण पुण्डरीक ने भव्यपुरुष का नाम पाया और विचक्षणा होने के कारण महाभद्रा को प्रज्ञाविशाला कहा गया।

"बहिन सुललिता! भोली बुद्धि और ग्रहणशीलता की कमी के कारण तुमको अगृहीतसंकेता कहा गया। मैंने अपनी पूरी आत्मकथा तुम्हीं को सम्बोधित करके सुनाई थी। पूर्वभव में तुम मेरी पत्नी मदनमंजरी थीं, जब मैं गुणधारण था। गुणधारण के भव में ही महाभद्रा (प्रज्ञाविशाला) कन्दमुनि का जीव था और पुण्डरीक मेरा मित्र कुलन्धर था। इस प्रकार पूर्वभव के सम्बन्ध के कारण मैं तुमको प्रतिबोध देना चाहता था। अब मैं अनुसुन्दर चक्रवर्ती हूँ। अनुसुन्दर चक्रवर्ती से मैं चोर क्यों और कैसे बना अब मैं तुम्हें इसके सम्बन्ध में कुछ कहूँगा।" □

[१७] अनुसुन्दर चक्रवर्ती : चोर के रूप में

शंखपुर नगर के चित्तरम उद्यान में समन्तभद्राचार्य धर्मदेशना दे रहे थे। प्रवर्तिनी महाभद्रा (पूर्वभव कन्दमुनि), राजपुत्र पुण्डरीक (पूर्वभव कुलन्धर) भी आचार्य के समवसरण में बैठे देशना का श्रवण कर रहे थे। उसी समय अनुसुन्दर चक्रवर्ती (पूर्वभव गुणधारण, आचार्य सिंह आदि) की सेना में कोलाहल होने लगा। राजमार्ग पर होने वाले सेना के कोलाहल से कुछ देर के लिए देशना बन्द हो गई और श्रोता चौकन्ने होकर इधर-उधर देखने लगे।

उसी समय सुललिता प्रवर्तिनी महाभद्रा से पूछने लगी—"देवी! यह गड़गड़ाहट और कोलाहल क्यों हो रहा है?"

आचार्य समन्तभद्र की ओर देखते हुए महाभद्रा ने सुललिता से कहा—"बहिन ! मुझे खुद नहीं मालूम कि यह शोर कैसा है।"

सुललिता और पुण्डरीक को प्रतिबोधित करने के विचार से, क्योंकि महाभद्रा तो पूर्व प्रतिबोधित दीक्षित साध्वी थी ही; आचार्य समन्तभद्र रूपक की भाषा में बोले—

"अरे साध्वी महाभद्रा ! तुम नहीं जानतीं कि यह शोर कैसा है ? मैं तुम्हें समझाता हूँ। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि हम सभी लोग इस समय मनुजगति प्रदेश के महाविदेह बाजार में बैठे हैं। इस समय संसारी जीव नामक चोर चोरी किये हुए माल के साथ पकड़ा गया है। दुष्टाशय आदि सिपाही उसे बाँधकर कर्मपरिणाम राजा के सामने ले गए। राजा कर्मपरिणाम ने रानी कालपरिणति और अपने पार्षद स्वभाव आदि से विचार-विमर्श कर संसारी जीव नामक चोर को फाँसी का दण्ड सुना दिया है। अब राजसेवक चोर संसारी जीव को फाँसी देने पापी पिंजर नामक वध्र-स्थल पर ले जा रहे हैं। यह शोर-गुल इसी घटना के कारण है।"

समन्तभद्राचार्य की यह बात सुनकर सुललिता भौंचक्की होकर महाभद्रा से कहने लगी—

"आर्ये ! आचार्य क्या कह रहे हैं ? हम सब तो शंखपुर नगर के चित्तरम उद्यान में बैठे हैं, यहाँ मनुजगति प्रदेश और महाविदेह बाजार कहाँ है ? फिर हमारे राजा तो श्रीगर्भ हैं, कर्मपरिणाम यहाँ का राजा कब और कैसे हो गया ?"

यह सुनकर समन्तभद्राचार्य बोले—

"सुललिता ! तुम तो अगृहीतसंकेता हो, क्योंकि तुम्हारी समझ में मेरे कथन का गूढ़ाशय नहीं आया।"

यह सुन सुललिता कुछ नहीं बोली और मन-ही-मन सोचने लगी कि आचार्य ने तो मेरा नाम ही बदल दिया। सुललिता से अगृहीतसंकेता बना दिया।

प्रवर्तिनी महाभद्रा आचार्य के कथन का गूढ़ाशय समझ गई थी, क्योंकि वह प्रज्ञाविशाला थी। उसने सोचा कि कोई जीव नरकगति को जा रहा है। आचार्य का संकेत उसी ओर है। वह दया से भरकर बोली—

"आचार्यवर ! जिस चोर को मृत्युदण्ड दिया है, क्या उसे बचाया नहीं जा सकता ?"

"तुम्हारे दर्शन करने के बाद" आचार्य बोले—"जब वह हमारे सामने आयेगा तो मुक्त हो जाएगा।"

यह सुनते ही महाभद्रा चोरवेशी अनुसुन्दर चक्रवर्ती के पास गई, जो बंधन में बँधा था और उससे बोली—

"भद्र ! तुम सदागम की शरण स्वीकार करो। मुक्त हो जाओगे।"

चोर रूपी अनुसुन्दर चक्रवर्ती महाभद्रा के साथ समन्तभद्राचार्य के सामने आया और उनकी शरण स्वीकार करते ही मूर्च्छित हो गया। आचार्य ने उसे 'डरो मत' कहकर अभयदान दिया। उसे जो राज-कर्मचारी बाँधे हुए थे, वे आचार्य के भय से उसे छोड़कर भाग गये। फिर चोररूपी अनुसुन्दर चक्रवर्ती सजग-सावधान हो गया।

× × ×

अनुसुन्दर चक्रवर्ती ने सुललिता से कहा—

"बहिन सुललिता ! फिर आगे का वृत्तान्त तो तुम्हें मालूम ही है। आचार्य द्वारा दिये गये अगृहीतसंकेता नाम से सम्बोधित करके मैंने संसारी जीव के रूप में तुम्हें अपनी आत्मकथा सुनाई थी।

"सुललिता ! मैंने तुम्हारा, महाभद्रा और पुण्डरीक का इतिवृत्त विस्तार से सुनाया है। यद्यपि तुम सबने अपने बारे में स्वयं अनुभव किया है; फिर भी अपने अनुभव पर तुम्हारा विश्वास दृढ़ हो, इस नाते मैंने तुम सबके इतिवृत्त को दुहराया था।"

यह सुनकर सुललिता बोली—

"संसारी जीव कहूँ या अनुसुन्दर चक्रवर्ती, तुमने जो कुछ सुनाया, मुझे अपने स्वानुभव पर विश्वास तो हो गया। अब यह बताओ कि चक्रवर्ती सम्राट् होकर तुम चोर क्यों और कैसे बने।"

"सुललिता !" अनुसुन्दर चक्रवर्ती बोला—"तुमको और पुण्डरीक को—तुम दोनों को प्रतिबोधित करने के लिए मैंने अपनी वैक्रिय लब्धि से चोर का रूप बताया है।

"सुललिता ! जिस समय आचार्य ने यह कहा था कि संसारी जीव नामक चोर चोरी के माल के साथ पकड़ा गया है और कर्मपरिणाम ने उसे फाँसी का दण्ड दिया है, उसके बाद महाभद्रा मेरे पास गई थी। उसे देख-कर मुझे प्रतिबोध हुआ और मैंने सोचा कि महाभद्रा तो प्रज्ञाविशाला होने के कारण आचार्य का गूढ़ाशय समझ गई है। लेकिन अगृहीतसंकेता (तुम्हें)

और भव्य-पुरुष (पुण्डरीक) को प्रतिबोध देने के लिए मुझे चोर बनकर ही जाना चाहिए। यदि चक्रवर्ती बनकर जाऊँगा तो इन दोनों को आचार्य के कथन पर विश्वास नहीं होगा। इसलिए मैं चोर का वेश बनाकर आया था।"

यह सब सुनने के बाद सुललिता उर्फ अगृहीतसंकेता बोली—

"आपके चोर और चोरी का अन्तरंग स्वरूप क्या है, यह मैं जानना हूँ। यह भी बताइए कि अपनी आत्मकथा में जिन लोगों का इतिवृत्त आपने सुनाया था, वह सब आपने कैसे जाना।"

इसका उत्तर अनुसुन्दर चक्रवर्ती ने आगे विस्तार से दिया। □

[१८] अन्तरंग चोर का स्वरूप : अनुसुन्दर की जबानी

अनुसुन्दर चक्रवर्ती कहने लगा कि अपनी लम्बी भव परम्परा में मैं नौवें ग्रैवेयक में देव बना। वहाँ से च्युत होकर क्षेमपुरी नगरी के राजा युगन्धर और रानी नलिनी का पुत्र अनुसुन्दर बना। पिता का राज्य प्राप्त करने के बाद मैं षट्खण्ड धरा का शासक चक्रवर्ती बना। उस समय भवितव्यता ने पापोदय, विषयाभिलाष, मोह, वैश्वानर, हिंसा, सागर, परिग्रह, बहुलिका, शैलराज आदि मेरे शत्रुओं को सावधान और प्रोत्साहित करते हुए कहा—

"भाइयो! मेरा पति संसारी जीव अनुसुन्दर के रूप में सम्यग्दर्शन से बहुत दूर है। तुम्हें जो प्रयत्न करने हों, करलो। वरना फिर वह सम्यग्-दर्शन से सम्पर्क कर लेगा तो तुम सबको मुँह की खानी पड़ेगी।"

"तो सुललिता! भवितव्यता की इस सूचना को मोह की सेना ने स्वीकार किया। जब मैं छोटा था, तभी मुझे शत्रु पक्ष ने चारों ओर से घेर लिया। परिणामस्वरूप मैं स्व को भूलकर मोहान्ध बन गया और पतनकारी सभी दुर्व्यसनों में फँस गया। मांसभक्षण, मदिरापान, वेश्यागमन आदि सब कुकर्मों में लीन मैं मोहादि को ही अपना हितैषी मानने लगा। निष्कर्ष यह कि मैं पूरी तरह मोहादि शत्रुओं के हाथ पुनः बिक गया।

"पापी मित्रों की संगति से मैंने अपनी चित्तवृत्ति अटवी को मलिनतम बना लिया। मैं पुनः सम्यग्दर्शन और सद्बोध से सम्पर्क न कर लूं, इस आशंका से मुझे मोहादि ने बुरे से बुरे कर्मों के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित

किया। तब मैंने पाप रूपी द्रव्य—धन की चोरी की। मोहादि दुष्टों ने ही मुझसे यह चोरी करवाई और उन्होंने ही कर्मपरिणाम को सुझाया—बताया कि अनुसुन्दर को पापी पिंजर भेजा जाए और तड़पा-तड़पा कर मारा जाए।

"तो सुललिता! कर्मपरिणाम की आज्ञा से दुष्टाशय आदि ने मुझे बन्दी बनाया और मेरी हुलिया चोरों जैसी बना डाली। कर्मपरिणाम राजा के सेवकों ने मेरे शरीर पर कर्मरज की राख लगाई। राजस गेरू के छापे लगाये। इस तरह अन्तरंग विकारों से मेरे अन्तरंग स्वरूप को चोर का वेश बना दिया। मेरी आकृति को विकृत करके दुष्ट सिपाही मुझे पापीपिंजर नामक वधस्थल की ओर ले जाने लगे, अर्थात् नरक भेजने को मुझे तैयार कर दिया।

"सुललिता! इधर यह तो मेरी दशा थी। उधर मेरी सेना का कोलाहल सुन साध्वी महाभद्रा मेरे सम्मुख आई। ये साध्वी तपस्विनी हैं, लेकिन पूर्वभव के सम्बन्ध के कारण ये मेरे प्रति प्रेमालु बन गई। मुझे नरकगामी जीव समझकर इन्होंने मुझे धर्मलाभ देने के बाद कहा—

"चक्रवर्तिन्! आप नरदेह को व्यर्थ क्यों गँवा रहे हैं? आपने अपने कर्म के कारण ही वध्य चोर की आकृति धारण की है। आप सदागम—समन्तभद्राचार्य की शरण लें तो आपका छुटकारा निश्चय ही हो जाएगा।

"सुललिता! इस प्रकार मुझे समझाते-समझाते साध्वी महाभद्रा को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। तब इन्होंने मेरे गुणधारण और अपने कुन्दमुनि के भव का पूर्ण दर्शन कर मुझे पुनः उपदेश दिया—राजन्! जब तुम गुणधारण थे, तब मेरे कुन्दमुनि के समक्ष तुमने धर्म स्वीकार किया था और क्षान्ति, दया, सत्यता, मृदुता आदि दस कन्याओं से विवाह किया था। मेरे गुरु निर्मलाचार्य ने तुम्हें अनन्त भवचक्र समझाया था। वह सब तुम क्यों भूल गए? जागो, उठो और अपने शत्रुओं का नाशकर निवृत्ति नगर चलने को तैयार हो जाओ।

"सुललिता! जिस समय साध्वी महाभद्रा मुझे उपदेश दे रहीं थीं, तब सम्यग्दर्शन मेरे पास आने को चला, पर मार्ग में उसे मोहादि शत्रु रास्ता रोके मिले। लेकिन महाभद्रा के वचन रूपी सूर्य प्रकाश से मेरा जीव-वीर्य सिंहासन आलोकित हो उठा। फिर सम्यग्दर्शन और मोह की सेनाओं में भयंकर युद्ध हुआ। सम्यग्दर्शन का पक्ष जीत गया।

"सुललिता ! मैंने जो घटना क्रम तुम्हें सुनाया, उसे सुनाने में तो कुछ समय लगा, लेकिन इसके घटने—होने में क्षण मात्र का समय लगा। मैं महाभद्रा के कथन पर खड़ा-खड़ा सोचने लगा तो मुझे भी जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। मुझे अपना गुणधारण का भव स्पष्ट याद हो आया। मेरे भीतर युद्ध अब भी चालू था। सद्बोध मन्त्री के मित्र अवधिज्ञान ने अवधिज्ञान के आवरण को जीत लिया, जिससे मुझे अपने पिछले सभी पूर्वभवों की याद हो आई।

"सुललिता ! मैं तो प्रतिबोधित हो ही गया था। लेकिन मैंने तुम्हें और पुण्डरीक को प्रतिबोधित करने के लिए अपना बाहरी वेश भी चोर जैसा बना लिया। अन्तरंग का जो मेरा स्वरूप था, उसको बाह्य वेश दिया। फिर संसारी जीव रूपी चोर वेश में अपने अवधिज्ञान के बल पर अपने पूर्वजन्मों का चित्रण—अपनी आत्मकथा तुम्हें सुनाई।

"सुललिता ! मैंने समन्तभद्राचार्य द्वारा प्रदत्त नाम अगृहीतसंकेता के सम्बोधन से तुम्हें अपनी आत्मकथा सुनाई थी। अब तुम अगृहीतसंकेता के स्वभाव-गुण को त्यागकर मेरी बातों पर विचार करो कि पिछले भव में तुम मेरी प्रिया मदनमंजरी थीं। तब तुमने इन्हीं प्रज्ञाविशाला महाभद्रा से कुन्दमुनि के रूप में धर्म ग्रहण किया था। अपनी आत्मकथा कहते-कहते मुझे वैराग्य हो गया है। तुम भी जागो और भवप्रपंच को पहचानो।"

इतना कह अनुसुन्दर चक्रवर्ती चुप हो गया। □

प्रमुख पात्रों का उत्थान

[१९] **अनुसुन्दर चक्रवर्ती का उत्थान**

अगृहीतसंकेता रूपी सुललिता अनुसुन्दर चक्रवर्ती के उद्बोधन से प्रभावित हुई और उस पर आचरण करने का विचार करने लगी। राजपुत्र पुण्डरीक भवप्रपंच कथा के भावार्थ को थोड़ा-थोड़ा समझ पाया था। अभी तक वह कुछ नहीं बोला था। अब उसके मन में एक जिज्ञासा उठी तो उसने अनुसुन्दर से पूछा—

"राजन् ! इस समय आपकी चित्तवृत्ति का क्या हाल है ?"

अनुसुन्दर ने उत्तर में कहा—

"मैंने अपनी चित्तवृत्ति अटवी में महायुद्ध होते देखा है। युद्ध का परिणाम यह हुआ है कि अब वहाँ चारित्रधर्मराज अपनी सैन्य के साथ विराजमान हैं। महामोह के सेवक मरे और अधमरे हो चुके हैं।

"प्रिय पुण्डरीक! मेरी चित्तवृत्ति में से अब सब शत्रु भाग गए हैं। मेरे बन्धु-बांधव हर्ष मना रहे हैं। इस समय मेरी इच्छा मुनिवेश धारण करने की हो रही है।"

इतना कहने के बाद अनुसुन्दर ने अपनी वैक्रिय लब्धि को खींचा और देखते-देखते चक्रवर्ती के दिव्य अलौकिक रूप में प्रकट हो गया। उसके चोर वेश के सब चिन्ह लुप्त हो गए। उसके सेनापति, मंत्री आदि भी आकर उपस्थित हो गए। उसने अपने पुत्र राजवल्लभ को राज्य देकर दीक्षा लेने का विचार मंत्रियों के सामने प्रकट किया, जिसका सभी ने अनुमोदन किया।

अनुसुन्दर चक्रवर्ती ने वहीं अपने पुत्र राजवल्लभ को मुकुट आदि राज चिन्ह सौंप दिये। फिर दीक्षा की तैयारियाँ होने लगीं। उसी समय अनुसुन्दर के मामा शंखपुर के राजा श्रीगर्भ और रानी कमलिनी भी चित्तरम उद्यान में आ गए। □

[२०] **सुललिता को उद्बोधन**

दीक्षित होने से पूर्व—मुनि वेश धारण करने से पहले अनुसुन्दर चक्रवर्ती के हृदय में सुललिता के प्रति करुणा जाग्रत हुई और सोचा कि इसे भी निवृत्तिनगर का पथी बनाना चाहिए। यह सोच उसने सुललिता से कहा—

"सुललिता! मेरी आत्मकथा को तुमने एक कल्पित उपन्यास की तरह सुना है, उसे वास्तविक इतिवृत्त नहीं माना। तू अभी तक सुप्तप्राय बैठी है। तुझे जाग्रत करने के लिए ही मैंने चोर का वेश धारण किया था और तेरे लिए ही मैंने अपनी आत्मकथा सुनाई थी।

"क्या तू अब भी यह नहीं जान पाई कि मोह, परिग्रह आदि कितने भयानक शत्रु हैं? इनके वश होकर मैंने जो-जो यातनाएँ भोगीं, क्या तू उन्हें सुन नहीं पाई? तू जब मदनमंजरी थी तब मेरा पुण्योदय तथा अन्य तीन तुझे मेरे पास लाये थे। निर्मलाचार्य के वचन तो तुझे याद होने चाहिए।

मैंने तुझे अन्तरंग राजाओं, अन्तरंग कन्याओं आदि के जो स्वरूप बताये थे, उन्हें याद करके इस मिथ्या संसार को क्यों नहीं छोड़ देती ?"

इस प्रकार अनुसुन्दर ने एक बार पुनः अपनी आत्मकथा को संक्षेप में दुहरा कर सुललिता को उद्‌बोधन दिया।

जिस समय अनुसुन्दर सुललिता को उद्‌बोधन दे रहे थे, उसे सुनते-सुनते राजपुत्र पुण्डरीक को मूर्च्छा आ गई। उसके माता-पिता रानी कमलिनी और राजा श्रीगर्भ घबरा गए। शीतलोपचार से जब राजपुत्र की मूर्च्छा दूर हुई तो उसे जाति-स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। उसने अपने माता-पिता से दीक्षा की अनुमति माँगते हुए कहा—

"मुझे अपना पूर्वभव याद आ गया है। जब अनुसुन्दर गुणधारण थे, तब मैं इनका मित्र कुलन्धर था। मैंने इन्हीं के साथ निर्मलाचार्य से दीक्षा ग्रहण की थी। अब मैं आप से दीक्षा की अनुमति चाहता हूँ।"

यह सुन रानी कमलिनी मोहवश रोने लगी और बोली—"अरे पुत्र ! मैं तुझे श्रमण नहीं बनने दूँगी।"

इस पर राजा श्रीगर्भ रानी कमलिनी को समझाने लगे—

"प्रिये ! जब तुम्हारे गर्भ में पुण्डरीक आया था, तब तुमने स्वप्न में एक भव्य पुरुष अपने मुख में प्रवेश होकर निकलते देखा था। मैंने तभी तुम से कहा था कि तुम एक भव्य जीव को जन्म दोगी; किन्तु वह घर में नहीं रहेगा। दीक्षा ले लेगा, अतः अब तुम इस भव्य पुत्र को अपना कल्याण करने से मत रोको।

"प्रिये ! अल्पायु का हमारा पुत्र संसार छोड़ने को तत्पर है और हम वृद्ध होकर भी दीक्षा न लें तो इससे बड़ा मजाक और क्या होगा ?"

यह सुनकर रानी कमलिनी भी दीक्षा लेने तैयार हो गई। राजा श्रीगर्भ ने भी दीक्षा लेने का निश्चय किया।

पुण्डरीक को यों प्रतिबोधित देख सुललिता बड़ी खिन्न हुई। उसकी खिन्नता बहुत सात्त्विक और धार्मिक थी। उसने अपने मन की बात साध्वी महाभद्रा से कही, जिसका समाधान अनुसुन्दर चक्रवर्ती ने किया। □

[२१] सुललिता की शंका : अनुसुन्दर द्वारा समाधान

सुललिता ने साध्वी महाभद्रा से कहा—

"भगवती ! जब अनुसुन्दर चक्रवर्ती संसारी जीव रूपी चोर बनकर अपनी आत्मकथा सुना रहे थे, मैं तब सोच रही थी कि इसका गूढ़ाशय मैं आपसे पूछूँगी, क्योंकि आप प्रज्ञाविशाला हैं। बाद में अनुसुन्दर ने मुझे पुनः उद्‌बोधन दिया, लेकिन मुझ पर तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा। मेरे देखते-देखते पुण्डरीक को प्रतिबोध हो गया। पर अभी तक मुझ पर वैराग्य की छाया क्यों नहीं पड़ी? सब कुछ देख-सुनकर भी मेरा हृदय क्यों नहीं बदला? क्या मैं अभागिनी ही रहूँगी? आप प्रज्ञाविशाला हैं, अतः आप मेरी शंका का समाधान कीजिए।"

"तुम्हारी शंका का समाधान मैं करूँगा।" अनुसुन्दर चक्रवर्ती ने कहा—"तुम्हें प्रतिबोध देने के लिए ही मैंने अपने पूर्वभव तुम्हें सुनाये थे। तुम अभी तक प्रतिबोधित नहीं हुई, इसका कारण तुम्हारे पूर्वभव का कर्मबंध है।

"सुललिता! जब तुम मदनमंजरी थीं, तब भी पुरुषद्वेषिणी थीं और इस भव में भी पुरुषद्वेषिणी बनीं। पूर्वभव के संस्कार पीछे पड़े रहते हैं।

"अब मैं तुम्हारे प्रतिबोधित न होने का कारण बताता हूँ।

"सुललिता! मदनमंजरी के भव में तुमने मेरे साथ ही निर्मलाचार्य से दीक्षा ली थी। मैं गुणधारण के रूप में श्रमण बना था। तब तुम में एक विचार-दोष आया था कि चारित्र-पर्याय का पालन गुमसुम चुपचाप करना चाहिए। इस दोष के कारण न तो तुम देशना देती थीं और न गुरु मुनियों की देशना सुनती थीं। पठन-पाठन के शब्दों को भी तुम सुनना पसन्द नहीं करती थीं। इससे तुम्हारा हृदय इतना मलिन-मैला हो गया कि तुमको प्रतिबोध नहीं हुआ। बस, यही एक बात अच्छी रही कि तुममें दुराग्रह नहीं था। तुमने धर्म-प्रचार का विरोध नहीं किया।"

अपने पूर्वभव के विचार-दोष को सुनते-सुनते सुललिता मूर्च्छित हो गई और जब होश आया तो उसे भी जातिस्मरणज्ञान उत्पन्न हो गया। अपने पूर्वभव को स्पष्ट देखकर उसे प्रतिबोध हुआ और दीक्षा लेने को तत्पर होते हुए अनुसुन्दर से बोली—

"इस समय मेरा रोम-रोम प्रतिबोधित है। मैं दीक्षा लिये बिना नहीं रह सकती। लेकिन जब मैंने अपने माता-पिता से साध्वी महाभद्रा के साथ आने की अनुमति ली थी तो उन्होंने मुझ से यह वचन लिया था कि मैं उनकी अनुमति के बिना दीक्षा नहीं लूँगी। कितना अच्छा होता कि मैं यहीं

सबके साथ दीक्षा लेती। अब मुझे माता-पिता से अनुमति लेने उनके राज्य में जाना पड़ेगा।"

"इसकी तुम चिन्ता मत करो।" अनुसुन्दर चक्रवर्ती ने कहा—"वह देखो, तुम्हारे पिता राजा मगधसेन और माता सुमंगला यहीं आ रहे हैं।"

थोड़ी देर बाद राजा मगधसेन और रानी सुमंगला—सुललिता के पिता-माता सैन्य दल लेकर विशाल चित्तरम उद्यान में आ गये। सुललिता ने उन्हें प्रणाम कर अब तक समस्त इतिवृत्त संक्षेप में सुनाकर दीक्षा की अनुमति माँगी। उसके माता-पिता ने कहा—

"पुत्री! जब तुम साध्वी बन रही हो तो हम क्या तुमसे पीछे रहेंगे? तुम्हारे साथ हम भी समन्तभद्राचार्य से दीक्षा लेंगे।"

इस प्रकार अनुसुन्दर चक्रवर्ती, राजपुत्र पुण्डरीक, राजा श्रीगर्भ, रानी कमलिनी, सुललिता, राजा मगधसेन और रानी सुमंगला—सात भव्य जीवों ने चित्तरम उद्यान में एक साथ दीक्षा लेने का निश्चय किया। सबकी सामूहिक दीक्षा तैयारियाँ शुरू हो गईं। □

[२२] सात दीक्षाएँ : अनुसुन्दर मुनि का स्वर्गगमन

अनुसुन्दर चक्रवर्ती अपने राजचिन्ह उतार कर अपने ज्येष्ठ पुत्र राजवल्लभ को सौंप चुके थे। श्रीगर्भ राजा ने शंखपुर का और मगधसेन ने रत्नपुर का राज्य भार अनुसुन्दर के द्वितीय पुत्र पुरन्दर को सौंप दिया। तदनन्तर दीक्षा विधि प्रारम्भ हुई। सबसे पहले अनुसुन्दर चक्रवर्ती ने केश लुंचन कर मुनिवेश धारण किया।

फिर राजपुत्र पुण्डरीक, उनके पिता श्रीगर्भ, माता कमलिनी, राजपुत्री सुललिता, उसकी माता सुमंगला और पिता मगधसेन ने मुनिवेश धारण किया। सात लोगों ने संसार त्यागकर अक्षय सुख के हेतु अपनी चित्तवृत्ति अटवी में चारित्रधर्मराज का शासन स्थापित किया। उस समय देवों ने पुष्प वृष्टि की। केवली भगवान समन्तभद्राचार्य ने सातों मुमुक्षुओं को संयम में स्थिर रहने का धर्मोपदेश दिया। सभी साधु-साध्वी नित्य की धर्म-क्रियाएँ करने लगे। इस प्रकार दीक्षा के बाद रात्रि का प्रथम प्रहर समाप्त हुआ।

उस समय राजर्षि अनुसुन्दर एकान्त में ध्यानस्थ हुए। उनकी लेश्याएँ अधिक विशुद्ध होती चली गई और गुणस्थान पर उत्तरोत्तर आरूढ़ होते गये। ग्यारहवें गुणस्थान में पहुँच गये। अन्य मुनियों को समन्तभद्राचार्य ने बताया कि राजर्षि अनुसुन्दर का मरण काल निकट आ गया है। तब सभी मुनि उनके समक्ष अन्तिम आराधना करने लगे। उसी समय उन्होंने नश्वर देह को त्याग स्वर्ग को गमन किया। वे तेतीस सागरोपम आयुष्य ऋद्धिमान देव बने।

एक ही दिन में सुललिता को अनुसुन्दर के प्रति राग उत्पन्न हो गया था। अतः साध्वी सुललिता को अनुसुन्दर मुनि की मृत्यु से अत्यन्त दुःख हुआ। यह देख समन्तभद्राचार्य ने उसे उपदेश दिया, जिससे साध्वी का शोक शान्त हो गया। धर्मोपदेश के क्रम में उन्होंने अनुसुन्दर का भविष्य बताते हुए कहा—

"राजर्षि अनुसुन्दर धर्म की नाव पर बैठकर कृतकृत्य हुए हैं। उनकी मृत्यु शोक के लिए नहीं, आनन्द मनाने के लिए है। देवायुष्य पूर्णकर वे अयोध्यानगरी में गंगाधर राजा और पद्मिनी रानी के पुत्र बनेंगे। उनका नाम अमृतसार होगा। देवों जैसे भोगों को भोगने के बाद वे दीक्षा लेंगे और फिर मोक्ष प्राप्त कर सदैव के लिए जन्म-मरण से मुक्त हो जायेंगे।"

यह सुनकर युवा-तरुण मुनि पुण्डरीक ने पूछा—

"भगवान्! जब अनुसुन्दर मुक्त हो जायेंगे, तब उनकी चित्तवृत्ति अटवी में रहने वाले अच्छे-बुरे लोगों का क्या होगा? वे कहाँ रहेंगे, कहाँ जायेंगे?"

इस पर आचार्य बताने लगे—

"मुनि पुण्डरीक! अनुसुन्दर का जीव जब देवायुष्य पूर्ण करके अयोध्या का राजपुत्र अमृतसार बनकर दीक्षा ग्रहण करेगा, तब उसकी अन्तरंग दसों पत्नियाँ—शान्ति, दया, मृदुता, सत्यता, ब्रह्मरति आदि उसकी चित्तवृत्ति में प्रकट होंगी। चारित्रधर्मराज की सेना भी प्रकट होगी। इन सबके साथ अमृतसार मुनि अपने अन्तरंग राज्य का भोग करेंगे। इस क्रम में वे चार घाती कर्मों और शेष चार कर्मों का क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त करेंगे। फिर वे अनन्त आनंद, अनन्त ज्ञान आदि को प्राप्त करेंगे। इससे पूर्व दूसरे पक्ष के मोहादि सब शत्रु पूर्णतः नष्ट-समाप्त हो जाएँगे।

पुण्डरीक मुनि! इसके साथ ही अनुसुन्दर-अमृतसार के जीव का

अपनी दुष्ट पत्नी भवितव्यता से भी सदैव के लिए छुटकारा हो जाएगा। महामोह के नष्ट हो जाने से भवितव्यता अत्यन्त दुःखी होकर विचार करेगी कि हाय ! मैंने महामोह का पक्ष लेकर अच्छा नहीं किया। मैं सब कुछ जानने का घमण्ड करती थी, मेरा वह घमण्ड चूर-चूर हो गया, क्योंकि मैं उस तत्त्व को नहीं जान सकी, जिसे सभी जानते हैं। वह यह कि अस्थिर संसार नष्ट होने वाला है और स्थिर धर्म ही बना रहेगा। इस प्रकार भवितव्यता सोच-विचार कर चुप हो जाएगी। संक्षेप में राजर्षि अनुसुन्दर के अन्तरंग कुटुम्बियों का यही भविष्य है। □

[२३] द्वादशांगी का सार : पुण्डरीक मुनि की शंकाएं

अपनी एक शंका का समाधान प्राप्त कर पुण्डरीक मुनि ने दूसरी शंका बताई—

"गुरुदेव ! भगवान द्वारा प्ररूपित बारह अंग सूत्र रूपी द्वादशांगी बहुत विशाल है। कृपया, संक्षेप में इसका सार बताइए।"

पुण्डरीक मुनि की शंका का समाधान करते हुए समन्तभद्राचार्य बोले—

"मुनिवर ! समस्त जैनागम का सार ध्यानयोग ही है। मुक्ति के लिए ध्यान सिद्धि आवश्यक है और ध्यान सिद्धि के लिए मन की चंचलता को दूर करना परमावश्यक है। अतः द्वादशांगी का सार शुद्ध ध्यान-योग है। शेष मूल और उत्तर गुण ध्यान-योग के अंगरूप में स्थित हैं।"

एक शंका का समाधान होने के बाद पुण्डरीक मुनि ने दूसरा प्रश्न किया—

"गुरुदेव ! मोक्ष प्राप्ति के लिए भिन्न-भिन्न मान्यताओं के आचार्यों ने भिन्न-भिन्न मार्ग बताये हैं। किसी ने शिव का जाप बताया है तो किसी ने विष्णु का। कुछ पूरक, कुम्भक और रेचक प्राणायाम द्वारा हृदय-कमल को विकसित करने को कहते हैं। कुछ ॐ—प्रणवाक्षर का जाप बताते हैं। इस प्रकार मोक्ष-मुक्ति प्राप्त करने के अनेकों उपाय बताये गए हैं। ध्यानयोग की भी भिन्न-भिन्न पद्धतियाँ बताई हैं, क्या ये सब मोक्ष के अधिकारी हैं ?"

इसका समाधान करते हुए समन्तभद्राचार्य कहने लगे—

"पुण्डरीक मुनि ! केवलज्ञानी भगवान ने जो पद्धति बताई, उसमें कुछ अपूर्ण-अधकचरे आचार्यों ने अपने-अपने अहंकार को पुष्ट करने के लिए नये-नये ग्रन्थ रच दिये। इनमें कुछ तो केवली प्ररूपित सार तत्त्व लिया और कुछ अपना मिलाकर उसे भ्रान्त बना दिया। सर्वज्ञ केवली भगवान के कुछ अंश होने से इन आचार्यों के शास्त्र भी प्रसिद्धि पा गए और इनके कुछ अनुयायी भी बन गए। वस्तुतः जिनधर्म ही सार है। शेष सब भ्रान्त धर्म हैं, जो लक्ष्य तक नहीं ले जाते।

"पुण्डरीक मुनि ! उपाधि रहित होकर ध्यानयोग की साधना करने वाली निर्मल आत्मा चाहे जिस दर्शन या तीर्थ को मानने वाली हो, उसे भावतः जैनशासन के अन्तर्गत ही मानना चाहिए; क्योंकि जैनदर्शन प्राणि-मात्र के कल्याण की दृष्टि से बहुत व्यापक और गहरा है। उसमें अन्य धर्मों की सभी अच्छी बातें तो हैं, पर मिथ्या बातें नहीं हैं।"

पुण्डरीक मुनि ने पुनः पूछा—

"भगवन् ! सभी को मोक्ष प्राप्त प्राप्त करना है, लेकिन सब आचार्यों के ध्येय भिन्न-भिन्न हैं, इसमें क्या परमार्थ है ?"

उत्तर में समन्तभद्राचार्य बोले—

"आर्य पुण्डरीक ! जिस प्राणी को मोक्ष प्राप्त करना है, उसे चित्त के संकल्प-विकल्प रूपी जालों का निरोध करना पड़ेगा। साथ ही, राग-द्वेष आदि का विच्छेद करने वाले सभी उपायों का प्रयोग करना होगा। ऐसे साधन उपाय चाहे जैनदर्शन के हों, चाहे अन्य आचार्यों के हों, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता है।

"पुण्डरीक मुनि ! भिन्न-भिन्न जीवों की रुचि भिन्न-भिन्न होती है। किसी के चित्त की शुद्धि एक आलम्बन से होती है तो किसी के चित्त की शुद्धि दूसरे आलम्बन से। अतः किसी को अन्य-अन्य ध्येयों से चित्त शुद्धि हो जाए तो बुराई क्या है ? कुछ भी नहीं। इसके विपरीत जो बुद्धिहीन दार्श-निक या आचार्य हिंसा के अच्छे परिणाम बतलाते हैं और देवी-देव के स्मरण मात्र से पाप-नाश होने का दावा करते हैं, वे सब विवेकहीन ही कहे जायेंगे।"

"अब एक शंका और है।" पुण्डरीक मुनि ने कहा—"जैसे आप जैन-दर्शन को व्यापक बताते हैं, वैसे ही अन्य दार्शनिक-आचार्य अपने-अपने धर्म

को व्यापक बताते हैं। ये लोग अपने-अपने दर्शन के संस्थापकों को सर्वज्ञ कहते हैं, दूसरे के दर्शनों की निन्दा करते हैं तथा अपने दर्शन को श्रेष्ठ मानते हैं। इसका भी स्पष्टीकरण कीजिए।"

समन्तभद्राचार्य कहने लगे—

"आर्य पुण्डरीक ! परमार्थ दृष्टि से विश्व में एक ही धर्म है। धर्म के क्षमा, निर्लोभता, दया, आदि दस लक्षण बताये हैं। इन दस लक्षणों को धारण करना ही वस्तुतः धर्म है। धृ धारणे धातु से धर्म शब्द बना है। जो धारण किया जाता है वह धर्म है। मिथ्यादृष्टि भी क्षमा आदि सद्गुणों को धारण करता है पर सम्यग्दर्शन के अभाव में वे सद्गुण जीवनोत्थान में जिस रूप में सहायक होने चाहिए नहीं हो पाते। मिथ्यादर्शन के संस्पर्श से सद्-गुणों में चमक-दमक पैदा नहीं होती। बहुमूल्य हीरे आदि रत्न लोहे आदि कुधातुओं में जड़ देने से शोभा नहीं पाते। वही स्थिति मिथ्यादर्शन के कुधातुओं में जड़ने पर सद्गुणों की होती है।"

पुण्डरीक मुनि ने पुनः जिज्ञासा प्रस्तुत की—"भगवन् ! सभी साधक मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं, क्या केवल सम्यग्दर्शन से ही मोक्ष हो जायेगा ? ज्ञान आदि की तो आवश्यकता नहीं रहेगी न !"

आचार्य ने कहा—"वत्स ! मोक्ष के लिए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनों की आवश्यकता है। सम्यग्दर्शन की परिपूर्णता चतुर्थ गुणस्थान में हो जाती है। सम्यग्ज्ञान की पूर्णता तेरहवें गुणस्थान में हो जाती है और सम्यक्चारित्र की परिपूर्णता चौदहवें गुणस्थान में होती है। ज्यों ही ये तीनों परिपूर्ण होते हैं त्यों ही मोक्ष प्राप्त हो जाता है। एक की जरासी अपूर्णता भी मोक्ष के लिए बाधक है।

"मोक्षाभिलाषी साधक राग-द्वेष के दलदल में नहीं फँसता। मैं सर्व-श्रेष्ठ हूँ, अन्य निकृष्ट—इस प्रकार की हीन भावना उसमें नहीं होती। वह सदा-सर्वदा समता के सागर में अवगाहन करता है। वह मधु-मक्खी की तरह जहाँ से भी सद्गुणों की मिठास देखता है उसे ग्रहण करता है। उसका जीवन निराला होता है और उसकी दृष्टि विशुद्ध होती है।"

इस प्रकार पुण्डरीक मुनि समय-समय पर सद्गुरु से अपनी शंकाओं का समाधान कर ज्ञानार्जन कर रहे थे। और साथ ही उत्कृष्ट तपःसाधना से अपने जीवन को पावन और पवित्र बना रहे थे।

साध्वी सुललिता सोचा करती थीं, गुरुकर्मी अथवा भारी होने से मुझे बोध प्राप्त करने में कठिनाई हुई थी, मुझ जैसा गुरुकर्मी संवेग के पवन

से पवित्र नहीं हो सकता, उसे तप की अग्नि में शुद्ध होने की नितान्त आवश्यकता है। ऐसा सोचकर साध्वी सुललिता ने समन्तभद्राचार्य से कठोर तप करने की अनुमति प्राप्त की और वे क्रमशः कठोर, कठोरतर और कठोरतम तप करने लगीं।

साध्वी सुललिता ने रत्नावली, कनकावली, मुक्तावली, सिंहविक्रीड़ित आदि तप किये। उन्होंने भद्रा, महाभद्रा आदि प्रतिमाएँ धारण कीं। आयंबिल तप और चंद्रायण तप करके आत्मा को शुद्ध किया। तप के प्रभाव से वे निष्पाप और निर्मल हो गईं; क्योंकि—

तप सुखप्रद दुख दोष नसावा।

इस प्रकार अनुसुन्दर मुनि के स्वर्ग जाने के बाद से शेष छहों मुनि संसार सागर को पार करने के लिए समन्तभद्राचार्य की देख-रेख और निर्देशन में कठोर साधना कर रहे थे। इनमें से कुछों को इसी भव में मुक्त होना था और कुछ स्वर्ग जाने के बाद पर-भव में मुक्ति-लाभ प्राप्त करेंगे। □

[२४] मोक्ष-गमन

मुनि पुण्डरीक द्वादशांगी के पारगामी विद्वान बन गये। आचार्य समन्तभद्र ने उन्हें आचार्य पद दिया। इस प्रकार एक सुयोग्य शिष्य मुनि को आचार्य बनाकर समन्तभद्राचार्य ने समाधिमरण प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त किया।

कालान्तर में आचार्य पुण्डरीक ने प्रगति की। उन्हें अवधिज्ञान प्राप्त हुआ, फिर वे केवली बने। अपना अन्तिम समय जान उन्होंने अनशन व्रत लिया और अपने सुयोग्य शिष्य धनेश्वर को आचार्य पद प्रदान कर नश्वर शरीर को त्याग कर शिवपुर—मोक्ष प्राप्त किया।

आर्या महाभद्रा ने प्रवर्तिनी के सभी कर्तव्य पूरे किये और मरकर वे भी मोक्ष को गईं।

साध्वी सुललिता ने कठोर तप द्वारा आत्मा को निर्मल बना लिया था। वे भी देह त्यागकर मोक्ष को गईं।

राजर्षि श्रीगर्भ और साध्वी कमलिनी—दोनों पण्डितमरण का वरण

कर देवलोक के देव-देवी बने। मुनि मगधसेन और साध्वी सुमंगला भी देवलोक को गए।

चित्तरम उद्यान में जिस-जिसने अनुसुन्दर चक्रवर्ती—संसारी जीव की आत्मकथा सुनकर समन्तभद्राचार्य से दीक्षा ली थी उनमें से सभी को सद्‌गति मिली। कुछ मोक्ष को गए और कुछ आगे के भवों में मोक्षगामी बनेंगे। □

[२५] उपसंहार : सार संक्षेप

कोई भी मनुष्य कहीं भी जन्म ले, पर वे सब मनुजगति नगरी में रहते हैं। बाह्य दृष्टि से उनके माता-पिता कोई भी हों, पर गूढ़ार्थ से यथार्थतः सभी कर्मपरिणाम और कालपरिणति की सन्तान ही हैं। उनके नाम कुछ भी हों, पर लघुकर्मी जीव 'भव्यपुरुष' कहलाते हैं; जैसे कि शंख-पुर का राजकुमार पुण्डरीक 'भव्यपुरुष' था और कर्मपरिणाम एवं काल-परिणति का पुत्र था।

समन्तभद्राचार्य के वचन सुनकर साध्वी महाभद्रा उनके गूढ़ार्थ को तुरन्त समझ गई थी, अतः वे प्रज्ञाविशाला कहलाईं। ऐसी सभी जीव-आत्माएँ प्रज्ञाविशाला ही हैं।

सुललिता जैसी आत्माएँ अगृहीतसंकेता होती हैं, जो गुरुकर्मी तो होती हैं, देर से बोध प्राप्त करती हैं, पर उनका भविष्य उज्ज्वल होता है। ऐसे जीवों को कभी-न-कभी सन्त-महात्मा का संग अवश्य प्राप्त होता है और यह संग उन्हें कल्याण परम्परा प्रदान करता है।

अनुसुन्दर चक्रवर्ती ने संसारी जीव के रूप में अपनी जो आत्मकथा सुनाई थी, वह प्रायः सभी जीवों पर लागू होती है।

जितने जीव मोक्ष को जाते हैं, लोकस्थिति के सार्वजनिक नियोग के अनुसार कर्मपरिणाम की आज्ञा से ही जाते हैं और इतने ही जीव भवित-व्यता के वश असंव्यवहार नगर से बाहर निकलते हैं।

मनुष्य भव बड़ी कठिनाई से प्राप्त होता है। मूर्ख मनुष्य वैश्वानर, हिंसा, शैलराज, मोह, पापोदय, सागर, परिग्रह आदि से प्रेम स्थापित कर स्वयं को गर्त में गिरा देता है—पापी पिंजर—नरक का बंध करता है।

कथा का सार यह है कि इस संसार में ऐसा कुछ भी नहीं है, जो पुण्यकर्म से प्राप्त न हो सके। लेकिन बुद्धिमान लोग मोक्ष के लिए ही परम पुरुषार्थ करते हैं, क्योंकि पुण्य भी अन्ततः संसार में फँसाता है।

मनुष्य कितना ही ऐश्वर्य, देव-सुख प्राप्त करले, लेकिन वह पाप कर्मों को अपना शत्रु नहीं समझेगा तो उसके यही मित्रवत् लगने वाले पाप कर्मरूपी महाशत्रु उसे संसार सागर में धकेल देंगे।

कोई प्राणी यदि नरक में जाने योग्य कर्म का बंध अज्ञानवश कर भी ले तो वह सदागम बोधपरायण होकर धर्म धारण करने से—तपश्चर्या द्वारा निष्पाप होकर मोक्ष को जा सकता है।

अनुसुन्दर चक्रवर्ती की कथा, जो उसके अनेक भवों का पुञ्ज है, मनुष्य को अपने उद्धार की प्रेरणा देने वाली है। इस पर बार-बार विचार करें।

सबकी भवितव्यता भिन्न-भिन्न होती है। सब अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार संसार का क्षय करते हैं। संसार सागर से पार जाने का मूल आधार अपनी भवितव्यता ही है।

इस संसार में जैनदर्शन का चिन्तन-मनन कर अपने को कर्ममल से मुक्त करने और पापों को ढूंढ़-ढूंढ़ कर अपने अन्तरंग राज्य से निकाल देना चाहिए।

संसारी जीव अपने अन्तरंग राज्य का स्वयं ही स्वामी—शासक है। चारित्रधर्मराज, सद्बोध मन्त्री आदि उसके वफादार सेवक तथा मोहादि दुष्ट ऐसे दुष्ट शत्रु हैं, जो मित्र का वेश रखकर संसारी जीव को उसके राज्य से बाहर कर देते हैं। अतः आपको शत्रु-पक्ष और मित्र व हितैषी पक्ष की पहचान रखनी चाहिए। □

हमारा रुचिकर साहित्य

जैन कथाएँ (भाग १ से १०८)	३) प्र. भाग
चिन्तन की चांदनी	३)
विचार रश्मियां	७)
विचार वैभव	२)
बिन्दु में सिन्धु	२)
प्रतिध्वनि	
खिलती कलियाँ : मुस्कराते फूल (द्वि. सं.)	५)
शाश्वत स्वर	३)
खिलते फूल	२)
पंचामृत	३)
जीवन की चमकती प्रभा	३)
सीप और मोती	३)
फूल और पराग (द्वितीय संस्करण)	३)
गागर में सागर	३)
सोना और सुगन्ध	३)
सत्य और तथ्य	४)
जिन खोजा तिन पाइयां	४)
गहरे पानी पैठ	५)
आस्था के आयाम	४)
बोलती तस्वीरें	३)
धरती के फूल	३)
शूली और सिंहासन	४)
अतीत के चलचित्र	४)
बुद्धि के चमत्कार (द्वि. सं.)	४)
उपन्यास	
धरती का देवता	१५)
किनारे किनारे	५)
सती का शाप	५)
पुण्य पुरुष	५)
कीचड़ और कमल	२०)